आचार्य वराह मिहिर विरचित

बृहज्जातकम

(BRIHAT JATAKAM)

व्याख्याकार : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र

ज्योतिषाचार्य



भारतीय ज्योतिष का सर्वमान्य संविधान

अक्षर अक्षर से प्रकट गूढ़ अर्थ अनमोल

आचार्य वराहमिहिर प्रणीतं

बृहज्जातकम्

(अभिनव हिन्दी व्याख्या समेतम्)

(BRIHAT JATAKAM)

व्याख्याकार

डॉ० सुरेश चन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

एम०ए०, पी०एच०डी०



रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज

नई दिल्ली - 110002

प्रकाशकः
रंजन पब्लिकेशन्स
16, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002
फोन : 3278835

संशोधित संस्करण
सन् 2001

मूल्य : 150 रुपये

मुद्रकः
वन्दना एन्टरप्राईजेज
दिल्ली-110092

।। मंगलाचरणम् ।।

प्रसन्नवदनः सदनमृद्धीनां सर्वसिद्धीनाम् ।
पायादपायात्सद्यस्त्रिनयन उग्रः पंचमोदकरः ।। 1 ।।
मार्त्तण्डोऽत्र पराक्रमं कुमुदिनीनाथः कृतौ कल्पनां
सत्त्वंभूमिसुतः सदा सुविमलां मेधां श्रविष्ठाभवः ।
वाचं वाक्पतिरास्फुजिर्विशदतां दृष्टेः प्रभाभास्वरां
सौख्यं सूर्यसमुद्भवः समुदयं लग्नं च पुष्णातु नः ।। 2 ।।
यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिल्लँयमुपैष्यति
स्थितिर्येनैव तं वन्दे गुरुं तेजोमयं परम् ।। 3 ।।
प्रत्यक्षं सविता चकार विपुलं शास्त्रं पुरा ज्यौतिषं
तस्योच्छेदभिया पुनः कलियुगे स्कन्धैस्त्रिभिः शोभितम् ।
लोकानुग्रहकामनाकवलितः स्वान्तः सुरम्यं विभुः
संक्षिप्तं कृतवान् वराहमिहिरव्याजेन तस्मै नमः ।। 4 ।।
श्रीमद्वराहमिहिर–प्रथितं सुबृहज्जातकं, लोके ।
जयति बहुलार्थभेदमनेकधा भाषितं विबुधैः ।। 5 ।।
तस्मिन् प्रतिपदगहने गुरुजनवचनविमलशेमुषीकाणाम् ।
मुह्यति मतिरपि महतां, का वार्ता मादृशां भणताम् ।। 6 ।।
गूढोक्तिनानार्थवीचिबहुले बहुभेदभीमे तस्मिन्महोदधिमये मिहिरप्रबन्धे ।
स्वाभ्यासमाकलयितुं सुरेशमिश्रष्टीकां धियऽभिनवनाम्नीमिहातनोति ।। 7 ।।

विषयानुक्रम

सृष्टिखण्डः

स्थितिखण्डः

प्रलयखण्डः

एक दृष्टि में

ज्योतिष शास्त्र का मुख्य आधार स्तम्भ।
आचार्य कृत ग्रंथों में सिरमौर रचना।
अक्षर-अक्षर में दिये गहरे अर्थों का स्पष्टीकरण।
फलित विषय के गूढ सूत्रों का अपूर्व ख़ज़ाना।
जातक, आधान, नष्ट पत्रिका, स्त्री जातक
अष्टक वर्ग, राजयोग, अनिष्ट योग, दृष्टि फल
द्रेष्काण, दशान्तर्दशाफल, आयुर्दाय आदि
अध्यायों में सर्वसम्मत युक्तियुक्त विवेचन
वराह की अपूर्व प्रतिभा का पग-पग पर दिग्दर्शन
इसके बिना ज्योतिष में एक पग भी चलना कठिन

कवित्व, विषय की गम्भीरता, सीमित श्लोक
असीमित व चमत्कारिक विस्तृत व्याख्या

दक्षिण मत मतान्तरों की झलक तथा समन्वय
ज्योतिष का प्रत्येक विषय उपस्थित

फलित कथन के लिये गागर में सागर

प्ररोचना

बृहज्जातक या वराह का होराशास्त्र एक ऐसा वटवृक्ष है, जिसकी छाया में समस्त अवान्तर ज्योतिष साहित्य पुष्पित व समेधित हुआ है । इसके बिना ज्योतिष रूपी महासमुद्र में एक पग आगे बढ़ना भी दूभर है । इसे यह स्थान अनायास ही प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु इसके प्रत्येक अक्षर में आचार्य वराहमिहिर ने विशेष प्रकार की अन्विति व तारतम्य रखकर इसे सर्वोत्कृष्ट तो बनाया ही है, साथ में अपने समय के विभिन्न मतमतान्तरों, सम्प्रदायों व विचारों में अपनी अलौकिक बुद्धि के बल से बड़े विचार पूर्वक समन्वय स्थापित करके, स्वयं निर्भ्रान्त व दृढ़ मत पद्धति को प्रस्तुत किया है । इसी कारण यह वराहहोरा मानव आचार्यों (ऋषियों के अतिरिक्त) द्वारा रचित समस्त ज्योतिष साहित्य में मूर्धन्य स्थान रखती है और वराह मिहिर वास्तव में **'ज्योतिषशास्त्र स्थापक परमाचार्य'** हैं ।

भारतीय काव्य शास्त्र में जो महान् कार्य आचार्य मम्मट ने किया है, ठीक वही समन्वयात्मक पद्धति अपनाकर, भारतीय ज्योतिष के झंडे तले भिन्न ज्योतिषीय विचार धाराओं को लाने का भगीरथ कार्य आचार्य वराहमिहिर ने किया है ! गर्ग, पराशर, वशिष्ठ, नारद–प्रभूति तो ऋषि मुनि हैं लेकिन उपलब्ध विशाल साहित्य वाले ये अकेले ही आचार्य हैं ।

वराह की कुलपरम्परा : वराह मिहिर के पिता का नाम **'आदित्यदास'** था । इन्होंने अपने पिता से ही ज्योतिष शास्त्र का बोध प्राप्त किया था । इसका उल्लेख स्वयं वराह ने ही किया है–

'आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः ।'

बहुत सम्भव है कि शास्त्रप्रवेश में अपने पिता से बोध प्राप्त कर उच्च श्रेणीक अध्ययनार्थ अन्य गुरुओं का सान्निध्य भी प्राप्त किया हो । पिता आदित्यदास इनके प्रारम्भिक गुरु या प्रेरक थे या सम्पूर्ण शास्त्राध्यापन कराने वाले गुरु, यह स्वष्टतया नहीं कहा जा सकता । हमारे विचार से कुल परम्परया आदित्यदास ने अपने पुत्र वराहमिहिर को ज्योतिष में प्रवृत्त करके उन्हें गति प्रदान की होगी, लेकिन वराह ने आगे चलकर प्रत्यक्ष

सविता या सूर्य भगवान् को गुरु या परम गुरु माना था । अतः लौकिक व साक्षात् गुरु होते हुए भी सविता का गुरुत्व खण्डित नहीं होता । सविता से प्रत्यक्ष वरदान व प्रसाद (कृपा) प्राप्त करने के बाद ही वराह मिहिर को अक्षय यश व अलौकिक कवित्व मिला होगा ।

'काम्पिल्लके सवितृलब्ध वरप्रसादः ।'

कांम्पिल्लक आज कालपी या कायथा गाँव माना जाता है, लेकिन ये निरे अनुमान ही हैं । वराह मिहिर अवन्ती देश (उज्जयिनी) में लम्बे समय तक रहे थे । वराह स्वयं को गर्व के साथ 'आवन्तिकः' अर्थात् अवन्तीवासी कहते हैं । अवन्ती ही इनकी जन्म भूमि थी या नहीं, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता । कई प्रतियों में 'काम्पिल्लके' के स्थान पर **'कापित्थकः'** तथा **'कापिष्ठिलः'** पाठ भी मिलता है । काम्पिल्लक से कालपी, कापित्थक से 'कायथा' लोग आजकल मानते हैं । लेकिन 'कापिष्ठिल' गोत्रसूचक शब्द माना गया है । रुद्रभट्ट ने कहा है–

'कापिष्ठिलः कपिष्ठिलगोत्रजात इत्यनेनाभिजन्म सूचितम् । सवितृलब्ध वरप्रसादः ।

न तु रावणादिवत् केवलं लब्धवरः, किन्तु आदित्यदेवा लब्धवरः लब्धप्रसादक्षेत्रत्यर्थः ।'

इससे ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत में 'कापिष्ठिलः' पाठ उस समय प्रचलित था तथा वराह को 'कपिष्ठिल' गोत्रोत्पन्न समझा जाता था ।

वराहमिहिर का परिवार सूर्योपासक था । अपने सभी ग्रन्थों में आचार्य ने सूर्योपासना से ही मंगल किया है । इनके पुत्र **'पृथुयशा'** ने भी अपने 'होरासार' व 'षट्पंचाशिका' में सूर्योपासनात्मक मंगलाचरण ही किया है । इनके वंश में सूर्य वाचक नाम रखने की परम्परा सी रही है । आदित्य (सूर्य) दास, वराह मिहिर (सूर्य), पृथुयशा (परमतेजस्वी सूर्य) इत्यादि ।

वराह का काल : वराह ने प्रत्यक्षतः अपने स्थिति काल के बारे में कुछ भी नहीं कहा है । लेकिन अपनी पंचसिद्धान्तिका में गणितोदाहरण के रूप में शकसंवत् 427 अर्थात् वि. सं. 562 या 505 ई० माना है । तदनुसार 20 मार्च 505 ई० चैत्र कृष्ण चतुर्दशी (शुक्लादि मान से) रविवार के क्षेपक, अपने करण ग्रन्थ में किए हैं । पंचसिद्धान्तिका की रचना के समय वराह मिहिर 20-25 वर्ष के तो रहे ही होंगे । तब इनका जन्म काल 480-485 ई० में कभी माना जा सकता है । यह एक प्रबल प्रमाण है । कोई भी व्यक्ति अपने जीवन से बहुत आगे के वर्ष को उदाहरण रूप में नहीं कहता है ।

पंचसिद्धान्तिका में वर्णित रोमक सिद्धान्त का समय 150 ई० प्रायः, पितामह सिद्धान्त ई० पू० तथा शेष सिद्धान्त 400 ई० के आस–पास के हैं। अतः वराहमिहिर का कार्यकाल छठी सदी का आरम्भ मानने में कोई आपत्ति नहीं है। पंचसिद्धान्तिका में आर्यभट्ट का उल्लेख भी है। आर्यभट्ट ने कालक्रियापाद में लिखा है कि 3600 वर्ष कलियुग के बीतने पर अर्थात् 500 ई० में आर्यभट्ट 23 वर्ष के थे।

षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।

त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः।।

वराहमिहिर उज्जयिनी जैसी राजधानी में ज्योतिष के मूर्धन्य स्थान पर स्थित थे। अतः शक 421 का आर्यभट्ट का ग्रन्थ 427 ई० तक इतना प्रसिद्ध कैसे हो गया कि वराह को उसका उल्लेख करना पडा, यह शंका व्यर्थ ही है। 427 शक में पंचद्धिान्तिका का आरम्भ हुआ था, समाप्ति नहीं। समापन में यदि पाँच वर्ष भी लगे होंगे तो 9-10वर्षो में आर्यभट्ट का ग्रन्थ प्रसिद्धि पा ही सकता है। एक परम्परा के अनुसार वराहमिहिर की मृत्यु 509 शक में मानी जाती है। तब वराह की आयु 95-100 वर्ष के लगभग बैठती है, जो असम्भव नहीं है।

वराहमिहिर व विक्रमादित्य: भारतीय परम्परा वराह मिहिर को विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक मानती आई है। ज्योतिर्विदाभरण का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है–

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शंकु–

वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां–

रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य।।

ज्योतिर्विदाभरणकार स्वयं को रघुवशं कुमारसम्भव आदि काव्यों का रचयिता कहते हैं। अतः ज्योतिर्विदाभरण को कालिदास की कृति माना जाता है। लेकिन ग्रन्थारम्भ काल बताते समय ज्योतिर्विदाभरण में ये तथा कथित कालिदास 3068 कलि सवंत् अर्थात् विक्रम सवंत् 24 बताते हैं। इसमें अन्तर्विरोध इतने हैं कि इसे महाकवि कालिदास की रचना मानना दुष्कर ही है। पुनश्च श्लोकोक्त 9 लोगों को समकालीन कहना भी इतिहास के साथ खिलवाड़ ही है। क्रान्तिसाम्य के विषय में जो स्थिति दिखाई है, वह ईसा की तेरहवीं सदी में प्रायः हो सकती है। अयनांश साधन की विधि भी इसे कालिदास कृति मानने में बाधा है। पुनश्च प्रथमाध्याय में तथा कथित कालिदास ने 'मत्वा वराहादिमतैः' कहकर स्वयं ही अपने ग्रन्थ को इस

सन्दर्भ में अविश्वसनीय बना दिया है, परन्तु बहुत सम्भव है कि वराहमिहिर किसी विक्रमादित्य के सम्पर्क में रहे होंगे। भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य का व्यक्तित्व अनिर्णीत सा ही है। वास्तव में परम्पराएँ या किम्वदन्तियाँ इतिहास का पुष्ट आधार नहीं हो सकतीं।

वराह ने अपनी पंचसिद्धान्तिका में सूर्यसिद्धान्त को स्पष्टतर कहा है। अर्थात् वराह के समय में प्रचलित या संग्रहीत पाँचों सिद्धान्तों में से सूर्य सिद्धान्त की गणना बिल्कुल दृक्तुल्य न होकर, उसके निकट सी थी। वराहमिहिर अयन चलन से अनभिज्ञ थे, अर्थात् वराह के समय में अयनांश संस्कार की आवश्यकता नहीं होती थी, अर्थात् सायन व निरयण गणना समान थी। यदि वे अयन चलन को जानते तो केवल इतना कह कर ही सन्तोष न करते कि प्राचीन काल की अपेक्षा अब कुछ अलग हटकर अयन एक होने लगा है। प्राचीन काल में कर्कादि में होता था लेकिन अब आश्लेषा के अर्ध पर होता है, यह उन्होंने प्रत्यक्ष वेध द्वारा ही जाना होगा। तब उनके द्वारा सूर्यसिद्धान्त को स्पष्टतर कहना अकारण नहीं है। आजकल 285 ई० में शून्य अयनांश माना जाता है। अतः सूर्यसिद्धान्त के रचना काल के माध्यम से वराह का समय अधिक विश्वसनीय हो सकता है। लेकिन यहाँ भी समस्या वही है। यदि परम्परागत रचनाकाल मानें तो सूर्यसिद्धान्त लगभग 22 लाख वर्ष पुराना होना चाहिए। यह बात अविश्वसनीय व अप्रामाणिक ही है। वराह के समय में सूर्यसिद्धान्त जिस रूप में प्रचलित था, अब उससे भिन्न रूप में मिलता है। अयन चलन की बातें वर्तमान संस्करण में बाद में मिलायी गई हैं। प्रत्येक परिस्थिति में सूर्यसिद्धान्त का समय 400 ई० के लगभग समझा जा सकता है। यह बात विभिन्न पौर्वात्य पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का विश्लेषण करने से प्रतीत होती है। यह समय ब्रह्मगुप्त व सूर्यासिद्धान्त के नक्षत्र ध्रुवों के अन्तर की तुलना करके निश्चय किया गया है। ब्रह्मगुप्त का समय 628 ई० प्रायः 250 वर्ष से अधिक पहले सूर्यसिद्धान्त का रचनाकाल नहीं ले जाया जा सकता।

इसके अतिरिक्त एक बात और है कि वराहमिहिर ज्योतिष के इतिहास के उस मुहाने पर खड़े दिखते हैं, जहाँ ऋषि मुनि परम्परा प्राप्त ग्रन्थों में अन्तर देखा जाने लगा था, तथा मानव आचार्य विचार मन्थन, समन्वय व विचारों का आदान–प्रदान कर रहे थे। वराह अपने समकालीन या अपने से पूर्ववर्ती जिन आचार्यों का उल्लेख करते हैं, वे गर्ग, पराशर, यवन, बादरायण, मय, मणित्थ, सत्याचार्य, विष्णुगुप्त (चाणक्य) आदि हैं। अतः आचार्य परम्परा के प्रारम्भिक बिन्दु पर वराह स्थित है। सत्याचार्य के मत को विशेष आदर देना भी यह प्रकट करता है कि ऋषिमत में दृश्यमान

अन्तरों का लोग समाधान करने या विरोध करने में भीरुता का परिचय देते थे। ऋषि विरोध पर धर्मविरोध का मुलम्मा चढ़ाया जाता होगा। तभी तो भदन्त अर्थात् बौद्ध आचार्य सत्याचार्य ने वराह से थोड़ा पूर्व समन्वय का प्रयास किया था, जिसका स्पष्ट व पुष्ट समर्थन वराह ने कर दिया। यह समय वैदिक धर्म के पुनरभ्युदय के आस पास प्रतीत होता है। अतः शक संवत् के आरम्भ काल से कुछ वर्षों बाद अर्थात् ईसा की पहली सदी हो सकता है। इसके बाद ही वराह हुए हैं। इन विभिन्न मत–मतान्तरों का विभिन्न लोगों द्वारा विश्लेषण, परीक्षण व प्रचार करने में तीन सौ वर्ष का समय लगा होगा, यह मानने पर भी वराह का समय पाँचवी सदी ही पुष्ट प्रतीत होता है।

वराह के ग्रन्थ : पंचसिद्धान्तिका, बृहज्जातक (होराशास्त्र), लघुजातक, बृहत्संहिता, विवाहपटल व योगयात्रा ये ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका वराहकृत होना सर्वमान्य है। सबसे प्रसिद्ध व उपयोगी दो ग्रंथ है।

बृहज्जातक : वराह ने स्वयं इसे 'होराशास्त्र' ही कहा है। बृहज्जातक नाम बाद का दिया हुआ है। यह अब तक सम्पूर्ण उपलब्ध पौरुषेय जातक ग्रन्थों में सर्वप्राचीन है। यह पच्चीस अध्यायों में विभक्त जातकशास्त्र का सर्वमान्य, मूलरूप ग्रन्थ है। इसके श्लोक सूत्र कोटि में आते हैं, जिनमें पदक्रम बदलने से ही अर्थभेद उपस्थित हो जाता है। यह परिपक्व अवस्था की रचना है। इसे दक्षिण भारत में आज भी 'होराशास्त्र' नाम से जानते हैं तथा उत्तरभारत में बृहज्जातक नाम से इसकी प्रसिद्धि है।

आज तक बृहज्जातक में प्रतिपादित नियमों व सिद्धान्तों की मौलिक भित्ति पर ही सम्पूर्ण अवान्तर ज्योतिष साहित्य लिखा जा रहा है। अतः वराहमिहिर ही ज्योतिष शास्त्र के पोषकपिता (Father of Astrology) हैं।

बृहत्संहिता : समूचे संहिता साहित्य में बृहत्संहिता की तुलना नहीं की जा सकती है। यह संहिता ग्रन्थ है। ग्रह चार, युद्ध, देश भविष्य, पशु पक्षियों की चेष्टाएँ, स्त्री पुरुष आदि के लक्षण, वृक्षायुर्वेद, दर्व्यागल आदि बड़े विचित्र विषयों का संग्रह है। जमीन के भीतर विद्यमान पानी के रूप, प्रकृति व मात्रा ज्ञान आदि से सम्बद्ध तथा सेंट खुशबू, सीमेंट बनाने (वज्रलेप) आदि का निरूपण देखकर चकित होना ही पड़ता है।

वराह के समान व्युत्पन्न, युगप्रवर्तक, अन्वेषक व्यक्तित्त्व फलित ज्योतिष में आज तक भारतवर्ष में नहीं हुआ है। जब तक भारतीय ज्योतिष है, तब तक वराह का नाम अमिट है। इतने प्राचीन काल में भी भारतवर्ष में तत्त्वान्वेषण की चिरन्तन प्रवृत्ति को देखकर हम भारतीय गर्वित हो सकते हैं। संहिता के विषयों का यदि आज भी समयानुसार निरीक्षण, परीक्षण किया जाता होता तो हम लोग स्वयं को पश्चिमी देशों से उन्नत अवस्था में ही पाते।

वराहमिहिर भारतीय ज्योतिष के ऐसे व्यक्तित्त्व हैं, जिनके पैर यथार्थ के धरातल पर हैं तथा आँखों में अनन्त ऊँचाईयों को नापने की चाह व प्रयत्न विद्यमान हैं। इनका योगदान सर्वतोभावेन अद्वितीय है। इन्होंने भारतीय ज्योतिष को व्यक्तिगत फलादेश मात्र तक सीमित न रखकर मानव जीवन के सभी पहलुओं से बड़ी सफलता व कुशलता के साथ जोड़ा है। यदि वराह न होते तो भारतीय ज्योतिष आज इस विकसित व सर्वमान्य रूप में न होता, यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है। साहित्य, व्याकरण, दर्शन, लोकचातुरी, अन्वेषक प्रतिभा, विश्लेषण की अपूर्व शक्ति, एवं परीक्षण करके ही तथ्यों को स्वीकार करने की प्रकृति आदि गुण वराह में थे, जो इन्हें महत्मतित्व व महामानवत्व प्रदान करते हैं।

सूत्ररूप में अत्यन्त संक्षेप में ही बहुत कुछ कहने की कला, गागर में सागर भरने का हुनर कोई वराह से सीखे। जिस बात को दूसरे आचार्यों ने बड़े-बड़े ग्रन्थों में कहा है, उन्हीं को बड़ी कुशलता व सफलता से वराहाचार्य ने कुछ श्लोकों में ही कह दिया है। यह कवित्व व कथन शैली की कसौटी होती है कि कवि यथेच्छ व्यास (विस्तार) व समास (संक्षेप) में अपनी बात कह सके।

इन्हीं विशेषताओं के कारण हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि बृहज्जातक व बृहत्संहिता ज्योतिष शास्त्र के उपनिषद है।

यदि परम्परा को सत्य मान लें तो वराहमिहिर वास्तव में शास्त्र विक्रम रत्न ही हैं। विभिन्न छन्दों का कौशल वराहमिहिर बड़ी कुशलता से दिखाते हैं। कवित्व की श्रेष्ठता इन्हें महाकवि की श्रेणी में रखती है। वर्णनचातुरी, प्रसाद गुण, वर्णन प्रवाह बृहत्संहिता को महाकाव्य का गौरव देता है। छन्दः शास्त्र, कोष, अलंकार शास्त्र आदि तो मानो वराह के वशवर्ती होकर इनके पीछे हाथ बाँध कर चलते प्रतीत होते हैं।

वराहमिहिर की अद्भुत प्रतिभा को देखकर कुछ लोगों ने इन्हें साक्षात् सूर्य का अवतार ही कह दिया है। वास्तव में जिस प्रकार सूर्यसिद्धान्त को स्वयं सूर्य ने उपदिष्ट किया था, उसी तरह ज्योतिष शास्त्र को उच्छिन्न होने से बचाने हेतु स्वयं सूर्य ही मानो वराहमिहिर के रूप में अवतीर्ण हुए थे।

अस्तु, प्रस्तुत कृति बृहज्जातक को आचार्य स्वयं ही संक्षिप्त किन्तु अर्थों से भरपूर, अद्भुत व सर्वोपयोगी कहते हैं। सारे भारतवर्ष में बृहज्जातक या होराशास्त्र के बहुत से संस्करण उपलब्ध हैं। विभिन्न आचार्यों ने इस पर टीकाएँ लिखी हैं। ज्योतिष की किसी भी रचना पर इतनी टीकाएँ नहीं की गई होंगीं। उनमें से आज बहुत सी टीकाएँ अनुपलब्ध हैं। भट्टोत्पलादि ने अपनी टीकाओं में विभिन्न मत-मतान्तरों का उल्लेख किया है, जिससे यही पता चलता है कि बृहज्जातक पर समय-समय पर टीकाएँ लिखी

जाती रहीं हैं तथा यह सिलसिला अभी भी चल रहा है। प्रसिद्ध टीकाओं में भट्टोत्पल की टीका तथा गोविन्दसोमयाजी की दशाध्यायी टीका है। लेकिन इन दोनों टीकाओं से श्रेष्ठ व विशिष्ट उद्‌भावनाओं वाली विवरण टीका भी केरल विश्वविद्यालय की अनन्तशयनं ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो चुकी है। उसके लेखक 'रुद्रभट्ट' हैं। इनका केरलीय नाम 'उषुम वारियर' केरल में प्रसिद्ध है। लेकिन स्वयं इतनी टीका की पुष्पिकाओं में आपने अपना नाम 'रुद्र' ही कहा है। दक्षिण भारत में वराह होरा का विशेष आदर है। इसे आम्नायवत् पवित्रता प्राप्त हैं।

होराशास्त्र में जिस बृहज्जातक के बिना एक पग चलना भी दूभर हो, उस पर सार्वदेशिक सम्प्रदायों के परिशीलन से युक्त तथा औदीच्य व दाक्षिणात्य मत–मतान्तरों व पाठान्तरों के सम्यग् विचार से संकलित टीका न रहने के कारण, इसकी व्याख्या में हमारी प्रवृत्ति हुई थी। अब विभिन्न मत–मतान्तरों व अर्थान्तरों की तक उद्‌भावनाओं से युक्त प्रस्तुत संस्करण सुधी पाठकों के समक्ष है।

इस व्याख्यान में कई दक्षिण भारतीय ग्रन्थों व विशेषतया रुद्रभट्ट की विवरण टीका का अवलम्बन भी किया गया है। एतदर्थ हम उन सभी पूर्व सूरियों के प्रति अधर्मणता स्वीकार करने में गौरव का अनुभव करते हैं। विशेष व्युत्पत्तिकामी जिज्ञासुओं की ज्ञानपिपासा को यह संस्करण अवश्य शान्त करेगा, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। केवल भट्टोत्पल की टीका पढ़ने वाले जनों को नई दिशा भी मिलेगी, यह कहना यहाँ असंगत न होगा।

निर्मत्सर पाठकों के उपयुक्त सुझावों का हम हृदय से स्वागत करेंगे। यदि कहीं पर अनजाने में कोई असंगति रह गई हो तो एतदर्थ हम क्षमा प्रार्थी हैं। आशा है, पाठकों के लिए यह संस्करण आलोक स्थान सिद्ध होगा।

वत्सरारम्भ सवंत् 2051 विक्रमी
(11. 4. 1994)

विदुषामाश्रवः
सुरेश चन्द्र मिश्रः
श्री समन्तभद्रमहाविद्यालय,
दरियागंज, नई दिल्ली।

। ।श्रीः । ।

(सृष्टिखण्डः)

अथ राशिप्रभेदाध्यायः

मंगलाचरण –

मूर्तित्वे परिकल्पितः शशभृतो वर्त्माऽपुनर्जन्मना–
मात्मेत्यात्मविदां क्रतुश्च यजतां भर्तामरज्योतिषाम् ।
लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुश्चानेकधा यः श्रुतौ
वाचं नः स दधातु नैककिरणस्त्रैलोक्यदीपो रविः । । 1 । ।

(शार्दूलविक्रीडित)

अनेक किरणों वाले, तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले वे भगवान् सूर्य हमारी वाक् शक्ति अर्थात् विषय प्रतिपादन के योग्य शब्द व अर्थ समुदाय की उपस्थिति को पुष्ट करें, जो चन्द्रमा के मण्डल में मूर्तत्व अर्थात् दृश्यता का आधान करने वाले, संसार के बन्धनों से मुक्त होकर लोकान्तर को जाने वाले मुमुक्षुओं या मुक्तपुरुषों के लिए मोक्ष का द्वार, योगियों की आत्मा रूप, यज्ञ करने वालों के लिए यज्ञरूप, इन्द्रादि देवों व आकाशस्थ ज्योतिः पिण्डों (ग्रह नक्षत्रों) के स्वामी, समस्त लोकों की उत्पत्ति, स्थिति व विनाश के कारण, वेदों में अनेक नामों से वर्णित हैं ।

रविः– सूर्य को साक्षात् नारायण स्वरूप तथा प्रत्यक्ष वेदमय यीरुप माना जाता है । रवि शब्द का अर्थ एक प्रकार से तीनों वेद भी हैं । **'रु शब्दे'** धातु से निष्पन्न रवि शब्द का अर्थ वेदभगवान् रूप मानकर ही यह श्रुति है–

एतद्यन्मण्डलं रवेः तपति दिनकृतस्ता ऋचोऽर्चींषि यानि द्योतन्ते तानि सामानि ।

अतः शब्द ब्रह्म स्वरूप भगवान् सूर्य का आशीर्वादात्मक स्तवन करना युक्त है । भावी फल बताने वाले ज्योतिष शास्त्र में ग्रहनक्षत्राधिपति होने से भी सूर्य को इष्ट देवता मानना सर्वथा संगत ही है ।

नैककिरणः– अनेक किरणों वाले सूर्य का कथन करके उसकी बहुप्रकाशकता को रेखांकित किया गया है । अथवा कभी शीत किरणों वाला, कभी उष्ण किरणों वाला तथा कभी समशीतोष्ण किरणों वाला सूर्य 'नैक किरण' होगा । प्रसज्य प्रतिषेधण्न से यहाँ किरणों की एक प्रकारकता का निषेध किया गया है । 'अनेक' व 'नैक' ये दोनों ही पाठ विभिन्न प्रतियों में प्राप्त होते हैं ।

दधातु– दधातु अर्थात् हमारी वाक्शक्ति को पुष्ट करें । **'डुधा धारणपोषणयोः'** धातु से पोषित करना अर्थ अभीष्ट है । अथवा ददातु पाठ मानने पर वाक्शक्ति प्रदान करें, ऐसा अर्थ युक्त है । हमारे विचार से भट्टोत्पली में प्राप्त होने वाला **'ददातु'** पाठ कम उपयुक्त है । वाक्शक्ति तो जन्मना ही मानव योनि को प्राप्त है, अतः 'देने वाले' अर्थ की अपेक्षा 'पहले से प्राप्त वाक् का पोषण करने वाला' अर्थ अधिक उपयुक्त है । क्योंकि वाक्सामान्य की अपेक्षा विशिष्ट वाणी अर्थात् वर्णनानुकूलशब्दार्थ की त्वरित उपस्थिति रूप परिपुष्ट वाणी हेतु प्रार्थना करना अभीष्ट है ।

मूर्तित्वे परिकल्पितः शशभृतः– शशभृत् अर्थात् शशांक चन्द्रमा का स्वयं कोई प्रकाश न होने से चक्षुगोचर मूर्ति या स्वरूप सम्भव ही नहीं है । केवल सूर्य की किरणों के सम्पर्क से ही चन्द्रमा प्रकाशित होता है । अतः चन्द्रमा के मूर्तित्व अर्थात् दृश्यमानता का कारणभूत सूर्य सिद्ध है । भास्कराचार्य ने कहा है–

तरणिकिरणसंगादेषपीयूषपिण्डः,दिनकरदिशिचन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति ।

भट्टोत्पल ने 'शशिभृतः' पाठ उपयुक्त माना है । तब इसका अर्थ भगवान् सूर्य को शिव रूप मानकर किया जाएगा । शिव की आठ मूर्तियों में पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु, आकाश, सोम, सूर्य व यजमान की गणना होती है । अतः अवाङ्मनसगोचर भगवान् शिव को साक्षात् दृश्यमान बनाने वाला सूर्य हुआ, ऐसा आशय होगा ।

यह व्याख्यान त्रुटिपूर्ण है । एक ओर सूर्य की त्रिदेव रूप में अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्ति रूप में स्तुति करना तथा उसी स्थान पर केवल शिवमूर्ति मानना परस्पर विरोधी है ।

अपुनर्जन्मनां वर्त्मा–जिन्हें जन्म व मरण के बन्धन से छुटकारा मिल गया हो वे मुक्त पुरुष 'अपुनर्जन्मा' कहलाते हैं । ऐसे लोगों के लिए मोक्षोपरान्त गमनभूमि अर्थात् मुक्त पुरुषों की मंजिल स्वयं सूर्य ही है ।

द्वावेव पुरुषौ लोके सूर्यमण्डल भेदिनौ ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ।।

गीता में देवयान व पितृयान रूप में दो मार्गों का उल्लेख किया गया है। देवयान अर्थात् मुक्त लोगों का लक्ष्य सूर्यमण्डल व पितृयान अर्थात् स्वर्गगामी (पुण्य कम होने पर पुनर्जन्म लेने वाले) पुरुषों का लक्ष्य चन्द्रमण्डल होता है।

आत्मेत्यात्मविदाम्– शुद्ध बुद्ध, मुक्त स्वभाव, सच्चिदानन्दघन रूप, सब प्राणियों के हृदय में निवास करने वाला, सर्वव्यापक, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राणादि से अलग सर्वगत व सूक्ष्म, निर्गुण पदार्थ आत्मा है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** इस प्रसिद्ध श्रुति में सूर्य को ही लोक की आत्मा कहा गया है। अतः आत्मवित् अर्थात् वेदान्तियों योगियों के द्वारा सिद्धान्त रूप में प्रतिपाद्य सूर्य ही है।

भर्तामरज्योतिषाम्– सभी देवताओं व ज्योतिः पिण्डों का अधिपति एव भरण पोषण करने वाला स्वयं सूर्य ही है। यज्ञ में हवि पाने वाले देवताओं के लिए भूमण्डल पर हवनीय सामग्री का उत्पादक सूर्य ही है। क्योंकि सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्नादि व अन्नादि से जीव पैदा होते हैं, अतः यज्ञ सम्पादन के उपकरण धान्यादि की वृद्धि के माध्यम से, यज्ञाहुति पाने वाले देवताओं का भरण-पोषण करनेवाला सूर्य ही है। मनु ने ऐसा ही कहा है–

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।

अनेकधा यः श्रुतौ– जिस भगवान् सूर्य की स्तुति श्रुतियों में साक्षात् ईश्वर रूप में करते हुए विभिन्न नामों से जिसे अलंकृत किया गया है। इन्द्र, वरुण, विष्णु रूप में जिसकी स्तुति वेदों में की गई है। अर्थात् जो वेदों का भी प्रतिपाद्य है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे....... । तत्सूर्यस्य देवत्वन्तन्महिमत्त्वं–
मध्याकर्तोर्विततं ॐ सण्जमार । (यजुर्वेद, सूर्यसूक्त)

यदि उक्त मंगलाचरण को वस्तुनिर्देशात्मक मानकर व्याख्या की जाए तो सब ग्रहों में प्रधान सूर्य, शशभृत् शब्द से चन्द्रमा, **वर्त्मऽपुनर्जन्मनां** शब्द में सूर्य मण्डलभेदन व रण में अभिमुख रहने से ध्वन्यमान सत्त्व या पराक्रम से मंगल, **आत्मविदां** शब्द में प्रयुक्त **'वित्'** शब्द से बुध, **क्रतुश्च यजतां** पद सेधार्मिकक्रिया-कलापों का अधिष्ठाता गुरु, **भर्तामरज्योतिषाम्** शब्द में भर्तृपद से दाम्पत्य पुरुष वाचक कामयोगात्मक शुक्र, **प्रलय** शब्द से मृत्युरूप शनि, **श्रुतावनेकधा** में अनेक लग्नराशि का संकेत कर दिया है। इन् आठों के संकेत से अष्टकवर्ग का भी ग्रहण हो जाता है। साथ ही पूरे श्लोक में सत्ताईस पदों (शब्दों) का प्रयोग करके 27 नक्षत्रों का संकेत किया गया है।

सत्ताईस पद इस प्रकार हैं– मूर्तित्वे, परिकल्पितः, शशभृतः, वर्त्मा, अपुनर्जन्मनां, आत्मा, इति, आत्मविदां, क्रतुः, च, यजतां, भर्ता, अमरज्योतिषां, लोकानां, प्रलयोद्भवस्थितिविभुः, च, अनेकधा, यः, श्रुतौ, वाचं, नः, स, दधातु न, एक किरणः, त्रैलोक्यदीपः, रविः ।

इसके साथ ही 'त्रैलोक्य दीप' शब्द से जिस लोक से प्राणी आया है वह पूर्व योनि 'अनूक' से गत्यनूकाध्याय का अनूक एवं जिस लोक में जाएगा उस स्वर्गादि गति से ज्ञेय 'गति' अध्याय तथा जन्म व मरण के बीच के काल से भूलोक (वर्तमान) का द्योतन करके शास्त्र की त्रिकालदर्शिता बता दी है, क्योंकि इन तीनों लोकों या जन्मों या गतियों का दीप या प्रकाशक या बोधक सूर्य ही है । इस तरह जातक शास्त्र के समस्त प्रतिपाद्य विषय को बताकर यहाँ वस्तुनिर्देश भी किया है । ऐसा आशय रुद्रभट्ट ने निकाला है जो युक्तियुक्त ही है ।

बृहज्जातक के पद की तो बात ही क्या है, प्रत्येक अक्षर में गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है ।

निर्माण का प्रयोजन–

भूयोभिः पटुबुद्धिभिः पटुधियां होराफलज्ञप्तये,
शब्दन्यायसमन्वितेषु बहुशः शास्त्रेषु दृष्टेष्वपि ।
होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामहं,
स्वल्पं वृत्तविचित्रमर्थबहुलं शास्त्रप्लवं प्रारभे ।।2।।

(शार्दूलविक्रीडित)

बहुत बुद्धिमान् एवं व्याकरण, न्याय, मीमांसादि अनेक शास्त्रों के पारंगत विद्वानों की भी बुद्धि जिस होराशास्त्र अर्थात् जातक शास्त्र के विषय में फल प्रतिपादनार्थ कुण्ठित हो जाती है, जिनका उत्साह होराशास्त्र रूपी महासमुद्र के पार जाने में भग्न हो गया है, ऐसे लोगों के लिए मैं (वराहमिहिर) छोटा, अनेक छन्दों से युक्त, अर्थ से ओतप्रोत शास्त्र रूपी प्लव (नौका) बनाना प्रारम्भ कर रहा हूँ ।

होराशास्त्र रूपी बहुत विशाल समुद्र के पार जाने के लिए शास्त्र नौका का निर्माण आरम्भ करता हूँ, यह प्रधान उपवाक्य है । साधारण लोगों की तो बात ही क्या है, बड़े बड़े शास्त्रवेत्ता, न्याय, मीमांसा व व्याकरण शास्त्रज्ञ बहुत बुद्धिमान् लोगों की भी बुद्धि जातक फल बताने में कुण्ठित हो ही जाती है । क्योंकि सभी वेदांगों में ज्योतिष मूर्धन्य है । ज्योतिष के ज्ञान के लिए विशेष बुद्धि की आवश्यकता होती है । सुनना, समझना, समझे हुए को

याद रखना, स्वयं उसमें विकल्प व पक्ष-विपक्ष की कल्पना करना तथा अन्त में निश्चित व सन्देहरहित ज्ञान प्राप्त करना ये बुद्धि के गुण हैं। इनमें से सभी गुणों वाली जिसकी बुद्धि होगी, वही व्यक्ति सच्चा ज्योतिषी हो सकेगा।

ज्योतिष शास्त्र तीनों कालों की बात करता है, जबकि अन्य शास्त्र केवल वर्तमान बोध तक ही सीमित हैं। इसी कारण होराशास्त्र एक महासमुद्र की तरह है। उसके आर-पार जाने के लिए शास्त्र अर्थात् होरा शास्त्र रूपी यह छोटी नौका बना रहा हूँ।

पूर्वाचार्यों व ऋषियों के मतमतान्तरों का सार संक्षेप होने से **'स्वल्पं'** विशेषण युक्त है। अनेक छन्दों का प्रयोग होने से **वृत्तविचित्रं,** अर्थात् रमणीय है तथा जातक शास्त्र के मुख्य विषयों के साथ-साथ अनेक अवान्तर विषयों का भी संग्रह रहने से **'अर्थबहुल'** विशेषण युक्तियुक्त है।

छोटी नाव से जिस प्रकार अकेला व्यक्ति भी सरलता से शनैः शनैः महासमुद्र को पार कर सकता है, उसी तरह बृहज्जातक होराशास्त्र की सहायता से विद्वान् लोग (प्रारम्भिक ज्ञान युक्त लोग नहीं) होरा तन्त्र रूपी महासमुद्र के पार पहुँच जाएँगें।

इस प्रकार अपनी रचना व ज्योतिष शास्त्र की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है। अन्य शास्त्रों की अपेक्षा ज्योतिष एवं अन्य ज्योतिष ग्रन्थों की अपेक्षा मेरा ग्रन्थ श्रेष्ठ अर्थात् व्यतिरेकी है, यह सुस्पष्ट हो जाता है।

'होरा' शब्दार्थ व प्रतिपाद्यविषय–

हारेत्यहोरात्र विकल्पमेके,
वाण्छन्तिं पूर्वापरवर्णलोपात्।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि,
यत् तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति।।3।।(इन्द्र वज्रा)

होरा शब्द का क्या अर्थ है? इस विषय में 'एके' अर्थात् मुख्यता से प्रसिद्ध मतानुसार 'अहोरात्र' शब्द के पहले व अन्तिम अक्षर को लुप्त समझकर शेष बचने वाला शब्द 'होरा' है। अर्थात् दिन रात वाचक 'अहोरात्र' शब्द का अवयवभूत 'होरा' शब्द है।

इस होरा के द्वारा पूर्वजन्म में अर्जित अच्छे, बुरे व मिश्रित कर्मफलों के परिपाक का समय सहजता से ज्ञात हो जाता है।

अहोरात्रविकल्पम्–

वि–कल्प अर्थात् विशेष प्रकार की कल्पना, या परिवर्तन या चक्रवत् भ्रमण अथवा विधान यह विकल्प शब्द का अर्थ है। अहोरात्र अर्थात् दिनरात

के 24 घंटों या 60 घड़ियों में विशेष विधान या भ्रमण से ज्ञायमान विशिष्ट काल कला अर्थात् प्रश्न समय या जन्म समय से उपलक्ष्यमाण काल खण्ड। 'अहोरात्र, काल का वाचक है। अहोरात्र काल का वाचक है। अहोरात्र का अवयव 'होरा' जन्म या प्रश्न समय को द्योतित करता है। अतः होरा शब्द से तात्कालिक कालावयव 'लग्न' का ग्रहण है। लग्न से ही जीवन के समस्त अवश्य भवितव्य (सत्) आदि अर्थात् सत्, असत् व सदसत् तीनों प्रकार के कर्मो के फल-परिपाक का बोध होता है। इस कारण लग्न पर आधारित होने से अथवा लग्न की सहायता से बताए जा सकने वाले कर्म परिपाक का द्योतक व बोधक होने के कारण 'होराशास्त्र' नाम युक्तियुक्त ही है।

इसके माध्यम से वचन चातुरी द्वारा आचार्य वराहमिहिर ने तात्कालिक लग्न व ग्रह स्पष्ट की आवश्यकता को प्रकट करके वस्तुनिर्देश भी कर दिया है।

इस होराशास्त्र का प्रयोजन बताते हुए आचार्य कहते हैं कि मनुष्य द्वारा पूर्वभव अर्थात् पूर्वजन्म में अर्जित किए सदादि अर्थात् सत् (अवश्य होने वाला) असत् (अनिवार्यतया न होने वाला) व सदसत् (मिश्रित) कर्म फलों के परिपाक का समय बताना ही होराशास्त्र का परम प्रयोजन है। अतः ज्योतिष शास्त्र सभी पारम्परिक शास्त्रों में शिरोमणि एवं सर्वत्र काल बोधक ही है।

सदसत् कर्म के विषय में कहना है कि सत् कर्मफल सदैव दृढ़ अर्थात् मजबूत जड़ों वाले पूर्वकर्मो से प्राप्त होता है। अदृढ़ कर्म से असत्फल एवं दृढादृढ कर्म से अर्जित फल सदसत् होता है। इसीलिए सभी शुभ या अशुभ फल तीन प्रकार के हो जाते हैं। जो फल अवश्य मिलने वाला है, उसका विचार दशान्तर्दशा से करना चाहिए।

जिस कर्म फल के मिलने का पक्का निश्चय न हो अर्थात् निर्बलमूल-कर्म हो, उसका विचार 'अष्टक वर्ग व गोचर से करना चाहिए । सदसत् फल का विचार योगायोगों के द्वारा करना चाहिए। रुद्रभट्ट ने ऐसा ही कहा है—

> दशाप्रभेदेन विचिन्तयेद् दृढं दृढेतरं चाष्टकवर्गगोचरैः।
> दृढादृढं योगवशेन चिन्तयेदिति त्रिधा जातक सूक्ष्मसंग्रहः।।

इनमें बद्धमूल फल अर्थात् अनिवार्यतया मिलने वाले फल (दशाफल) का निराकरण नहीं हो सकता। जो फल दशान्तर्दशा से शुभ या अशुभ जैसा भी प्रतीत हो, उसमें साधारण न्यूनाधिक्य अत्यधिक प्रयत्न से किया जा सकता है। उसे बिल्कुल समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत

अष्टकवर्ग व गोचर से ज्ञायमान फल अनिवार्यतया घटित नहीं होता, उससे ज्ञेय अशुभ फल की शान्ति उपायादि से की जा सकती है। योगों द्वारा द्योत्य सदसत् फल घटित हो भी सकता है तथा घटित नहीं भी हो सकता, अतः उसका निराकरण प्रबल व कुशल उपायों द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार आचार्य ने यहाँ दशान्तर्दशा, गोचर व अष्टकवर्ग तथा योगायोगों के विचार की मुख्यता भी प्रकट कर दी है।

ज्योतिष शास्त्र आगामी फलों के प्रति पूर्व सूचना देकर मनुष्य को सावधान कर देता है। प्रयत्न करने पर, उपायादि करने पर भी जब किसी को सन्तान, विद्या, धन आदि प्राप्त नहीं होते तब वह पक्की जड़ वाले कर्म का फल माना जाता है। अतः गोचर, योगायोग एवं शकुनादि का विचार कर शिथिल मूल कर्मो का कुफल टाला जा सकता है, एतदर्थ व्यक्ति को भावी कर्मफल का पूर्व संकेत आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र इसी प्रकार से हमें आगामी फलों के प्रति सचेत कर देता है।

रुद्रभट्ट का मानना है कि यहाँ 'गुलिक' का भी संकेत कर दिया है। गुलिक वा मान्दि से भी फलित विचार में विशेष दिशा निर्देश मिलते हैं। 'विकल्प' में वि शब्द का अर्थ कटपयादि पद्धति में चार है। अर्थात् यादि वर्ग में 'व' अक्षर चौथा है। जैमिनीय सूत्र भाष्य में कटपयादि विधि का निर्देश व प्रदर्शन हम कर चुके हैं। 'कल्प' शब्द का अर्थ कल्पान्त या प्रलय या क्षय भी है। अतः चार घड़ियों के क्रमिक क्षय या ह्रास से प्रत्येक बार में ज्ञायमान गुलिक भी फलित में विचार्य है। 30 घड़ी के दिनमान में **'एके'** अर्थात् मुख्यवार रविवार में (मुख्यान्यकेवलेष्वेक इत्यमरः) 30–4 = 26 घड़ी पर, चन्द्रवार में 22 घड़ी पर, मंगलवार में 18 घड़ी पर, बुध में 14 घड़ी पर, गुरुवार में 10 घड़ी पर, शुक्रवार में 6 घड़ी पर तथा शनिवार में 2 घड़ी इष्ट पर 'गुलिककाल' होता है। इसी तरह रात्रि की घड़ियों में भी 'अहोरात्र विकल्प' वाला गुलिक काल होता है। वास्तव में 32 घड़ी दिनमान में चार -चार घड़ियाँ कम करने पर गुलिकोदय होता है। 'वि' अर्थात् विशेष प्रकार के अहोरात्र परिभ्रमण से गुलिक द्योतित हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं है।

कटपयादि पद्धति में व्यंजनों को एकादि अक्षर देकर उन्हें उल्टे क्रम से लिखकर संख्या जानी जाती है। स्वर, नवम् , को 0 का द्योतक मानते हैं–

कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरंकाः।
नञि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम्।।

कादि नौ टादि नौ, पादि पाँच व यादि आठ अक्षर लिखने से समूची वर्णमाला को अंक मिल जाते हैं।

1	क	ट	प	य
2	ख	ठ	फ	र
3	ग	ड	ब	ल
4	घ	ढ	भ	व
5	ङ	ण	म	श
6	च	त		ष
7	छ	थ		स
8	ज	द		ह
9	झ	ध		

इसी आधार पर 'वि' का अर्थ पीछे चार लिया गया है। इसी प्रकार श्लोक में प्रयुक्त 'होरेति' में इति शब्द ति = 6, इ = 0, 60 घड़ी का वाचक होने से अहोरात्रमान भी बता दिया है।

अथवा अहोरात्र व राशि चक्र की घड़ियाँ 60 समान होने से अहोरात्र बारह राशियों का वाचक है। अहोरात्र यानि बारह राशियों के बारम्बार भ्रमण (कल्प) से समूचा फलित नियन्त्रित होता है। इस तरह तात्कालिक लग्न की महत्ता बतायी है। अथवा कटपयादि विधि से अ = 0, ह = 8, र = 2, (त र) त्र = 2 इनका योग 12 राशियों का द्योतक है।

इस प्रकार जातक शास्त्र के सभी उपकरणों व प्रयोजनों का उल्लेख यहाँ चतुरतापूर्वक कर दिया गया है।

काल पुरुष का अंग विभाग–

कालाङ्गानि वराङ्गमानन मुरो हृत्क्रोडवासो भृतो,
बस्तिर्व्यंजनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम्।
मेषाश्विप्रथमा नवर्क्ष चरणाश्चक्रस्थिता राशयो
राशिक्षेत्रगहर्क्षभानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्यये।। 4।।

-(शार्दूलविक्रीडित)

समस्त ब्रह्माण्ड रूप विराट् परमेश्वर का व्यक्त स्वरूप भचक्र या राशि चक्र कहलाता है। उसी काल पुरुष के अंगों का विभाग बताया जा रहा है। नौ-नौ चरणों वाली प्रत्येक मेषादि राशि क्रमशः कालपुरुष के सिर-प्रभृति अंगों की प्रतिनिधि है। मेषादि राशियों में प्रत्येक राशि नौ-नौ चरणों वाली या सवा दो नक्षत्रों से युक्त होती है। इस प्रकार अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र समस्त राशि चक्र में व्याप्त हैं। मेष राशि मस्तक (वरांग), वृष राशि मुख, मिथुन राशि छाती, कर्क राशि हृदय प्रदेश, सिंह राशि पेट (क्रोड), कन्या राशि कमर (वासोभृत्), तुला राशि नाभि व लिंग के मध्य वाला भाग अर्थात् पेडू (बस्ति), वृश्चिक राशि लिंगादि गुप्तांग, धनुराशि जाँघ, मकर राशि दोनों घुटने, कुम्भ राशि पिण्डलियाँ एवं मीन राशि पांवों की प्रतिनिधि है।

राशि, क्षेत्र, गृह, ऋक्ष, भ, ये पाँचों शब्द भवन अर्थात् राशि या भाव के पर्यायवाची हैं।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि अश्विनी नक्षत्र से प्रारम्भ होने का उल्लेख करने के पीछे यह प्रयोजन है, ताकि कृत्तिका या धनिष्ठा से चक्र का प्रारम्भ होने का सन्देह न हो। इससे प्रतीत होता है कि राशि चक्र का प्रारम्भ बिन्दु सदैव से अश्विनी नक्षत्रारम्भ को ही नहीं माना जाता रहा है।

'नक्षत्राणां कादाचित्कयोर्धनिष्ठादित्व कृत्तिकादित्वयोर्व्युदासाय अश्विप्रथमत्वमुक्तम्।'

ऐसा कहना उपयुक्त ही है। क्योंकि वैदिक काल में कृत्तिका से ही गणना की जाती थी। शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी ने उल्लेख किया है कि चीन में भी किसी समय कृत्तिकारम्भ से ही गणना होती रही थी। वेदांग ज्योतिष के विवेचन से धनिष्ठारम्भ में चक्र की प्रवृत्ति मानने का भी आधार स्पष्ट है। ऐसा अयन चलन के कारण सम्भव होता है।

'चक्रस्थिताः 'शब्द की व्याख्या करते हुए रुद्रभट्ट लिखते हैं कि चक्र दो प्रकार का होता है– स्थिर व चल। स्थिर चक्र प्रश्नादि विचार में आरूढ़ चक्रादि को कहते हैं तथा चर चक्र स्थानीय पूर्वीय क्षितिज पर उदित होने वाली राशि से निर्मित होता है। इसका प्रयोजन जातक या प्रश्न में लग्न ज्ञान करना है। नौ चरणों का उल्लेख करके वराहमिहिर ने नवांश की प्रधानता को भी रेखांकित कर दिया है, क्योंकि नवांश का मान भी नक्षत्र के एक चरण मान के बराबर अर्थात् $3^{0}.20'$ अंश ही होता है।

काल पुरुष के अंग विभाग को और अधिक स्पष्ट करते हैं। मेष का आधिपत्य मस्तक अर्थात् सम्पूर्ण कपाल या खोपड़ी पर है। वृष राशि मुख स्थान से कण्ठ तक आधिपत्य रखती है। कण्ठ से नीचे दोनों कन्धों सहित, हृदय से ऊपर का भाग मिथुन के अधीन है। हृदय व नाभि का मध्य भाग सिंह के अधीन एवं नाभि से नीचे बस्ति या पेडू से ऊपर का भाग, जिसमें वास अर्थात् कपड़ा बाँधा जाता है, कन्या के नियन्त्रण में है। इससे पेटी, कमर बन्द, बेल्ट आदि बाँधने के स्थान का ग्रहण है।

तुला राशि नाभि से थोड़ा नीचे तथा लिंगादि से ऊपर के भाग की अधिपति है। अर्थात् लिंग व नाभि के बीच वाले भाग को दो भागों में बाँटने से ऊपर का भाग कन्या तथा नीचे का भाग तुला प्रदेश है। लिंग व गुदा प्रदेश तथा उस सीध में पड़ने वाला सम्पूर्ण नितम्ब भाग वृश्चिक राशि का स्थान है।

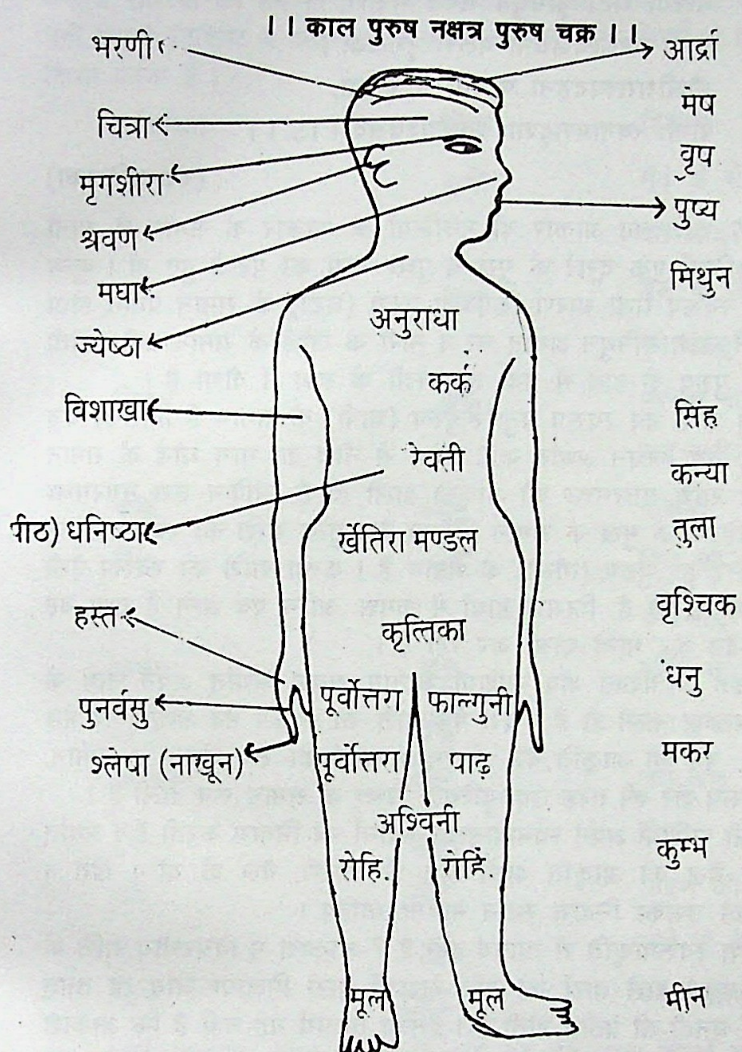
तत्पश्चात् घुटने के ऊपर जाँघ (ऊरू) धनुराशि, दोनों घुटने मकर, दोनों पिण्डलियाँ टखने तक कुम्भ एवं शेष भाग मीन राशि के आधिपत्य में है। यही रुद्रभट्ट के मत में स्थिर राशि चक्र है। प्रश्न के समय वक्ता जिस अंग को छुए, उस स्थान की राशि को लग्न मानकर फल कहने की परिपाटी दक्षिण भारत में प्रचलित थी ऐसा प्रतीत होता है। प्रचलित रीति में नष्ट जातक में वक्ता या पृच्छक जिस राशि प्रदेश का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उसे जन्म लग्न मानने का विधान है। स्वयं वराह मिहिर ने आगे नष्ट जातक प्रसंग में **'अंगालभनादिभिर्वा'** कहकर इसी बात की पुष्टि की है। तदतिरिक्त जन्म समय में जो राशि पाप पीड़ित या कमजोर हो, उसी अंग में जातक को आघात, विकार या निर्बलता होती है। शुभ ग्रह युक्त राशि वाला अंग पुष्ट होता है। सारावली में ऐसा ही कहा गया है।

भट्टोत्पल ने चक्र शब्द से ऐसा आशय भी माना है कि सारी राशियाँ चक्र या पहिए के आकार में स्थित होने के कारण आचार्य ने इस शब्द के द्वारा राशियों के आकाश संस्थान का स्वरूप बता दिया है।

राशि, क्षेत्र, गृह, ऋक्ष व भ ये पाँचों शब्द होराशास्त्र में राशि के ही पर्याय हैं। अतः ऋक्ष व भ का अर्थ नक्षत्र होते हुए भी सर्वत्र राशि रूप में ही

ग्रहण करना चाहिए। अतः आचार्य ने राश्यादि पाँच शब्दों को **'एकार्थ सम्प्रत्यय'** अर्थात् एक ही अर्थ का सम्प्रत्यय (बोध) कराने वाले कहा है।

।। काल पुरुष नक्षत्र पुरुष चक्र ।।



स्वाती--दाँत, शतभिषा–हँसी

नोट-- नक्षत्र मानव का प्रयोग आगे अध्याय 16, श्लोक 17 की व्याख्या में बताया जाएगा।

,राशियों का आकार–

मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं,
चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।
तौलीससस्यदहना प्लवगा च कन्या,
शेषाः स्वनामसदृशाः स्वचराश्चसर्वे ।।5।।

(वसन्ततिलका)

मीन राशि का आकार दो मछलियों के आकार के समान है, मानो वे दो मछलियाँ एक दूसरे के मुख व पुच्छ भाग को पकड़े हुए हों। कुम्भ राशि का स्वरूप घड़ा धारण किए हुए पुरुष (घटी) के समान प्रतीत होता है। मिथुन राशि नृमिथुन अर्थात् नर व नारी के जोड़े के समान प्रतीत होती है जिसमें पुरुष के हाथ में गदा तथा स्त्री के हाथ में वीणा है।

धनु राशि का स्वरूप धनुर्धर पुरुष (चापी) के समान है जिसका धड़ पुरुषाकार तथा जघन अर्थात् कटि प्रदेश से नीचे का भाग घोड़े के समान है। मकर राशि मगरमच्छ की आकृति वाली ही है, लेकिन उस मगरमच्छ का मुख हिरण के मुख के समान दिखता है। तुला राशि का स्वरूप तराजू हाथ में लिए हुए पुरुष (तौली) के समान है। कन्या राशि का स्वरूप ऐसी बालिका के सदृश है, जिसके हाथों में क्रमशः अग्नि एवं अन्न है तथा वह नाव पर बैठ कर मानो यात्रा कर रही है।

इसके अतिरिक्त शेष राशियाँ स्वनाम सदृश अर्थात् अपने नाम के अनुरूप आकार वाली ही हैं। जैसे मेष राशि का स्वरूप मेंढ़े अर्थात् नर भेड़ के समान, वृष की आकृति बैल के सदृश, कर्क का रूप केंकडे के समान, सिंह का रूप शेर की तरह तथा वृश्चिक बिच्छू के समान रूप वाली हैं।

सभी राशियाँ अपने स्वभावानुसार स्थानों पर निवास करती हैं। अर्थात् वृष राशि बैल की आकृति वाली होने के कारण, बैल के योग्य खेत व ग्रामादि को उसका निवास स्थान मानना चाहिए।

राशि स्वरूपाकृति से तात्पर्य क्या है ? आकाश में विचरणीय राशि के प्रदेश में पड़ने वाले तारों को यदि रेखाओं द्वारा मिलाया जाय तो तत्तत् आकृतियाँ बनती-सी प्रतीत होती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आकाश में मेंढे या बैल स्वयं स्थित हों। दूरवीक्षण यन्त्रों के द्वारा देखने से तारा संस्थान में कल्पना में उत्पन्न होने वाला राशि स्वरूप पौर्वात्य व पाश्चात्य सभी खगोलज्ञों को समान ही प्रतीत हुआ। अन्तर केवल यह है कि भारतीयों ने जहाँ सम्पूर्ण जीवाकृति की कल्पना कर ली, वहाँ पाश्चात्यों ने केवल

सम्बद्ध जीवादि के अंग विशेष की ही आकृति मानी है। अंग्रेजी विधि में मेषादि राशियों को हम भारतीयों की तरह 1-2-3-4 आदि अंकों से द्योतित नहीं करके, विशिष्ट व वास्तव में आकाश संस्थित राशि चिन्हों से ही द्योतित किया जाता है।

राशिनाम	चिन्ह	विवरण
मेष	♈	मेंढ़े के सींगों की आकृति
वृष	♉	बैल के सींगों की आकृति
मिथुन	♊	परस्पर आलिंगन–बद्ध स्त्री-पुरुष
कर्क	♋	केकड़ा
सिंह	♌	सिंह की पूँछ की आकृति
कन्या	♍	योनि सदृश आकार
तुला	♎	तराजू का आकार
वृश्चिक	♏	उठे डंक वाला बिच्छू
धनु	♐	तीर
मकर	♑	हिरण की आकृति
कुम्भ	♒	घड़े से गिरता हुआ पानी
मीन	♓	दो मछलियाँ

प्रायः समानता रहने पर भी कल्पना का भेद उक्त चिन्हों व भारतीय प्रतीकों में दिखता ही है। कन्या के स्वरूप में भारतीयों ने लम्बी कल्पना कर ली है जबकि पाश्चात्यों ने अंग विशेष से ही काम चला लिया है। यह कल्पना-वैचित्र्य हम भारतीयों का वैशिष्ट्य ही है। एक भेद और वक्तव्य है। हमारे यहाँ रिक्त घट को कन्धे पर धारण किए हुए पुरुष का आकार

कुम्भ राशि का स्वरूप माना है, जबकि पश्चिमी विद्वानों ने जल तरंग का आकार देकर बहते हुए पानी की कल्पना की है।

स्वचराश्च सर्वे– सभी राशियाँ अपने स्वभावानुसार स्थानों पर भ्रमण करती हैं। इसे स्पष्ट करते हैं। मेष व वृष दिन में क्षेत्र या वन में तथा रात में ग्राम में रहते हैं। मिथुन स्त्री पुरुषाकृति होने से वह जनपद अर्थात् बस्ती में रहने वाले हैं, अतः उनका वास स्थान गाँव, शहर, क्लब या कॉलोनी, मनोरंजक स्थान, पार्क, मुहल्ला आदि है। कर्क जलचर प्राणी होने से जलवासी एवं सिंह को पर्वत गुहा या वनवासी माना जाएगा। कन्या जल में नौकारूढ़ रहने से जल प्रदेश वासी है। तुला अर्थात् तराजू का स्थान बाजार है। वृश्चिक बिल में तथा धनु स्वरूप सदृश स्थान पर रहती है। धनुर्धारी पुरुष राशि के पूर्वार्ध में है, अतः धनु का पूर्वार्ध युद्ध भूमि, गाँव, वनादि में तथा अश्व का पश्चार्ध होने से रथ प्रदेश, घुड़साल रेसकोर्स, आदि माना जाएगा। मकर का पूर्वार्ध मृगाकार होने से वन वासी तथा उत्तरार्ध मकराकृति होने से जलचर है। कुम्भधारी पुरुष मनुष्य के निवास योग्य स्थानों में विशेषतया सूखे जलस्थान या कम जल वाली नदियाँ, कछार जुए का स्थान, शराब खाना, बर्तनों के रखने या बनाने का स्थान आदि माना जाएगा। मीन स्पष्टतया जलवासी है।

इन सब बातों के कहने का प्रयोजन यह है कि चोरी के प्रश्न में राशि से ही दिशा व स्थान निश्चय होता है। इसकी विस्तृत व्याख्या हम अपनी षट्पंचाशिका टीका में कर चुके हैं। इनका उपयोग खोई वस्तु का स्थान निश्चय करने में, प्रसव, घटना आदि का स्थान निश्चय करने में होगा। जन्म समय अनुकूल भावों में पड़ने वाली बलवान् राशियों के समान स्थानों पर लाभ होगा तथा अशुभ राशि प्रदेशों में हानि होगी, ऐसा निश्चय भी किया जा सकता है।

रुद्रभट्ट ने एक और विशेष बात बताई है। पहले श्लोक में राशि चक्र का प्रारम्भ अश्विनी व मेष से कहकर अगले ही श्लोक में 'मत्स्यौ' अर्थात् मीन का ग्रहण पहले कर लिया है। यह निष्प्रयोजन नहीं, अपितु बारहवीं राशि अर्थात् जन्म लग्न से द्वादश राशि से पूर्व जन्म का विवेक करना चाहिए, ऐसा गूढ़ आशय आचार्य का है–

तत्र मेषराशेः पूर्वस्य मीनराशेः प्रथमग्रहणाद् व्ययराशिना पूर्वजन्म विवेक इति सूचितम्।। (बृहज्जातक, विवरण)

लेकिन हमारे विचार से ऐसा अर्थ तभी सम्भव हो सकता है, जब मीनादि सभी राशियों को क्रमानुसार ग्रहण किया हो। ऐसा श्लोक में प्रतीत

नहीं होता है। द्वादश भाव राशि से पूर्वजन्म विचार का नियम शास्त्रीय रहने पर भी यहाँ वैसा अर्थ निकालना दूर की कौड़ी ही है।

राशियों के विषय में '**स्वनामसदृशाः**' कहने से एक बात और यहाँ स्पष्ट हो जाती है कि लोक में, राशिगत जीवादि को जिस वर्ग में अर्थात् द्विपद, चतुष्पद आदि में रखा जाता हो, राशि में भी तदनुसार द्विपदादि विभाग माना जाएगा। जैसे--मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्ध, मकर का पूर्वार्ध ये चतुष्पद अर्थात् चौपाए या पशु राशियाँ हैं।

मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वभाग, कुम्भ ये द्विपद अर्थात् मनुष्य राशियाँ हैं तथा कर्क व मीन जलचर एवं वृश्चिक कीट राशि है।

राशिस्वामी आदि का विवेक–

क्षितिज सितज्ञ चन्द्र रवि सौम्य सितावनिजाः,
सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः।
अजमगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधि–
र्भवनसमांशकपतयः स्वगृहात् क्रमशः।।६।।

(तोटक)

मंगल, शुक्र, बुध (ज्ञ), चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, एवं गुरु ये क्रमशः मेषादि राशियों एवं मेषादि नवांशों के अधिपति होते हैं। 'गृहांशकपाः' कहकर गृह अर्थात् राशि, अंशक अर्थात् नवांश इन दोनों के पति होते हैं। द्वादशांश में भी राश्यधिपतित्व के अनुसार ही अधिपति होते हैं। अतः मेष राशि, मेष नवांश एवं मेष द्वादशांश आदि का अधिपति मंगल होता है। वृष राशि, वृष नवांश व द्वादशांश व वृष द्वादशांश का अधिपति शुक्र है। इसी प्रकार सभी ग्रह राशि, नवांश व द्वादशांश में पड़ने वाली राशियों के भी स्वयं अधिपति होते हैं।

'**अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिति**' श्लोक के इस तीसरे चरण में नवांश जानने की विधि बताई है। मेष, मकर, तुला व कर्क ये क्रमशः मेष, वृष मिथुन व कर्क राशियों के आदि नवांश होते हैं। अर्थात् मेष राशि में मेष से, वृष में मकर से, मिथुन में तुला से, कर्क में कर्क से नवांश गणना करनी चाहिए। एक राशि में 9 नवांश होने से मेष से धनु तक 9 नवांश मेष राशि में रहेंगे, अतः वृष में दसवीं राशि मकर से गणना उचित ही है। मकर से दसवीं राशि तुला से, मिथुन में एवं तुला से दशम राशि कर्क से कर्क में नवांश गणना सर्वथा उपयुक्त है। एक नवांश $3^{0}.20'$ अंशादि या एक नक्षत्र चरण के बराबर होने से चारों मेषादि राशियों में 120^{0} व्यतीत होंगे।

$120^0 + 120^0 + 120^0$ के तीन चतुष्क या 36+36+36 या 108 नवांश पूर्ण हो जाने से भचक्र पूर्ण होता है। इसीलिए सिंह व धनु से पुनः मेष, मकर, तुला कर्क से क्रमशः नवांश होंगे।

'भवनसमांशकाधिपतयः' इत्यादि श्लोकांश से द्वादशांश विधि बताई है। भवन शब्द राशि वाचक होने से 12 की संख्या का द्योतक है तथा भवन सम अंशक अर्थात् द्वादशांशक के अधिपति अपनी राशि से ही क्रमशः होते हैं। अर्थात् मेष में मेष से मीन तक, वृष में वृष से मेष तक, मिथुन में मिथुन से वृष तक इत्यादि क्रम से $2^0.30'$ अंश का एक एक द्वादशांश होने से प्रत्येक राशि में 12 द्वादशांश तथा चक्र में $12 \times 12 = 144$ द्वादशांश होते हैं।

नवांश का प्रयोजन यह है कि आगे **'लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यात्'** इत्यादि प्रसंग लग्नगत नवांशेश व चन्द्रनवांश से जातक का स्वरूप निश्चय बताया गया है। साथ ही नवांशायु साधन, राजयोग निर्णयादि में भी नवांश का प्रधानतया प्रयोग होने से नवांश का पहले कथन किया है। अतः अन्यथा दृष्टि से नवांश का प्राधान्य सूचित किया गया है।

आधानाध्याय में **'तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको यः'** इत्यादि प्रसंग में प्रसव के समय का निश्चय करने के लिए तथा अन्यत्र भी यथावसर द्वादशांश का प्रयोजन है।

त्रिंशांश व ऋक्षसन्धि–

कुजरविजगुरुज्ञशुक्रभागाः पवनसमीरणकौर्पिजूकलेयाः।
अयुजि युजि तु भे विपर्ययस्थाः, शशिभवनालिझषान्तमृक्षसन्धिः।।7।।

(पुष्पिताग्रा)

अयुज् अर्थात् विषम राशि में व युज् अर्थात् समराशि में क्रम एवं व्युत्क्रम से मंगल, शनि, बृहस्पति, बुध, शुक्र के त्रिंशांश रहते हैं। अंशों का विभाग क्रमोत्क्रम से 5.5.8.7.5 अंश है। पवन व समीरण वायु के वाचक हैं तथा वृश्चिक, तुला व सिंह राशि के कथन से इनकी क्रमसंख्या द्वारा क्रमशः उक्त अंश विभाग द्योतित हुआ है।

प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान ये पाँच वायु प्रसिद्ध होने से पवन व समीरण का अर्थ पाँच संख्या लिया गया है। शेष राशि नामों से तत्तत् संख्याओं का ग्रहण स्पष्ट ही है।

आशय यह है कि विषम राशियों में पहले 5 अंशों तक मंगल का, अगले 5 अंशों तक शनि का, अगले 8 अंशों तक गुरु का, अगले 7 अंशों तक बुध का तथा शेष अन्तिम 5 अंशों में शुक्र का त्रिंशांश रहता है।

सम राशियों में यही क्रम विपरीत हो जाता है। अर्थात् सम राशियों में क्रमशः शुक्र के प्रथम 5 अंश, पुनः बुध के 7 अंश, पुनः 8 अंश बृहस्पति के, पुनः 5 अंश शनि के तथा अन्तिम 5 अंश मंगल के रहते हैं। इस विषय में कुछ टीकाकारों ने कहा है कि **'विपर्ययस्थाः,** शब्द का जिसके बाद प्रयोग किया गया है, वे पवन समीरण आदि अंश भाग हैं, न कि 'कुजरविज......' आदि त्रिंशांशेश हैं। अतः विपर्यय से आचार्य का तात्पर्य यह होगा कि सम व विषम राशियों में मंगलादि ग्रहों का क्रम नहीं बदलता, केवल अंशों का ही क्रम बदलता है। लेकिन यह भ्रम है। इस विषय में भट्टोत्पल ने श्रुतकीर्ति का कथन प्रमाण रूप में उद्धृत किया है–

पंचाथपंच चाष्टौ सप्त च पंचैव चौजभवनेषु।
धरणिसुतमन्दसुरगुरुबुधशुक्राणांक्रमेणांशाः।।
पंचैव सप्त चाष्टौ पंच च पंचाथ युग्मभवनेषु।
भागा भार्गवशशिसुतसुरेज्यशनिभूमिपुत्राणाम्।।

(श्रुतकीर्ति)

त्रिंशांश से स्त्री जातक अध्याय में विशेष व्यापक फल बताया गया है। अतः त्रिंशांश का भी फल कथन में गम्भीर उपयोग है।

राशि व नक्षत्र का जहाँ एक साथ अन्त होता हो, उसे ऋक्षसन्धि कहते हैं। अतः कर्क राशि व श्लेषा का अन्त एक साथ होता है। इसी प्रकार वृश्चिक राशि व ज्येष्ठा नक्षत्र तथा मीन राशि व रेवती नक्षत्र का युगपत् 'अन्त होने से केवल कर्कान्त, वृश्चिकान्त एवं मीनान्त का ही नाम 'ऋक्षसन्धि है। इसी का दूसरा नाम **'गण्डान्त'** है। गण्डान्त में जन्म होने पर बालक के विषय में प्रायः प्राणसंशय बना रहता है। यदि बालक जीवित रह जाए तो बहुत धनी होता है।

गण्डान्त का मान कितना हो ? इस विषय में भट्टोत्पल ने सूर्यसिद्धान्त के आधार पर सम्पूर्ण चतुर्थ चरण को स्थूलतया गण्डान्त माना है। यह मत अति दीर्घ होने से ठीक नहीं है। गण्डान्त नक्षत्रान्त व अगले नक्षत्र के आदि में समान मान वाला होता है। अर्थात् जितना अन्तिम भाग लेंगे, उतना ही आगामी भाग भी लेंगे। इस विषय में 15 घड़ी से लेकर 10 पल इधर-उधर तक गण्डान्त मानने वाले बहुत से मत-मतान्तर हैं। हमारे विचार से ज्येष्ठा व मूल, रेवती व अश्विनी तथा श्लेषा व मघा ये तीन नक्षत्र युग्म

जिस बिन्दु पर मिलते हैं, वह गण्डान्त का शिखर है, मध्यभाग है या चरमोच्च परमोच्च भाग हैं। यह तभी सम्भव होगा जब चन्द्रमा कर्क, वृश्चिक या मीन राशि के बिल्कुल अन्त में, अर्थात् 30^0 या 0 अंश वाला होगा। इस शिखर से 2 घड़ी या 48-48 मिनट इधर व उधर गण्डान्त की पूर्वी व पश्चिमी सीमा मानी जानी चाहिए। अर्थात् उक्त तीनों राशियों में $29^0.30'$ से लेकर अगली राशियों में $0^0.30'$ कला तक चन्द्र स्पष्ट रहने पर सर्वोत्कट कुप्रभाव वाला गण्डान्त होता है। दो घड़ी में चन्द्रमा की गति प्रायः आधा अंश ही रहती है। यदि और अधिक सुरक्षित चलना चाहें तो आद्यन्त के सम्पूर्ण अंश को वर्जित मान सकते हैं। यह गौण पक्ष है। आधे अंश वाला पक्ष मुख्य है। आचार्य ने भी 'अन्त' शब्द का प्रयोग करके सर्वथा मिलन बिन्दु अर्थात् व्यतीत व आगामी नक्षत्रों के स्पर्श बिन्दु को ही गण्डान्त कहा है। यही बात कल्याण वर्मा ने भी कही है। अतः पाठकों को मुहूर्त ग्रन्थों के मत-मतान्तरों से भ्रमित नहीं होना चाहिए। बृहस्पति का कथन है–

घटिकाद्वयमृक्षान्ते मासान्ते तु दिनत्रयम्।
वर्षान्ते वर्जयेत्पक्षं ग्रहणाद् दिनसप्तकम्।। (पीयूषधारा)

मुहूर्त चिन्तामणिकार ने भी गण्डान्त का विस्तार 2-2 घड़ियाँ इधर–उधर मानकर कुल चार घड़ी माना है। मध्यम गति से चन्द्र 60 घड़ी में 12 अंश चलता है तो 2 घड़ी में मध्यम गति 24' या आधा अंश उपयुक्त है। गण्डान्त का निर्णय सदैव चन्द्र स्पष्ट से करना अधिक विश्वसनीय रहता है।

क्योंकि नक्षत्र मान न्यूनाधिक रहने से घट्यात्मक मान सार्वकालिक उपपन्न नहीं रहेगा।

सृष्टि, स्थिति व संहार ये तीन खण्ड राशि चक्र में पड़ते हैं। इनका प्रारम्भ अश्विनी, मघा व मूल से माना जाता है, यह भी स्वतः सिद्ध है। कदाचित् **'खण्डान्त'** शब्द कालान्तर में **'गण्डान्त'** हो गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

अतोऽस्मिन् राशिचक्रे त्रयः खण्डाः। अत्रान्त शब्देन यस्यकस्य चिदवसाने वक्तव्ये कर्कटवृश्चिकमीनैर्निरूपणीयम् इत्युक्तं भवति।

(रुद्रभट्ट,विवरणटीका)

जब राशि चक्र का अन्त मीनान्त व मेषादि में होता है, तथा अन्य राश्यन्तों को भी 'अन्त' शब्द से समझा जा सकता है, तब तीनों गण्डान्तों की उपपत्ति खण्डत्रय से ही लगती है।

राशियों के नामान्तर–

क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपाथोनजूककौर्प्याख्याः ।
तौक्षिकआकोकेरोहृद्रोगश्चान्त्यभंचेत्थम् ।।8।।

(पथ्यार्या)

क्रिय (मेष) ताबुरि (वृष) जितुम (मिथुन) कुलीर (कर्क) लेय (सिंह) पाथोन (कन्या) जूक (तुला) कौर्पि (वृश्चिक) तौक्षिक (धनु) आकोकेर (मकर) हृद्रोग (कुम्भ) अन्त्यभ (मीन) ये क्रमशः मेषादि राशियों के ही नामान्तर हैं ।

आशय यह है कि ग्रन्थ में आगे जहाँ कहीं इन अप्रचलित पर्यायों का प्रयोग छन्द के अनुरोध से किया जाएगा, वहाँ पाठकों को भ्रम न हो, एतदर्थ ऐसा निर्देश किया है । जैसे– **'गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुला** इत्यादि श्लोक में आगे आया है ।

ये नाम यवन देश या यूनान देश की भाषा से कुछ संस्कृतानुकूल्य करते हुए लिखे गए हैं । आचार्य की समन्वय भावना यहाँ परिलक्षित होती है । राशिनाम व राशि विभाजन पद्धति मूलतः भारतीय है या यूनानी इस विषय में विद्वानों के बहुत से परस्पर भिन्न विचार हैं । ग्रीक भाषा के राशि वाचक शब्दों को सामने रख कर यदि तुलना की जाए तो क्रिय, ताबुरि आदि का संस्कृतीकृत मूल ग्रीक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । सूर्य सिद्धान्त में राशियों का स्पष्ट उल्लेख है । मूल विराट पुरुष ने सृष्ट्यारम्भ में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूप अपने शरीर का पहले 12 राशि रूप विभाग किया तथा बाद में उसे 27 नक्षत्रों में बाँटा, इत्यादि उल्लेख से स्पष्ट है कि वराहाचार्य से बहुत पहले सूर्य सिद्धान्त के समय में मेषादि राशि नाम भारतवर्ष में प्रचलित हो गए थे ।

पुनर्द्वादशधात्मानं व्यभजद् राशिसंज्ञकम् ।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ।।
मेषादौ देव भागस्थे--- ।। (सूर्य सि०, गोल–25)

वैदिक काल, महाभारत काल व उसके भी बहुत बाद तक भारतवर्ष में उक्त मेष वृषादि राशि नाम प्रचलित नहीं थे, तथापि भारतीयों को राशि रूप द्वादशात्मक विभाग का ज्ञान अवश्य था । फलादेश व आकाशीय गणना में वे नक्षत्र-चार पद्धति का ही प्रयोग करते थे । जो लोग नक्षत्र रूप सूक्ष्म विभाग को जानते थे, वे राशि रूप स्थूल विभाग को क्योंकर नहीं जानेंगे ? अतः राशियाँ मूलतः भारतीय होते हुए, उनका नामकरण बाद में किया गया होगा ।

षड्वर्ग कथन–

> **द्रेक्काण होरा नवभाग संज्ञा–**
> **स्त्रिंशांशकद्वादशसंज्ञिताश्च ।**
> **क्षेत्रं च यद्यस्य स तस्य वर्गो**
> **होरेति लग्नं भवनस्य चार्धम् ।। 9 ।।**

द्रेष्काण, होरा, नवांश, त्रिंशांश व द्वादशांश इन पाँचों से युक्त राशि (क्षेत्र) का नाम षड्वर्ग है । राशि के ये भीतरी विभाग षड्वर्ग कहलाते हैं । इनमें जो वर्ग जिस ग्रह के स्वामित्व में, अर्थात् जिस ग्रह के क्षेत्र में पड़े, वही उस ग्रह का वर्ग माना जाता है ।

'होरा' शब्द से लग्न तथा राश्यर्ध भाग तुल्य विभाग इन दोनों का ग्रहण है ।

षड्वर्गों के ये नाम प्रसिद्ध ही हैं : क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश व त्रिंशांश यह क्रम समीचीन व प्रचलित है । लेकिन आचार्य ने यहाँ जो विशेष क्रम अपनाया है, वह विशेष प्रयोजन के कारण है । द्रेष्काण व होरा का लक्षण आगे कहेंगे तथा शेष लक्षण इतः पूर्व कहे जा चुके हैं ।

काल पुरुष का स्थूल शरीर राशि है तथा नवांश अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से आत्मास्थानीय है । इसी कारण श्लोक सं० 6 में पहले क्षेत्र अर्थात् राशि या क्षेत्र अर्थात् काल पुरुष के शरीर का वर्णन किया । पश्चात् वहीं पर **'इति नवांश विधिः'** ऐसा कहकर आत्मरूप नवांश का वर्णन किया । अथवा प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, कृकल, नाग, कूर्म देवदत्त एवं धनंजय इन दस प्रकार के प्राणों में से नौ प्राणों का ग्रहण किया है । ऐसी सम्भावना रुद्रभट्ट ने व्यक्त की है । हमारे विचार से नाग, कूर्म कृकल देवदत्त धनंजयं इन पाँचों वायु प्रकारों को प्राणादिपचंक में ही अन्तर्भुक्त माना जाता है । अतः प्राणमय कोश का उल्लेख यहाँ किया गया है, ऐसा हमारा विचार है । प्राणादि पंच वायु एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ मिलकर प्राणमय कोश कहलाती है । इनमें प्राण रूप स्वयं लग्न या चन्द्र या राशि या क्षेत्र है । शेष 9 तत्त्वों का उपादान आचार्य ने अव्यवहित रूप से नवांश विधि कहकर दिया है । क्योंकि प्राणमय कोश ही क्रिया शक्ति युक्त वाला होने से विज्ञानमय कोश रूप राशि के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है ।

रुद्रभट्ट के मत से धनंजय रहित 9 वायु का ग्रहण करने से भी नवांश का बोध हो जाता है । धनंजय सर्वव्यापी वायु है । श्रीधर स्वामी ने भागवत की टीका में कहा है–

न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनंजयः।।

योगी लोगों में भी कहावत प्रसिद्ध है– **'मुए धनंजय पेट फुलावे।'** अर्थात् धनंजय नामक वायु मरण के पश्चात् भी शरीर में रह जाता है तथा इसी कारण शव का पेट फूल जाता है। इत्यादि।

इसके पश्चात् द्वादशांश का कथन करने के पीछे क्या रहस्य है ? इन्द्रियदशक अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व पाँच कर्मेन्द्रियाँ, यह दश चीजों का समुदाय तत्पश्चात् मन व बुद्धि ये बारह पदार्थ, द्वादशांश से द्योतित होते हैं।

इस तरह बारह ये पदार्थ तथा पूर्वोक्त 10 वायु प्रकार मिलकर कुल 22 तत्त्वों से सूक्ष्म शरीर बनता है, ऐसा वेदान्त शास्त्र का कथन है।

इह तावदक्षदशकं मनसा सह बुद्धितत्त्वमथ वायुगणः।
इति लिंगमेतदधुना पुरुषः सह संगतो भवति जीवः।।

वेदान्तसार में बताया गया है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच वायु एवं मन, बुद्धि ये 17 तत्त्व सूक्ष्म शरीर होते हैं। ऐसा देवदत्तादि पाँच वायु भेदों को प्राणादि पंचक में समाहित मानने से सम्भव होता है। इसमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार आचार्य ने वचन चातुरी व वर्णन भंगिमा के द्वारा रक्त, मांस, मज्जा, मेदादि रूप स्थूल शरीर राशि का वर्णन कर पश्चात् सूक्ष्म शरीर का वहीं श्लोक 6 में निरूपण कर दिया है।

लग्न राशि का आधा भाग भी होरा ही है ? ऐसा कहकर लग्न व चन्द्र दोनों की महत्ता को रेखांकित किया है। आशय यह है कि सम्पूर्ण क्षेत्र या राशि में लग्न व चन्द्रमा को समान महत्त्व देकर फल निर्देश करना चाहिए, कहा गया है–

यत्रोदितं लग्नबलं प्रधानं, विलोक्यमिन्दोरपि तत्र वीर्यम्।
पुष्टं फलं स्यादुभयोर्बलाप्तौ लग्नाब्जयोरन्यतमेन मध्यम्।।

(ज्योतिर्निबन्ध)

अर्थात् लग्न व चन्द्रमा से संयुक्त रूप से फल विचार करने की विधि उत्तम है तथा केवल एक को महत्त्व देकर फल-निर्देश करना मध्यम मार्ग है। इस प्रकार षड्वर्ग किसमें देखें ? लग्न में या चन्द्र में ? इस विषय में यहाँ यह अभिव्यंजना भी होती है कि **लग्न व चन्द्रमा में से जो बलवान् हो, उससे ही षड्वर्गों का निर्णय कर फलादेश करना चाहिए।**

प्रस्तुत नवें श्लोक में उक्त वर्णन क्रम के भंग होने के भय से ही आचार्य ने द्रेष्काण का लक्षण कथन न करके तथा वर्गों में क्रमिकता की सरणि छोड़कर विशेष क्रम अपनाया है। इसी बात को पुष्ट करने के लिए रुद्रभट्ट ने अपनी टीका में एक प्राचीन उद्धरण दिया है–

मूलाधारो दृगाणः स्यात् पितृचिन्ता रविस्तथा।
स्वाधिष्ठाने तु होरा स्यात् मातृचिन्ता तथा शशी।।
मणिपूरे नवांशश्च भ्रातृचिन्ता कुजोऽपि च।
अनाहते च त्रिंशांशो वाणीचिन्ता बुधस्तथा।।

उक्त उद्धरण में द्रेष्काण, होरा, नवांश व त्रिंशांश का क्रम अपनाया गया है। पश्चात् द्वादशांश व क्षेत्र का कथन है।

विशुद्धौ द्वादशांशः स्यात् पुत्रचिन्ता तथा गुरुः।
आज्ञायां क्षेत्रमुद्दिष्टं जायाचिन्ता सितस्तथा।।
द्वादशान्ते शनैश्चारी नाशचिन्ता च कीर्तिता।
तत्रस्थैस्तदधीशैश्च बलाबलवशात् फलम्।।

इस प्रकार काल पुरुष के मूलाधार आदि छह आधारों या चक्रों का निरूपण किया है। यह योगशास्त्र का विषय है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध व आज्ञा चक्र ये 6 चक्र योगी लोग क्रमशः भेदकर सहस्रार या शिव स्थान या परम पद को प्राप्त करते हैं।

अतः द्रेष्काणादि छह चक्रों में स्थित ग्रहों व इनके अधिपति ग्रहों से फल विचार करना चाहिए। उक्त प्राचीन उद्धरण में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि को क्रमशः पिता, माता, भ्राता, वाणी, पुत्र, पत्नी व मृत्यु का कारक बताने का कारण भी यही है कि जो ग्रह षड्वर्गों में बली हो तो उस ग्रह से सम्बन्धित भाव पदार्थों, उसके कारकत्व में आने वाले पदार्थों, (धातु, मूल, जीव) की वृद्धि होती है।

सब की षड्वर्ग शुद्धि असम्भव है, क्योंकि सूर्य व चन्द्रमा का त्रिंशांश नहीं होता तथा मंगलादि ग्रहों की होरा नहीं होती है। अतः जैसा सम्भव हो, वैसा ही माना जाएगा। अथवा कम से कम तीन वर्गों में स्वादि वर्ग में पड़ने पर तथा अधिकतम सम्भाव्य पंचवर्ग शुद्ध ग्रह के वर्ग बल में तारतम्य की कल्पना करनी चाहिए। इसी आशय का उद्धरण भट्टोत्पल ने दिया है–

त्र्यादिष्वपि पदार्थेषु स्थितः स्वेषु स्ववर्गगः।
पंचवर्गगतोऽप्येवं ग्रहो भवति नान्यथा।। (गार्गि:)

अतः लग्न व चन्द्र को बराबर–बराबर महत्त्व देना चाहिए, पश्चात् नवांश व द्वादशांश को, पश्चात् क्रमशः त्रिंशांश, द्रेष्काण, होरादि शेष वर्गों को फल विचार में महत्त्व देना चाहिए। यह बात ग्रह योग, विशिष्ट वर्गादि संज्ञा, राजयोग, प्रश्न, मुहूर्त आदि में सर्वत्र ध्यातव्य है।

लग्न व चन्द्रमा को 100 %, नवांश को पचास प्रतिशत तथा शेष षड्वर्गों को 50 % इस प्रकार महत्त्व देना चाहिए। इसी लिए मन्त्रेश्वर ने कहा है कि

षड्वर्गसंज्ञास्त्वथराशिभावतुल्यं नवांशस्य फलं हि केचित्।।
क्षेत्रेषु पूर्णमुदितं फलमन्यवर्गेष्वर्ध--- ।।

(फलदीपिका)

राशियों का दिन-रात्रि बल व पृष्ठोदयादि संज्ञा–

गोऽजाश्विककर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः
पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव।
शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा
लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम्।। 10।।

(वसन्ततिलका)

मेष (अज) वृष (गो) मिथुन, कर्क, धनु (अश्वी) एवं मकर (मृग) ये छह राशियाँ रात्रिबली संज्ञक होती हैं।

इनमें से मिथुन को छोड़कर शेष पाँच राशियाँ नित्य पृष्ठोदय संज्ञक हैं, अर्थात् पूर्वीय क्षितिज पर उदय के समय इनका पीछे वाला भाग (पूँछ) प्रथम दृष्टिगोचर होता है।

शेष छह राशियाँ सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ व मीन दिन बली कहलाती हैं। इनमें से मीन (पृथुरोमा) को छोड़कर शेष पाँच राशियाँ शीर्षोदय अर्थात् सिर की तरफ से उदित होती हैं।

मीन के विषय में यह विशेषता है कि यह दिन बली होते हुए भी उभयोदय अर्थात् सिर व पूँछ दोनों ओर से उदित होती है।

राशि स्वरूप में पीछे बताया गया था कि मीन का स्वरूप ऐसी दो मछलियों की तरह है, जिनकी पूँछ व मुँह एक दूसरे से मिली हुई हैं। अतः उदय काल में युगपत् सिर व पूँछ दोनों दिखते हैं।

यहाँ दिनबली व रात्रिबली कहने से तात्पर्य केवल संज्ञा या नामकरण से है। जबकि वास्तविक दिवा-रात्रि बल का प्रकार आगे द्विपद राशियाँ दिन में तथा चतुष्पद रात्रि में इत्यादि प्रकार से श्लोक 19 में बताया

जाएगा । अतः रात्रिबली व दिवाबली कहने से तात्पर्य संज्ञा का संकेत मात्र ही है । इससे सार्वकालिक नियम की प्रतिपत्ति नहीं होती है ।

तब इनका यहाँ क्या प्रयोजन है ? एतदर्थ वक्तव्य है कि नष्ट जातकादि प्रसंग में **'रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म'** इत्यादि श्लोकोक्त विषय का प्रयोग करते समय तथा यात्रा प्रंसग में दिवाबली संज्ञक राशि के लग्न में दिन में तथा रात्रिबली संज्ञक राशि लग्न में रात में यात्रा करना लाभदायक रहता है इत्यादि विषय **'शस्तं दिने दिनबले, निशि नक्तवीर्ये'** में इनका प्रयोग होता है, बली या दुर्बल राशि के निर्णय में नहीं होता है ।

इसके अतिरिक्त एक विशेष अर्थ का निश्चय भी आचार्य ने वर्णन चातुरी से यहाँ कर दिया है । मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु व मकर ये राशियाँ निशाबली संज्ञक अर्थात् चन्द्रमा के अधिकार क्षेत्र में पड़ती हैं । इसे कदाचित् **'भगणार्धस्वामित्व'** के नाम से सारावली में बताया गया है । सिंह से सीधी गणना द्वारा राशियाँ, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर सूर्य की राशियाँ एवं कर्क से विपरीत गणना द्वारा कर्क, मिथुन, वृष, मेष, मीन, कुम्भ चन्द्रमा की राशियाँ बताई गई हैं । यह सारावली में तथा बाद के ग्रन्थों में बताया गया है । समूचे राशि चक्र के स्वामी सूर्य व चन्द्र ही मूलतः हैं, यह बात परस्पर विरुद्ध दिखते हुए भी विरोधी नहीं है । लेकिन, बृहज्जातक के इस श्लोक में उक्त संगति बैठती प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि श्लोकोक्त राशि क्रम सारावली के क्रम से अलग है । रुद्रभट्ट ने अपनी प्राचीन टीका में एक श्लोक उद्धृत करते हुए कहा है कि सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ व मीन सूर्य राशियाँ व कर्क, मिथुन, वृष, मेष, धनु, मकर ये चन्द्र राशियाँ हैं ।

यह क्रम बृहज्जातक के क्रम से बिल्कुल मिलता है–

सिंहः कन्या तुलाली च कुम्भान्त्यौ सूर्यराशयः ।
अन्ये तु राशयश्चान्द्राः द्युनिशाराशयश्च ते ।।

इससे प्रतीत होता है कि भगणार्धस्वामित्व के अतिरिक्त भी उक्त क्रम से सूर्य खण्ड व चन्द्र खण्ड राशि चक्र में माने जाते थे, जिसका निर्देश आचार्य ने यहाँ किया है ।

'निशाख्या इत्युक्तत्वान्निशापतेरप्येते राशयो भवन्ति । दिनबला इत्युक्तत्वाद् दिनपते राशय इत्युक्तम् ।। (रुद्रभट्ट)

वराहमिहिर ने अपने से पूर्व चलते आ रहे बहुत से विभिन्न मन्तव्यों में समन्वय स्थापित किया था, यह बात विद्वानों से छिपी नहीं है । हम समझते हैं कि वराह को सारावली के क्रम से भगणार्धस्वामित्व अभीष्ट नहीं

था। उनके मतानुसार उक्त विधि से ही सूर्य खण्ड व चन्द्रखण्ड का निर्णय होना चाहिए। यही मत उस समय वराह को युक्तियुक्त लगा होगा।

रात्रिबली लग्न राशियाँ रात में तथा दिवाबली लग्न राशियाँ दिन में प्रश्नादि में सफलतादायक रहती हैं। शीर्षोदय राशियाँ मूलतः शुभ व पृष्ठोदय समान्यतः अशुभ होती हैं। कहा गया है–

शीर्षोदये समभिवांछित कार्यसिद्धिः, पृष्ठोदये विफलता।

अतः प्रश्नादि में शीर्षोदय राशियाँ शुभ ग्रह संयुक्त होने पर विशेष शुभ व पाप ग्रह युक्त दृष्ट रहने से मध्यम शुभ हैं। पृष्ठोदय पाप-युक्त दृष्ट होने पर अत्यन्त अशुभ व शुभ युक्त रहने पर साधारण अशुभ या मध्यम अशुभ होती हैं। मीन राशि सदैव मिश्रित या मध्यम फलद होती है।

पृष्ठोदयेषु सिध्यत्यशुभं मूर्धोदयेषु शुभमुक्तम्।
उभयोदये विमिश्रं ग्रहरहितेभ्यः फलं वाच्यम्।। (कृष्णीयम्)

यहाँ एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि पृष्ठोदय राशियाँ उत्तरार्ध में तथा शीर्षोदय पूर्वार्ध में विशेष फलद होती हैं।

उभयोदय राशियाँ मध्य में फलप्रद होती हैं–

इस प्रकार गोचर व राशि दशा आदि के फल विवेक की स्थिति का संकेत भी आचार्य ने कर दिया है। आगे आचार्य ने स्वयं कहा भी है–

पृष्ठोभयकोदयर्क्षगाः स्वान्त्यान्तः प्रथमेषु पाकदाः। (प्रकीर्णाध्याय)

अर्थात् पृष्ठोदय राशिस्थ ग्रह सम्पूर्ण दशा के अन्त में तथा शीर्षोदयगत ग्रह आदि में व उभयोदयस्थ मध्य में फलद होते हैं।

राशियों की अन्य संज्ञाएँ–

क्रूरः सौम्यः पुरुषवनिते ते चरागाद्विदेहाः,
प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक् कर्कटाः सत्रिकोणाः।
मार्त्तण्डेन्द्वोरयुजि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे,
द्रेक्काणाः स्युः स्वभवनसुतत्रित्रिकोणाधिपानाम्।। 11।।

(मन्दाक्रान्ता)

मेषादि बारहों राशियों में क्रमशः क्रूर व सौम्य विभाग होता है। अर्थात् सभी विषम राशियाँ क्रूर एवं सम राशियाँ सौम्य होती हैं। इसी तरह सभी विषम राशियाँ पुरुष संज्ञक व सम राशियाँ स्त्री संज्ञक होती हैं।

मेषादि क्रम से ही चर, स्थिर (अग) व द्विस्वभाव विभाग भी माना जाता है। अर्थात् मेषादि, कर्कादि, तुलादि, मकरादि से शुरू कर क्रमशः चर, स्थिर व द्विस्वभाव राशियाँ होती है।

मेष, वृष, मिथुन, कर्कादि क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम व उत्तर की स्वामी राशियाँ होती हैं। अर्थात् मेषादि त्रिकोण राशियाँ (1.5.9) पूर्व की, वृषादि त्रिकोण (2.6.10) उत्तर की अधिपति राशियाँ हैं।

विषम (अयुजि) राशियों में पहले 15^0 तक सूर्य की तथा बाद में चन्द्रमा की होरा होती है। सम राशियों में पूर्वार्ध में चन्द्र की तथा उत्तरार्ध में सूर्य की होरा, इस प्रकार प्रत्येक राशि में 2-2 होरा होती हैं।

सभी राशियों में पहला द्रेष्काण उसी राशीश का, दूसरा द्रेष्काण उससे पंचमेश का तथा तीसरा व अन्तिम द्रेष्काण उससे नवमेश का होता है। **'क्रूरसौम्यः पुरुषवनिते'** कहकर आचार्य ने राशियों का स्वभाव बताया है। जिस राशि में जन्म हो, तदनुसार जातक का स्वभाव होता है। फिर भी सभी क्रूर या पुरुष राशियों में मेष, सिंह कुम्भ अधिक क्रूर तथा मिथुन, तुला धनु कम क्रूर होती हैं। सौम्य या स्त्री राशियों में वृष, मीन सर्वथा सौम्य तथा कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर कम सौम्य या मध्यम सौम्य होती हैं। ऐसी अवान्तर स्थिति को भी मस्तिष्क में रखना चाहिए। अपि च क्रूर ग्रहाधिष्ठित राशि भी क्रूर व शुभाधष्ठित राशि भी सौम्य होती है। फल कथन में राशीश के निर्बल रहने पर राशि बल ही देखा जाता है।

प्रश्न विचार में भी विषम राशियों में संकेतित पदार्थ रूखे या उग्र तथा सौम्य राशियों में मृदु, लघु या कान्त होते हैं। सम राशियों में आधानादि प्रयोजन से सम्भोग दो बार ही होता है, ऐसा कहना चाहिए।

विषमेषु ग्रहराशिषु मैथुनमेकं द्विवारमितरेषु ।। (कृष्णीयम्)

इस प्रकार प्रश्न समय में सम्बन्धित पदार्थानुमान करते समय विचार किया जाना चाहिए। इसी प्रकार जन्म लग्न व चन्द्र राशि के अथवा जैसी राशियों में अधिक ग्रह हों तदनुसार ही जातक का उग्र या सौम्य, पुरुषोचित या स्त्रियोचित स्वभाव व्यक्तित्त्वादि का निर्णय करें।

चर, स्थिर, द्विस्वभाव विभाग का भी उपयोग जातक व प्रश्नादि में मौलिक रूप से होता है। राशि स्वभावानुसार ही जातक या प्रश्न का फल होता है।

राशिस्वभावतुल्या जायन्ते प्रकृतयः प्रसूतानाम्। (सत्याचार्य)

राशियों की दिशा से नष्ट विषय, चोरी आदि प्रश्न में दिशा का निर्धारण होता है तथा बलवान् राशि की दिशा में कार्य सिद्धि होती है।

ते राशय बलवन्तश्चेत् तेषु दिक्षु कार्यादिलब्धिः ।।

(विवरण टीका)

साथ ही होरा व द्रेष्काण ग्रहों के होते हैं, राशियों के नहीं। यह सार्वकालिक व्यवस्था आचार्य ने बता दी है। जैमिनीय मत में तथा अन्य बहुत से विद्वान् राशियों की होरा व द्रेष्काणादि मानते हैं। इस विवाद के विषय में हम अपने जैमिनीय सूत्र भाष्य में कह चुके हैं। आचार्य ने स्पष्ट कथन करके विवाद पर पटाक्षेप कर एक निश्चित व्यवस्था का सूत्रपात कर दिया है। कृष्णीयम् नामक दक्षिण भारतीय ग्रन्थ में द्रेष्काण ग्रहों के ही बताए हैं। लेकिन क्रम भिन्न है–

क्षितिसुतरविगुरुसौराः भृगुजबुधौ भार्गवश्च रवितनयः।
बुध चन्द्ररविजजीवाः द्रेक्काण गणेश्वरा-प्रोक्ताः।।

(कृष्णीयम्)

'अर्थात् मेष में मंगल, सूर्य, गुरु के; वृष में शनि, शुक्र, बुध के; मिथुन में शुक्र, शनि, बुध के इत्यादि प्रकार से द्रेष्काणेश होते हैं।'

अतः आचार्य ने 1.5.9 राशीशों के द्रेष्काणपति बताकर निर्भ्रान्त व्यवस्था कर दी है। कुछ लोग प्रथम नवांशेश का पहला द्रेष्काण, पंचम नवांशेश का दूसरा द्रेष्काण तथा नवम नवांशेश का तीसरा द्रेष्काण मानते थे। उन्हीं के अनुकरण पर कृष्णीयम् का उक्त उद्धरण आधृत है। स्वयं आचार्य अग्रिम श्लोक में होरा व द्रेष्काण के विषय में एक अन्य मतान्तर प्रस्तुत कर रहे हैं।

होरा द्रेष्काण में मतान्तर–

केचित्तु होरां प्रथमां भपस्य, वांछन्ति लाभाधिपतेर्द्वितीयाम्।
द्रेक्काणसंज्ञामपिवर्णयन्ति, स्वद्वादशैकादशराशिपानाम्।।12।।

(इन्द्रवज्रा)

कुछ आचार्यो ने पहली होरा राशीश की तथा दूसरी होरा विचारणीय राशि से एकादशेश की मानी है। जैसे मेष में पहली होरा मंगल की तथा दूसरी होरा मेष से ग्यारहवीं राशि के स्वामी शनि की होगी।

इसी प्रकार द्रेष्काण के विषय में भी कुछ लोग पहला द्रेष्काण उसी राशि का, दूसरा द्रेष्काण उससे द्वादशेश का तथा तीसरा द्रेष्काण एकादशेश का होता है, ऐसा मानते हैं।

भट्टोत्पल ने इस मत के मानने वालों को यवन कहा है। यवनों (यूनानियों) से वैचारिक आदान-प्रदान के समय में बहुत से मत-मतान्तर

भारतवर्ष में प्रचलित हो गए होंगें। अतः आचार्य ने विवाद शान्त करने के लिए सत्याचार्य के मत को स्वीकार कर लिया है।

आद्या तु होरा भवनस्य पत्युरेकादशक्षेत्रपतेर्द्वितीया।
स्वद्वादशैकादशराशिपानां द्रेष्काणसंज्ञाः क्रमशस्त्रयोऽत्र।।

(यवनेश्वर)

ओजेषु रवेर्होरा प्रथमा युग्मेषु चोत्तरा शेषा।
इन्दोः क्रमशो ज्ञेया जन्मनि चेष्टौ स्वहोरास्थौ।।
राशिपतेद्रेष्काणस्तत्पंचमनवमभवनपतयःस्युः।
तेषामधिपतयः स्वस्वदृकाणे ग्रहा बलिनः।। (सत्याचार्य)

इससे काशी के उन पण्डितों के भी कथन का समाधान हो जाता है, जिन्होंने वराह मिहिर पर यवनों का अधिक पक्षपाती होने का आरोप लगाकर वर्तमान होरा व द्रेष्काण विधि को विदेशी कहा था। सत्याचार्य के मत को वराह ने माना है, ऐसा यहाँ स्पष्ट है।

कुछ वराह ग्रन्थ के व्याख्याताओं ने यहाँ 'तु' शब्द के प्रयोग द्वारा प्रसंग भेद व विषय भेद की बात उठाकर इस श्लोक में प्रोक्त होरा व द्रेष्काण को प्रश्न के सन्दर्भ में तथा पिछले श्लोक में प्रोक्त मत को जातक में प्रयोज्य माना है।

आद्या तु जातके प्रोक्ता द्वितीया प्रश्नकर्मणि।

रुद्रभट्ट ने इन्हीं लोगों की ओर संकेत किया है। इन लोगों के मत से प्रथम पंच नवाधिप रूप प्रथम द्रेष्काण प्रकार आधानादि में अर्थात् जन्मपूर्व विचार में, द्वितीय चर, स्थिर, द्विस्वभाव रूप जातक में तथा स्वद्वादशैकादशेश वाला मत प्रश्न में विचारणीय है। लेकिन वराहमिहिर को पहले वाला मत ही मान्य है–

'आद्यः पक्षोऽजातविधाने द्वितीयो जातक विधाने, तृतीयः प्रश्ने। आचार्यस्य पूर्वोक्त एवेष्टः। (रुद्रभट्ट)

इससे प्रतीत होता है कि वराहमिहिर के समय में वर्ग विभाजन की कोई एक सर्वमान्य पद्धति न बन पाने के कारण आचार्य ने स्वयं आगे बढ़कर एक सुनिश्चित पद्धति को दृढ़ता से माना था।

उच्चं–नीच विभाग–

अजवृषभमृगांगनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।
दशशिखिमनुयुक तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्त नीचाः ।।१३।।

(पुष्पिताग्रा)

सूर्य मेष में, चन्द्रमा वृषभ में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, गुरु कर्क में, शुक्र मीन में, शनि तुला में 'उच्च' होता है। अर्थात् सूर्यादि सातों ग्रहों की मेष, वृष, मकरादि राशियाँ उच्च कहलाती हैं।

उक्त उच्च राशियों में क्रमशः दस, तीन (शिखी) अट्ठाईस (मनुयुक), पन्द्रह (तिथि), पाँच (इन्द्रिय), सत्ताईस (त्रिनवक 9×3) एवं, बीस अंशों पर परमोच्च होता है।

उच्च राशियों से सातवीं राशियों में इन्हीं अंशों पर सूर्यादि सातों ग्रहों के परम नीच होते हैं।

पहले दो चरणों में राशियों का उल्लेख करके **'दिवाकरादितुङ्गाः'** कहा है। इससे ध्वनित होता है कि राशियों का सम्पूर्ण भाग अर्थात् सारी राशि ही उक्त प्रकार से उच्च या नीच होती है। जैसे सूर्य मेष के किसी भी अंश में हो वह उच्च राशिस्थ ही माना जाएगा तथा तुला में सर्वत्र 30^0 अंशों में कहीं भी रहने पर नीचगत ही माना जाएगा।

तत्पश्चात् अंशों का उल्लेख करने से तात्पर्य है कि ये अंश परम उच्च या परम नीच स्थान हैं। फलित में जहाँ उल्लेख न किया हो वहाँ उच्च-नीच से सम्पूर्ण राशि एवं उल्लेख होने पर परमोच्च या परम नीच भाग का अर्थ समझना चाहिए। अंकों को द्योतित करने के लिए मनु 14 होते हैं, अतः मनुयुक् अर्थात् चौदह का जोड़ा यानि 28 अंश प्राप्त हुए हैं। इसी तरह शिखि अग्नि का वाचक होने से आहवनीय, गार्हपत्य व दक्षिणात्य त्रिविध अग्नि से तीन संख्या प्राप्त होती हैं। नौ का समूह नवक तथा त्रिनवक अर्थात् नौ के तिगुने 27 अंश प्राप्त होते हैं।

यद्यपि ग्रह अपनी सम्पूर्ण उच्च राशि में अच्छा फल देता है लेकिन जैसे-जैसे परम उच्च की ओर बढ़ता है, वैसे वैसे ही शुभता अधिक परिपुष्ट होती जाती है तथा परमोच्च भाग से आगे क्रमिक रूप से घटती जाती है। इसी प्रकार से नीच राशि में भी व्यवस्था समझनी चाहिए।

भट्टोत्पल ने गार्गि के नाम से यह उद्धरण दिया है–

स्वोच्चगौ रविशीतांशू जनयेतां नराधिपम्।
उच्चस्थौ धनिनं ख्यातं स्वत्रिकोणगतावपि ।। (गार्गि)

इस श्लोक में स्वोच्च व उच्च ये दो शब्द पृथकतया परमोच्च व सम्पूर्ण उच्च राशि (परमोच्चरहित) के बोधक हैं। इसी विषय विभाग को द्योतित करने के लिए आचार्य ने पहले राशि कहकर बाद में अंशों का कथन किया है। यही स्थिति उच्च से अस्त अर्थात् सातवीं नीच राशि में भी होगी।

विवरणकार ने यहाँ कहा है कि एक चरण में अज वृषभ, मृग, अंगना व कुलीर ये पाँच राशियाँ कहने से आचार्य का मन्तव्य है कि परमोच्चगत पाँच ग्रह यदि हों तो मनुष्य राजा होता है तथा उसका प्रभाव दिव्य अर्थात् अलौकिक होता है। इससे कम उच्चगत रहने से तारतम्य समझना चाहिए। कहा गया है–

सुखिनः प्रकृष्टकार्या राजप्रतिरूपकाश्च राजानः।
एकद्वित्रिचतुर्भिर्जायन्ते स्वोच्चगैरतः परं दिव्याः।।

(कृष्णीयम्)

अर्थात् एक ग्रह उच्च या परमोच्च में हो तो सुखी, दो होने पर उन्नत प्रकृष्टकर्मा, तीन से राजतुल्य, चार उच्चगत ग्रहों से राजा तथा पाँच उच्चगत ग्रहों से तो दैवीशक्ति युक्त पुरुष होता है।

इस तरह निष्कर्षतः परमोच्च, स्वोच्च, वर्गोत्तम मूलत्रिकोण, स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र, शुभक्षेत्र इस क्रम से ग्रहों को उत्तरोत्तर कम शुभ समझना चाहिए। परमोच्च में जितना शुभ, उच्च में उससे कम, मूलत्रिकोण में उससे कम व शुभ क्षेत्र में साधारण सबसे कम शुभ होता है।

इसी तरह परम नीच से आगे निकलने पर क्रमिक वृद्धि शुभ फल में मानी जाएगी। इसलिए अगले श्लोक में वर्गोत्तम नवांश एवं मूलत्रिकोण की व्यवस्था बताई जा रही है।

वर्गोत्तम व मूल त्रिकोण–

वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्य पर्यन्ततः शुभफला नवभागसंज्ञाः।
सिंहो वृषः प्रथम षष्ठ हयांगतौलिकुम्भास्त्रिकोण भवनानि भवन्ति सूर्यात्।।।14।।

(वसन्ततिलका)

चरगृहादि द्विस्वभाव पर्यन्त क्रमशः प्रथम, मध्यम व अन्तिम नवांश 'वर्गोत्तम' संज्ञक होते हैं। अर्थात् चर राशियों में पहला नवांश, स्थिर राशियों में बीच

वाला (पांचवाँ) नवांश व द्विस्वभाव राशियों में अन्तिम अर्थात् नवाँ नवांश 'वर्गोत्तम' हैं। ये वर्गोत्तम नवांश सर्वथा शुभ फल देते हैं।

सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला व कुम्भ ये राशियाँ क्रमशः सूर्यादि ग्रहों की मूलत्रिकोण राशियाँ होती हैं।

आशय यह है कि जिस राशि में ग्रह स्थित हो, उसी राशि में नवांश कुण्डली में भी स्थित हो जाए वह वर्गोत्तमी कहलाता है। अतः मेष में मेष नवांश, वृष में वृष नवांश, कुम्भ में कुम्भ नवांशादि वर्गोत्तम होते हैं। यह मत सत्याचार्य के इस कथन पर आधारित है–

चरभवनेष्वाद्यंशाः स्थिरेषु मध्या द्विमूर्तिषु तथान्त्याः।

वर्गोत्तमाः प्रदिष्टास्तेष्विह जाताः कुले मुख्याः।। (सत्याचार्य)

अतः वर्गोत्तम नवांश में होने पर ग्रह उच्चगत होने के समान ही शुभ फलद होता है, यह स्पष्ट हुआ। भट्टोत्पल वर्गोत्तमी ग्रह को प्रधान व रुद्रभट्ट उच्चतुल्य फलप्रद मानते हैं। रुद्रभट्ट ने एक और बात कही है कि जिस प्रकार वर्गोत्तम नवांश शुभ होते हैं, उसी प्रकार वर्गोत्तम द्वादशांश भी शुभ होते हैं–

नवभाग संज्ञाः सुशुभदाः इत्युक्तत्वाद्द्वादशांशाः शुभदा इति तर्कणीयम्।।

(विवरण पृ० 28)

मूलत्रिकोण राशियाँ स्वराशि से बलवान् होती हैं। मूलत्रिकोण का उल्लेख करते हुए **'सिंहो वृषः'** ये दो राशियाँ अलग कहकर **'प्रथमषष्ठ्यांग तौलिकुम्भाः'** ये सब राशियाँ अलग से समस्त पद में रखकर आचार्य ने सूर्य व चन्द्रमा को एक पक्ष में व मंगलादि पाँच ग्रहों को दूसरे पक्ष में रखा है। इससे सूर्य व चन्द्रमा की बलवत्ता से विशेष फलप्राप्ति होती है तथा उन दोनों की फलादेश में प्रधानता प्रकट की है।

उक्त मूल त्रिकोण राशियों में कई राशियाँ युगपत् उच्च व त्रिकोण व स्वगृह भी हैं, तब उनमें अंशों पर आधारित उच्च त्रिकोण स्वगृह विभाग सारावली के आधार पर बताया जा रहा है–

सूर्य सिंह राशि में 1°-20° तक मूलत्रिकोणी व आगे स्वगृही होता है। चन्द्रमा वृष राशि में 3° अंश तक उच्चगत तथा बाद में मूलत्रिकोणी होता है। मंगल मेष में 12° अंश तक मूल त्रिकोणी व बाद में स्वगृही, बुध कन्या राशि में 15° अंश तक मूल त्रिकोणी व बाद में 16°-20° तक त्रिकोणी व 21°-30° तक स्वगृही होता है। बृहस्पति धनु राशि में 10° अंशों तक मूलत्रिकोणी तथा आगे सवगृही होता है। शुक्र तुला में 5° अंश तक मूलत्रिकोणी

व आगे स्वक्षेत्री होता है। शनि कुम्भ में 1^0-20^0 तक त्रिकोणगत व बाद में स्वगृह में होता है।

आचार्य ने स्वयं मूलत्रिकोण व उच्चांशों का विभाग क्यों नहीं बताया? इसके पीछे यही तर्क हो सकता है कि उन्हें पूरी राशि ही मूलत्रिकोण अभीष्ट हो सकती है, लेकिन यह कथन संगत प्रतीत नहीं होता। सारावली में यवन मतानुसारी व प्रायः सर्वसम्मत उक्त विभाग प्राप्त होता है तब वराहमिहिर से यह विवेचन छूट गया होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

भावों के नाम व उपचय विचार–

होरादयस्तनुकुटुम्बसहोत्थबन्धु–
पुत्रारिपत्निमरणानि शुभास्पदायाः।
रिःफाख्यमित्युपचयान्यरिकर्मलाभ–
दुश्चिक्य संज्ञित गृहाणि न नित्यमेके।।15।।

होरा अर्थात् लग्नादि बारहों भावों के क्रमशः तनु, कुटुम्ब, सहोत्थ या सहज, बन्धु, पुत्र, शत्रु, पत्नी, मृत्यु, शुभ, आज्ञा या पदवी (आस्पद), आय एवं रिःफ ये बारह नाम भी होते हैं।

जन्म लग्न से 3. 6. 10. 11 भाव सदैव उपचय अर्थात् वृद्धि स्थान कहलाते हैं। जबकि कुछ लोग इन्हें अनित्य भी मानते हैं।

द्वादश भावों के उक्त नामों से तत्तत् भावों के विचारणीय विषयों का संकेत करके भाव कारकत्व अर्थात् भावों के विचारणीय विषयों का विभाग बताया गया है। 'होरादयः' शब्द में होरा अर्थात् उदयलग्न का प्रथमोल्लेख करके जन्म या प्रश्न समय की प्रामाणिकता को फलादेश का मूलाधार बताया है। इस तरह ये बारह भाव जातक के समस्त फल को अभिव्यक्त करते हैं। श्लोक में सूर्य व चन्द्रमा की प्रधानता को बताकर संकेतित कर दिया है।

इसके अतिरिक्त लग्न से अष्टम तक एक पद में समास करके कहने से पता लगता है कि यह ऐहिक अर्थात् इस लोक से सम्बन्धित भाव या राशियाँ हैं। नवम, दशम व एकादश को एक पद में रखकर पारलौकिक राशियों का निरूपण किया है, अर्थात् इन भावों या राशियों से परलोक गमन, गति, पुनर्जन्म तथा पुण्य व कर्मफलों का भोगादि रेखांकित किया है। द्वादश (रिःफ) को सर्वत्र अलग रखकर उससे लोकोत्तर गति अर्थात् मोक्ष या मुक्ति का विचार, सर्वविधव्यय जिसमें कर्मचक्रभोग का व्यय भी सम्मिलित है,

विचारणीय है। इस प्रकार राशियों के ऐहिक, आमुष्मिक, मोक्ष ये तीन प्रकार बताए हैं।

लग्न से 3. 6. 10. 11 भाव उपचय हैं तथा इन्हें कुछ लोग अनित्य भी कहते हैं। इससे तात्पर्य है कि हम तो सत्याचार्यादि द्वारा समर्थित होने से 3. 6. 10. 11 भावों को प्रत्येक परिस्थिति में सदैव उपचय अर्थात् वृद्धि स्थान ही मानते हैं। जबकि गार्गि आदि ने 3. 6. 10. 11 को तभी वृद्धि स्थान कहा है, जब इन पर पापग्रहों व भावेशों के शत्रु ग्रहों की दृष्टि न हो। यदि ऐसा हो तो ये उपचय नहीं होते। लेकिन यह अनित्यतावाद आचार्य को स्वीकार नहीं है। उनके मत से ये चार स्थान सदैव उपचय स्थान व शेष 1. 2. 4. 5. 7. 8. 9. 12. अपचय अर्थात् हानि स्थान हैं। जैसा कि सत्याचार्य ने कहा है–

दशमैकादशषष्ठतृतीयसंज्ञानि जन्मलग्नाभ्याम्।
उपचयभवनानि स्युः शेषाण्यृक्षाण्यपचयाख्यानि।।

(सत्याचार्य)

उक्त उद्धरण में 'जन्म लग्नाभ्याम्' द्विवचन कहने से जन्म लग्न व चन्द्रमा दोनों से 3. 6. 10. 11 उपचय स्थान बताए गए हैं।

लग्नादि भावों के अन्य नाम–

कल्पस्वविक्रमगृहप्रतिभाक्षतानि,
चित्तोत्थरन्ध्रगुरुमानभवव्ययानि।
लग्नाच्चतुर्थनिधने चतुरस्रसंज्ञे,
द्यूनं च सप्तमगृहं दशमर्क्षमाज्ञा।। 16।।

लग्नादि द्वादश भावों को क्रमशः कल्प, स्व, विक्रम, गृह, प्रतिभा, घाव (क्षत), कामदेव (चित्तोत्थ), रन्ध्र, गुरु, मान, भव व व्यय भी कहते हैं।

लग्न से चतुर्थ व अष्टम को 'चतुरस्र', सप्तम भाव को द्यून तथा दशम भाव को आज्ञा भी कहते हैं।

पूर्वोक्त 'होरादयः' से सम्बन्ध है। सार्थक नामकरण से फल-विचार पद्धति को संकेतित किया है। कल्प अर्थात् शरीर, शक्ति व सामर्थ्य। स्व अर्थात् अपना कुटुम्ब इत्यादि।

कल्पादि पद से अदृश्यभाग एवं चित्तोत्थादि पद से दृश्य भाग याअनुदित-उदित विभाग दिखाया है।

केन्द्रादिसंज्ञा व राशि बल–

कण्टक केन्द्र चतुष्टय संज्ञाः सप्तम लग्न चतुर्थखभानाम् ।
तेषु यथाभिहितेषु बलाढ्याः कीटनराम्बुचराः पशवश्च ।।17।।

(दोधक)

सप्तम, लग्न, चतुर्थ व दशम (ख) इन चार भावों या राशियों की कण्टक, केन्द्र या चतुष्टय ये तीन संज्ञाएँ होती हैं।

इन भावों में क्रमशः सप्तम में कीट, लग्न में नर राशि, चतुर्थ में जलचर व दशम में चतुष्पद राशि बलवान् होती है।

अर्थात् धनु का पूर्वार्ध, कन्या, मिथुन, तुला व कुम्भ का पूर्वार्ध लग्न में, मकर का उत्तरार्ध, मीन व मकर चतुर्थ में; मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्ध, व मकर का पूर्वार्ध ये दशम में एवं वृश्चिक सप्तम में बलवान् होती है।

केन्द्रभिन्न राशियों की संज्ञाएँ–

केन्द्रात्परं पणफरं परतश्च सर्व–
मापोक्लिमं हिबुकमम्बु सुखं च वेश्म ।
जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं
मेषूरणं दशममत्र च कर्म विद्यात् ।।18।।

(वसन्ततिलका)

केन्द्र स्थानों से परत्र अर्थात् अगली राशियों (2. 5. 8. 11) का नाम 'पणफर' है।

इनसे अगली-अगली राशियाँ (3. 6. 9. 12) आपोक्लिम कहलाती हैं।

इसके अतिरिक्त (वेष्म) चतुर्थ राशि के हिबुक, जल, सुख भी पर्याय हैं। इसी प्रकार सप्तम को जामित्र, पंचम को त्रिकोण, दशम को मेषूरण व कर्म भी कहते हैं तथा दशम से कर्म का विचार भी करना चाहिए।

केन्द्रगत ग्रह बाल्यावस्था में, पणफरगत युवावस्था में तथा आपोक्लिमगत वृद्धावस्था में फलप्रद होते हैं। यह अतिरक्ति अर्थ 'परं व परतः' शब्द द्वारा द्योतित होता है। पहले भाव या लग्न राशि सहित चार राशियों से जन्म या बाल्यावस्था का, उससे आगे के भावों पणफरों से युवावस्था का तथा उससे भी अगले भावों से वृद्धावस्था का विचार करना चाहिए। यही बात **सारावली में कही गई है–**

केन्द्रात्परं पणफरमापोक्लिमसंज्ञिते तयोः परतः ।
बालयुवस्थविरत्वे क्रमेण फलदा ग्रहास्तेषु ।।

अन्तिम चरण में दशम स्थान की संज्ञा मेषूरण व कर्म बताकर 'अत्रकर्म च विद्यात्' कहने से जातक की प्रवृत्ति सर्व कर्म, कार्य प्रणाली, यज्ञादि कर्म, तीर्थयात्रा अपि च सभी प्रकार की गतिविधियों का विचार दशम से करना चाहिए यह बताया है ।

कुछ टीकाकारों ने केवल दशम के पर्याय रूप में ही कर्म को माना है, यह अधूरा आशय है । यदि वराहमिहिर केवल पर्याय ही बताना चाहते थे तो 'च' शब्द का प्रयोग क्यों किया ? साथ ही 'अत्र' (यहाँ) पद का प्रयोग किस प्रयोजन से है ? यदि चकार से केवल समाहार का ही बोध है तो भी 'अत्र' शब्द का प्रयोग विशेष प्रयोजन से है । वराहमिहिर ने अनावश्यक व निरर्थक शब्द प्रयोग नहीं किया है । हमारे विचार से चकार से यहाँ पक्षान्तर अर्थात् दूसरा विचार भी प्रस्तुत किया है । क्योंकि सार्थक संज्ञाएं होने से स्वयं ही कर्म शब्द से कर्म का बोध उसी प्रकार हो जाता जैसे विक्रम, बन्धु आदि शब्दों से होता है । अतः कर्म संज्ञक होने के साथ-साथ फलादेश में व्यक्तित्व व चरित्र का निर्णय करने में भौतिक सफलता के संदर्भ में, प्रशासनिक गुणों के निर्णय में, प्रतिष्ठा में एवं आज्ञा या अधिकार विवेक में प्रधानतया दशम का विचार करना चाहिए, यह विचारान्तर प्रकट है ।

लग्न बल विचार–

होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा,
केन्द्रस्था द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये ।
पूर्वार्धे विषयादयः कृतगुणा मानं प्रतीपं च तद्,
दुश्चिक्यं सहजं तपश्च नवमं त्र्याद्यं त्रिकोणं च तत् ।।19।।

(शार्दूलविक्रीडित)

यदि लग्न को लग्नेश, बुध व बृहस्पति देखते हों अथवा लग्न इन से युक्त हो, तथा अन्य किसी ग्रह से युत या दृष्ट न हो तो वह बलवान् माना जाता है ।

सभी राशियाँ केन्द्र में बलवान् होती हैं । पणफर में मध्यबली व आपोक्लिम में निर्बल होती हैं, यह अन्यथा सिद्ध है ।

सभी द्विपद राशियाँ दिन में, चतुष्पद राशियाँ रात में तथा जलचर व कीट राशियाँ दोनों सन्ध्या के समय बली होती है ।

5. 6. 7. 8. 9. 10 संख्याओं का चार गुना मान मेषादि राशियों का उदय मान होता है । यही मान तुलादि षट्क में विपरीत क्रम से होता है ।

तृतीय भाव को दुश्चिक्य एवं नवम को तप एवं त्रित्रिकोण भी कहते हैं ।

लग्न बलवान् है या नहीं ? इसका निर्णय करने का प्रकार बताया गया है । यदि लग्नेश द्वारा लग्नभाव युत हो या पूर्ण दृष्ट हो, यह एक प्रकार है । यदि बलवान् व पाप ग्रह से रहित बुध लग्न से योग या दृष्टि करे, यह दूसरा प्रकार है । यदि बली गुरु लग्न से पूर्ण दृग्योग करे, यह तीसरा प्रकार है । ये लग्न की बलवत्ता-निर्णय के तीन आधार हैं । यदि तीनों प्रकार से लग्न बलवान् हो तो उत्तम बली, यदि दो प्रकार से हो तो मध्यबली तथा एक प्रकार से हो तो बली होता है । यह तारतम्य है ।

'नान्यैश्च' पद के द्वारा यह आशय निकलता है कि उक्त प्रकार से स्वामी, बुध व गुरु से युत दृष्ट होने पर भी लग्न अन्य पापग्रहों से युत या दृष्ट हो तो बलवान् नहीं होगा । यदि उक्त प्रकार से बली सिद्ध होने पर भी लग्न पर पापग्रह का दृग्योग भी एक साथ हो तो मध्यबली तथा केवल पापग्रहों से दृष्ट होरा निर्बल होती है । यहाँ अन्य शब्द से तात्पर्य पापग्रहों से है । यदि बलवान् चन्द्रमा देखे या योग करे तो भी बलप्रद होगा । शुक्र लग्नेश होने की स्थिति में बलप्रद होगा, किन्तु नित्य शुभ होने पर भी योग या दृष्टि से लग्न को बल क्यों नहीं देगा ? आचार्य ने शुक्र को इस वर्ग में परिगणित नहीं किया है । रुद्रभट्ट कहते हैं कि शुक्र भी भावनाशक होता है । विशेषतया दृष्टि रहने पर अधिक कष्टप्रद होता है । बादरायणादि ने भी गुरु, शुभ बुध व लग्नेश से ही लग्न की बलवत्ता निर्णय करने के लिए कहा है । लेकिन यह किस कारण होता है, इस विषय में सब मौन हैं । सामान्यतः रुद्रभट्ट ने जब 'नान्यैश्च' पद की व्याख्या करते हुए कहा कि **'अत्रान्यशब्देन पापग्रहा गृह्यन्ते'** तब शुक्र को छोड़ने की बात तो स्वयं ही निरस्त हो गई । पुनश्च शुक्र की लग्न स्थिति को तो रुद्रभट्ट शुभ कहते हैं तथा दृष्टि को खराब, यह भी तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है । बाद के आचार्यों ने शुक्र का लग्न योग या दृष्टि दोनों ही शुभफलद माने हैं–

ये ये भावा सितज्ञामरगुरुपतिभिः संयुता वीक्षिता वा,
नान्यैर्दृष्टा न युक्ता यदि शुभफलदा मूर्तिभावादिकेषु ।।

(वैद्यनाथ)

यो यो भावः स्वामिदष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्यतस्याभिवृद्धिः ।।

(पृथुयशा)

शुक्र की बलवत्ता व केन्द्र स्थिति से महापुरुष योग बनता है। ग्रहशील में गुरु व शुक्र को समान पद (मन्त्री पद) दिया गया है। नित्य शुभता भी शुक्र को प्राप्त है, जबकि चन्द्र व बुध यथावसर पाप व शुभ भी होते हैं। सभी अच्छे योगों में (यथा अधियोगादि) भी शुक्र का ग्रहण है, तब शुक्र को वराहमिहिर ने लग्न को बल देने वाला क्यों नहीं माना है ? यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है। इसी कारण वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा ने ही स्वयं पाप युत दृष्ट भाव को निर्बल एवं सभी शुभ युत दृष्ट को बलवान् बता दिया था। सारावली में भी यद्यपि शुक्र का ग्रहण नहीं है, लेकिन वहाँ लग्नेश के मित्रग्रहों से युत दृष्ट होने पर भी लग्न या राशि को बलवान् माना है। इस प्रकार वराह मिहिर ने बादरायण के मत का अवलम्बन किया था, जिसमें उत्तरोत्तर संशोधन होता गया तथा सामान्यतः गुरु, बुध, शुक्र से युत या दृष्ट होने पर लग्न को बली माना जाने लगा। शायद सप्तम शुक्र विशेष शुभ न होने से ऐसा माना होगा।

पूर्वार्धे विषयादयः इत्यादि प्रसंगावतार करके आचार्य ने मेषादि राशियों के उदयमान बताए हैं। अर्थात् उक्त राशि बताए गए भागों तक प्रदेश विशेष में पूर्वी क्षितिज पर उदित रहती है। विषय अर्थात् इन्द्रियादि संख्याओं को चौगुना करके उदय मान मिलते हैं–

मेष $5 \times 4 = 20$ भाग या अंश मीन
वृष $6 \times 4 = 24$ भाग या अंश कुम्भ
मिथुन $7 \times 4 = 28$ भाग या अंश मकर
कर्क $8 \times 4 = 32$ भाग या अंश धनु
सिंह $9 \times 4 = 36$ भाग या अंश वृश्चिक
कन्या $10 \times 4 = 40$ भाग या अंश तुला

सत्याचार्य ने ऐसा ही कहा है–

चतुरुत्तरोत्तराः स्युर्विंशति भागा भवन्ति मेषाद्ये।
मानमिहार्धे पूर्वे मीनान्तो चोत्क्रमादर्धे।।

अंशों को दस से गुणा करने पर पलात्मक उदयमान मिल जाता है। 60 घड़ियों में जब 12 राशियाँ या $60 \times 60 = 3600$ पलों में $12 \times 30 = 360$ अंश तो 1 अंश दस पलों के तुल्य सिद्ध होता है। अतः 200, 240, 280, 320, 360, 400 ये पलात्मक उदयमान होंगे। ये उदयमान लगभग 7.30 अंगुल पलभा वाले प्रदेश के प्रतीत होते हैं। अतः सर्वत्र भूमण्डल पर इनसे उदय लग्न साधन की स्थूल विधि का निर्देश महामति वराह नहीं कर सकते हैं। तब इनका क्या उपयोग है ? इस विषय में सारावली में कहा गया है

कि जन्म समय में जातक के अंगों की लघुता व दीर्घता जानने के लिए इनका उपयोग है। अर्थात् जहाँ छोटी राशि पड़े वह अंग छोटा व जहाँ बड़ी राशि पड़े तदनुसार द्योतित अंग बड़ा होता है। इसी आधार पर रुद्रभट्ट ने भी इनका यही उपयोग बताया है। भट्टोत्पल ने नष्ट जातक में भी इसका उपयोग माना है–

नष्टचिन्तादिष्वर्थपरिज्ञानाय पुरुषावयवानां ह्रस्वदीर्घत्वज्ञानायोप–युज्यते।

(भट्टोत्पल)

यह विधि यवनाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट है। 'एवम्प्रमाणानि गृहाणि बुद्ध्वा' इत्यादि प्रकार से **वृद्ध यवन जातक** के हमारे संस्करण में देखें। इससे एक बात यह भी सिद्ध है कि सत्याचार्य भी बहुत्र यवनाचार्यों के साथ मतैक्य रखते हैं। भारतीय ज्योतिष पराशर, नारद, यवनादि अनेक आचार्यों की प्रतिभा का सम्मिलित प्रतिफल ही है।

इनसे अंगों के छोटे-बड़े होने का विचार काल पुरुषांगानुसार करेंगे या कोई और विधि है। यदि काल पुरुषानुसारी अंगों का दीर्घ-ह्रस्वत्व मान लिया जाए तो एक लग्न के सभी जातकों का स्वरूप प्रायः एक-सा ही रहना चाहिए। इसीलिए आगे **'कादि विलग्नविभक्तभगात्रः'** प्रभृति पदों द्वारा अंग निश्चय की विधि बताई जाएगी।

'त्र्याद्यं त्रिकोणम्' कहकर आचार्य ने नवम को परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ त्रिकोण भाव बताया है। लग्न का त्रिकोण पंचम तथा पंचम त्रिकोण का भी त्रिकोण होने से नवम भाव सर्वत्र सावधानतया विचारणीय है, यह संकेत किया है। सारावली में कहा गया है–

सर्वमपहाय चिन्त्यं भाग्यर्क्षं प्राणिनां विशेषेण।

पिछले श्लोक में दशम की महत्ता प्रतिपादित की थी। अतः लग्न, चन्द्रमा, नवम व दशम ये चार भाव सर्वोपरि प्रधान हैं, यह बात अन्यथा ध्वनित होती है।

राशिवर्ण विवेक–

रक्तः श्वेतः शुकतनुनिभः पाटलो धूम्रपाण्डु–
श्चित्रः कृष्णः कनकसदृशः पिंगलः कर्बुरश्च।
बभ्रुः स्वच्छः प्रथमभवनाद्येषु वर्णाः प्लवत्वं,
स्वाम्याशाख्यं दिनकरयुताद् भाद् द्वितीयं च वेशि।।20।।

(मन्दाक्रान्ता)

मेषादि बारह राशियों के क्रमशः लाल, सफेद, तोते के समान हरा, पाटल (मेहरून) धूम्रपाण्डु (सलेटी), अनेक रंगयुक्त (रंग-बिरंगा), काला सुनहरी, पीला, सफेद व पीला मिश्रित (कबरा), भूरा (बभ्रु) अर्थात् नेवले के समान रंग वाला तथा साफ सुथरा मछली की तरह चमकीला रंग होता है।

राशि के स्वामी की जो दिशा हो, वही दिशा उस राशि का प्लव कहलाती है। या उस दिशा में स्थित होने पर उस राशि की प्लव संज्ञा है।

सूर्य की अधिष्ठित राशि से द्वितीय राशि या भाव 'वेशि' कहलाता है।

प्लव की दिशा में यात्रा करने पर सफलता मिलती है। प्लव अर्थात् झुकाव, लगाव आदि। अपने स्वामी की दिशा के प्रति राशियों का झुकाव या पक्षपात लौकिक न्याय से ही सिद्ध है। मेष वृश्चिक का स्वामी मंगल है। अतः मंगल की दक्षिण दिशा (दशम भाव) में इन दोनो राशियों को प्लव संज्ञा मिलेगी या इन राशियों का झुकाव दक्षिण दिशा की ओर अधिक होगा। नष्ट वस्तु की दिशा, चोर के पलायन की दिशा, लाभकारी दिशा आदि का निर्णय करने में इसका उपयोग है।

सूर्य से द्वितीय राशि का नाम 'वेशि' व द्वादश का नाम 'वासि' है, यह बात 'चकार' से सूचित है। ऐसा भट्टरुद्र ने कहा है।

इस अध्याय में राशियों की स्वाभाविक, कालकृत व ग्रहकृत संज्ञाएं कही हैं। इनका प्रयोजन विभाग भट्टोत्पल ने दिखाया है। इनमें से कुछ तो केवल नाम मात्र प्रयोजन वाली हैं तथा कुछ का फलादेश में प्रयोजन है। जैसे होरा, दुश्चिक्य, त्रिकोण, हिबुक, आदि भावों के नाम केवल नाम हैं। जबकि केन्द्र, पणफर, आपोक्लिमादि संज्ञाएँ, तनु कुटुम्ब, सहोत्थ आदि संज्ञाएँ एवं शुभ, तप, त्रित्रिकोण आदि से विचारणीय विषय एवं फलादेश पद्धति का भी निर्देश किया है। यह बात हमने यथावसर तत्तत् श्लोक की व्याख्या में प्रदर्शित कर दी है।

इति श्रीमहामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकतायामभिनवाख्यटीकायां राशिप्रभेदाध्यायः प्रथमः।।

[2]

अथ ग्रहयोनिप्रभेदाध्याय:

ग्रहों का राजादि विभाग–

कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो,
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः ।
राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः,
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्रांशुजः ।। 1 ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

सूर्य कालपुरुष की आत्मा, चन्द्रमा मन, मंगल सत्त्व, बुध वाणी, गुरु ज्ञान व सुख, शुक्र ज्ञान, सुख व कामशक्ति एवं शनि दुःख का प्रतिनिधि है ।

सूर्य व चन्द्रमा राजा, मंगल नेता या सेनापति, बुध राजकुमार, गुरु व शुक्र मन्त्री तथा शनि प्रेष्य या नौकर है ।

सूर्य की बलवत्ता से आत्मा की बलवत्ता होती है । अतः जिसकी कुण्डली में सूर्य बलवान् हो, वह जीवित रहता है ; आत्मबल, जीवनी शक्ति, जिजीविषा, महत्त्वाकांक्षा, स्वाभिमान अधिक होता है । चन्द्रमा की बलवत्ता से व्यक्ति के अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार की प्रधानता सूचित होती है । तब जातक दृढ़निश्चयी, मजबूत इरादे वाला, धुन का पक्का होता है । सत्त्व व्यक्तित्त्व का वह गुण है जिससे कष्ट या शोक में विह्वलता एवं प्रसन्नता में अतिशय उत्फुल्लता पर नियन्त्रण रहता है । अतः बलवान् मंगल से जातक सत्त्वशील अर्थात् सुख व दुःख में अतिशय हृष्ट या शोक मग्न नहीं होता है । यह महानता का लक्षण है ।

बुध की बलवत्ता से वाक्कुशल होता है । 'सितश्च' शब्द में चकार के द्वारा बताया गया है कि गुरु व शुक्र दोनों ही समानश्रेणिक हैं तथा इनकी बलवत्ता से ज्ञान व सुख की वृद्धि होती है । अर्थात् बृहस्पति बलवान् रहने

से व्यक्ति ज्ञानवान्, प्रतिभाशाली, निपुणकर्मा, सुविचारित कर्मा, महनीय कार्य करने वाला होता है। इसी प्रकार शुक्र बलवान् हो तब भी उक्त फल होता है। लेकिन शुक्र कामशक्ति, प्रजनन, स्त्री दुखादि का भी अतिरिक्त प्रतिनिधि है। प्रायः सभी टीकाकारों ने शुक्र को केवल काम का प्रतिनिधि माना है, जो उचित नहीं है। बृहज्जातक में कोई भी पद निरर्थक या पादपूरण मात्र प्रयोजन से या छन्द निर्वाहार्थ प्रयुक्त नहीं है। तब 'च' इसके प्रयोग से आचार्य ने गुरु व शुक्र की समकोटिकता तथा इन्हें युगपत् ज्ञान व सुख का प्रतिनिधि मानकर शुक्र को काम विभाग अतिरिक्त दिया है।

सितश्च शुक्रोऽपि ज्ञान सुखे, किन्तु मदनः कामात्मकश्च। (रुदभट्ट)

कुछ लोग गुरु को केवल ज्ञान का एवं शुक्र को सुख का प्रतिनिधि भी मानते हैं, जो सर्वथा असंगत हैं। हमारे विचार से गुरु के साथ शुक्र भी समस्त भौतिक सुख व ज्ञान दोनों का प्रतिनिधि है। **फलदीपिका** में शुक्र को स्पष्टतया सम्पद्, वाहन, भूषण, भार्यासुख, श्रीमन्तता, काव्य रचना, सचिव पद, सरस वाणी आदि का प्रतिनिधि कहा गया है।

शनि दुःख का कारक है। जन्म समय में जो ग्रह बलवान् हो, उससे सम्बन्धित बातों की वृद्धि होती है। निर्बल रहने पर हीनता होती है। शनि के विषय में विपरीत क्रम अपनाना चाहिए। यह निर्बल होने पर अधिक दुःख व बली होने पर दुःख का अभाव करता है। इसीलिए सारावलीकार ने कहा है–

आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः।
दुर्बलै दुर्बलाः ज्ञेया विपरीतं शनेः फलम्।।

आत्मा व मन के प्रतिनिधि सूर्य व चन्द्रमा में से यदि एक भी बलवान् हो तो शेष ग्रहों के बल का पूरा फल मिलेगा। यदि सूर्य व चन्द्रमा बली हों तो शेष बातों की वृद्धि और अधिक दिखाई देगी। अतः सभी फलों में सूर्य व चन्द्रमा की महत्ता को ध्यान में रखना चाहिए। इसीलिए आचार्य ने **बृहत्संहिता** में कहा है–

आत्मा सहैतिमनसा मन इन्द्रियेण, स्वार्थेन चेन्द्रियगणः क्रम एवमेषः।

इसीलिए रुद्रभट्ट ने एक प्राचीन उदाहरण दिया है, जिससे सिद्ध है कि आत्मा एवं मनःभूत सूर्य चन्द्र की बलवत्ता सब ग्रहों के फल दान की नींव है–

चन्द्रार्कौ बलयुक्तौ कुजादयःप्रोक्तमार्गबलहीनाः।
शुभफलदास्ते दशासु योगेषु संचिन्त्याः।। (रुद्रभट्ट)

सब ग्रहों को उक्त क्रम से कहकर ग्रहों के वाराधिपत्य को भी आचार्य ने बता दिया है। दिनेशात्मज शब्द में दिनेश शब्द द्वारा इसी ओर संकेत है। अपि च शनि का उक्त पर्याय प्रयुक्त करके आचार्य ने विचित्र भणिति के द्वारा शनि के अंश (गुलिक) का भी दुःख विचार में प्रयोग करना बता दिया है।

राजादि विभाग में शुक्र व गुरु को एक साथ सचिव या मन्त्री बताया है। रुद्रभट्ट कहते हैं कि इनमें बृहस्पति कार्य मन्त्री तथा शुक्र नर्मसचिव अर्थात् कोमल, ललित विषयों के विभाग का मन्त्री है। अथवा गुरु विदेश मन्त्री व शुक्र आन्तरिक कार्य (गृह) मन्त्री है। मन्त्री शब्द का अर्थ लक्षण ग्रन्थों में बताया गया है कि जो राज्य का एवं शत्रु-मित्र देशों के राज्य का भी एक साथ विचार करे तथा राजा से जिसका सख्यभाव हो वह मन्त्री है। इसी आधार पर राजा सूर्य व चन्द्रमा के मध्य जिस प्रकार श्रेणी विभाग करके सूर्य को प्रधानता प्राप्त है, तद्वत् शुक्र की अपेक्षा गुरु का अधिक महत्त्वपूर्ण साचिव्य माना जाता है। सूर्य को राजा व चन्द्र को रानी मानना चाहिए, ऐसी संगति भी विद्वानों ने मानी है।

इस प्रकार जन्म समय में जो ग्रह बलवान् हो तदनुसार ही जातक का स्वभाव होता है। सूर्य व चन्द्र के बली होने पर श्रेष्ठता राजसी स्तर वाला एवमेव शनि के निर्बल होने पर व्यक्ति दासवत् कार्य करने वाला होता है। तदनुकूल जातक की प्रवृत्ति, विचार व स्वभावादि होता है।

इसी प्रकार प्रश्न समय में जो ग्रह बलवान् होकर उपचय स्थानों में स्थित हो तो उसी ग्रह के स्तर वाले व्यक्ति की सहायता से कार्य सिद्ध होता है। जैसे सूर्य बली हो तो राजा के स्तर पर, गुरु शुक्र से सचिव या मन्त्री आदि की सहायता से, शनि हो तो दास अर्थात् तृतीय चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की सहायता से अथवा इस प्रकार के स्वभाव वाले व्यक्ति की सहायता से कार्यसिद्धि होती है।

ग्रहों के पर्याय–

हेलिः सूर्यश्चन्द्रमा शीतरश्मिहेम्नाविद् ज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः।
आरो वक्रः क्रूर दृक् चावनेयः, कोणोमन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च।।2।।

(शालिनी)

सूर्य को हेलि, चन्द्र को शीतरश्मि; बुध को हेम्ना या हेमा, वित्, ज्ञ व इन्दुपुत्र; मंगल को वक्र, क्रूर दृक, आर व आवनेय; शनि को कोण, सूर्यपुत्र व असित भी कहते हैं।

जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसां पतीज्यः,
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ।
राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखीति केतुः,
पर्यायमन्यदुपलभ्य वदेच्च लोकात् ।।3।। (वसन्ततिलका)

बृहस्पति के जीव, अंगिरा, सुरगुरु, वाचस्पति, वाक्पति व इज्य आदि, शुक्र के भृगु, भृगुसुत, सित, आस्फुजित् आदि, राहु के तम. अगु असुर एवं केतु के शिखी ये पर्याय हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक पर्यायवाची नामों का बोध अन्य पुस्तकों, कोषों आदि से कर लेना चाहिए।

ग्रहों के वर्ण–

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुर्नात्युच्चांगो रक्तगौरश्च वक्रः ।
दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुर्गौरिगात्रः, श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ।।4।।
(शालिनी)

सूर्य का वर्ण रक्त श्याम अर्थात् लाख के समान रंग जैसा (मरून), चन्द्रमा का गोरा वर्ण (गेहुआँ) अर्थात् लाली लिए हुए साफ चमकीली रंगत, मंगल बहुत अधिक ऊँचे शरीर का नहीं होता तथा रक्त व गौर वर्ण वाला है। बुध का रंग घास के समान हरी रंगत से युक्त साँवला, बृहस्पति का गौरवर्ण अर्थात् कम लालिमा युक्त गेहुआँ वर्ण, शुक्र का साँवला तथा शनि का काला रंग होता है।

इससे जन्म व प्रश्न के समय जातक या प्रश्न से सम्बद्ध व्यक्ति के वर्ण निश्चय में सहायता मिलती है। **'नात्युच्चाङ्गो'** कहकर आचार्य ने एक विशेष अर्थ द्योतित किया है। उच्चस्थ मंगल का वर्ण लाल व नीचस्थ मंगल का रंग गोरा होता है। इसी तरह स्वक्षेत्री या मूलत्रिकोणी आदि में आनुपातिक ह्रास व वृद्धि कहनी चाहिए। यदि ऐसा न मानें तो यह पद पूरे श्लोक में बेमेल होने के कारण निरर्थक ही होगा। क्योंकि आचार्य आगे स्वयं ही सब ग्रहों का स्वरूप जब विस्तार से बता ही रहे हैं तब यहाँ अप्रसंग में इस पद की प्रसंग संगति कठिन ही प्रतीत होती है। इसी प्रकार सूर्य भी उच्चारोही होने पर लाल तथा नीच की तरफ बढ़ने पर क्रमशः साँवलापन पाने लगता है। रुद्रभट्ट ने भी ऐसा ही कहा है–

'भास्करः रक्तश्यामो भवति, उच्चे रक्तः नीचे श्यामः । वक्रो नात्युच्चांगो उच्चे रक्तः नीचे गौरः ।'

ग्रहों का वर्णस्वामित्व आदि विभाग–

> **वर्णास्ताम्रसितातिरक्तहरितव्यापीतचित्रासिता,**
> **वह्न्यम्ब्वग्निजकेशवेन्द्रशचिकाः सूर्यादिनाथाः क्रमात् ।**
> **प्रागाद्या रविशुक्रलोहिततमस्सौरेन्दु वित्सूरयः,**
> **क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः ।।5।।**

(शार्दूलविक्रीड़ित)

सूर्य आदि ग्रह क्रमशः इन वर्णों के स्वामी होते हैं–ताम्रवर्ण, श्वेत, अतिरक्त (गहरा लाल) हरा, हल्दी के समान पीला, चित्र-विचित्र एवं काला । सूर्यादि ग्रहों के स्वामी देवता क्रमशः इस प्रकार हैं–सूर्य का अग्नि, चन्द्र का जल, मंगल का कार्त्तिकेय (स्कन्द अर्थात् मलय स्वामी) बुध का विष्णु, गुरु का इन्द्र या परमेश्वर, शुक्र का इन्द्राणी या शक्ति, शनि का ब्रह्मा (कः) स्वामी होते हैं ।

पूर्व का स्वामी सूर्य, अग्नि कोण का शुक्र, दक्षिण का मंगल, नैर्ऋत्य कोण का राहु, पश्चिम का शनि, वायव्य का चन्द्रमा, उत्तर का बुध, ईशान का गुरु ये स्वामी होते हैं ।

क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल व शनि तथा इनके साथ स्थित हो तो बुध ये पापी ग्रह कहलाते हैं । क्षीणेतर चन्द्रमा, पापयोग रहित बुध तथा गुरु शुक्र ये शुभ ग्रह हैं, यह अन्यथा प्रतीत हो ही जाता है ।

ग्रहों का जिस वर्ण पर आधिपत्य बताया है, तदनुसार जातक या प्रश्न में खोई हुई वस्तु का रंग तथा उस रंग की वस्तुओं से अधिक लाभ होगा, ऐसा निश्चय करने में सहायता मिलती है ।

यदि मंगल बलवान् हो तो लाल रंग की वस्तुओं का व्यापार करना चाहिए । प्रश्न विचार में लाल रंग की वस्तु से प्रश्न को सम्बद्ध समझना चाहिए । इसी प्रकार अन्य ग्रहों से विचार करें । यह एक आधारभूत नियम है, इससे अन्तिम व व्यापक निर्णय नहीं करना चाहिए । ग्रह की पूजा करने में उस रंग के फूल का प्रयोग करें । अनिष्ट ग्रह के कुफल का निवारण करने के लिए ग्रह के अधिपति देवता की पूजा करनी चाहिए । सूर्य का स्वामी अग्नि बताया है । यहाँ अग्नि शब्द से तेजस् देवता अर्थात् स्वयं सूर्य तथा अग्निरूप रुद्र (कालाग्नि) का आशय समझना चाहिए । यदि सूर्य शुभ क्षेत्र में हो तो प्रत्यक्ष नारायण रूप में पूजा तथा पाप क्षेत्र में हो (उच्च को छोड़कर) तो रुद्र या प्रलयंकर के रूप में सूर्य की उपासना करें । सूर्य साक्षात् विष्णु व साक्षात् रुद्र रूप है । सूर्य पूजा के बिना तथा पश्चात् पूजानन्तर

सूर्याध्य दिए बिना कोई भी पूजा सफल नहीं होती है। अतः सूर्य प्रत्यक्ष देवराज या देवाधिदेव ही है। यह तन्त्र ग्रन्थों में स्पष्ट है। चन्द्रमा को जल स्वामिक कहने से जल पूजा अर्थात् रुद्राभिषेकादि, दुर्गापूजा तथा विष्णुपूजा का संकेत है। क्रूरराशि में हो तो रुद्राभिषेक पूजा, शुभ क्षेत्र में हो तो विष्णु पूजा, समराशियों में दुर्गा या शक्ति की पूजा करें। जल मूर्त्ति स्वयं भव अर्थात् शंकर हैं। शंकर की अकेली पूजा कभी नहीं होती, सदैव साम्ब सदाशिव रूप में ही शिव पूज्य हैं, अतः शक्ति रूप व शिवरूप पूजा समझनी चाहिए। व्योम रूप शब्द मात्र आकाशमय भगवान् स्वयं विराट् पुरुष ही विष्णु रूप भी हैं। शालग्राम का अभिषेक कराना भी प्रसिद्ध है। अतः अभिषेक से विष्णु व रुद्र दोनों की जलीय पूजा अभीष्ट है। ज्येष्ठ मास में जल रूप विष्णु की पूजा ही होती है–

येनार्चितो हरिर्भक्त्या जलमध्ये महीपते !
द्वादश्यां तु विशेषेण जलस्थं जलशायिनम्।
योऽभ्यर्चयेत् कृतं तेन यज्ञकोटिशतं भुवि।।

कार्तिकेय से तात्पर्य है कि समगृह में मंगल हो तो स्कन्द पत्नी या षष्ठी देवी अर्थात् देवसेना नामक मातृपूजा घर में करें, पुरुष (विषम) राशि में हो तो स्कन्द या कार्तिकेय की पूजा उनके मन्दिर में करें।

बृहस्पति यदि निर्बल राशि में हो तो भी क्रमानुसार रुद्र, विष्णु या दुर्गा की पूजा करें। रुद्रभट्ट कहते हैं कि क्रूर राशि में गुरु होने पर हर पूजा, शुभ क्षेत्र में हरिपूजा तथा युग्म (सम) राशि में दुर्गा की, क्रूर व सम राशि में काली आदि की तथा शुभ समराशि में महालक्ष्मी आदि की पूजा करनी चाहिए। अथवा बृहस्पति की प्रीति के लिए ब्राह्मण सत्कार करें।

शची कहने से तात्पर्य है कि निर्बल शुक्र हो तो यक्षिणी आदि की तथा बली शुक्र हो तो चामुण्डा आदि की पूजा करें।

'क' शब्द से तात्पर्य सारावली आदि ग्रन्थों में ब्रह्मा से लिया गया है। ब्रह्मा की पूजा इष्टदेव के रूप में प्रायः नहीं होती है। अतः रुद्रभट्ट ने 'क' शब्द से अन्य देवताओं या ब्राह्मणों (विद्वानों) का आशय ग्रहण किया है। हमारे विचार से शनि का कुप्रभाव दूर करने में शिव या रुद्र या विष्णु ही समर्थ हैं। अतः 'क' यहाँ परमेश्वर का ही वाचक है। **'कचति दीप्यते स्वेन ज्योतिषा इति कः'** इस व्युत्पति को दृष्टि में रखकर ही भागवत में ब्रह्मारूप में, महाभारत में विष्णु रूप में, विष्णु सहस्रनाम में, शिव रूप में, अनेकार्थ कोषानुसार कालवाचक होने से रुद्र तथा मेदिनी कोषानुसार अग्नि व सूर्य

का वाचक होने से पूर्ववत् शिव रुद्र या विष्णु का अर्थ संगत है। एतदर्थ रुद्रांशभूत तथा विष्णु रूप रामदास वीर हनूमान की भी पूजा करनी योग्य है।

अनिष्ट फलकारक ग्रह को प्रसन्न करने के लिए तत्तद् देवों की पूजा करें। यात्रा विवाहादि में पूज्य होने पर भी तद्वत पूजा करें। ग्रह देवता की पूजा करके ग्रह की दिशा में यात्रा करें। चोर प्रश्न में ग्रह द्वारा संकेतित वर्ण से या देवता के पर्यायवाची शब्दों पर व्यक्ति का नाम कहें।

दिशा बताने का प्रयोजन यह है कि सूतिका प्रश्न में केन्द्रगत ग्रह से सूतिका गृह की दिशा का निश्चय होगा। चोरी के प्रश्न में चोर किस दिशा में गया होगा ? यह निर्णय किया जाएगा।

पापी ग्रहों में क्षीण चन्द्रमा से क्या तात्पर्य है ? सामान्यतः कृष्ण पक्ष की अष्टमी के बाद शुक्लाष्टमी तक चन्द्रमा को क्षीण समझा जाता है। लेकिन यवन मत में चन्द्रमा कृष्ण त्रयोदशी के उपरान्त शुक्ल द्वितीया तक ही विशेष क्षीण माना जाता है। शुभग्रह दृष्ट होने पर सदैव चन्द्रमा को पुष्ट ही माना जाता है। शुक्ल दशमी तक मध्यबली, शुक्ल एकादशी से कृष्ण पंचमी तक श्रेष्ठ बली तथा कृष्ण षष्ठी से शुक्ल प्रतिपदा तक क्रमशः उत्तरोत्तर हीन बली हो जाता है। कहा गया है–

मासे तु शुक्ल प्रतिपत्प्रवृतेराद्ये शशी मध्यबलो दशाहे।
श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान् सदैव ।।

(स्फुजिध्वज)

अतः कृष्ण चतुर्दशी व अमावस्या में चन्द्रदर्शन से पूर्व तक चन्द्रमा सर्वतोभावेन निर्बलतम होता है। इसीलिए रुद्रभट्ट ने कहा है कि **'अमावस्या चतुर्दश्योः क्षीणश्चन्द्रो, न सर्वदा।'** अतः इन दो या तीन दिनों में ही चन्द्रमा पापी होता है। भट्टोत्पल ने भी थोड़े से भेद से ऐसा ही माना है।

सूर्य को भी वराह मिहिर ने पाप श्रेणी में रखा है, लेकिन इसके पापत्व में भी तारतम्य है। स्वोच्च, मूल त्रिकोण, स्वक्षेत्र में सूर्य क्रूर तथा अन्यत्र पाप होता है, ऐसी व्यवस्था है। इसीलिए यवनों ने सूर्य को क्रूर माना है, पाप नहीं। वैसे भी लग्नाधायक होने के कारण सूर्य व चन्द्रमा को सदैव पापी मानना संगत नहीं है। रुद्रभट्ट ने कहा है कि क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल व शनि ये उत्तरोत्तर अधिक पापी हैं।

'तथापि रवेः सत्त्वगुणत्वादत्यन्तं पापत्वं न विद्यते। (रुद्रभट्ट)

जन्म समय जैसे ग्रह बलवान् हों, तदनुसार जातक की प्रकृति होती है।

ग्रहों की प्रकृति व पंच तत्त्वों पर अधिकार–

बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषाः ।
शिखिभूखपयोमरुदगणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण ।।6 ।।

(औपच्छन्दसिक)

बुध व शनि नपुसंक, चन्द्रमा व शुक्र युवती तथा शेष सूर्य, मंगल, गुरु पुरुष ग्रह हैं । अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल व वायु इन पाँचों तत्त्वों पर क्रमशः मंगल, बुध, गुरु, शुक्र व शनि का स्वामित्व होता है ।

इसमें विशेष अर्थ यह है कि बुध तो स्त्री नपुंसक है तथा शनि पुरुष नपुंसक है । यह अर्थ पहले युवती पद व बाद में नरपद का प्रयोग कर आचार्य ने स्वयं ही द्योतित कर दिया है । इसीलिए कहा गया है–

चन्द्रशुक्रौ स्त्रियौ ज्ञेयौ, इन्दुजः स्त्री नपुंसक : ।
पुमांसः कुजजीवार्का रविजः पुंन्नपुंसकः ।। (विवरण टीका)

'शिखिभूखपयोमरुद्गणानां' में कुछ टीकाकारों ने 'गण' पद को छन्द-पूर्ति के लिए प्रयुक्त माना है, यह बात उचित नहीं है । गण शब्द का सम्बन्ध प्रत्येक तत्त्व से है । शिखिगण अर्थात् अग्नि या तेज, चक्षुरिन्द्रिय, पादेन्द्रि व्यान वायु व मनोमय कोष, पृथ्वीगण अर्थात् पृथ्वी, गन्ध गुण, नासिका उपस्थ एवं प्राण वायु व अन्नमय कोष, आकाशगण अर्थात् आकाश, शब्द गुण, वागिन्द्रिय, मुख, कान, समानवायु व आनन्दमय कोष, पयोगण अर्थात् जल-तत्व, रस, रसना, वायु, अपान वायु व प्राणमय कोष, वायुगण अर्थात् वायु, स्पर्श इन्द्रिय, पाणि, उदान वायु व विज्ञानमय कोष, यह अर्थ लेना चाहिए । राशि के स्वामी ग्रह के अनुसार राशियों का भी पंच तत्त्वों पर आधिपत्य समझना चाहिए ।

पाँच ग्रहों के अतिरिक्त सूर्य व चन्द्रमा का पंचतत्त्व क्यों नहीं कहा ? पिछले श्लोक में वह्नि व अम्बु पद से उनके आधिपत्य का संकेत कर दिया है । अतः यहाँ नहीं कहा । अग्नि व सोम रूप इस जगत् **'अग्निषोमात्मकं जगत्'** का समग्र आधिपत्य सूर्य व चन्द्र को स्वतः प्राप्त है । अपनी–अपनी दशा में ग्रह अपने तत्त्व की छाया या लक्षणों को जातक के शरीर में प्रकट करते हैं । यह बात आचार्य ने स्वयं आगे कही है–

छायां महाभूतकृतां च सर्वेऽभिव्यंजयन्ति स्वदशामवाप्य ।।

यदि निर्बल शनि की दशा हो तो जातक के शरीर में वायु विकार वायु वृद्धि, अपच, शरीर में दर्द, त्वचा में विकृति, खट्टी डकारें (उदान) होती हैं । यदि शनि बलवान् हो तो उक्त बातें नहीं होती हैं ।

ग्रहों का ब्राह्मणादि वर्ण–

विप्रादितः शुक्रगुरुकुजार्कौ शशीबुधश्चेत्यसितोन्त्यजानाम् ।
चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ कुजार्की यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि ।।7।।

उपजाति)

विप्रादि चारों वर्णो के अधिपति इस प्रकार हैंशुक्र व बृहस्पति ब्राह्मण, मंगल व सूर्य क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध शूद्र तथा शनि अत्यन्त शूद्र वर्ण है । चन्द्रमा, सूर्य व बृहस्पति सत्त्व गुणी, बुध शुक्र रजो गुणी व मंगल शनि तमोगुणी ग्रह हैं ।

इनमें भी कुछ विद्वानों ने तारतम्य माना है । शुक्र मध्यम ब्राह्मण व गुरु श्रेष्ठ ब्राह्मण है । मंगल छोटा क्षत्रिय अर्थात् मण्डल, प्रान्त आदि का व सूर्य सम्पूर्ण देश का सार्वभौम या केन्द्र सरकार का अधिपति है ।

शनैश्चर अन्त्यज जातियों का अधिपति है । कुछ प्रतियों में 'अन्त्यजानां' के स्थान पर 'अन्तराणाम्' पाठ भी मिलता है । यहाँ शूद्र से तात्पर्य समस्त द्विजातिभिन्न जातियों तथा वर्णसंकर जातियों से है । हमें भी अन्तराणाम् पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अन्तराणाम्' अर्थात् अनुलोम प्रतिलोम-भाव से उत्पन्न जातियाँ यह अर्थ सुगम है । अतः विविध वर्णो के परस्पर संकर से उत्पन्न जातियों का अधिपति शनि है । इसमें भी रुद्रभट्ट ने तारतम्य कहा है । यदि शनि बलवान् स्वोच्चादि गत हो तो ऊँची जातियों के परस्पर संकर से उत्पन्न तथा नीचादि में हो तो निम्न वर्णो के संकर से उत्पन्न अथवा अत्यन्त निम्न जातियाँ, जैसे चाण्डाल, भील, नितान्त असभ्य, जंगली जातियाँ लेनी चाहिए । राहु व केतु की भी जातियाँ शनि-वत् ही समझनी चाहिएं, ऐसा विवरणकार ने माना है–

'उच्चादिस्थोविप्रक्षत्रियसंकरजाः......... मध्यबले क्षत्रियवैश्ययोः ....
नीचारिस्थः शूद्रान्तर्भूतजनाश्चण्डालादयः । राहुशिखिनोरपि तथैव ।।'

दक्षिण भारतीय ग्रन्थ कृष्णीयम् में भी ऐसा ही कहा गया है–

विप्रौ भृगुजेन्द्रगुरू क्षत्रियभावौ दिवाकरोर्वीजौ ।
वैश्यौ बुधचन्द्रमसौ शनैश्चरशूद्रसंकरकृत् ।।

इसी प्रकार यहाँ साम, दण्ड, दान, भेद इन चारों नीतियों का भी क्रमशः आधिपत्य बता दिया है । शुक्र गुरु ब्राह्मण होने से साम नीति के, सूर्य मंगल क्षत्रिय होने से दण्डनीति के, चन्द्र व्यापारी वर्ग होने से दान नीति का, बुध व शनैश्चर भेद नीति के अधिपति हैं । संग्राम विजय नामक एक प्राचीन ग्रन्थ का उद्धरण है–

साम्नो भृग्वाङ्गिरसौ दण्डाधीशौ दिवाकरोर्वीजौ ।
दानाधिपः शशांको भेदस्य बुधार्कपुत्रौ च ।।

(संग्राम विजय)

इसी प्रकार ग्रहों का द्विपद, चतुष्पदादि विभाग भी यहीं पर बता दिया है । शुक्र गुरु द्विपद, क्षत्रिय सूर्य व मंगल चतुष्पद, चन्द्रमा सरीसृप (रेंगने वाले जीव), बुध व शनि पक्षी हैं । कहा गया है–

सूर्यात्मजश्चेन्दुपुत्रौ पक्षिसमानौ सरीसृपश्चन्द्रः ।
द्विपदौ भृगुदेवगुरू चतुष्पदौ भूमिपुत्रार्कौ ।

(कृष्णीयम्)

इन सब बातों का प्रश्न व जातक में यथासम्भव प्रयोग करना चाहिए । सत्त्वरजस्तमोगुण से भी जातक की प्रकृति का निश्चय होता है । मन, कर्म व वचन की पवित्रता, आचारवान्, ईश्वर में मति, परोपकार की उदात्त भावना वाला व्यक्ति सत्त्वगुणी । बहुत बोलने वाला, वीर, दम्भी, भौतिक सुखी, अभिमानी, क्रोधी लेकिन स्वच्छ । राजसी तथा हर समय निद्रा व आलस्य से युक्त, द्ररिद्री, कुचैला तमोगुणी होता है । जन्म के समय में सूर्य जिस ग्रह के त्रिंशांश में हो वैसा ही व्यक्ति का स्वभाव होता है । स्वयं आचार्य ने कहा है–

सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यत्र भास्करस्तादृक् ।

(लघुजातक)

पहले 'सत्त्वं कुजः' कहा था, अतः यहाँ विरोध नहीं समझना चाहिए । वहाँ सत्व से तात्पर्य पराक्रम व स्थिरता से तथा यहाँ सतोगुण से है ।

सूर्य व चन्द्र का स्वरूप–

मधुपिंगलदृक् चतुरस्रतनुः पित्तः प्रकृति सविताल्पकचः ।
तनुवृत्त तनुर्बहुवातकफः प्राज्ञश्चशशी मृदुवाक् शुभदृक् ।। 8 ।।

(तोटक)

सूर्य का स्वरूप बताया जा रहा है । वह शहद के समान आँखों वाला, चौकोर शरीर, पित्त प्रधान प्रकृति तथा कम बालों वाला है ।

चन्द्रमा छोटे शरीर वाला, गोल मटोल सा, अधिक वात व कफ युक्त, बुद्धिमान्, मृदुभाषी तथा आकर्षक नेत्रों वाला है।

स्वरूप से तात्पर्य है कि जन्म समय जिस ग्रह की प्रधान बलवत्ता हो तदनुसार जातक का शरीर होगा। सूर्य को मटमैले नेत्रों वाला बताया है, अतः सूर्य की आँखें चमकीली, आकर्षक तथा बड़ी नहीं होतीं। इसके विपरीत चन्द्रमा शुभ दृक् है। अतः वह सुन्दर व आकर्षक नेत्रों वाला होता है। चौकोर शरीर से तात्पर्य है कि दोनों हाथ कन्धों की सीध में फैला कर जितनी चौड़ाई बैठे, लगभग उतनी ही लम्बाई भी हो। शरीर में वात, पित्त व कफ ये तीन दोष रहते हैं। इनकी सन्तुलित स्थिति स्वास्थ्य की तथा असन्तुलित अस्वस्थ व्यक्ति की द्योतक होती है। पुनश्च सभी व्यक्तियों में प्रायः एक या दो प्रकृतियों की प्रधानता रहती है। पित्त प्रधान प्रकृति वाला व्यक्ति गुस्सैल, पेट में गर्मी वाला, अधिक प्यास का अनुभव करने वाला व अधिक खाने वाला होता है।

अकालपलितो गौरः क्रोधी स्वेदी च बुद्धिमान्।
बहुभुक् ताम्रनेत्रश्च स्वप्ने ज्योतींषि पश्यति।।
पित्तोद्रिक्तस्तीव्रतृष्णो बुभुक्षुः गौरोष्णांगस्ताम्रहस्तोऽंघ्रिरक्तः।
शूरो मानी पिंगकेशोऽल्परोमा।।

जल्दी बाल पकना, गौर वर्ण, क्रोध, पसीना अधिक आना, अधिक खाना, मटमैले नेत्र, अधिक प्यास, कम रोम, तप्त शरीर, ताँबें जैसे हाथ, लाल पैर ये पित्त प्रकृति के लक्षण हैं।

सुस्निग्धवर्णः स्मितनेत्रदीप्तः, श्यामः सुकेशो न च दीर्घरोमा।
गम्भीरशब्दःश्रुतिशास्त्रनिद्रातन्द्राप्रियस्तिक्तकटूष्णभोजी।।
क्लेशक्षमो मानयितागुरूणां ज्ञेयो विलासप्रकृतिर्मनुष्यः।। (हारीत)

चिकना शरीर, मुस्कान, प्रभावी नेत्र, साँवली रंगत, मुलायम बाल, कम रोम, तन्द्राप्रिय, कड़वा व तीखा खाने वाला, मेहनती तथा विलासप्रिय होना ये कफ प्रकृति के लक्षण हैं। नींद न आना, शरीर में कठोरता, काँपना, साँवलापन, कमजोरी, चिड़चिड़ापन आदि वात प्रकृति के लक्षण हैं। चन्द्रमा वात व कफ मिश्रित प्रकृति वाला होता है। सूर्य को कम बालों वाला बताया है। तनुवर्तुल से तात्पर्य है नाटा कद तथा गोल मटोल शरीर। इस प्रकार ग्रहों के लक्षण व प्रकृति आदि से **'लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्यात्'** इत्यादि सिद्धान्तों के प्रयोग में सहायता मिलती है।

मंगल बुध का स्वरूप–

क्रूरदृक् तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः ।
श्लिष्टवाक् सततहास्यरुचिर्ज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिश्च ।।9।।

(स्वागता)

क्रूर अर्थात् रौबीली व आतंकित करने में समर्थ दृष्टि, जवान दिखने वाला, उदार स्वभाव, पित्त प्रधान प्रकृति, चंचल अर्थात् उतावलापन, पतला मध्यभाग (कमर) यह मंगल का स्वरूप है ।

बुध वाक्प्रयोग में निपुण, कई अर्थों वाली वाणी बोलने वाला, निरन्तर प्रसन्न रहने वाला, हास्यप्रिय, वात-पित्तकफ मिश्रित प्रकृति वाला होता है ।

'क्रूरदृक्' कहकर स्वभाव की आक्रामकता, प्रहार क्षमता, वध-बन्धन व कठोर भाषण में रुचि भी बता दी है । 'तरुणमूर्ति' कहकर सम्भवतः जवानी में विशेष फल देने वाला बताया है । सारावली में कहा गया है कि मंगल नाटे कद वाला, रौबीले नेत्र वाला, मजबूत शरीर, तेजस्वी, चंचल, शूर, होशियार, वाक्कुशल, हिंसक, मुड़े बालों वाला, पित्त प्रधान, भयंकर, गर्जन तर्जन करने वाला व साहसी होता है ।

बुध व्यंग्यार्थ युक्त वाणी बोलने में कुशल है । उसके वचनों में कई गहरे अर्थ छिपे रहते हैं ।

गुरु शुक्र का स्वरूप–

बृहत्तनुः पिंगलमूर्धजेक्षणो, बृहस्पतिः श्रेष्ठमतिः कफात्मकः ।
भृगुः सुखी कान्तवपुः सुलोचनः, कफानिलात्मासितवक्रमूर्धजः ।। 10 ।।

(वंशस्थ)

बृहस्पति स्थूल शरीर वाला, कुछ भूरापन लिए हुए बालों व नेत्रों वाला, श्रेष्ठ बुद्धि तथा कफ प्रकृति होता है ।

शुक्र सुखी, सुन्दर शरीर व सुन्दर आँखों वाला, कफ वात प्रकृति, काले व घुँघराले बालों वाला होता है ।

विस्तृत ग्रह स्वरूप के लिए सारावली देखनी चाहिए । यहाँ ध्यान रखिए बृहस्पति को पिंगल नेत्र कहकर कुछ नेत्रविकार युक्त तथा शुक्र को सुन्दर आँखों वाला (सुलोचन) बताया है । सामान्यतः शुक्र को नेत्रविकार कारक माना जाता है । लग्नेश यदि सूर्य व शुक्र के साथ 6-8-12 में हो तो भीषण

नेत्र विकार होता है, इत्यादि जातकालंकार में बताया गया है। सारावली में भी शुक्र को विशालनयन ही कहा गया है।

शनि स्वरूप व ग्रहों का मज्जादि–

मन्दोऽलसः कपिलदृक् कृशदीर्घगात्रः,
स्थूलद्विजः परुषरोमकचोऽनिलात्मा।
स्नाव्यस्थ्यसृक् त्वगथ शुक्लवसे च मज्जा,
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेड्यभौमाः ॥1॥

शनि धीमा आचरण करने वाला, आलसी, कपिल (नील-पीत मिश्रित) आँखों वाला, पतले व लम्बे शरीर वाला, मोटे दाँत, कठोर बाल व मोटे रोम वाला, वात प्रकृति ग्रह है।

स्नायु का अधिपति शनि, हड्डी का सूर्य, चन्द्रमा खून का, बुध त्वचा का, शुक्र वीर्य का, गुरु वसा का एवं मंगल मज्जा का अधिपति होता है।

शनि के द्वारा आयत्त शरीर पर अधिक व काले लम्बे रोम, अधिक दाढ़ी, मूँछें, कान के ऊपर रोम तथा सिर पर भी अधिक काले बाल होते हैं। रुद्रभट्ट ने सम्भावना व्यक्त की है कि उक्त स्वरूप निर्बल शनि का ही हो सकता है। यदि शनि बलवान् हो तो व्यक्ति ज्ञानी, तीव्र बुद्धि व सुखी होता है। राहु को शनि की तरह एवं केतु को मंगल की तरह समझना चाहिए।

'एतत्सर्वबलहीनस्य मन्दस्येति मन्यामहे। बलयुतस्यान्यथा दृश्यते, ज्ञानसामग्र्यं श्रेष्ठतादि। राहुर्मन्दसमः केतुर्भौमसमः।' (रुद्रभट्ट)

शरीर में पाई जाने वाली सातों धातुओं पर क्रमशः ग्रहों का आधिपत्य बताया है। अतः जिस ग्रह की बलवत्ता हो तदनुसारी शरीर वाला व्यक्ति होता है। पीड़ित होने पर ग्रह की धातु से सम्बन्धित विकार होता है। रोग प्रश्न में भी इसी प्रकार से लग्न व नवांश के स्वामी ग्रहों की धातु में दोष या वृद्धि आदि बतानी चाहिए। स्नायु अर्थात् शिरामंडल, अतः शनि से नसों-नाड़ियों का स्पष्ट विचार (दिखती नसें) होता है। चन्द्रमा को रक्त का अधिपति बताकर मांस का भी अधिपति होने का संकेत है। मज्जा हड्डियों के अन्दर वर्तमान पदार्थ (Bone-marrow) होती है।

इस श्लोक में प्रयुक्त 'अथ' शब्द समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त है। भट्टोत्पल ने आनन्तर्यार्थक माना है जो कि असंगत है। चतुर्थ चरण में समस्त ग्रहों को एक समस्त पद में रखकर भी इसी बात को आचार्य ने पुष्ट किया है। अर्थात् सभी ग्रहों का आधिपत्य सभी धातुओं पर होने के पश्चात् भी

अपनी-अपनी धातु की प्रधानता रहती है। जैसे सूर्य समस्त सप्तधात्वात्मक होते हुए भी विशेषतया अस्थिसार अर्थात् विशेष मजबूत हड्डियाँ प्रदान करता है। इसी प्रकार सब ग्रह निज-निज प्राधान्येन आधिपत्य रखते हैं। समस्त शरीर को धारण करने के कारण ही इन्हें धातु कहा जाता है। कहा गया है–

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्।
रसासृङ् मांसमेदोऽस्थि मज्जशुक्राणि धातवः।।

कल्पना कीजिए, सूर्य या चन्द्रमा सर्वथा निर्बल हों तो जीवन संशय माना जाता है। इसीलिए सामान्यतः सभी ग्रहों से समस्त सुख-दुःख का विचार होने के कारण किसी भी धातु-क्षय से जीवन नष्ट होने का अवसर होने की सम्भावना मानकर आचार्य ने सामान्यतः सब धातुओं पर सब का एवं विशेषतया अस्थि, स्नायु आदि पर पृथक् अधिकार कहा है। इनमें रुधिर में ही मांस का एवं त्वचा में रस धातु का संग्रह हो गया है। रुद्रभट्ट ने कहा है–

'अथ शब्दः कात्स्न्र्ये। यथोक्तानां कात्स्न्र्येनाधिपतयः पृथक् पृथक् आत्मीय धातु सारदेहा इत्यर्थः।

ग्रहों के स्थान–द्रव्य–ऋतु आदि–

देवाम्ब्वग्नि विहार कोशशयनक्षित्युत्कराः स्युः क्रमाद्,
वस्त्रं स्थूलमभुक्तमग्निकहतं मध्यं दृढं स्फाटितम्।
ताम्रं स्यान्मणिहेमशुक्तिरजतान्यर्कात्तु मुक्तायसी,
द्रेक्काणैः शिशिरादयः शशुरुचज्ञग्वादिषूद्यत्सु वा।।12।।

(शार्दूलविक्रीडित)

सूर्यादि क्रम से ग्रहों के स्थान कह रहे हैं। सूर्य का देवस्थान मन्दिर आदि; चन्द्र का जलस्थान अर्थात् समुद्र, नदी, तालाब, कुआँ, बावड़ी, पनघट, स्नानागार आदि; मंगल का अग्निस्थान अर्थात् रसोईघर, श्मशान, यज्ञभूमि बौद्ध विहार आदि; बुध का विहार भूमि अर्थात् क्रीड़ावन, क्लब, उपवन, मनोरंजन के स्थान; गुरु का कोशागार अतः बैंक, खजाना, घर में रुपए रखने की जगह या व्यापार स्थान पर धन स्थान आदि; शुक्र का शयन स्थान अर्थात् सोने के कमरे; शनि का उत्कर अर्थात् गन्दगी या कूड़ा फेंकने के स्थान समझने चाहिएं।

ग्रहों के वस्त्र भी सूर्यादि क्रम से समझा रहे हैं। सूर्य का मोटा वस्त्र अर्थात् मोटी बुनाई का खुरदरा वस्त्र, चन्द्र का नया अप्रयुक्त वस्त्र, मंगल

का अग्निहत अर्थात् कहीं से जला हुआ या प्रेस किया गया, स्टोनवाश, एसिडवाश आदि ।, बुध का कहत अर्थात् जल से गीला वस्त्र, गुरु का मध्य अर्थात् न अधिक नया, न अधिक पुराना, शुक्र का मजबूत रेशमी या ऊनी लम्बे समय तक चलने वाला वस्त्र तथा शनि का फटा पुराना, चीर-चीर हुआ सा वस्त्र होता है ।

सूर्य की ताँबा, चन्द्रमा की मणियाँ, मंगल की सोना, बुध की सीपी, गुरु की चाँदी, शुक्र की मोती, शनि की लोहा धातु या द्रव्य हैं ।

लग्नगत ग्रह या लग्नगत द्रेष्काणेशानुसार शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त ये ऋतुएँ क्रमशः (श) शनि, (शु) शुक्र, (रु) रुधिर या मंगल, (च) चन्द्रमा (ज्ञ) बुध, (गु) गुरु की होती है ।

प्रश्न या सूतिका में घटना स्थल का निर्णय करते समय ग्रहों के स्थानों का उपयोग है । सूतिका या चोर या प्रश्न से सम्बन्धित व्यक्ति के वस्त्र निर्णय में वस्त्रों का तथा सूतिका गृह में प्रमुख द्रव्य की उपस्थिति या मूक प्रश्न में सम्बन्धित धातु का निर्णय करने में धातु का उपयोग है । ऋतु आदि का उपयोग नष्टजातक में अथवा कार्यसिद्धि के समय निर्देश में होगा ।

सभी ग्रहों के बलाबलानुसार धातु, वस्त्रादि का तारतम्य समझें । जैसे बलवान् सूर्य से कीमती खादी और निर्बल से मोटा सस्ता पोचा आदि लगाने वाला कपड़ा, या बली सूर्य से उत्तम विष्णु-दुर्गादि देवस्थान, निर्बल से भैरवादि हनुमानादि देव स्थान, बलवान् सूर्य से सोना व निर्बल से ताँबा धातु **'बलवत्वे हेम इति'** बादरायण ने ऐसा ही कहा है ।

ऋतु निर्देश में ग्रहों के नामाद्यक्षर यानि नामैक देश से सम्पूर्ण नाम का निर्देश है । वहाँ प्रयुक्त 'वा' शब्द से वैकल्पिक व्यवस्था या क्रम भेद बताया है । अर्थात् लग्न में ग्रह हो तो तदुनसार और लग्नभाव ग्रहरहित हो या लग्न में कई ग्रह हों तो लग्न के द्रेष्काण से ऋतु का निर्णय होगा ।

आचार्य ने अपने **लघुजातक** में गुरु, बुध, मंगल, शुक्र को क्रमशः ऋग्, अथर्व, साम व यजुः का अधिपति कहा है । चौरादि निर्णय में द्विज चोर हो तो उसके वेद अर्थात् गुरु से ऋग्वेदी विप्र, शुक्र से यजुर्वेदी का अथवा अनिष्टकारक होने पर तत्तद् वेदानुसारी मन्त्रों से शान्ति विधान करने का संकेत किया है ।

ग्रह दृष्टि विचार–

त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमानवलोकयन्ति चरणाभिवृद्धितः ।
रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः । ।13 । ।

(मंजुभाषिणी)

सभी ग्रह अपने अधिष्ठित स्थान से 3.10 भाव व उनमें स्थित ग्रहों को एक पाद दृष्टि से, 5.9 को द्विपाद, 4.8 को त्रिपाद तथा सप्तम पर सबकी पूर्ण दृष्टि होती है। शनि, गुरु व मंगल उक्त स्थानों पर क्रमशः अर्थात् शनि 3.10 पर, गुरु 5.9 पर तथा मंगल 4.8 पर भी पूर्ण दृष्टि रखते हैं।

उक्त कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि अनुक्त स्थानों (1.2.6. 11.12) पर ग्रह की कोई भी दृष्टि नहीं होती है। प्रत्येक ग्रह जहाँ जितनी दृष्टि रखे, उतनी ही मात्रा में फल देगा। अर्थात् एक पाद दृष्टि से 25%, द्विपाद से 50%, त्रिपाद से 75% तथा पूर्ण दृष्टि से पूर्ण फल देता है। **लघुजातक** में स्वयं आचार्य ने कहा है–

पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति।

उक्त अर्थ सर्ववादिसिद्ध, प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य है। लेकिन आचार्य वराह ने यहाँ शब्दों का प्रयोग कुछ इस प्रकार से किया है कि सन्देह का अवसर बनता है। **'भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः'** में अधिक पद का अर्थ क्या है। शनि, गुरु व मंगल उक्त अर्थात् कही गई मात्रा से अधिक दृष्टि रखते हैं। अर्थात् 3.10 पर सब की एकपाद दृष्टि तो शनि की वहाँ पर उससे अधिक द्विपाद दृष्टि होती है ? इसी प्रकार 4.8 पर त्रिपाद तो वहाँ मंगल की उससे अधिक पूर्ण दृष्टि तथा सप्तम पर सबकी पूर्ण दृष्टि से अधिक दृष्टि होनी चाहिए ? लेकिन पूर्ण से भी अधिक दृष्टि क्या सम्भव है ? गार्गि ने भी **'उक्ताधिकफला ग्रहाः'** कहकर बात स्पष्ट नहीं की है।

भवन्ति वीक्षणे नित्यमुक्ताधिकफला ग्रहाः।

तब अधिक शब्द का अर्थ पूर्ण कैसे माना गया ? 'किल' अव्यय का प्रयोग क्यों किया गया है ? शनि गुरु व मंगल को एक समस्त पद में रखकर **'परे च ये'** द्वारा शेष ग्रहों को पृथक् श्रेणी में क्यों रखा ? इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है।

कुछ आचार्यो ने इसे ग्रहों की स्वाभाविक दृष्टि का फल माना है तथा स्थानवश दृष्टिफल की मात्रा जाननी चाहिए ऐसा कहा है। यह भट्टोत्पल ने उद्धृत किया है–

एतन्नैसर्गिकं ग्रहाणां दृष्टिफलं स्थानवशादैतेषां यथास्वं दृष्टिफलमूह्यम्। एवमेके व्याचक्षते। अपरे त्वाहुः स्थानफलमेतत् तेन त्रिदशादिस्थान गतान्ग्रहराशीन् पश्यन्तो रविजादयो दर्शनेऽधिकफलप्रदा भवन्ति।

भट्टोत्पल व रुद्रभट्ट ने अधिक पद का अर्थ 'पूर्ण' ही किया है–

क्रमशः वीक्षणेऽधिका भवन्ति किल। रविजः त्रिदशस्थानयोरपि दर्शनेऽधिकः। सर्वं पश्यतीत्यर्थः। (रुद्रभट्ट)

सारावली, जातक पारिजात आदि ग्रन्थों में भी सर्वत्र पूर्ण दृष्टि ही कही है। वास्तव में आचार्य ने यहाँ शब्द प्रयोग ऐसा किया है कि सन्देह का अवसर बना ही रहता है। यहाँ आचार्य ने 'अधिक' शब्द का प्रयोग अतिरिक्त व श्रेष्ठ अर्थ में किया है। अर्थात् इन दो भागों में विभाजित ग्रह वर्गों की उक्त से अतिरिक्त भी कुछ विशेष दृष्टि होती है। इसी कारण शनि, गुरु मंगल तथा अन्य ग्रहों को अलग वर्ग में रखा है।

तब अन्य ग्रहों की जैसे सप्तम पर दृष्टि होती है, वैसे ही शनि की त्रिदश पर, गुरु की त्रिकोण पर तथा मंगल की चतुरस्र पर भी होती है। यवनों ने कहा है–

द्वौ पश्चिमौ षष्ठमथ द्वितीयं संस्थानराशेः परिहृत्यराशिम्।
शेषान् ग्रहः पश्यति सार्वकालमिष्टेषु चैषां विहिता दृगिष्टा।।

(स्फुजिध्वज)

अर्थात् जिस राशि में ग्रह हो उससे पिछली दो (11.12) तथा 2.6 तथा अधिष्ठित राशि को छोड़कर शेष राशियों को ग्रह सदैव देखता है। 'किल' अव्यय के द्वारा इन दृष्टियों की निश्चयात्मकता बताई है। 'किल' सम्भावना, निश्चय, अनुनय अर्थ में होता है। रुद्रभट्ट इसे सम्भावना अर्थ में समझते हैं तथा भट्टोत्पल ने इसे निश्चयार्थक मानकर परम्परा का बोधक माना है।

इससे सिद्ध होता है कि राशि से राशि पर ही दृष्टि होती है। राशि के किसी भी अंश में द्रष्टा ग्रह हो तथा दृश्य उससे सातवीं राशि के किसी भी अंश में हो तो भी पूर्ण दृष्टि मानी जाएगी। यही दृष्टि फलोपयोगी है तथा यही भारतीय मत है। श्रीपति आदि पद्धतियों में जो अंशों से अंश तक दृष्टि साधन बताया गया है, वह अनार्ष एवं अभारतीय तथा अवान्तर काल में ताजिक प्रभाव का फल है। इसीलिए भट्टोत्पल ने कहा कि **'किलेत्यागम सूचने।'** यह 'किल' शब्द उसी प्रकार से निश्चयात्मक है, जैसे शाकुन्तलम् में दुष्यन्त शकुन्तला को देख कर कहता है कि–

'इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः।'

अर्थात् यह स्वाभाविक, अकृत्रिम सौन्दर्य युक्त शरीर है। यहाँ दुष्यन्त को शकुन्तला के स्वाभाविक सौन्दर्य में सन्देह नहीं है अपितु दृढ़भाव स्पष्ट है। जैमिनि ने भी राशि से राशि पर ही दृष्टि मानी है। यही भारतीय विधि है।

अतः श्लोक में अन्वय इस प्रकार होगा। **रविजामरेज्यरुधिराः परे ये (ते) च त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमान् चरणाभिवृद्धितः (पादवृद्धया)**

अवलोकयन्ति। (पुनश्च) रविजामरेज्यरुधिराः (शनिः गुरुः मंगलः) क्रमशः वीक्षणेऽधिकाः (पूर्णफलप्रदाः) भवन्ति किल (इति निश्चयः)।

श्लोक के तृतीय चरण से ग्रहों का कक्ष्या क्रम भी बताया है। अर्थात् सर्वोपरि शनि कक्ष्या, ततः गुरु कक्ष्या, ततश्च भौमकक्ष्या है। ये ग्रह सूर्य (ब्रह्माण्ड केन्द्र) से ऊपर हैं। इसके बाद 'परे' अर्थात अन्य या उत्तरवर्ती (तदधोवर्ती) शेष ग्रहों की कक्ष्याएँ हैं। कक्ष्याक्रम स्पष्ट हो जाने से काल होरा क्रम भी स्वयं स्पष्ट हो जाता है। सूर्य सिद्धान्त में कहा है–

होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा।

राहु व केतु को आचार्य ने ग्रह रूप में उल्लिखित नहीं किया है, अतः उसकी दृष्टि, स्वरूप मैत्री आदि भी नहीं बताई है।

ग्रहों का कालादि निर्देश–

अयनक्षणवासरर्तवो मासोऽर्धं च समा च भास्करात्।
कटुकलवणतिक्तमिश्रिता मधुराम्लौ च कषाय इत्यपि।।14।।

(वैतालीय)

सूर्य अयन (छह मास) का, चन्द्रमा क्षण का, मंगल दिन (वासर) का, बुध ऋतु (दोमास) का, गुरु महीने का, शुक्र पक्ष (मासार्ध) का तथा शनि वर्ष (समा) का स्वामी होता है।

इसी प्रकार सूर्य का कडुवा, चन्द्रमा का नमकीन, मंगल का तीखा, बुध का मिला जुला, गुरु का मधुर, शुक्र का खट्टा, शनि का कसैला रस होता है।

कालनिर्देश का प्रयोग प्रश्नादि में फलप्राप्ति की अवधि बताने में होता है। लग्न में जो नवांश हो, उस नवांशेश के अनुसार कार्य सिद्धि का समय बताया जाता है। जितनी क्रम संख्या का नवांश, उतने ही अयन या वार या क्षणादि का निर्देश नवांशेश के अनुसार करे। यही मत प्रचलित है। रे मंणित्थ या मणिन्ध ने कहा है–

वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधाने च कार्यसंयोगे।
लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांशसमसंख्यः।।

सारावली में भी इसका समर्थन किया गया है। रस बताने का उद्देश्य यह है कि आधान या प्रश्न में जो ग्रह बली हो तदुनसार भुक्त पदार्थ या भक्ष्येच्छा बतानी चाहिए। प्रश्न समय लग्न में जिसका नवांश हो या जो ग्रह स्थित हो, उससे भोजन रस का निश्चय करें। कहा गया है–

शुभोदये भवेन्मिश्रं भोजनं जीवनाश्रयम् ।
शुभराश्युदये तद्वदार्द्रं युग्मजलर्क्षयोः ।।
पापोदये क्रूरलग्ने तूष्णमत्युष्णकारकम् ।।

लग्न में शुभ ग्रह या राशि हो तो मिश्रित, सम व जलीय राशि से गीला भोजन, पाप योग लग्न में हो तो गर्म तासीर वाला, दाहक, अम्लीय भोजन बताना चाहिए ।

गर्भाधान के समय बलवान् ग्रह से गर्भिणी का दोहद गर्भकालीन भोज्य इच्छा का, जन्म में केन्द्रगत व षष्ठगत ग्रह से व्यक्ति की विशेष रुचि का तथा प्रश्न में लग्नगत ग्रह या नवांशेश से यथापूर्व रस का निर्णय करें ।

सर्वत्र देश, काल व परिस्थिति का अवश्य विचार करना चाहिए । मंगल यदि नियामक हो तो भैंस का दूध, दही तथा चन्द्रमा हो तो गन्ने का या फलों का रस अथवा बकरी, गाय आदि के दूध के पदार्थ समझें । आगे वियोनि अध्याय में **'अन्तः सारान् जनयति रविः'** इत्यादि श्लोकानुसार फल या शाक समझें । सूर्य से भीतरी गिरीवाले (काजू, बादाम, पिस्ता, नारियल आदि), चन्द्र से दूध युक्त, मंगल से कंटीला, बुध से बिना फल वाले पौधे, गुरु से फलवाले, शुक्र से फलदार, शनि से बदबूदार वनस्पतियों की योजना भी यहाँ करनी चाहिए ।

प्रश्न की चर, स्थिरादि राशि से आसन पर बैठकर, खड़े हुए या चलते हुए आदि का निर्णय करें । राशियों के पूर्वोक्त प्लव व दिशा से भोजन करते समय भोक्ता का मुँह किधरं था, ऐसा निर्णय करें । इसी प्रकार सर्वत्र योजना करनी चाहिए । सम, विषम राशि से सख्त व मुलायम वस्तु का, मांसभोजन में सरीसृप, जल जन्तु आदि पूर्वोक्त विभाग का उपयोग करें । अधिक क्या कहें, आचार्य ने स्वयं ही कहा है–

निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ।

ग्रहों व राशियों के वर्ण से भोजनादि पदार्थों का रंग, स्वरूप से गोल, चौकोर आदि आकृति का भी निर्णय हो सकता है । ग्रह रहने से उसी से, अधिक ग्रह होने पर बलवान् ग्रह से, यदि भावग्रहरहित हो तो द्रष्टा ग्रह से, अथवा भावेश (राशीश) से या नवांशेश से यथावसर समन्वय बिठाते हुए निर्णय करना चाहिए ।

ग्रह मैत्री विचार–

जीवो जीवबुधौ सितेन्दुतनयौ व्यर्का विभौमाः क्रमाद्,
वीन्दवर्का विकुजेन्द्विनाश्च सुहृदः केषांचिदेवं मतम् ।

सत्योक्ते सुहृदस्त्रिकोणभवनात् स्वात् स्वान्त्यधीधर्मपाः,
स्वोच्चायुः सुखपाश्च लक्षणविधेर्नान्यैर्विरोधादिति ।।15।।

(शार्दूलविक्रीडित)

पूर्वार्ध में यवनों द्वारा मान्य ग्रह मैत्री बता रहे हैं। सूर्य का मित्र गुरु। चन्द्र के गुरु, बुध। मंगल के शुक्र, बुध। बुध के सूर्य रहित सब ग्रह। गुरु के मंगल रहित सब ग्रह। शुक्र के सूर्य चन्द्र रहित सब ग्रह। शनि के मंगल, चन्द्र, सूर्य रहित सब ग्रह मित्र होते हैं, ऐसा कुछ लोगों का मत है।

सत्याचार्य के मत से तो मूलत्रिकोणराशि से 2. 12. 5. 9. 4. 8 व उच्च राशीश मित्र होते हैं। शेष अनुक्त राशियों के स्वामी शत्रु तथा जिनकी एक राशि मित्र विभाग में व दूसरी राशि शत्रु विभाग की राशियों में पड़े, वे सम ग्रह होते हैं। यही हमारा अभिमत पक्ष है।

बहुत्र यह निर्देश किया जा चुका है कि वराह मिहिर का कार्यकाल ऐसा था जब बहुत से मत-मतान्तर भारतीय ज्योतिष में चल पड़े थे। ऐसे संक्रान्ति काल में वराहमिहिर ने एक निश्चित व सुविचारित ढंग से अनेकत्र समन्वय स्थापित करते हुए, बहुमत सम्मत पक्ष का समर्थन कर शास्त्र का बहुत उपकार किया था। यहाँ भी पहले यवनों की मैत्रीविधि कही है। इस का प्रमाण यवन ग्रन्थ में कहा गया है–

रवेर्गुरुर्मित्रमतोऽन्यथान्ये गुरोस्तु भौमं परिहृत्य सर्वे।
चान्द्रेरनर्का भृगुनन्दनस्य त्वर्केन्दुवर्जाः सुहृदः प्रदिष्टाः।।
भौमस्य शुक्रं शशिजं च मित्रमिन्दोर्बुधं देवगुरुं च विद्यात्।
सौरस्य मित्राण्यकुजेन्दुसूर्याः शेषान् रिपून् विद्धि नृणां च तद्वत्।।

(यवन)

सत्याचार्य के मत से बहुत से आचार्यो ने मैत्री विधि मानी है। जिसका आधार यह है कि ग्रह की मूल त्रिकोण राशि पहले बताई गई हैं। उसी से गिनने पर 2. 12. 5. 9. 4. 8 राशियों के स्वामी की तथा ग्रह उच्च राशि के स्वामी मित्र होते हैं। शेष शत्रु तथा उभयत्र राशियाँ रहने से सम होते हैं। इसी पद्धति पर प्रचलित निसर्ग मैत्री विचार प्रसिद्ध है। उदाहरणार्थ सूर्य की मूल त्रिकोण राशि सिंह है। उससे 2. 12. 5. 9. 4. 8 तथा सूर्योच्च के स्वामी क्रमशः बुध, चन्द्र, गुरु, मंगल हैं। इनमें से बुध की राशि मिथुन अनुक्त स्थानों में ग्यारहवीं पड़ती है, अतः बुध शत्रु भी हुआ। तब शत्रु व

मित्र एक साथ रहने से बुध सम है । चन्द्र, मंगल, गुरु मित्र व शेष शुक्र शनि शत्रु रहे । इसी प्रकार सब ग्रहों के मित्र जाने जाते हैं ।

कुछ लोगों ने कहा है कि सत्याचार्य प्रोक्त मैत्री से तात्कालिक मैत्री तथा यवनोक्त विधि से नैसर्गिक मैत्री विचार करना चाहिए । यह मत समुचित नहीं है ।

मूलत्रिकोणभवनाच्चतुर्थपंचमधनव्ययाष्टमगाः ।

स्वोच्चे धर्मे च गता ग्रहास्तु तात्कालिकाः सुहृदः ।। (कृष्णीयम्)

यह मत कभी प्रचलित रहा होगा, लेकिन आचार्य को यह स्वीकृत नहीं है ।

निसर्ग मैत्री का प्रदर्शन–

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेः,
तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ ।
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ।। 15क ।।
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्यः परे त्वन्यथा,
सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी ।।
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयः
ये प्रोक्ताः सुहृदस्त्रिकोणभवनात् तेऽमी मया कीर्तिताः ।।15ख ।।

सूर्य के शनि शुक्र शत्रु, बुध सम एवं शेष ग्रह मित्र हैं । चन्द्रमा के सूर्य व बुध मित्र तथा शेष सम हैं । मंगल के चन्द्र गुरु सूर्य मित्र, बुध शत्रु तथा शुक्र शनि सम हैं । बुध के सूर्य शुक्र मित्र, चन्द्र शत्रु तथा शेष सम है ।

बहस्पति के बुध शुक्र शत्रु, शनि सम तथा शेष शत्रु हैं । शुक्र के बुध शनि मित्र, मंगल गुरु सम तथा शेष शत्रु हैं । शनि के बुध शुक्र मित्र, बृहस्पति सम तथा शेष ग्रह शत्रु होते हैं । इस प्रकार **'सुहृदस्त्रिकोणभवनात्'** के नियमानुसार ये सभी ग्रहों के मित्र, शत्रु व सम बताए गए हैं ।

भट्टोत्पल ने यद्यपि इन श्लोकों पर टीका लिखी है, तथापि ये दोनों श्लोक विवरण टीका में उद्धरण के रूप में उद्धृत हैं । इन पर विवरण टीका भी नहीं है । विवरणकार ने लिखा है–

अयं प्रकारश्च स्पष्टमुक्तः केनापि ।

ऐसी परिस्थिति में अर्थ बहुल, संक्षिप्त, अनावश्यक या स्वयं कल्पनीय, ऊह्य विषय विस्तार से रहित, मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख मात्र करके

निश्चित पथ दिखाने वाले, बृहज्जातक में वराहमिहिर उदाहरणतया इन दो श्लोकों में आठ पंक्तियाँ क्यों व्यय करते ?

हमारे विचार से भी ये दो श्लोक बाद के मिलाए हुए ही हैं । भट्टोत्पल इनकी टीका में लिखते हैः–

'ये मया (वराहेण) स्वत्रिकोणभादिषु पूर्व त्रिकोण भवनात्स्वात्स्वान्त्यधीधर्मपा इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तास्त एवेह प्रविभज्य पुनर्भूयः कीर्तिता उदाहरणत्वेन प्रदर्शिता । इति

अर्थात् पहले बताए गए नियमानुसार प्रत्येक ग्रह की मैत्री को अधिक स्पष्ट व सोदाहरण बनाने के लिए उसी बात को यहाँ पुनः कहा गया है ।

पुनरुक्ति दोष से सर्वथा बचने वाले वराहमिहिर को भला यहाँ ऐसी क्या विकट परिस्थिति उपस्थित हो गई थी कि सामान्य बुद्धि से ही समझ में आने वाली बात का इतना खुलासा कर दिया ?

वास्तव में भारत में बृहज्जातक के अधिक प्रचार के कारण ही विभिन्न स्थानीय पाठ व लिपियाँ थीं । दक्षिण भारतीय रुद्रभट्ट के बाद होने वाले भट्टोत्पल को उत्तर भारतीय (कश्मीरी) पाठ मिला था, जो कालविक्षेप से अधिक श्लोकों वाला हो चुका होगा । किसी लिपिकर्ता ने ये दो श्लोक विषय स्पष्ट करने के लिए बृहज्जातक की लिपि में टिप्पणी या साइड नोट के रूप में लिख लिए होंगे जो कालान्तर में इसी का वास्तविक अंग माने जाने लगे । रुद्रभट्ट के समय तक ये श्लोक मूल बृहज्जातक के साथ प्रचलित होने पर भी मूल का अंग नहीं माने जाते थे ।

(निसर्ग मैत्री चक्र)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र मंगल गुरु	सूर्य बुध	सूर्य चन्द्र गुरु	सूर्य शुक्र	सूर्य चन्द्र मंगल	बुध शनि	बुध शुक्र
सम	बुध	मंगल गुरु शुक्रशनि	शुक्र शनि	मंगल गुरु शनि	शनि	मंगल गुरु	गुरु
शत्रु	शुक्र शनि	–	बुध	चन्द्र	बुध शुक्र	सूर्य चन्द्र	सूर्य चन्द्र मंगल

पंचधा मैत्री विचार–

अन्योऽन्यस्य धनव्ययाय सहजव्यापारबन्धुस्थिता–
स्तत्काले सुहृदः स्वतुंगभवनेऽप्येकेऽरयस्त्वन्यथा ।
द्व्येकानुक्तभपान् सुहृत्समरिपून् संचिन्त्य नैसर्गिकां–
स्तत्काले च पुनस्तु तानधिसुहृन्मित्रादिभिः कल्पयेत् ।। 16 ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

ग्रह अपनी अधिष्ठित राशि से 2. 12. 3. 11. 4. 10. राशियों में स्थित ग्रहों से तात्कालिक मित्रता रखता है।

कुछ आचार्यो (यवन) ने स्वोच्च में स्थित ग्रह को भी तात्कालिक मित्र कहा है, लेकिन यह हमें मान्य नहीं है। इनके अतिरिक्त साथ बैठे ग्रह एवं 5. 6. 7. 8. 9. राशि गत ग्रह तत्काल शत्रु होते हैं।

जिन ग्रहों की दो राशियाँ हैं, उनमें से पूर्वोक्त निसर्ग मैत्री में उक्त व अनुक्त खण्ड में पड़ने से निश्चित निसर्ग मित्र, सम व शत्रु को जानकर पुनश्च तात्कालिक मित्रामित्रों से तुलना करके अधिमित्र, अधिशत्रु, मित्र शत्रु व सम भेद से पंचधा मैत्री की कल्पना करनी चाहिए।

आशय यह है कि ग्रह दोनों प्रकार (तत्काल व निसर्ग) से मित्र होने पर अधिमित्र या अतिमित्र, दोनों तरह से शत्रु रहने पर अधिशत्रु तथा एक प्रकार से मित्र व अन्यत्र सम होने पर मित्र। शत्रु व सम रहने पर शत्रु तथा उभयत्र भिन्न रहने से सम होते हैं।

'सत्योक्ते सुहृदस्त्रिकोण भवनात्' इत्यादि श्लोक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखता है। यदि वराह मिहिर सत्योक्त प्रकार से पूर्वोक्त उदाहरण श्लोकों की रचना कर चुके होते तो यहाँ उक्त व अनुक्त राशियों से विचार कर मित्र, सम व शत्रु का निर्णय करने की विधि फिर क्यों बताते ? इससे भी पूर्वोक्त दोनों श्लोक प्रक्षिप्त ही दिखते हैं।

विवरणकार ने कहा है कि आचार्य ने यहाँ एक और विशेष बात बताई है। लग्नेश से 2. 12. 3. 11. 4. 10. अर्थात् अगले व पिछले 3-3 भावों में जो भावेश बैठे हों, उन भावों की वृद्धि होती है।

जिन-जिन सम्बन्धियों के पित्रादि कारक शुभ दृष्ट लग्नेश से या लग्न से उक्त अगले पिछले भावों में होंगे, वे सम्बन्धी जातक के अच्छे मित्र व सहायक होंगे।

'अस्मिंछ्लोके किंचिदर्थान्तरमपि सूचितम्। लग्नेशाद् धनव्ययादि स्थानेषु यद्भावाधिपतिः स्थितः तद्भावसमृद्धिः। पित्रादिकारकाः सूर्यादयो बलवन्तः शुभदृष्टलग्नेशादुक्तस्थानेषु गताश्चेत् ते पित्रादयोऽति सुहृदो भवन्ति।' (विवरण टीका)

ग्रहों का स्थान बल व दिग्बल–

स्वोच्चसुहृत् स्वत्रिकोणनवांशैः स्थानबलं स्वगृहोपगतैश्च ।
दिक्षु बुधांगिरसौ रविभौमौ सूर्यसुतः सितशीतकरौ च ।।17।।
(दोधक)

अपने उच्च, अपने मूल त्रिकोण, अपने गृह व अपने मित्र के गृह में एवं अपने नवांश में स्थित ग्रह को **'स्थान बल'** मिलता है ।

बुध व गुरु पूर्व दिशा (लग्नराशि) में, सूर्य मंगल दक्षिण दिशा (दशम राशि) में, शनि पश्चिम दिशा (सप्तम राशि) में एवं शुक्र चन्द्रमा उत्तर दिशा में (चतुर्थ राशि) दिग्बली होते हैं ।

यहाँ 'स्व' शब्द का सम्बन्ध सब के साथ है । अतः स्वोच्च, स्वमित्र, स्वराशि, स्वमूलत्रिकोण, स्वनवांश राशि में स्थिति होने से ग्रह को स्थान बल मिलता है । रुद्रभट्ट के संस्करण में प्रथम चरण में **'त्रिकोण'** शब्द के स्थान पर 'दृगाण' शब्द मिलता है । इससे स्वद्रेष्काण में भी ग्रह को स्थान बली माना जाता है, ऐसा प्रतीत होता है । लेकिन प्रसिद्ध अर्थ में द्रेष्काण का बल स्व राशि आदि के अनुसार न होकर प्रथम, मध्यम अन्तिम द्रेष्काण के अनुसार होता है । सारावली में कहा गया है–

स्त्रीपुन्नपुंसकाख्याः क्षेत्रेष्वाद्यन्त्यमध्य सम्प्राप्ताः ।

स्वद्रेष्काणादिगत होने से प्राप्त बल का संग्रह तो सप्तवर्गैक्य में ही हो जाता है । अतः यही सारावली प्रोक्त अर्थ उचित है । स्थान बल में द्रेष्काण बल का ग्रहण होता भी है । उच्चबल, युग्मायुग्म बल, केन्द्र बल, द्रेष्काण बल, नवांश प्रधान सप्तवर्गैक्य बल इन सबका ग्रहण 'स्थान बल' में होता है, यह यहाँ स्पष्ट है । इनका सोदाहरण विचार हम अपने **'ज्योतिष सर्वस्व'** में कर चुके हैं । पुनश्च स्वोच्च व मित्र राशि का कथन करने से स्वोच्च, स्वत्रिकोण, स्वगृह एवं स्वमित्र सब का प्रत्याहार होता है । दृगाण व नवांश का कथन करने से पूर्वोक्त राशि भेदाध्याय में प्रोक्त क्रम से 'द्रेष्काणहोरानवभागसंज्ञाः' इत्यादि श्लोक में सातों वर्गो का ग्रहण किया है । 'केन्द्रात्परंपणफर' इत्यादि से केन्द्रादि बल का तथा 'क्रूरःसौम्यः पुरुषवनिते' इत्यादि से पहले ही युग्मायुग्म बल बता चुके हैं । इस प्रकार निष्कर्ष यह है–

(i) स्वराशि, स्वोच्च, स्वत्रिकोण स्व वर्ग (विशेषतया द्रेष्काण व नवांश) में सबको स्थान बल मिलता है । **जातक पारिजात** में यही क्रम बताया है–

'स्वोच्च त्रिकोण स्वसुहृद्दृगाण राश्यंश वैशेषिक वर्गवन्तः ।

(वैद्यनाथ)

(ii) सम राशियों में स्त्रीग्रह व विषम राशियों में पुरुष ग्रहों को स्थान बल मिलता है।

(iii) राशि के प्रथम द्रेष्काण में स्त्री ग्रह को तथा अन्तिम द्रेष्काण में पुरुष ग्रहों को एवं मध्य द्रेष्काण में नपुंसक ग्रहों को बल मिलता है।

(iv) केन्द्रगत ग्रह को सर्वाधिक, पणफरगत को उससे कम व आपोक्लिम गत को सबसे कम बल मिलता है।

(v) स्वद्रेष्काण, स्वनवांश, वर्गोत्तम नवांश में स्वोच्चादि गत हो तो अधिक बली एवं तदितर वर्गों में स्वोच्चादिगत ग्रह हो तो अपेक्षया कम बल पाता है।

इसके विपरीत स्थिति में हो तो स्थान बल से हीन होता है, यह स्वयं सिद्ध है। स्वमित्र से क्या तात्पर्य ? अधिमित्र या निसर्ग मित्र, अतः स्वबुद्ध्या अधिमित्र की राश्यादि में अधिक एवं निसर्ग मित्रादि की राशि में अपेक्षया कम बल मिलेगा, यह तारतम्य रखना चाहिए। जितने अधिक प्रकार से ग्रह बली सिद्ध हो, उतना ही अधिक स्थान बली होगा। एतदनन्तर दिग्बल बताया गया है। जिस भाव में जिस ग्रह को पूर्ण दिग्बल मिलता है, उससे सप्तम राशि में 0 दिग्बल तथा मध्य में अनुपात करना चाहिए। इसी प्रकार उच्च नीच में भी अनुपात करें। यही विधि सर्वत्र अपनानी चाहिए। इसी पद्धति पर सभी जातक पद्धतियाँ लिखी गई हैं।

चेष्टाबल–

उदगयने रविशीतमयूखौ वक्रसमागमगाः परिशेषाः।
विपुलकरा युधि चोत्तरसंस्थाश्चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः ।।18।।

(दोधक)

सूर्य व चन्द्रमा को उत्तरायण में तथा शेष पाँच मंगलादि ग्रहों को वक्री होने या समागम (चन्द्रमा के साथ) होने पर चेष्टा बल मिलता है। इसके अतिरिक्त जो ग्रह अधिक किरणों वाला एवं ग्रह युद्ध में उत्तर की ओर स्थित हो, वह ग्रह चेष्टाबली होता है।

उत्तरायण अर्थात मकर से 6 राशियों में सूर्य रहने पर अथवा प्रायः 23 दिसम्बर से 21 जून तक प्रायः सूर्य चन्द्रमा को चेष्टा या अयन बल मिलता है।

इसी तरह सूर्य से दूर रहने पर भौमादि ग्रह वक्री होते हैं, वक्र शब्द से गूढ़ तात्पर्य यही है कि जब ग्रह सूर्य से परम दूर हो तो परम चेष्टा बली

तथा सूर्य के जितना निकट हो उतना कम चेष्टा वाला होता है। इसी बात को यवनों ने कहा है–

सूर्यान्निर्गत्य सदा नवोदिता यवनराजमतम्। (सारावली)

विशेष व्याख्यान के लिए हमारा 'ज्योतिष सर्वस्व देखें। सूर्य से दूर रहने पर ही मंगलादि ग्रह वक्री होते हैं। यह बालैरपि बोद्धव्य है। अतः चेष्टावीर्य का बीज सूर्य से दूर हटना है तथा परम दूर (वक्री) होने पर सर्वाधिक चेष्टा बल मिलता है। इसीलिए 'विपुलकरा' युधि चोत्तरसंस्था' आदि विशेषण दिए गए हैं। सूर्य से दूर रहने पर ही ग्रह अधिक किरणों वाला हो सकता है तथा युद्ध में उत्तर दिशा की ओर स्थित होने से तात्पर्य है कि ग्रह-युति के बाद आगे निकलता हुआ ग्रह सामान्यतः विजित या चेष्टाबली होता है।

जब ग्रह सूर्य के साथ हों तो 'अस्त' व चन्द्रमा के साथ रहने पर 'समागमी' कहलाते हैं। चन्द्रमा से युक्त होने पर भी ग्रह को (सूर्य रहित) चेष्टा बल मिलता है। अतः चन्द्रमा की ओर बढ़ते रहने पर निरन्तर वर्धमान चेष्टाबल होगा। उक्त प्रकारों में से कोई भी प्रकार सिद्ध होता हो तो चेष्टाबल मिलता है।

सूर्य व अन्य ग्रह का योग 'अस्त', चन्द्रमा से अन्य योग 'समागम' एवं मंगलादि पाँचों ग्रहों में से किसी की परस्पर युति या योग 'युद्ध' होता है।

दिवसकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम्।
भौमादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्य युक्तानाम्।। (बृहत्संहिता)

काल बल व निसर्ग बल–

निशिशशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्नि चान्ये,
बहलसितगताः स्युः क्रूरसौम्याः क्रमेण।।
द्व्यनदिवस होरा मासपैः कालवीर्यं,
श रु बु गु शु च साद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः।।19।। (मालती)

चन्द्र मंगल व शनि को रात्रि में, बुध को सर्वदा तथा शेष सूर्य, गुरु, शुक्र को दिन में **कालबल** मिलता है।

पाप व शुभ इस पूर्वोक्त भेदानुसार कृष्ण पक्ष में पाप ग्रहों को तथा शुक्ल पक्ष में शुभ ग्रहों को भी काल बल (पक्ष बल) मिलता है।

अपने वर्ष, अपने मास अपने वार व अपनी होरा में ग्रह को काल बल मिलता है।

शनि (श) मंगल (रुधिर) बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा एवं सूर्य (स) क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक निसर्ग बली होते हैं।

पक्षबल में, कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक क्रमिक ह्रास तथा तत्पश्चात् पूर्णिमा तक क्रमिक वृद्धि, कृष्णा चतुर्दशी व अमा में चन्द्र दर्शन न रहने पर तथा चन्द्रमा के अत्यन्त क्षीण होने से समस्त शुभ ग्रहों को पक्षबल 0 एवं क्रूर ग्रहों को सर्वाधिक बल प्राप्त होता है। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा क्रूर होने से बलवान् होगा तथा शुक्ल में शुभ ग्रह होने से बलवान् होता है। इसी कारण यवनों ने चन्द्रमा को सदैव बलवान् ही माना है।

'निशिशशिकुजसौराः' इत्यादि क्रम से विशेष बताया गया है। रात्रि के प्रथम त्रिभाग में चन्द्रमा, मध्य त्रिभाग में मंगल व अन्तिम त्रिभाग में शनि को काल बल मिलता है। इसी तरह प्रातः काल में दिन के एक त्रिभाग में सूर्य, मध्य में गुरु व शुक्र अन्तिम त्रिभाग में शुक्र बलवान् होता है।

इसी तरह अपने वार में जैसे रविवार को सूर्य, मंगल वार को मंगल इत्यादि प्रकार से, अपने मास में एवं अपने वर्ष में ग्रह बली होता है। अर्थात् शक सवंत् या विक्रम सवंत् के प्रथम दिन जो वार हो, उस वारेश को पूरे वर्ष में, इसी प्रकार शुक्ल प्रतिपदा को या संक्रान्ति के दिन जो वार हो, उस ग्रह को उस पूरे मास में काल बल मिलता है। काल होरा अर्थात् होरा लग्न (घण्टात्मक) लग्न में होरा लग्नेश को काल बल मिलता है। पद्धतियों में अहर्गणादि द्वारा मासेश व वर्षेश जानना व्यर्थ का वितण्डा है। रुद्रभट्ट कहते हैं–

स्वदिवसे स्वसमायां स्वकालहोरायां स्वमासे च। स्वदिवसः स्ववारः। संव–त्सरस्यादौ यस्य प्रथम वारो भवति, स तस्य संवत्सरस्याधिपतिः। मासस्याप्येवमेवाधिपत्यम। कालहोरादिनद्वादशाशंशात्मिका प्रसिद्धैव। एभिः कालवीर्य वक्तव्यम्।

यहाँ 'स्व' शब्द के द्वारा अन्यार्थ भी द्योतित है, अर्थात् सूर्य अपने संक्रान्ति मास में, अपने वर्षाधिपत्य में, अपनी होरा में, इसी प्रकार, सिंह गत गुरु में, सिंह गत चन्द्रमा में, विशेषतया स्वयं के नक्षत्रों में (उ. षा., उ. फा, कृत्तिका) में भी काल बली होगा। इसी प्रकार सब ग्रहों के विषय में समझना चाहिए। ऐसा रुद्रभट्ट ने विशेष कहा है।

अन्तिम चरण में नामाद्यक्षर से सम्पूर्ण ग्रह को द्योतित किया गया है सब प्रकार से बल समान होने पर निसर्ग बल से निर्णय करेंगे। ऐसा आशय है। शनि सब से कम व सूर्य सर्वाधिक निसर्ग बली है। इस तरह निसर्ग, काल, चेष्टा, दिग् स्थान बलों के आधार पर ही बलाबल जानना चाहिए।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायो द्वितीयः।

[3]

अथ वियोनिजन्माध्यायः

वियोनि जन्म का निश्चय–

> **क्रूरग्रहैः सुबलिभिर्विबलैश्च सौम्यैः**
> **क्लीबे चतुष्टयगते तदवेक्षणाद् वा ।**
> **चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं**
> **सत्त्वं वदेद्यदि भवेत्स वियोनि संज्ञः ।। 1 ।।**

(वसन्ततिलका)

सभी क्रूर ग्रह विशेष बलवान् हों तथा शुभ ग्रह विशेष निर्बल हों तथा बुध या शनि केन्द्र में स्थित हों अथवा लग्न को नपुंसक ग्रह देखते हों तब चन्द्रमा की द्वादशांश राशि के तुल्य स्वरूप वाले जीव का जन्म होता है। अर्थात् चन्द्रमा द्विपदभिन्न द्वादशांश राशियों में हो तो वियोनि जन्म समझना चाहिए।

विविध प्रकार की योनियों को वियोनि कहा गया है। यदि पुराण परम्परानुसार 84 हजार योनियाँ मान ली जाएँ तो मनुष्य रहित शेष 83999 योनियां वियोनि संज्ञक होंगीं। अर्थात् संख्या का आग्रह न रखते हुए मनुष्य जन्म हो तो योनि तथा अन्य मनुष्य-भिन्न जीवों का जन्म वियोनि कहलाता है। इन वियोनियों में चतुष्पद, जलचर वनचर, खेचर, तिर्यक् पशु पक्षी आदि अथवा स्थिर योनियाँ वनस्पति आदि इन सब का ग्रहण होगा।

आचार्यो व ऋषियों ने अपने अनुभव व प्रत्यक्षीकरण के द्वारा कुछ विशेष ग्रहयोगों में ही मनुष्य का जन्म सम्भव माना है। अतः मानव जन्म का निश्चय करने के लिए अर्थात् लग्न व इष्टकालादि की शुद्धि में तथा प्रश्न में इन वियोनि योगों का प्रयोग करना चाहिए।

ऐसे योग होने पर मानव का जन्म नहीं होता है। वियोनि योग सिद्ध हो जाने पर उस समय तिर्यगादि योनियों का जन्म सम्भव होता है। इससे तात्पर्य यह नहीं समझना कि वृक्षोत्पत्ति या पशूत्पत्ति योग जो बताया जा रहा है, उसमें मानवी के गर्भ से ही तत्तत् पेड़ आदि का जन्म होता है। यह आकाश कुसुमवत् असम्भव ही है। इसका उपयोग लग्न शुद्धि व समय शुद्धि में करना चाहिए। यदि वियोनि योग बनता हो तो यथावसर इष्टकालादि में संशोधन कर मानव जन्म सिद्ध होने योग्य समय व ग्रह स्थिति की कल्पना करनी योग्य है।

सुबल व विबल कहने से तात्पर्य है कि अत्यन्त बलरहित व विशिष्ट बल सहित होना। कुछ टीकाकारों ने 'सु' शब्द का कटपयादि पद्धति से अर्थ करते हुए 7 तथा 'वि' का अर्थ 4 से कम किया है। 7 रूपा बल होने पर ग्रह को बली माना है। अतः इससे अधिक बलवाले क्रूरग्रह हों तथा शुभ ग्रहों का बल 4 रूपा से कम हो तथा केन्द्र में नपुंसक ग्रह हों तब चन्द्रमा यदि द्विपद राशियों के अतिरिक्त द्वादशांश में हो तो चन्द्रमा की द्वादशांश राशि के स्वरूप के समान ही वियोनि योग मानना चाहिए। मेष का द्वादशांश हो तो मेष अर्थात् भेड़ बकरी आदि, वृषद्वादशांश हो तो गाय, बैल, भैंस आदि, कर्क का द्वादशांश हो तो जलजन्तु सरीसृप आदि इसी प्रकार सर्वत्र योजना करनी चाहिए।

इस तरह क्रूरग्रह बली हों, शुभ ग्रह निर्बल हों तथा केन्द्र में बुध या शनि हों तो चन्द्रमा के द्वादशांश के तुल्य स्वरूप वियोनि होगी, यह एक योग है।

यदि उक्त प्रकार से क्रूरग्रह व शुभ ग्रह क्रमशः बलाबल युक्त हों तथा नपुंसक ग्रह लग्न को देखें तो दूसरा वियोनि जन्म योग है।

इसी तरह बली व निर्बल, क्रूर ग्रहों व शुभ ग्रहों के रहने पर नपुंसक ग्रह कहीं भी बैठकर वियोनि द्वादशांशगत चन्द्र को देखें तो तीसरा वियोनि योग है।

अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि संज्ञक द्वादशांश में न हो तो उक्त सारी बातें रहने पर भी वियोनि जन्म नहीं होता है। द्विपद या तिर्यगादि जीवों का स्वरूप निर्धारण सदैव चन्द्रमा के द्वादशांश से ही होगा। इन्हीं योगों से प्रश्न के समय में भी विचार करना योग्य है।

अन्य वियोनि योग–

पापा बलिनः स्वभागगाः पारक्ये विबलाश्च शोभनाः।
लग्नं च वियोनिसंज्ञकं दृष्ट्वात्रापि वियोनिमादिशेत्॥2॥

(वैतालीय)

यदि बलवान् पापग्रह अपने नवांश में स्थित हों तथा शुभ ग्रह दूसरे ग्रह के नवांश (पारक्ये) में निर्बल हों तथा द्विपदभिन्न राशि लग्न हो तथा चन्द्रमा पूर्ववत् वियोनि संज्ञक द्वादशांश में हो तो भी वियोनि जन्म कहना चाहिए। अर्थात् नपुंसक ग्रहों के योग या दृष्टि के बिना भी लग्न वियोनि राशि, चन्द्रमा वियोनि द्वादशांश में हो तो ग्रह पूर्ववत् बली व निर्बल हों तो वियोनि जन्म होता है।

चतुष्पद योनि में राशि विन्यास–

क्रियः शिरो वक्त्रगले द्वितीयः पादांसकं पृष्ठमुरोऽथ पार्श्वे।
कुक्षिस्त्वपातांध्रयथ मेढ्रमुष्कौ स्फिक्पुच्छमित्याह चतुष्पागे।। 3।।

(उपजाति)

जिस प्रकार प्रथमाध्याय के श्लोक 4 में मानव शरीर में द्वादश राशियों का न्यास बताया था, तद्वत् चौपाए पशु के शरीर में द्वादश राशियों का न्यास बता रहे हैं। मेष (सिर) वृष(गला व सिर) मिथुन (अगले दो पैर व कन्धे) कर्क (पीठ) सिंह (छाती व वक्ष) कन्या (बगल पार्श्व) तुला (कोख) वृश्चिक (गुदाद्वार) धनु (पिछले दोनों पैर) मकर (लिंग व अण्डकोष) कुम्भ (कूल्हे या पुठ्ठा) मीन (पूँछ) इस प्रकार राशि विन्यास होता है।

चौपायों का ही क्यों कहा ? क्योंकि चतुष्पद जीव सब तिर्यग्योनियों में प्रमुख हैं। तथा उनसे मानव जाति का मुख्यतया वास्ता पड़ता है। इसके बाद पक्षियों के शरीर में यदि राशि विन्यास करना हो तो इसी प्रकार से किया जाएगा। केवल मिथुन राशि को अगले पैरों के स्थान पर पक्षियों के पंखों पर स्थापित करेंगे। लिंग वृषणादि गुप्तांगों के उपलक्षण हैं। अतः मादाओं में योनि गर्भाशयादि तथा नरों में यथावसर अण्डकोषादि समझना चाहिए। राशि विन्यास का प्रयोजन तत्तत् अंगों में रंग योजनादि का विवेक है। सारे पशु पक्षी सर्वथा एक जैसे रंग वाले नहीं होते हैं। अतः अंग-विन्यास का प्रयोजन 'वर्णोपघातादि' बताया गया है। इससे ही यथापूर्व अंगों की ह्रस्व-दीर्घता, पुष्टापुष्टता, तिल, लक्ष्म, भौंरी आदि का ज्ञान करना है।

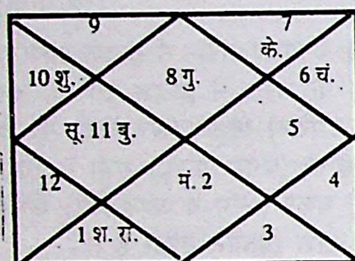
आचार्य ने श्लोक में 'इति' शब्द का प्रयोग किया है। इससे तात्पर्य यह है कि ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। 'इति' शब्द से पूर्वशास्त्रीय परम्परा का द्योतन है। तृतीय चरण में 'अथ' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका प्रयोजन विषय विभाग अथवा व्यवच्छेद ही है। **'मेढ्रमुष्कौ'** से पूर्व 'अथ' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट किया है कि जहाँ लिंग व वृषणादि न हों, वहाँ तदुपलक्षित योन्यादि समझें। 'आह' अर्थात् आचार्य लोग कहते हैं।

हमने अर्थ प्रत्यक्ष नहीं किया है। पशु-पक्षियों की जन्म स्थिति व समयादि विवेक करके कौन जन्मपत्रियाँ बनवाता है, अतः हमने इस विषय में विशेष अनुभव नहीं किया है।

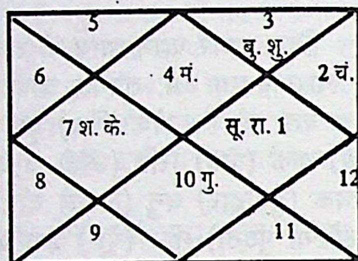
आइए, स्वयं परीक्षा करके देखते हैं। पं० रामयत्न ओझाजी ने अपने फलित विकास में घोडों की एक कुण्डली दी है। उसका विवरण इस प्रकार है।

सं० 1968, चैत्र कृ. प्रतिपदा, सोमवार, इष्ट 39.46, स्थान वाराणसी, भा. स्टै. टा. 22.23 घंटे, सूर्योदय 6.29 भा० स्टै० टा०

लग्न



नवांश



सर्व प्रथम विचारणीय बात चन्द्रमा का द्वादशांश है। चन्द्रस्पष्ट 5.15°.31′ के लगभग है। कन्या में सातवाँ द्वादशांश मीन का मनुष्येतर भाग में है। लग्न पर शनि की त्रिपाद दृष्टि है, चतुर्थ केन्द्र में बुध भी स्थित है। लग्न कीट वियोनि राशि, लग्न में नवांश भी वियोनि राशि है। पापग्रहों में से सूर्य व शनि उच्च नवांश में, राहु वर्गोत्तमी, बुध स्वनवांश में तथा मंगल नीच नवांश में है। लेकिन 21 अंश का मंगल सूर्य की होरा में उच्चद्रेष्काण में, मकर द्वादशांश में, आधा दिग्बली, केन्द्र बली, शुभदृष्टि बली, आधा चेष्टाबली, होने से बलवान् ही है। शुभ ग्रहों में से गुरु नीच नवांश में, अस्ताभिलाषी शुक्र व चन्द्रमा मध्यबली प्रतीत होते हैं। अतः वियोनि जन्म सिद्ध होता है। आशय यह है कि उस दिन वृश्चिक लग्नारम्भ में मानव जन्म नहीं दिखता। ध्यान दीजिए, इष्टकाल 39.46 पर तुला लग्न ही रहता है, अतः हमने छपी

कुण्डली को प्रमाण मानकर लगभग 11.23 रात्रि का वृश्चिकारम्भ लग्न समझा है तथा तदनुसार गणना की है। सम्भवतः इष्ट के अंकों में छापे की भूल है। यदि इसे 46.39 लगभग रात्रि 1 बजे भी मान लें तो भी चन्द्र प्रायः 5. 16°. 28′ तथा लग्न 7. 23°. 20′ के लगभग आएगा। तब भी चन्द्रमा उसी द्वादशांश व नवांश में रहता है।

चन्द्र द्वादशांश के तुल्य स्वरूप रहता है, यह यहाँ उपपन्न नहीं है। उक्तानुसार जल जन्तु का जन्म होना चाहिए। लेकिन वियोनि जन्म सुसिद्ध है।

हमारे विचार से मनुष्येतर योनि मात्र को वियोनि समझना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर इनका उपयोग जन्मेष्ट शुद्धि में करना समुचित प्रतीत होता है। इस पद्धति में कई विषमताएँ भी हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि सवा ग्यारह बजे रात से 1 बजे रात तक भी चन्द्रमा के द्वादशांश व नवांश का परिवर्तन नहीं हुआ है। तब क्या यह मान लें कि उस दिन इतने समय में मनुष्य का जन्म हुआ ही नहीं होगा। यह असम्भव है। अतः इस सन्दर्भ में चन्द्रमा व लग्न द्वादशांश व नवांश दोनों को देखना चाहिए। द्वादशांश से बाहरी व्यक्तित्व वर्णादि का तथा लग्न नवांश से शरीर स्वरूप का निश्चय करना चाहिए। उक्त उदाहरण में चन्द्रमा चतुष्पद नवांश में है। द्विस्वभाव द्वादशांश व द्विस्वभाव राशि में है। आगे जन्माध्याय में वक्ष्यमाण नवांश विचार भी शास्त्रीय व उपयुक्त है। सूर्य, गुरु, मंगल, शुक्र व चन्द्रमा तथा बुध की दृष्टि से वहाँ आगे जन्म सत्त्व का निश्चय कहा है। यहाँ सूर्य, गुरु, मंगल, चन्द्र में से मंगल को छोड़कर शेष तीन चतुष्पद नवांश में हैं। चन्द्र नवांशेश शुक्र द्विस्वभाव नवांश में बुध के साथ विषम में हैं। अतः युगल चतुष्पद का जन्म भी सम्भव है। यही वास्तविकता भी है। हम समझते हैं कि लग्न शुद्धि के अलावा इन योगों का कोई विशेष उपयोग नहीं है।

वियोनि के वर्ण का निश्चय–

लग्नांशकाद् ग्रहयोगेक्षणाद् वा वर्णान्वदेद् बलयुक्ताद् वियोनौ
दृष्ट्या समानान्प्रवदेत्स्वसंख्यया रेखां वदेत् स्मरसंस्थैश्च पृष्ठे ।। 4 ।।

(वैश्वदेवी)

लग्न में जो नवांश उदित हो, उस नवांश राशि के वर्णानुसार वियोनि के वर्णादि का निश्चय करना चाहिए। साथ ही लग्नगत ग्रहों में से तथा लग्न पर दृष्टिकारक ग्रहों में से भी बलवान् ग्रहानुसार वर्ण कहने चाहिएं। अर्थात् बलानुसारी कई वर्ण भी हो सकते हैं। जितने ग्रह दृष्टि रखते हों

उतने ही रंगों का मिश्रण चाहिए। मतान्तर से यहाँ दृष्टिकारक ग्रहों की संख्या से वियोनि प्राणियों की संख्या बतानी चाहिए। अर्थात् दो ग्रह देखें तो दो वर्ण या दो जीव, तीन देखें तो तीन इत्यादि प्रकार से समझें।

सप्तम स्थान में स्थित ग्रहों से उनके रंगानुसार वियोनि की पीठ पर रेखाएँ जानें।

उक्त श्लोक में 'संख्या' शब्द से रंगों की व जीवों की सख्याएँ अभिप्रेत हैं। लग्नगत ग्रह संख्या व दृष्टि कारकों की संख्या से भी प्राणी संख्या कहें। यह बात सप्तमगत ग्रहों से रेखा संख्या व वर्ण बताने से स्पष्ट है। जब रेखाओं में संख्या देखेंगे तो जीवों में भी संख्या देख सकते हैं। 'च' शब्द से यही अर्थ बताया है। अर्थात् सप्तमगत से पृष्ठ (कुक्षिगत) रेखाओं का वर्ण व संख्या तथा लग्नगत ग्रह योगेक्षण से जीव की संख्या व शिरोभाग की रेखाओं का निश्चय करें।

पक्षिजन्म योग–

> **खगे दृकाणे बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये।**
> **बुधांशके वा विहगाः स्थलाम्बुजाः शनैश्चरेन्द्वीक्षणयोगसम्भवः।।5।।**

(वशंस्थ)

यदि लग्न में पक्षी संज्ञक द्रेष्काण हो तथा वहाँ बलवान् ग्रह स्थित हो अथवा चर राशि नवांश लग्न हो तथा बलवान् ग्रह लग्न में हो अथवा बुध का नवांश लग्न में हो तथा बली ग्रह से युक्त हो–– इन तीनों परिस्थितियों में से कहीं भी शनि की दृष्टि या योग होने पर स्थलचारी पक्षी (मोर, मुर्गा आदि) का जन्म होता है। चन्द्रमा की दृष्टि हो तो जल जन्तु पक्षी (हंस, सारस, बगुला आदि) का जन्म समझें।

यहाँ 'अंश' शब्द से नवांश का ग्रहण है, द्वादशांश का नहीं। 'बलसंयुतेन' शब्द का सर्वत्र अन्वय है। अतः **'बल संयुतेन ग्रहेण युक्ते खगे दृकाणे, चरभांशकोदये वा, बुधांशके वा'** इस प्रकार अन्वय होता है।

शनि व बुध को पहले ग्रहस्वरूप में पक्षी के समान बताया गया है। अतः इन दोनों में से शनि का योग या दृष्टि आवश्यक है। इसी प्रकार चन्द्रमा सरीसृपाकार होने से उसकी योग दृष्टि से भी पक्षिजन्म होता है।

इस अध्याय के श्लोक का संयोग सर्वत्र वियोनि जन्म में उपस्थित होना चाहिए। अतः चन्द्र द्वादशांश व शुभ ग्रहों की निर्बलता, पापी की सबलता का सब वियोनि योगों में विचार होगा।

पक्षी द्रेष्काण से तात्पर्य क्या है? मिथुन तुला का मध्य द्रेष्काण व सिंह कुम्भ का प्रथम द्रेष्काण पक्षिद्रेष्काण होता है। यही वराह मत है जो यहाँ लेना चाहिए। अन्य मत से अन्यथा पक्षिद्रेष्काण होते हैं जो यहाँ नहीं लेने हैं। यह आगे द्रेष्काणाध्याय में स्पष्ट बताया गया है।

वृक्षादि स्थावरजन्मयोग–

होरेन्दुसूरिरविभिर्विबलैस्तरूणां
तोयस्थले तरुभवोंऽशकृतः प्रभेदः।
लग्नादग्रहः स्थलजलर्क्षपतिस्तु यावां
स्तावन्त एव तरवः स्थल तोय जाताः।। ६।।

(बसन्त तिलका)

यदि लग्न, चन्द्रमा, गुरु व सूर्य की निर्बलता हो तो प्रश्न या जन्म में वृक्ष जन्म का योग होता है। तोय (जल) व स्थल (भूमि) पर तरुओं की उत्पत्ति (भव) होती है। अतः स्थल व जल जन्म का भेद नवांश पर आधारित है। लग्न में जलराशि नवांश हो जलोपान्त में पैदा होने वाला या जलज वृक्षादि तथा अन्य राशि नवांश होने पर स्थलोद्भव वृक्षों का जन्म बताना चाहिए।

लग्न से वृक्ष जन्म योग कारक ग्रह जितनी राशि आगे हो, उतने ही वृक्षों की उत्पत्ति बतानी चाहिए। स्थल वृक्ष योग कर्ता ग्रह से स्थल वृक्ष संख्या एवं जल वृक्षयोग कर्ता से जलवृक्षों की संख्या बतानी चाहिए।

यदि लग्न में जल राशि नवांश हो तो उक्त नवांशेश की भावस्थिति के अनुसार जलज वृक्ष संख्या, जैसे द्वितीय भाव में दो, तृतीय में तीन इत्यादि प्रकार से बताएँ। इसी प्रकार स्थल राशि नवांशेश से स्थल वृक्षों की संख्या कहें। इस प्रकार प्राप्त वृक्ष संख्या को आयुर्दाय प्रकरण में बताए गए प्रकार से संस्कृत करना चाहिए।

स्वोच्च व वक्री होने पर त्रिगुण, स्वनवांश, एवं द्रेष्काण, स्वनवांश, वर्गोत्तम, नवांश, स्वराशि में हो तो दुगुनी संख्या कहनी चाहिए। ऐसा रुद्रभट्ट ने **सारावली** के नाम से उद्धरण दिया है।

'द्वित्रिगुणत्वं तेषामायुर्दाय प्रकारोक्तम्।'

वृक्षों का विशेष कारकत्व–

अन्तःसारान् जनयति रविर्दुर्भगान् सूर्यसुनूः,
क्षीरोपेतांस्तुहिनकिरणः कण्टकाढ्यांश्च भौमः।

वागीशज्ञौ सफलविफलौ पुष्पवृक्षांस्तु शुक्रः

स्निग्धानिन्दुः कटुकविटपान्भूमिपुत्रश्च भूयः ।। 7 ।।

सूर्य ठोस लकड़ी वाले वृक्षों को, शनि बुरे दिखने वाले वृक्षों को, चन्द्रमा दूध वाले, मंगल कंटीले, गुरु फलदार, बुध फलरहित, शुक्र फलदार, वृक्षों को पैदा करता है। पुनश्च चन्द्रमा चिकने सुन्दर वृक्षों को तथा मंगल कडुवे वृक्षों को भी पैदा करता है।

अन्तःसार वृक्ष से तात्पर्य है, जो पेड़ ठोस, मजबूत, इमारती उपयोग वाले हों। अतः सूर्य के वृक्ष शाल, टीक, शीशम, देवदार आदि हुए।

चन्द्रमा के वृक्ष दूध वाले तथा चिकने बताए गए हैं। अतः गन्ना, बड़, पीपल, सप्तपर्ण, गोंद वाले वृक्ष, लीसा पाने के लिए प्रयुक्त वृक्ष चीड़ आदि तथा ताड़ी के वृक्ष ताड़ आदि इस श्रेणी में आते हैं।

मंगल के काँटेदार वृक्षों में कीकर, खैर, कास, आदि तथा कडुवे वृक्षों में नीम आदि।

बुध के वृक्ष फल रहित होने से पत्र प्रधान हुए। अतः ढ़ाक, बड़, चन्दन, पान आदि। गुरु के वृक्ष फल प्रधान होने से आम, सेव, कटहल, केला, अमरूद आदि। शुक्र के फूलदार वृक्ष जैसे चम्पा, चमेली, गुलदाऊदी, गुलाब, गेंदा आदि। शनि के दिखने में असुन्दर वृक्ष जैसे कीकर का झाड़, बेर का झाड़ आदि।

इनमें ग्रह के बलाबल से उत्तम, मध्यम व अधम वृक्षों का विभाग करें। जैसे फलदार वृक्षों में उत्तम बली गुरु से अंगूर, सेब आदि, मध्यबली से केला, नाशपाती आदि तथा अल्पबली से अमरूद आदि तथा निकृष्टबली से जंगली बेर आदि समझने चाहिएं। इसी विधि से स्वबुद्धि से सर्वत्र तारतम्य की कल्पना करें। इस विषय में एक प्राचीन सूची विवरणकार ने दी है, जो खण्डित है तथा कुछ मतान्तर प्रस्तुत करती है–

अर्कस्य मूलं स्थलजं नारिकेरादिकं फलम् ।
सारभूरुह निष्पत्र चन्दनाद्यं प्रचक्षते ।।1।।
अन्तर्जलयुतान्य ++ तिक्षीरयुतानि च ।
भक्षानि + नवान्याहुः सूचकः शीतरोचिषः ।।2।।
मरिचाद्यं सर्षपाद्यं निर्यासं स्थलभूरुहम् ।
तालवेण्यादिकं चूतं पनसाद्यं कुजस्य तु ।।3।।
कन्दसूरणपत्राढ्यं बृहतीतण्डुलीयकम् ।
वल्लीफलं बोधनस्य मूलं बहुरसान्वितम् ।।4।।

स्थलाम्बुजानि सस्यानि कुसुम्भं तण्डुलं तथा।
दुकूलमुख्यपट्टानि तूलानि च गिरां पतेः ।।5।।
कन्दाढ्यं पुष्पवस्तूनि नालिकेरादिकं भृगोः
तूलतन्तुयुतं गन्धद्रव्याणि च विनिर्दिशेत् ।।6।।
प्रियंगु मुद्गनिष्पा व श्यामाकाद्यं कषायकम्।
हीनमूलं मालुपाद्यं मन्दस्य च विनिर्दिशेत् ।।7।।
विषवृक्षाण्यभोज्यानि दुर्भगानि फलानि च।
उपेत ग्रह तुल्यानि राहोरौद्भिदमीरितम् ।।8।।

अर्थात् सूर्य के वृक्षों में ज़मीन के ऊपर उगने बढ़ने वाले बड़े वृक्ष, नारियल, ठोस, पत्रविहीन वृक्ष एवं चन्दनादि के पेड़ हैं।

चन्द्रमा के वृक्षों में भीतर जल से युक्त, मीठे दूधनुमा पदार्थ से युक्त, खाने योग्य फल वाले वृक्ष हैं। अर्थात् फल लगने से पूर्व नारियल का स्वामी सूर्य व फलोदय होने पर चन्द्रमा स्वामी है।

मिर्च, सरसों, ताड़, आम, कटहल, दानेदार फलों वाले वृक्ष जिनके दाने ही काम में आएं व शेष भाग व्यर्थ हो जैसे, धान, गेहूँ, जौ, सरसों आदि का स्वामी मंगल है।

जमीकन्द, घने-पत्तेदार वृक्ष, पान, बहुत अधिक रसदार वृक्ष जैसे गन्ना, अनानास, बिडंग (तण्डुलीयक) व भंटा या कटहल, सीताफल (बृहती) आदि बुध के आधिपत्य में हैं।

जमीन व जल में पैदा होने वाली फसलें, चावल, सूत, रूई पैदा करने वाले पौधे, बृहस्पति के होते हैं।

कन्द (आलू, गाजर, मूली, वन कन्द) पुष्पों वाले पौधे, नारियल, कपास, सुगन्धित वृक्ष शुक्र के है।

मूँग, प्रियंगु (श्यामाक चावल) चौलाई, कषैले फल, फूल वाले पौधे जड़रहित वृक्ष (अमरबेल, मनीप्लान्ट आदि), अखाद्य वृक्षादि, अच्छे न दिखनेवाले वृक्ष, कँटीले वृक्ष करीर, बबूल दशमूलादि (निष्पा) बेलवृक्ष (मालुप या मालूर) शनि के हैं।

जहरीले पौधे, आक, कटैली आदि, धतूरा, अफीम आदि तथा जिस ग्रह के साथ स्थित हो, उस ग्रह के अनुसार उक्त वृक्ष राहु के होते हैं। मूक प्रश्न में मूल के विषय में वृक्ष निर्णय में एवं सर्वत्र यथासम्भव प्रयोग करने के लिए ये नियम हैं।

शुभाशुभ वृक्षोत्पत्ति–

> **शुभेऽशुभर्क्षे रुचिरं कुभूमिजं**
> **करोति वृक्षं विपरीतमन्यथा ।**
> **परांशके यावति विच्युतः स्वकाद्**
> **भवन्ति तुल्यास्तरवस्तथा विधाः ।। ८ ।।**

(वंशस्थ)

पूर्ववत् वृक्ष जन्म योग कारक ग्रह यदि शुभ हो तथा अशुभ ग्रह की राशि में स्थित हो तो सुन्दर वृक्ष को अपवित्र स्थान पर उत्पन्न करता है ।

यदि पूर्ववत् अशुभ वृक्षयोग कारक नवांशेश शुभ ग्रह की राशि में हो तो असुन्दर वृक्ष को सुन्दर स्थान पर उत्पन्न करते हैं ।

वृक्ष जन्म कारक नवांशेश अपनी नवांश राशि से जितना आगे निकल गया हो, उतनी ही संख्या में वृक्ष होते हैं तथा वृक्षों की जाति का निश्चय यथापूर्व नवांश राशि के स्वामी ग्रह से करना चाहिए । पहले **'अंशकृतः प्रभेदः'** कहकर पुनः नवांश से तरुभेद बताना स्थूणामिखननन्याय से सर्वथा पूर्वोक्त अर्थ को ही पुष्ट करने के लिए है ।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां वियोनिजन्माध्यायस्तृतीयः ।

[4]

अथ आधानाध्यायः

गर्भाधान का समय–

कुजेन्दुहेतु प्रतिमासमार्तवं गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधितौ ।
अतोऽन्यथास्थे शुभपुङ्ग्रहेक्षिते नरेण संयोगमुपैति कामिनी ।।1।।

(वंशस्थ)

प्रत्येक मास स्त्रियों को होने वाले रजोदर्शन का कारण मंगल व चन्द्रमा ये दो हैं। जब स्त्री की जन्म राशि से पीड़ास्थान अर्थात् अनुपचय (1. 2. 4. 5. 7. 8. 9. 12) में चन्द्रमा के गोचर काल में रजोदर्शन हो तो वह गर्भाधान के योग्य होता है।

जब पुरुष की जन्मराशि से वृद्धि स्थान (3. 6. 10. 11) में चन्द्रमा के गोचर में स्त्री व पुरुष का यदि संयोग हो तो गर्भाधान हो जाता है।

जब चन्द्रमा का गोचर स्त्री की जन्म राशि से अनुपचय स्थानों में हो तथा उसी समय कभी मंगल से उसका दृष्टि सम्बन्ध या योग, अथवा वर्गों में सम्बन्ध या पाराशरीय चतुर्विध सम्बन्ध या परस्पर केन्द्र त्रिकोणस्थिति आदि बने तब स्त्रियों को गर्भाधान योग्य रजोदर्शन होता है। उक्त विचार प्रश्न समय में करना चाहिए, ऐसा बहुमत है। लेकिन रुद्रभट्ट ने अपनी प्राचीन टीका में कहा है कि स्त्रियों की जन्म कालीन कुज चन्द्र स्थिति का भी विचार आवश्यक है। अर्थात् जन्म समय में किसी भी प्रकार से यदि कुज चन्द्रमा का सम्बन्ध आदि न बने तो रजोदर्शन होते रहने पर भी नारी को गर्भाधान नहीं होता, सम्भवतः ऐसा आशय है। लेकिन उक्त सब विचार बालक, वृद्ध, रोगी, सन्यासी, विरक्तादि पुरुषों में नहीं करना है।

निष्कर्षतः सर्वप्रथम स्त्री-पुरुष सम्पर्क की सम्भावना पर विचार करें, पश्चात् गर्भाधान योग्य मासिक चक्र का व तत्पश्चात् आगे वक्ष्यमाण विधि से आधान दिन व काल का निश्चय कर कुशल दैवज्ञ प्रष्टा को बताए।

सारावली में कहा गया है कि उपचय भावों में चन्द्रमा के गोचर समय यदि रजोदर्शन हो तो वह निष्फल होता है। अर्थात् उसके बाद नर-नारी संयोग होने पर भी गर्भाधान नहीं होता।

इसी प्रकार अनुपचय भावगत चन्द्रमा को मंगल यदि न देखे तो भी वह ऋतुधर्म निष्फल होता है। इसी प्रकार पुरुष की जन्म राशि से उपचय भावों में गोचर करते हुए चन्द्रमा को यदि बृहस्पति या शुक्र देखे या योग करे तो भी गर्भ योग्यता होती है। रुद्रभट्ट ने कहा है–

पुनरत्र हेतुशब्देन पुत्रकारको गुरुर्विवक्ष्यते।

यही बात वराहमिहिर ने 'शुभ पुंग्रहेक्षिते' कहकर स्पष्ट कर दी है। इसी श्लोकांश में शुभ या पुंग्रह ये दो पद मान कर शुभ ग्रह से या केवल गुरु से दृष्ट हो, ऐसा अर्थ भी हो सकता है।

इस विचार में स्त्री के रजोदर्शनारम्भ समय का अनुपचय भावगत चन्द्रमा देखना तथा पुरुष की जन्म राशि से उपचय भावगत चन्द्रमा का विचार गर्भाधान के समय देखना चाहिए, यह ध्यान रखें।

इसके अतिरिक्त रुद्रभट्ट ने कहा है कि मंगल व चन्द्रमा का परस्पर सम्बन्ध दृष्टि आदि नवांश के द्वादशांश में भी देखना चाहिए। चन्द्रमा एक राशि में सवा दो दिन रहता है; अतः इसकी घड़ियाँ 135 तथा इसका नवाँ भाग 15 घड़ी तथा इसका बारहवाँ भाग 75 पल होता है। अतः चन्द्रमा के नवांश के द्वादशांश में भी यदि चन्द्र व मंगल का पूर्वोक्त सम्बन्ध बन जाए तो भी गर्भधारण होता है। यह बात आचार्य ने 'मास' शब्द (म = 5, स = 7 = 75 पल) से द्योतित की है।

श्लोक में शुक्र पुरुष की जन्म राशि से उपचयगत चन्द्र से सम्बन्ध करे, यह अर्थ कहाँ से आया ? एतदर्थ रुद्रभट्ट का मन्तव्य है कि 'शुभ' शब्द में शु = शुक्र, भ = नक्षत्र या राशि का भी ग्रहण है। अतः गर्भाधान के समय शुक्र का अधिष्ठित नक्षत्र व उससे त्रिकोण नक्षत्रों का भी ग्रहण सुगमता से हो जाता है।

'शुभशब्दोऽत्र शुक्रनक्षत्रग्रहणेन उत्पादनकालस्य शुक्रनक्षत्रस्य त्रिकोणादि सम्बन्धोप्युपलक्ष्यते।' (विवरण टीका)

श्लोक के उत्तरार्ध में गर्भाधान काल के निश्चय की विधि बताई गई है। स्त्री के चन्द्र से विपरीत अर्थात् उपचयस्थ चन्द्रमा को पुरुष की जन्म

राशि से विचार करें। उस पर जब शुभ, पुरुष ग्रह गुरु अथवा पूर्वोक्त प्रकार से शुक्र की दृष्टि हो तो स्त्री व पुरुष का संयोग अर्थात् साधारण सम्भोग न होकर सम् सम्यक् योग, गर्भाधान के योग्य मिलन होता है। यह विचार पुरुष की जन्म राशि से ही देखना है। बादरायण ने कहा है–

पुरुषोपचयग्रहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूखः।
स्त्री-पुरुषसम्प्रयोगं तदा वदेत् स च वृथा नैव।।

सारावली में इस बात को बिल्कुल स्पष्ट लिख दिया है–

उपचयभवने शशभृद् दृष्टो गुरुणा सुहृद्भिरथवासौ।
पुंसां करोति योगं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः।।

प्राचीन ग्रन्थों में रजो-निवृति के बाद की 16 रात्रियों को गर्भाधान के योग्य बताया है। इनमें भी पहली चार रातें सर्वथा अयोग्य तथा बाद में क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सन्ततिदायिनी होती हैं। विषम रात्रियों में गर्भाधान कन्योत्पादक व सम रात्रियों में पुत्रोत्पादक होता है। पहली चार रातें अथवा रजो-निवृत्ति के बाद ही सम्भोग करना चाहिए। कहा गया है–

पुत्रोऽल्पायुःदारिका वंशकर्ता वन्ध्या पुत्रः सुन्दरीशोऽतिदुष्टा।
श्रीमान् पापा पुण्यशीलो गुणाढ्या सर्वज्ञः स्यात् तुर्यरात्रात् क्रमेण।

रजोदर्शन से चौथी रात (रजो-निवृत्ति के बाद) में अल्पायु पुत्र, पाँचवी में अल्पायु पुत्री, छठी में वंशकर्ता पुत्र, सातवीं में वन्ध्या पुत्री, आठवीं में सामान्य पुत्र, नवीं में सुन्दर कन्या, दसवीं में ऐश्वर्यशाली पुत्र, ग्यारहवीं में दुष्ट कन्या, बारहवीं में धनीपुत्र, तेरहवीं में पापिनी कन्या, चौदहवीं में धार्मिक पुत्र, पन्द्रहवीं में लक्ष्मी रूप गुणी कन्या, सोलहवीं में विद्वान् पुत्र होता है।

इसमें व्यावहारिक समस्या हमने देखी है। वास्तव में रजोदर्शन के समय से इसका निश्चय करना चाहिए। उस प्रारम्भ समय में क्रमशः 24-24 घंटे जोड़कर पहली, दूसरी, तीसरी, आदि रातों की गणना करें तो अधिक सफल गर्भाधान होता देखा गया है। साथ ही अब बहुत-सी पुरानी बातें वैज्ञानिक अन्वेषण से ध्वस्त हो गई हैं, अतः उन्हीं पुरानी लकीरों को पीटने से क्या लाभ ? बृहत्संहिता में वराह ने कहा है–

रक्तेऽधिके स्त्रीपुरुषस्तु शुक्रे, नपुंसके शोणितशुक्रसाम्ये।।

अर्थात् सम्भोग में यदि रज की अधिकता हो तो कन्या, वीर्य की अधिकता हो तो लड़का तथा दोनों तुल्य हों तो नपुसंक का जन्म होता है। अब आप स्वयं देख सकते हैं कि आजकल यह बात कहाँ तक ठीक है ?

पुत्र व पुत्री का निर्णय वास्तव में रज व वीर्य की मात्रा या बल से नहीं अपितु वीर्य में पाए जाने नर व नारी शुक्राणुओं से होता है। पुरुष शुक्राणु

को आजकल Y व स्त्री शुक्राणुओं को X कहते हैं। स्त्री का रज सदैव X युक्त ही होता है। यदि अण्डे से संयोग X का हो तो पुत्री व Y का हो तो पुत्र होता है, यह आज सुसिद्ध है। प्रत्येक अण्डाणु में 46 गुण सूत्र (Chromosomes) होते हैं तथा उनका आकार अंग्रेजी के X अक्षर के समान होता है। इसी तरह शुक्राणु में 46 गुणसूत्र होते हैं। लेकिन उसमें 23 Y के समान व 23 X के समान आकार वाले होते हैं। अतः X Y या X X का मिलन ही पुत्र व पुत्री का निर्णायक है।

यदि मासिक चक्र नियमित हो, तभी उक्त 20 रातों का हिसाब ठीक बैठेगा। यदि मासिक चक्र की तिथि ठीक 30 दिन बाद न पड़े तो इसमें त्रुटि रहेगी ही। ओव्यूलेशन की अवधि में अण्डा किस दिन शुक्राणु से मिलने की लालसा से निकलेगा, यह निश्चय निश्चित मासिक चक्र में ही बताया गया है। अनियमित मासिक होने पर अण्डोदय का समय ठीक-ठीक बताना सरल नहीं है। अस्तु, सम व विषम रात्रियों के भेद को आजकल भी व्यवहार में लाया जाता है। आजकल डॉक्टर लोग स्त्री के प्रातःकालीन तापमान से अण्डोदय का समय निश्चित करते हैं। लेकिन चन्द्र व गुरु आदि के गोचर से ज्योतिष शास्त्र में इस दिन का निश्चय सरलता से किया जा सकता है, यह हमने बहुत अनुभव किया है।

त्रिस्फुट की विधि– दक्षिण भारतीय ग्रन्थ **प्रश्नमार्ग** में त्रिस्फुटादि द्वारा गर्भाधान योग्य समय का निश्चय बताया गया है। वह रहस्य वराह मिहिर के इसी श्लोक में छिपा है। इससे वह नक्षत्र ज्ञात हो जाता है, जिस दिन सम्भोग करने से गर्भधारण होगा।

यहाँ 'हेतु' शब्द से गुलिक का ग्रहण है। पहले 'होरत्यहोरात्र विकल्प मेके' श्लोकांश में गुलिक को जनम-मरण सुख-दुख आदि का हेतु होना संकेतित किया था, अतः यहाँ जनन हेतु या काल कला का निर्देशक (गर्भाधान योग्य) गुलिक 'हेतु' शब्द से अभीष्ट है।

कुजश्च इन्दुश्च हेतुश्च कुजेन्दुहेतवः भौमचन्द्रगुलिकाः प्रतिमासं अर्थात् महीने दर महीने। अतः कुजेन्दु हेतु शब्द 'प्रतिमासं' का विशेषण है। इससे 'आर्तव' अर्थात् गर्भाधान योग्य काल जानना चाहिए। ऐसा स्पष्ट है। इसकी विधि इस प्रकार है।

(i) रजोदर्शन के समय के मंगल, चन्द्रमा व गुलिक का स्पष्ट साधन करें।

(ii) 'मास' शब्द का अर्थ कटपयादि विधि से 75 पल है, यह पहले ही बता चुके हैं। अतः चन्द्रमा के सम्पूर्ण राशि भोग समय 135 घड़ी में से जितने 75 पलात्मक काल खण्ड बीत गए हों, उन्हें राशि समझें।

(iii) वर्तमान नवांश के द्वादशांश कालखण्ड के गत समय को 30 से गुणा कर 75 पल से भाग देने से प्राप्त लब्धि को अंश मानें ।

(iv) शेष को 60 से गुणाकर पुन: 75 पल से भाग दें तो लब्धि को कलाओं के स्थान पर स्थापित करें । इसी विधि से मंगल का भी स्फुट योग जानें ।

(v) गुलिक सदैव वक्री होने से गत द्वादशांश राशि से गिनते हुए विपरीत गणना कर पूर्ववत् क्रिया करें ।

(vi) तीनों योगों को जोड़कर 7 से गुणाकर 81 से भाग दें ।

शेष को 27 से भाग देकर शेष को नक्षत्र समझें ।

इसी तरह गुरु से क्रिया करें । अर्थात् गुरु के सम्पूर्ण राशि योग काल ÷ 9 = शेष ÷ 12 करके द्वादशांश जान कर यथावत् 81 एवं 27 से भाग देकर नक्षत्र जानें । जिस दिन गुरु के पूर्व प्राप्त नक्षत्र से केन्द्र व त्रिकोण नक्षत्रों में 'कुजेन्दुहेतु' का पूर्वागत नक्षत्र पड़े तो वही दिन आर्तव योग है । अर्थात् उस दिन अण्डोदय होगा ।

ध्यान रहे इस गणित क्रिया में नवांश का तात्पर्य सम्पूर्ण राशि भोग काल का नवाँ भाग तथा द्वादशांश से तात्पर्य उक्त नवें भाग का बारहवाँ भाग है, न कि षड्वर्गोक्त नवांश या द्वादशांश ।

यह विधि उत्तर भारत में प्रचलित नहीं है, लेकिन दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में इस प्रकार की विधियों को बहुत समादृत किया गया है । सन्तान दीपिका, अनुष्ठान पद्धति, प्रश्न संग्रह, प्रश्नमार्गादि में विस्तार से यह विषय बताया गया है । दक्षिण भारत में बृहज्जातक को होराशास्त्र कहते हैं । तथा वहाँ इसे आम्नायवत् पवित्र माना जाता है । इसे पढ़े बिना ज्योतिष में अन्य ग्रन्थ नहीं पढ़े जा सकते हैं । इसीलिए प्रश्नमार्गकार ने स्पष्ट कह दिया है कि पहले बृहज्जातक का समग्र अध्ययन व मनन करने के पश्चात् ही पाठक प्रश्नमार्ग की ओर हाथ बढ़ाएँ । (देखें प्रश्नमार्ग, अध्याय 1) श्लोक 28 से 31) ।

दम्पती सम्बन्ध ज्ञान–

यथास्तराशिर्मिथुनं समैति, तथैव वाच्यो मिथुनप्रयोगः ।
असद्ग्रहालोकितसंयुतेऽस्ते, सरोष इष्टैः सविलासहासः ।।2।।

(इन्द्रवज्रा)

लग्न (प्रश्न या आधान) से सप्तम राशि की प्रकृति के अनुसार स्त्री-पुरुष में सम्बन्ध स्थापित होता है । अर्थात् सप्तम राशि से निर्दिष्ट जन्तु

या प्राणि विशेष जिस प्रकार सम्भोग करते हैं, वैसे ही सम्भोग हुआ, ऐसा बताना चाहिए ।

सप्तम राशि पर यदि अशुभ ग्रहों का योग या दृष्टि हो तो रोष-पूर्वक, थोड़ी कलह होकर मैथुन हुआ तथा शुभ ग्रह योग या दृष्टि होने पर प्रेम व सौहार्द पूर्ण वातावरण में, हँसी मजाक करते हुए मैथुन बताना चाहिए । यदि किसी भी ग्रह का योग या दृष्टि न हो तो राशि की प्रकृति के अनुसार न अधिक विलास पूर्वक, न क्रोध पूर्वक ही सम्भोग होता है ।

उक्त विचार प्रश्न, आरूढ़, जातक व आधान में सर्वत्र करना चाहिए । सप्तम भाव में द्विपद राशि हो तो द्विपदों की तरह, चतुष्पद हो तो उनकी ही तरह, कीट राशि हो तो कीटों की तरह सुरत होता है । भारतीय चिन्तन की यह विशेषता है, वह अपनी विभिन्न शाखाओं को (विषयों) मूल (अध्यात्म व दर्शन) से पृथक् नहीं, होने देता है । उन में आपसी विरोध भी नहीं है । वात्स्यायन के कामसूत्र में सम्भोग के विविध प्रकार बताए गए हैं । उनमें से किस प्रकार से मैथुन हुआ या होगा, इसका निश्चय सप्तम राशि से करने का सिद्धान्त बताया गया है ।

इस विषय में विशेष वक्तव्य है । सप्तम में विषम राशि हो तो पुरुष प्रधान, सम राशि हो स्त्री प्रधान सुरत कहें । प्रधानता से तात्पर्य, पहल करना, अधिक सक्रिय होना इत्यादि ।

लग्न में पुरुष राशि में स्त्री ग्रह और स्त्री राशियों में पुरुष ग्रह हों तो उभय प्रधान अर्थात् बराबर सक्रियता होती है ।

श्री गोविन्द सोमयाजी अपनी प्रसिद्ध टीका **दशाध्यायी** में लिखते हैं कि सप्तम राशि की प्रकृति स्वभाव गुण धर्म (पूर्वोक्त) के अनुसार सुरत प्रयोग बताना चाहिए । सप्तम में मेष राशि से वनिता प्रियत्व, वृष से सौभाग्य, मिथुन से विशेष कुशलता व दक्षता, कर्क से स्त्री को जीत लेना, सिंह से स्त्री से द्वेषपूर्वक पीड़ा पहुँचाने की प्रवृत्ति से युक्त, कन्या से सुरत प्रियता, तुला से स्त्री जितता, वृश्चिक से स्त्री हीनता, धनु से पुरुष प्रधान, मकर व कुम्भ से पीड़ा दायक रति तथा मीन से स्त्री जितता होती है ।

राशि प्रकरणोक्त सभी बातों का समन्वय यहाँ तथा सर्वत्र यथावसर करें । चर राशि हो तो स्थान बदला गया या मार्ग में सुरत, स्थिर हो तो स्थान नहीं बदला गया, स्थिर चित्त से बेखटके रति हुई, द्विस्वभाव राशि से मध्यम स्थिति बताएँ । राशि दिशा से सम्भोग की दिशा, क्रूर सौम्य विभाग से उत्कट व मृदु सम्भोग, द्विपदादि स्वरूप से तदवत् भोग, पुरुष स्त्री राशि से पुरुष या स्त्री प्रधान, दिन बली राशि से दिन में, रात्रि बली से रात में, आधान लग्न के द्रेष्काण से, पुरुष का स्वरूप, शीर्षोदयादि भेद से सफल

व विफल सम्भोग, अथवा सिर व पैरों की दिशा आदि का निर्णय इत्यादि विचार करें।

इसी विधि से जन्म लग्न से सप्तम राशि व ग्रहों से मैथुन की इष्ट विधि, सुरत प्रयोग व स्त्री स्वरूप बताना होगा।

लग्नाधिपो वा मदनाधिपो वा, यातो यदीये भवनेऽंशके वा।
तत्क्षेत्रजातं प्रवदेत् कलत्रं पुंसोऽङ्गनायाश्च पतिं तथैव।।

लग्नेश या सप्तमेश जिस ग्रह की राशि व नवांश में हो, उसी ग्रह की राशि प्रायः पत्नी या पति की होती है। व्यवहारतः जन्म लग्न को भी राशि में यदि सम्मिलित कर लें तो चमत्कारी परिणाम मिलते हैं।

वराह के कथन का ग्रह आशय भी है। **यथा अस्तराशिः सप्तमराशिः (तथा) मिथुनं पतिं पत्नीं वा समेति संगच्छते प्राप्नोति।**

सप्तमेश अधिष्ठित राशि या नवांश राशि में अपने जोड़े का जन्म होता है।

इसी विधि से पंचमेश से पुत्रों की राशि आदि, तृतीयैकादशेश से भाइयों आदि की राशि लग्न का भी विचार किया जा सकता है। हमारे **वृद्धयवनजातक** में विस्तारपूर्वक इस विषय में बहुत-सी बातें बताई गई हैं।

गर्भाधान की सफलता–

रवीन्दु शुक्रावनिजैः स्वभागगैः गुरौ त्रिकोणोदय संस्थितेऽपि वा।
भवत्यपत्यं हि विबीजिनामिमे करा हिमांशोर्विदृशामिवाफलाः।।3।।

(वंशस्थ)

सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र व मंगल ये प्रश्न या आधान (या जन्म) के समय अपने नवांश में हों, अथवा बृहस्पति 1.5.9 स्थानों में हो तो सफल गर्भाधान हो जाता है।

ये गर्भाधानादि योग निर्बीज (वन्ध्या व नपुंसक) के लिए निष्फल होते हैं, जैसे अन्धों के लिए चाँदनी।

उक्त चार ग्रहों में से सूर्य व शुक्र पुरुष के वीर्यादि के तथा मंगल व चन्द्र स्त्री रज के प्रतिनिधि हैं। अतः ये चारों यदि अपनी राशि में हों या अपने नवांश में हों तो निश्चय से गर्भाधान होता है।

साथ ही पुरुष द्योतक सूर्य शुक्र यदि पुरुष की राशि से उपचय भावों में स्थित हों या स्त्री की राशि से अनुपचय में, कुज चन्द्र स्वनवांश में हों

तो भी गर्भ सम्भव होता है। अर्थात् पुरुष या स्त्री के द्योतक ग्रह उक्त प्रकार से नवांश बली होने पर गर्भाधायक होते हैं।

लघुजातक में स्वयं आचार्य ने कहा है–

बलयुक्तौ स्वगृहांशकेष्वर्कसितौ उपचयर्क्षगौ पुंसाम्।

स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति।।

बृहस्पति के त्रिकोणगत होने पर एक योग, चारों सूर्य शुक्र, मंगल चन्द्र के स्वराशि या स्वनवांश में होने पर दूसरा योग, उक्त चारों में से सूर्य शुक्र की उपचय भाव स्थिति (लग्न व पुरुष की राशि से) तीसरा योग तथा स्त्री की राशि से अनुपचय में कुजचन्द्र की स्थिति चौथा योग है।

इस विषय में रुद्रभट्ट ने कुछ अलग उद्भावनाएँ की हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र व गुरु इन चारों के स्फुट योग की राशि यदि त्रिकोण में पड़े। 'उदय संस्थिते' से सूचित केन्द्र गत होने से युवावस्था में, पंचम त्रिकोण से उपलक्षित पणफर भावों में पड़े तो मध्यावस्था में तथा नवम त्रिकोण से त्रिकोणोपलक्षित आपोक्लिम में होने से वृद्धावस्था में सन्तति लाभ होता है। इसमें भी सन्तान लाभ की अवधि यदि 20 वर्ष से 55 वर्ष तक मान ली जाए तो कुल 35 वर्ष को तीन भागों में बाँट कर लगभग 12 वर्ष का एक भाग मान कर 20-32 जवानी, 32-44 मध्यावस्था व 44-56 वृद्धावस्था मानें। इसमें भी केन्द्रादि चार भावों को 12 ÷ 4 = 3 वर्ष दें। अतः लग्न में उक्त स्फुट योग हो तो 23 वर्ष तक, चतुर्थ में हो तो 26 वर्ष तक, सप्तम में हो तो 29 वर्ष तक, दशम में हो तो 32 वर्ष तक सन्तान लाभ कहें। इसी प्रकार 2. 5. 8. 11 भावों में भी क्रमशः तीन-तीन वर्षों की वृद्धि करके मध्यावस्था में सन्तान प्राप्ति का समय बताएँ। इसी विधि से वृद्धावस्था में समय निर्देश करें। हमारे विचार में पुरुष की कुण्डली में सूर्य, शुक्र, गुरु व पंचमेश से उक्त विचार करें।

इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में प्रचलित एक अन्य सिद्धान्त का आधार भी यही श्लोक है। **'स्वभागगैः'** इस पद में प्रयुक्त अक्षरों की कटपयादि संख्या से सूर्य स्पष्ट को (व) चार से, इन्दु को (भ) चार से, शुक्र व मंगल को क्रमशः तीन (ग ग) से गुणा करके, गुरु को भी तीन से (त्रि) गुणा करके, प्राप्त संख्याओं की योग राशि को पूर्ववत् केन्द्र, पणफर व आपोक्लिम में देखकर समय निर्देश करें। विशेष व्युत्पत्ति के लिए प्रश्नमार्ग का अध्याय 18 व 19 देखें।

यही कारण है कि बृहज्जातक में एक भी अक्षर इधर-उधर नहीं किया जा सकता है। महामति वराहमिहिर की विलक्षण प्रतिमा का उपयोग

तत्कालीन सम्प्रदायों में परस्पर समन्वय स्थपित करने में हुआ था, यह बात पाठकों को ध्यान में रखनी चाहिए। इसी कारण प्रस्थानत्रयी की तरह बृहज्जातक की भी विभिन्न मतानुसार विभिन्न व्याख्याएँ हो सकती हैं, यह हमारी दृढ़ धारणा है।

'विबीजिनां' कहकर आचार्य ने सूर्य व शुक्र की निर्बलता से बीज की दुर्बलता या दोष, मंगल चन्द्र की निर्बलता से क्षेत्र (स्त्रीरज) का दोष तथा इन चारों व गुरु से सन्तान की सत्ता या अभाव का विचार करें। यह स्पष्ट किया है।

अतः सूर्य, शुक्र व गुरु के स्पष्ट योग को जोड़कर 12 राशि में से घटा लें। शेष यदि विषम राशि या नवांश में हो तो बीज़ बल है, ऐसा समझें। इसी तरह गुरु, मंगल व चन्द्र के स्पष्ट योग को मण्डल शुद्ध (12 में से घटाकर) करके देखें। यदि वह सम राशि या नवांश में हो तो क्षेत्र बल है। अन्यथा नहीं।

बीज बल व क्षेत्र बल का निर्णय करके दोनों का योग करें। उस बीज क्षेत्र स्पष्ट योग से 5.7 भावों में नपुंसक ग्रह व पाप ग्रह न रहने पर सन्तान होती है। यह गूढ़ार्थ भी यहाँ बता दिया है। प्रश्नमार्ग में इसी का विस्तार बताया गया है (देखें अध्याय 19, श्लोक 3-5)। उक्त सब विचार जन्म, प्रश्न व आधान में यथावसर निःसंकोच करें। वृद्धयवन ने कहा है–

आधानपृच्छोद्भवसाम्यमुक्तं फलं यतस्तस्य परीक्षणार्थम्।

गर्भ के अरिष्ट कारक योग–

दिवाकरेन्द्वोः स्मरगौ कुजार्कजौ गदप्रदौ पुंगलयोषितोस्तदा।
व्ययस्वगौ मृत्युकरौ तथा युतौ तदेकदृष्ट्या मरणाय कल्पितौ।। 4।।

(वंशस्थ)

सूर्य से पुरुष का व चन्द्रमा से स्त्री का शुभाशुभ विचार गर्भाधान प्रसंग में करना है। आधान कालीन सूर्य से सप्तम में मंगल या शनि आधान कारक (पुंगल) पुरुष के लिए तथा चन्द्रमा से सप्तम में मंगल या शनि स्त्री के लिए रोग कारक होते हैं। यह एक योग है।

इसी तरह सूर्य या चन्द्रमा से 2.12 में मंगल शनि हों तो क्रमशः पुरुष या स्त्री के लिए मृत्युप्रद होते हैं।

सूर्य यदि मंगल या शनि में से एक से युक्त हो तथा एक से दृष्ट हो तो पुरुष की तथा चन्द्र से उक्त प्रकार से मंगल शनि योग व दृष्टि करें तो स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

आधान लग्न की शुद्धि में इसका विचार करना चाहिए। यथा समय बोया गया बीज जिस प्रकार से अधिक फलीभूत होता है, उसी तरह से शुद्ध समय में गर्भाधान (निषेक) उत्तम सन्तति का मूल हेतु है। प्रश्न लग्न में भी इन योगों का विचार करें। राहु को शनिवत् व केतु को कुजवत् मान कर चलें। बहुत से लोग अपनी सन्तान का मुख देखे बिना ही चल बसते हैं तथा बाद में उनकी सन्तान जन्म लेती है, अथवा पिता माता रोग ग्रस्त हो जाते हैं, इत्यादि अनिष्ट से बचाव जरा सी सावधानी से हो सकता है। आजकल गर्भाधान के मुहूर्त्त का विचार लोग नहीं करते, यह गलत परम्परा है तथा बाद में सन्तान के कुकृत्यों का रोना रोते हैं, यह और भी गलत है। कामचेष्टा के बल से किए गए सम्भोग से उत्पन्न सन्तान भी कामुक, अधैर्यशाली व ढीले चरित्र वाली होती है।

उक्त श्लोक में वराह ने सर्व सामान्य फलित सिद्ध सिद्धान्त भी बता दिया है। जिस भाव से सप्तम में शनि, मंगल, राहु हों तो उस भाव को पीड़ित करेंगे। जिस भाव के दोनों ओर हों, उसका नाश करेंगे तथा जिन भावों में मंगल व शनि का दृष्टि सम्बन्ध बने अर्थात् आमने सामने हों, वहाँ दोनों भावों का नाश कर देंगें। यह विशेष है।

उक्त प्रकार का अनिष्ट फल कब होगा ? इस विषय में पीड़ा कारक ग्रह के गर्भ मास, ऋतु या 'अयनक्षणवासरर्तव' इत्यादि विधि से पूर्वोक्त सिद्धान्त का पालन करें। आगे सोलहवें श्लोक में गर्भमास बताए जा रहे हैं। प्रश्न लग्न या आधान लग्न गत नवांशेश से पूर्वोक्त अयन, क्षण, दिनादि की योजना कर लेनी चाहिए।

मंगल व शनि का कथन करके सभी पाप ग्रहों का निर्देश कर दिया है। अतः क्षीण चन्द्रमा व पापी बुध, राहु व केतु से भी उक्त योग बनने पर बलाबलानुसार फल समझें। शुभ योग या दृष्टि भी रहने पर स्वबुद्धि से फल की तीव्रता में न्यूनाधिक्य की कल्पना कर लें, यह सार्वत्रिक नियम है।

अन्य अरिष्ट योग–

दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद् विपर्ययात्।
पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ तु तावथौजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ।।5।।

(वंशस्थ)

दिन में सूर्य व शुक्र क्रमशः पिता व माता संज्ञक तथा रात्रि में शनि व चन्द्रमा पितृमातृ संज्ञक होते हैं।

इसके विपरीत मौसी मौसा या चाचा चाची, संज्ञक ग्रह होते हैं। अर्थात् दिन में गर्भाधान हो तो सूर्य पिता, शुक्र माता, शनैश्चर पिता का छोटा भाई (चाचा) और चन्द्रमा माता की बहन (मौसी) होती है। रात्रि में आधान हो तो शनि पिता, चन्द्र माता, सूर्य चाचा व शुक्र मौसी संज्ञक होते हैं।

इनमें पिता व चाचा संज्ञक ग्रह विषम राशि में तथा माता व मौसी संज्ञक ग्रह सम राशि में हों तो उनके लिए शुभ फलदायक होते हैं। इसके विपरीत पितृसंज्ञकादि ग्रह समराशि में तथा मातृसंज्ञक विषम राशि में हों तो अशुभ होते हैं।

यह विचार जन्म, प्रश्न या आधान में सर्वत्र समान है। कुछ टीकाकारों ने दिवा शब्द से दिवाबली व 'निशि' शब्द से रात्रिबली राशियों का भी ग्रहण किया है। वह प्रश्न या जातक में देखना योग्य है।

इस श्लोक से निर्गलित फलित सूत्र इस प्रकार हैं:–

(i) माता पिता व चाचा मौसी आदि की अशुभता व शुभता बता चुके हैं। स्त्री सम्बन्धी ग्रह (माता व मौसी) विषम राशि में या विषम नवांश में हो तथा पुरुष सम्बन्धी ग्रह (पिता व चाचा) सम राशि या सम नवांश में हों तो अशुभ तथा सम व विषम में क्रमशः हों तो शुभ होते हैं।

(ii) दिन में उत्पन्न जातक के सूर्य व शनि सम नवांश या राशि में हों तो अशुभ हैं, अर्थात् वह जातक पिता के लिए अशुभ होगा, अथवा पिता से उसका मतभेद रहेगा। इसी प्रकार शुक्र व चन्द्र विषम में हों तो माता से विरोधादि होगा।

(iii) इसी विधि से रात्रि जात बालक का विचार करेंगे। इसी विधि से स्त्री जातक कुण्डली में भी देखा जाएगा।

(iv) चाचा व मौसी के कथन का रहस्य यह है कि लोक में प्रायः व्यभिचार प्रसंगों में इनकी बहुलता हो सकती है। अतः अन्यथा व्यभिचार योग सिद्ध होने पर इस श्लोक के नियम से किस के साथ व्यभिचार होगा, इसका निश्चय करना चाहिए। उदाहरणार्थ लग्न में पाप ग्रह हो, सप्तमेश बलवान् होकर जिस भावेश के साथ युति करे, उस भाव से द्योतित रिश्तेदार से व्यभिचार होगा। तृतीयेश से युक्त हो तो भाई बहन, पंचमेश से हो तो सन्तान (पुत्र पुत्री) नवमेश से भ्रातृपत्नी या भगिनी पति (जीजा) द्वादशेश से मामी, षष्ठेश से मामा आदि इसी प्रकार से विचार करें। चतुर्थ से मित्र वर्ग लेना होगा। इस प्रकार युक्ति पूर्वक सर्वत्र विचार करें। 'कामार्त व्यक्ति अविवेकी हो जाता है, अतः ऐसे सम्बन्ध प्रायः दुर्लभ होते हुए भी बिल्कुल असम्भव नहीं हैं।

मातृमरण योगः–

अभिलषद्भिरुदयर्क्षमसद्भिर्मरणमेति शुभदृष्टिमयाते ।
उदय राशि सहिते च यमे स्त्री विगलितोडुपतिभूसुतदृष्टे ।।6।।

(द्रुतपद)

आधान या प्रश्न काल में द्वादश भाव में स्थित अशुभ ग्रह लग्न राशि में प्रवेश करने को उद्यत ही हों, अर्थात् द्वादश राशि में तृतीय द्रेष्काणमध्य (24^0) से आगे निकल गए हों तथा शुभ ग्रह की दृष्टि लग्न पर न हो तो गर्भवती का परम अरिष्ट (मृत्यु) होता है।

लग्न में शनि स्थित हो तथा अति क्षीण (विगलित) चन्द्र व मंगल से दृष्ट हो तो भी गर्भवती का मरण होता है।

यहाँ यह विशेषतया ध्यातव्य है कि द्वादश भाव में मार्गी ग्रह तथा द्वितीय भाव में वक्री ग्रह, ये दोनों ही लग्नाभिलाषी होंगे। अभिलाषी ग्रह अपनी अधिष्ठित राशि के अन्तिम द्रेष्काण में होने पर अगली राशि के प्रति प्रवेशेच्छा प्रारम्भ करता है तथा 25^0 के लगभग पूर्ण प्रवेशाभिलाषी माना जाएगा। अन्तिम अंश में तो वह अभिलाषी न होकर प्रविष्ट हुए के समान ही होगा। **गार्गि** ने तो सम्पूर्ण द्वादश राशि का ही ग्रहण किया है–

अशुभैः द्वादशर्क्षस्थैः शुभदृष्टि विवर्जिते ।
आधानलग्ने मरणं योषितः प्रवदेद् बुधः ।।

रुद्रभट्ट ने सम्पूर्ण अन्तिम द्रेष्काण का ग्रहण किया है। **'लग्नमभिलषद्भिः प्रवेष्टुकामैः द्वादशार्क्षान्त्य द्रेक्काण स्थितैः' इति**। यह विचार मुख्यतया प्रश्न लग्न व आधान में करना चाहिए।

गर्भवती के अरिष्ट योग–

पापद्वयमध्यसंस्थितौ लग्नेन्दू न च सौम्य वीक्षितौ ।
युगपत् पृथगेव वा वदेन् नारी गर्भयुता विपद्यते ।।7।।

(वैतालीय)

यदि लग्न व चन्द्रमा एक साथ पाप ग्रहों से दोनों ओर से घिरे हों तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि का अभाव हो तो स्त्री की गर्भावस्था में ही मृत्यु हो जाती है।

यदि लग्न या चन्द्रमा में से एक भी पापमध्य में हो तथा शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो केवल गर्भ की विपत्ति होती है।

श्लोक में **'लग्नेन्दू'** शब्द में द्वन्द्व समास द्वारा लग्न व चन्द्रमा की एक साथ अर्थात् लग्न में या अन्यत्र चन्द्रमा की पापमध्य स्थिति का स्पष्टीकरण है। इसकी ये परिस्थितियाँ हो सकती हैं–

(i) लग्न व चन्द्रमा एकत्र जिस राशि में हों, उसी राशि में एक पाप ग्रह लग्न व चन्द्रमा से कम अंशों वाला तथा दूसरा पाप ग्रह लग्नेन्दू से अधिक अंश वाला हो।

(ii) लग्न में चन्द्रमा हो तथा द्वितीय व द्वादश में पापग्रह स्थित हों।

(iii) अथवा द्वितीय भाव में एक पाप ग्रह, तृतीय में चन्द्रमा, चतुर्थ में एक और पाप ग्रह तथा द्वादश में तीसरा पाप ग्रह हो, तब भी एक साथ 'लग्नेन्दू' का पापमध्यत्व सिद्ध होगा। अथवा एकादश में चन्द्रमा हो तथा 10. 12. 2 में एक साथ पापग्रह सिथत हों।

(iv) पूर्ववत् अंशादिकों के द्वारा भी पापमध्यत्व देख लेना चाहिए। जैसे द्वितीय में चन्द्रमा जितने अंशों में हो, उससे अधिक अंशों में, उसी राशि में पाप ग्रह हो तथा द्वादश में या लग्न स्पष्ट के अंशों से कम अंशों में अन्य पापग्रह हो। इसी प्रकार सर्वत्र बुद्धि प्रयोग पूर्वक विचार करना चाहिए। **प्रत्येक परिस्थिति में लग्न व चन्द्रमा इन दोनों का एक साथ पापमध्यत्व अभीष्ट है**। दोनों के युगपत् पापमध्यगत होने पर गर्भ सहित माता का नाश होता है।

यदि उक्त प्रकार से पापमध्यगत होने पर भी लग्न व चन्द्रमा दोनों पर शुभ दृष्टि या योग हो तो परम अरिष्ट नहीं होता है। यह बात स्वयं सिद्ध है। विशेषतया शुभ दृष्टि अधिक अरिष्ट नाशक होगी।

यदि पापमध्यगत चन्द्रमा व लग्न में से एक पर शुभ दृष्टि न हो तथा अन्य पर शुभ दृष्टि हो तो केवल गर्भनाश होता है। यह आशय 'पृथक' शब्द से निकलता है। **'पृथक् विपद्यते'** सम्बन्ध है। अर्थात् अलग-अलग एक को अरिष्ट होता है। रुद्रभट्ट इसमें यह व्यवस्था देते हैं कि लग्न पर शुभ दृष्टि न हो तो गर्भ की तथा चन्द्र पर शुभ दृष्टि न हो तो माता की विपत्ति कहनी चाहिए। दोनों का युगपत् (एक साथ) पापमध्यगत होना आवश्यक है।

'चन्द्रस्य शुभग्रहदृष्टत्वे लग्नस्य च शुभग्रहदृष्ट्यभावे पृथक् गर्भ एव विपद्यत इति वदेत्। लग्नस्य शुभदृष्टत्वे सति चन्द्रस्य च शुभदृष्ट्यभावे पृथङ् नारी विपद्यत इति वदेत्।

इसी अर्थ को सर्वथा स्पष्ट करने के लिए **'पृथक्'** व **'युगपत्'** अव्ययों का प्रयोग किया है। **'वदेत्'** अर्थात् कहे से क्या तात्पर्य है ?

यह आवश्यक नहीं है कि मृत्यु ही हो जाए। उक्त योगों में योग कारक ग्रहों के बलाबल का निरूपण शरीर कष्ट की उत्कटता तथा परम अशुभ होने पर मृत्यु समझें। मृत्यु शब्द कष्ट का उपलक्षण है। योग कारक ग्रह के मास में उक्त फल घटित होगा, ऐसा भी यहाँ स्पष्ट है। **'निगदित-मिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या'** इत्यादि आगे कहे गए नियमानुसार इन योगों का विचार कुशलता से जन्म समय में भी करना चाहिए।

अन्य अरिष्ट योग-

क्रूरे शशिनश्चतुर्थगे लग्नाद्वा निधनाश्रिते कुजे।
बन्ध्वन्तगयोः कुजार्कयोः क्षीणेन्दौ निधनाय पूर्ववत्।। 8।।

(वैतालीय)

चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में क्रूर ग्रह स्थित हो तथा मंगल चन्द्रमा से अष्टम भाव में स्थित हो, यह एक योग है।

लग्न से चतुर्थ में क्रूर ग्रह व अष्टम में मंगल हो, यह द्वितीय योग है। लग्न से चतुर्थ में मंगल व द्वादश में सूर्य हो और चन्द्रमा क्षीण हो यह तीसरा योग है। उक्त तीनों में से किसी भी योग के होने पर पूर्ववत् शुभ ग्रहों की दृष्टि आदि न रहने पर गर्भवती का मरण होता है।

श्लोक में **'पूर्ववत्'** शब्द से पिछले श्लोक में बताए गए योग घटक शुभ दृष्टि राहित्य का बोध है। अतः प्रत्येक योग में शुभ दृष्टि न रहने पर उत्कट फल होगा। यदि शुभ दृष्टि हो तो गर्भ या गर्भवती की विपत्ति न बताकर केवल साधारण कष्ट आदि ही बताना चाहिए। इन्हीं योगों से प्रसव काल में भी कष्ट आदि का विचार किया जाना अभीष्ट है। 'वदेत्' का पिछले श्लोक से अध्याहार है।

माता की शस्त्रमृत्यु व गर्भपात-

उदयास्तगयोः कुजार्कयोर्निधनं शस्त्रकृतं वदेत्तथा।
मासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं स्रवणं समादिशेत्।।9।।

(वैतालीय)

आधानादि के समय यदि लग्न में मंगल व सप्तम में सूर्य हो तो माता की शस्त्र द्वारा मृत्यु होती है।

जिस मास का स्वामी विशेषतया पीडित हो अर्थात् नीचास्तंगत या युति में पराजित हो, उसी मास में अविलम्ब गर्भपात होने का फलादेश करें।

गर्भवती के मरण योग पूर्वोक्त श्लोकों में भी बताए गए थे, तब यहाँ मरण कारण का निर्देश करके आचार्य ने पूर्वोक्त योगों में शारीरिक या मानसिक विकारों अर्थात् आन्तरिक कारणों से मृत्यु कही है तथा इस श्लोक में प्रोक्त योग में आगन्तुक कारण (बाहरी) से मृत्यु कही है। अतः शस्त्र घात यहाँ उपलक्षण है। बाहरी कारण अर्थात् शरीर या मानस रोगादिक के बिना अन्य कारणों से गर्भवती को कष्ट होता है। ऐसा बताना चाहिए।

मासों के स्वामी आगे इसी अध्याय में बताए जा रहे हैं। जिस मास का स्वामी गोचर में नीचगत, अस्तंगत या अन्य ग्रह से युति में पीछे रह गया हो अर्थात् पराजित हो, उसी के मास में गर्भपात होता है। **'समादिशेत्'** के प्रयोग से आचार्य ने सर्वथा पीड़ित होने पर निश्चय से गर्भपात होने का संकेत किया है। निपीड़ित की व्याख्या करते हुए भट्टोत्पल ने उल्का से निपीड़ित होना तथा केतु से पीड़ित होना भी बताया है।

गर्भ पुष्टि योग–

शशांकलग्नोपगतैः शुभग्रहैस्त्रिकोणजायार्थसुखास्पदैः स्थितैः।
तृतीयलाभर्क्षगतैश्च पापकैः सुखी तु गर्भो रविणा निरीक्षितः।।10।।

लग्न व चन्द्रमा के साथ किसी भी प्रकार से सभी शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) हों, यह एक योग है।

लग्न या चन्द्रमा से त्रिकोण स्थानों में एवं सप्तम, द्वितीय, चतुर्थ व दशम में शुभ ग्रह हों यह द्वितीय योग है।

सभी पाप ग्रह लग्न या चन्द्र से 3, 11 राशियों में हों तथा शुभ ग्रह यथावसर कहीं भी स्थित हों, यह तृतीय योग है।

उक्त तीनों योगों में सूर्य की दृष्टि यथावसर लग्न या चन्द्रमा या योग कारक पर हो तो गर्भ सुख पूर्वक बढ़ता है। अतः गर्भिणी का सुख भी अन्यथा ध्वनित है।

'शशांक लग्नोपगतैः' में बहुवचन निर्देश से बुध, गुरु शुक्र तीनों का ग्रहण है। सभी शुभग्रह लग्न के साथ या चन्द्रमा के साथ अथवा कुछ ग्रह लग्न में व कुछ चन्द्र के साथ हों, ऐसा आशय है। इसी प्रकार 'तृतीय लाभार्क्षगतैः' में भी बहुवचन द्वारा मंगल, शनि, राहु व केतु सबका ग्रहण है।

'रविणानिरीक्षितः' यह पद चन्द्रमा, लग्न या योग कारक ग्रह का विशेषण है। अतः उक्त सभी योगों में चन्द्र या लग्न या अन्य उक्त प्रकार से स्थित ग्रह, सूर्य से पूर्ण दृष्ट हो तो सम्पूर्ण सुख व सौकर्य से तथा कम

दृष्टि होने पर तद्वत् आनुपातिक ह्रास से युक्त होकर यथावसर गर्भधारण होता है। रुद्रभट्ट ने ऐसा ही कहा है–

'शशांकस्य वा लग्नस्य वा योगकर्तुर्विशेषणमेतत्। (विवरण)

गर्भ की सुख पोष्यता बताकर आधार व आधेय सम्बन्ध से गर्भिणी की भी कुशलता इन योगों में होती है। अथवा उक्त स्थिति रहने पर सर्व सुखद गर्भाधान योग भी होता है।

लिंग निर्धारण का मौलिक नियम–

ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः,
पुंजन्म प्रवदेत समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः।
गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियं,
द्व्यंशस्था बुधवीक्षणाच्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके।।11।।

(शार्दूलविक्रीडित)

लग्न, सूर्य, चन्द्र व बृहस्पति ये चारों बलवान् होकर विषम राशि व विषम नवांश में हों। इस स्थिति में पुरुष का जन्म होता है। इसी प्रकार बलवान् उक्त चारों सम राशि व सम नवांश में हों तो कन्या का जन्म होता है।

केवल गुरु व सूर्य कहीं भी विषम राशि अर्थात् भाव में (लग्न से 3 5. 7. 9. 11) स्थित हों तो पुरुष जन्म होता है।

शुक्र व चन्द्रमा एवं मंगल ये तीनों कहीं भी बलवान् होकर सम राशि या भाव में स्थित हों तो कन्या का जन्म होता है।

यदि गुरु व सूर्य ये दोनों या शुक्र, चन्द्र व मंगल ये तीनों द्विस्वभाव राशि अंश में स्थित हों तथा ऊपर बुध की दृष्टि हो तो क्रमशः पुरुष या स्त्री का युगल जन्म अपने पक्ष में बहुलता के आधार पर होता है।

एक-एक करके समझते हैं। प्रथम चरण में विषम राशि व विषम नवांश में गुरु, सूर्य, लग्न व चन्द्र की स्थिति का उल्लेख है। इन चारों की एक साथ विषम राशि तथा विषम नवांश में स्थिति दुर्लभ है। अतः बहुलता एवं बलाधिक्य से निर्णय करना होगा। अर्थात् चारों विषम राशि व नवांश में हों या तीन विषम में हों तो पुरुष जन्म है। दो विषम व दो सम में हों तो जिधर बलवान् ग्रह हो तदनुसार पुरुष स्त्री का निश्चय करना चाहिए। यही विधि सम राशि व नवांश में कन्या जन्म हेतु अपनायी जाएगी।

यहाँ विषम नवांश से तात्पर्य नवांश कुण्डली में मेष मिथुनादि विषम राशि स्थिति से है या पहला, तीसरा, पाँचवाँ आदि विषम नवांश है, यह

शंका होती है। विषम राशियों में विषम राशि नवांश ही विषम संख्यक भी होते हैं। जैसे मेष राशि में पहला नवांश मेष का, तीसरा मिथुन का, पाँचवाँ सिंह का, इस प्रकार से होते हैं। वहाँ राशि व नवांश क्रम संख्या एक साथ विषम है। इसके विपरीत सम राशि में सभी सम संख्यक नवांश (दूसरा, चौथा इत्यादि) विषम राशियों में पड़ते हैं। तब वहाँ नवांश में भी सम राशि मानें या सम संख्यक नवांश ? इस विषय में स्पष्टता नहीं है। हमारे विचार से यहाँ सम विषम संख्यक नवांश से आशय न होकर सम विषम नवांश राशि से ही है। स्वयं आचार्य ने **लघुजातक** में सम नवांश, विषम नवांश व द्विस्वभाव नवांश का उल्लेख करके यही कहा है–

बलिनौ विषमेऽर्कगुरू नरं स्त्रियं सम मृहे कुजेन्दुसिताः।
यमलौ द्विशरीरांशेष्विन्दुजदृष्ट्या स्वपक्षसमौ।।

'बलिभिः' कहकर बलग्रहण को सर्वत्र आवश्यक बताया है। अतः जितने योग यहाँ बताए गए हैं, उनमें बलाबल से ही निर्णय करना होगा।

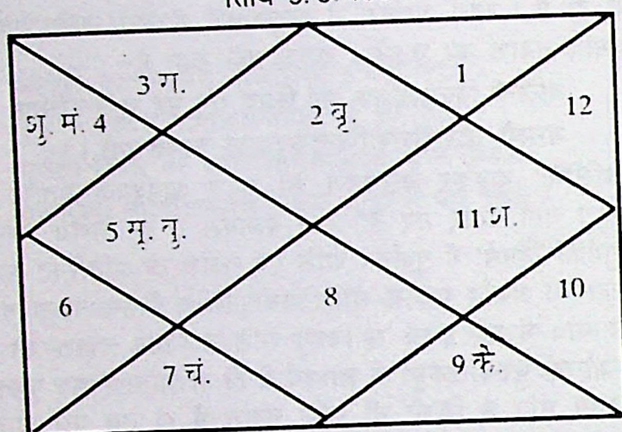
'गुर्वर्कौ विषमे' में पूर्वोक्त राशि एवं नवांश के अतिरिक्त भाव का भी बोध होता है। अर्थात् गुरु व सूर्य विषम राशि व विषम नवांश में या लग्न से विषम भाव में हों, इसमें से विषम राशि व विषम नवांश का ग्रहण तो पूर्वोक्त **'ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु'** के सामर्थ्य से ही हो जाता है तब पृथक् उल्लेख करके विषम भाव में किसी भी राशि नवांश में हों तब पुत्र होता है, यह बतलाना चाहते हैं। इसीलिए रुद्रभट्ट कहते हैं–

'ओजयुग्मराश्यंशसंकरे विशेषकथनार्थमाह गुर्वर्कौ विषमे नरं कुरुतः।'
मेषादिगणने समराशिस्थित्या प्राप्तस्य स्त्रीत्वस्यायमपवादः।'

इसी प्रकार शुक्र, चन्द्र व मंगल में से शुक्र व चन्द्र को पृथक् समास में रखकर एवं मंगल को अलग पद कह कर क्या विशेष बतलाया ? सूर्य व गुरु दोनों पुरुष ग्रह हैं, अतः **'गुर्वर्कौ विषमे'** कहकर एक समस्त पद बनाकर स्पष्ट किया। राशि, नवांश या भाव में विषम गत होने पर ये दोनों ग्रह पुरुषोत्पादक होते हैं। तभी चन्द्र व शुक्र भी स्त्री ग्रह होने से एक समास बनाकर दोनों की समराशि, या नवांश या भाव में स्थिति के साथ मंगल को जोड़ा। मंगल पुरुष ग्रह है। अतः जब जब शुक्र व चन्द्र के साथ सम भाव में होगा तो कन्योत्पादक तथा लग्न से विषम भाव 1. 3. 5. 7. 9. 11. में होने पर पुत्रोत्पादक भी होगा। यह मंगल की विशेषता है। निष्कर्षतः मंगल स्त्रीकारक या पुरुषकारक ग्रहों के साथ बैठकर उनके फल में न्यूनाधिक्य कर सकता है। गुरु व सूर्य के साथ मंगल भी विषम भाव में हो तो पुरुषोत्पादक तथा स्त्रीग्रह के साथ समभाव में हो तो कन्योत्पादक हो जाता है। सदैव निर्णय करते समय बहुलता को देखना है। माना चार

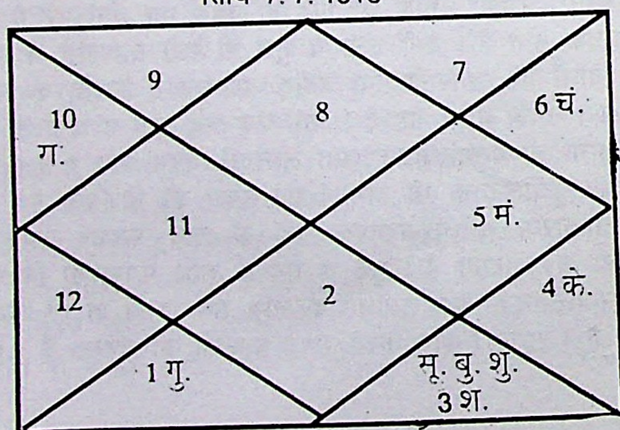
ग्रहों का उल्लेख किया गया है तो उनमें से अधिकांश ग्रह उक्त स्थिति में हों तो पुत्र या कन्या का निर्णय करना चाहिए। हमने अनुभव में पाया है कि पुत्र कारक या स्त्री कारक ग्रहों में से विषमादि राशि में, या विषमादि नवांश में या विषमादि भाव में किसी भी प्रकार से ग्रह स्थित हों तो अपने पक्ष में पुत्र या कन्या दे देते हैं। स्थूणाभिखनन न्याय से यहाँ कुछ वास्तविक जन्म उदाहरण प्रस्तुत हैं–

तिथि 9. 9. 1964



गुरु व सूर्य क्रमशः विषम भाव व विषम राशि में हैं। सूर्य तुला विषम नवांश में तथा गुरु सम मकर नवांश में है। मंगल लग्न से विषम भाव में लेकिन सम नवांश कर्क में है। इन्हें कन्या उत्पन्न ही नहीं हुई। भाव, राशि व नवांश में बहुतायत पुरुष की है।

तिथि 7. 7. 1916



गुरु, सूर्य व मंगल तीनों विषम राशि में हैं। लेकिन भाव सम हैं। चन्द्रमा मेष नवांश में, गुरु मकर के सातवें नवांश में, सूर्य मेष के सातवें नवांश में है। यहाँ बहुतायत विषम की है। मंगल वृश्चिक के आठवें नवांश में है। अतः भावों की समता एवं मंगल की समता ने स्त्री के पक्ष में निर्णय कर दिया। इन्हें चार पुत्रियाँ व केवल एक पुत्र है।

अतः उक्त नियम गर्भाधान, प्रश्न व जन्म कुण्डली में समान रूप से प्रभावी हैं–

श्लोक के चौथे चरण में जुड़वाँ बच्चों के जन्म का मौलिक सिद्धान्त बताया है। यह भी प्रश्न, जन्म व आधान तीनों जगहों पर देखना योग्य है।

द्विस्वभाव राशि या द्विस्वभाव नवांश में स्थित पूर्वोक्त ग्रहों को बुध देखे तो युगल जन्म है, यह मूल आधार है। अर्थात् द्विस्वभाव राशियाँ 3. 6. 9. 12 हैं। इनमें 3. 9 विषम या पुरुष तथा 6. 12 सम या स्त्री हैं। अतः बुध की दृष्टि से दो पुत्र या दो कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। तब सूर्य गुरु यदि मिथुन धनु राशि के अंश में हों तो दो पुत्र; शुक्र, चन्द्र व मंगल कन्या मीन राशि के नवांश में हों तथा बुध दृष्ट हों तो दो कन्याएँ होती हैं।

यदि दोनों प्रकार की मिश्रित स्थिति हो तो पुत्र व पुत्री दोनों का जन्म होता है। यहाँ केवल द्विस्वभाव नवांश लेना या राशि भी, यह विचारणीय है। वराह ने **'द्वयंगस्था'** कहकर द्विस्वभाव में स्थित कहा है। लघुजातक में स्पष्टतया 'द्विस्वभाव नवांश' कहा है। तब द्विस्वभाव नवांश को मुख्य पक्ष व राशि गौणपक्ष माना जाएगा। रुद्रभट्ट ने **'द्वयंशस्था'**: पाठ माना है, जिससे सन्देह ही नहीं रहता है। यदि एक साथ द्विस्वभाव राशि व द्विस्वभाव नवांश में हों तो अत्यन्त निश्चित युगल जन्म होगा, ऐसा कह सकते हैं। बहुमत से यहाँ भी निर्णय करना, ऐसा ध्यान में रखना सर्वथा योग्य है।

'बुधवीक्षणात्' से क्या तात्पर्य है ? क्या एक साथ ही बुध गुरु सूर्य को या चन्द्र शुक्र मंगल को देखें ? यह बहुत स्थानों पर सम्भव ही नहीं होगा। तब हम समझते हैं कि अधिकांश दृष्टि इन सब पर या कम से कम दो पर या एक बलवान् पर पूर्ण दृष्टि होनी चाहिए या बुध से योग हो। जन्म समय में ये योग कितने प्रभावी हैं ? यह परीक्षितव्य है। रुद्रभट्ट ने प्रश्न व आधान में इनका उपयोग कहा है। हमारा स्पष्ट विचार है कि इनका प्रयोग जन्म समय में भी करना चाहिए।

पुत्र जन्म का अन्य योग–

विहाय लग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुंजन्मकरो विलग्नात् ।
प्रोक्तग्रहाणामवलोक्य वीर्यं वाच्यः प्रसूतौ पुरुषोऽंगना वा ।।12।।

(उपेन्द्रवज्रा)

यदि पूर्वोक्त योग न बनते हों तो शनि अकेला ही लग्न रहित विषम स्थानों में (3. 5. 7. 9. 11) हो तो पुत्र जन्म कारक होता है । पूर्वोक्त योग कारक ग्रहों की बलवत्ता को देख कर ही जन्म समय में स्त्री या पुरुष का जन्म बतलाएँ ।

अकेला शनि स्त्री या पुरुष के जन्म में विशेष भूमिका रखता है । **'अपि'** शब्द की सामर्थ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्य योग न होने पर भी यदि केवल शनि ही विषम भावों में हो तो पुत्र जन्म की प्रबल सम्भावनाएँ होती हैं । यह नियम बड़ा उपयोगी है । उक्त योगों के साथ यदि शनि भी योग कारक हो तो प्रबल व सुनिश्चित पुत्रयोग होता ही है, लेकिन अन्यथा पुत्र योग सिद्ध न होने पर भी केवल शनि मात्र से ही पुत्र सिद्ध होने पर पुत्र की प्राप्ति होती है ।

इन सब योगों में कहे गए ग्रहों के बल का विचार अवश्य करें तथा बलानुसार ही स्त्री या पुरुष का जन्म निश्चय करें । यह बात स्त्री-पुरुष व युगल जन्म में सर्वत्र प्रयोज्य है । पुरुष कारक ग्रहों का बल अधिक हो तो पुत्र, पूर्वोक्त स्त्री कारक ग्रहों की बलवत्ता हो तो कन्या का तथा युगल स्थिति में बलानुसार युगल का जन्म कहना चाहिए । इसके लिए स्पष्ट षड्बल का प्रयोग करें तो उत्तम है । इन्हीं योगों से जन्म कुण्डली में पृच्छक की सन्तान चिन्ता का भी विचार करें ।

विचार की पद्धति इस प्रकार होनी चाहिए ।

(i) सर्व प्रथम लग्न, सूर्य, गुरु व चन्द्रमा का विचार करें । इनमें से जितने ग्रह विषम राशि नवांश में हों उतनी संख्या पुत्र के नीचे लिख लें । जितने ग्रह सम नवांशादि में हों, उन्हें पुत्री के लिखें ।

(ii) तत्पश्चात् गुरु व सूर्य की लग्न से विषम भाव व सम भाव स्थिति के अनुसार अंक दें । जैसे गुरु सूर्य दोनों विषम भाव में हों तो पुत्र को 2 अंक, एक हो तो पुत्र–पुत्री को 1-1 अंक तथा दोनों सम भाव में हों तो पुत्री को दो अंक दें ।

(iii) ततः चन्द्रमा, शुक्र व मंगल को देखें । यदि ये सब लग्न से सम भावों में हों तो पुत्री को, विषम में हों तो पुत्र को अंक दें ।

(iv) उक्त ग्रह यदि द्विस्वभाव राशि या अंश में हो तो बुध दृष्टि या योग से युगल को अंक दें।

(v) ततः शनि की विषम भाव स्थिति हो तो पुत्र को तथा सम भाव स्थिति से पुत्री को अंक दें। रुद्रभट्ट का विचार है कि यहाँ बुध व मंगल को भी देखना चाहिए। यदि मंगल वक्री हो तथा विषम या सम में कहीं भी हो तो उसकी वक्रता का एक अंक पुत्र को देना चाहिए। बुध भी यदि विषम भाव में हो तो एक अंक पुत्र को अन्यथा पुत्री को दें।

(vi) सब अंक जोड़कर देखें। जिधर अधिक अंक हों तदनुसार निर्णय करें। जिस खण्ड में बलवान् ग्रह हों, उस पक्ष में निर्णय करें।

लिपि 124 इसी पद्धति से जन्म लग्न से भी पुत्र, पुत्री या युगलादि जन्म का निर्णय किया जा सकता है।

नपुंसक जन्म योग–

अन्योन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्वार्किसौम्यौ तथा,
वक्रो वा समगे दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत् स्थितौ।
युग्मौजर्क्षगतावपीन्दुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ,
पुम्भागे सितलग्नशीतकिरणाः स्युः क्लीबयोगा इमे।।13।।

(शार्दूलविक्रीडित)

आधान प्रश्न या जन्म लग्न से नपुंसक जन्म के योग बताए जा रहे हैं। चन्द्रमा सम राशि में तथा सूर्य विषम राशि में हो तथा दोनों परस्पर देखते हों, यह एक योग है।

इसी तरह शनि व बुध क्रमशः सम व विषम राशियों में स्थित होकर परस्पर देखते हों, यह दूसरा योग है।

विषम राशि गत मंगल यदि सम राशिस्थ सूर्य को देखता हो, यह तीसरा योग है।

चन्द्रमा व लग्न विषम राशि में हों तथा मंगल इन दोनों को देखे, यह चौथा योग है।

सम राशि गत चन्द्रमा व विषमगत बुध को मंगल देखे यह पाँचवां योग है। शुक्र, चन्द्रमा व लग्न ये तीनों यदि पुरुष भाग (विषम नवांश) में हों तथा राशि कोई भी हो तो यह छठा योग है। ये छह नपुंसक योग होते हैं।

यहाँ तृतीय चरण में स्थित **'युग्मौजर्क्षगतौ'** पद का द्विवचन की सामर्थ्य से प्रथम दो योगों में भी सम्बन्ध है। 'असमे' पद का सम्बन्ध देहलीदीपक न्याय से 'दिनेश' व 'चन्द्रोदयौ' इन दोनों पदों के साथ है, यह ध्यान रखें। अतः **'युग्मौजर्क्षगतौ शशिरवी अन्योन्यं पश्यतस्तदा प्रथमः, युग्मौजर्क्षगतौ**

आर्किसौम्यौ अन्योन्यं यदि पश्यतस्तदा द्वितीयो योगः इति सम्बन्धः। असमे वक्रः समगं दिनेशमिति तृतीयः, असमे चन्द्रोदयौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ इति चतुर्थः। युग्मौजर्क्षगतौ अपि इन्दुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ इति पंचमः। पुम्भागे सितलग्नशीतकिरणाः इति। षष्ठः।

इस प्रकार अन्वय करके अर्थ किया गया है।

इन छह योगों में भी पहले तीन व बाद के तीन इस प्रकार विभाग है। नपुंसक दो प्रकार के होते हैं––स्त्री-पुरुष के चिन्हों से रहित तथा स्त्री-पुरुष के गुण धर्म से रहित। इनमें भी पुरुष रूपी व स्त्री रूपी भेद से पुनः दो भेद हो जाते हैं।

अतः स्त्री-पुरुष-चिन्ह से रहित (लिंगादि रहित) नपुंसक होने के पहले तीन योग हैं। स्त्री-पुरुष के गुण-धर्म से रहित अर्थात् सम्भोग क्षमता तथा स्तन रजोदर्शनहीन नपुंसकों के बाद वाले तीन योग हैं।

पुरुष बीज कारक सूर्य व स्त्री रजः कारक चन्द्रमा के परस्पर दृष्टि रखने पर या इसी प्रकार से परस्पर दृष्टि रखने से बनने वाले योगों में सप्तम दृष्टि नहीं होती है। अतः सम्भाव्यता के आधार पर पूर्वोक्त एक-द्वित्रिपाद दृष्टि का भी ग्रहण करना है, अथवा पद्धति प्रोक्त प्रकारों से अंशों से अंशों तक की दृष्टि लेनी होगी। यह प्रथम तीन योगों की व्यवस्था है।

बाद के तीन योगों में सत्त्व कारक मंगल की दृष्टि होने से सम विषमगत चन्द्र बुध वाले योग में एवं शुक्र, चन्द्र, लग्न तीनों स्त्री कारक स्वभाव होने से विषम नवांश गत होने पर स्त्री पुरुष के गुण-धर्मों का सम्मिश्रण होने से सम्भोग व सन्तानोत्पत्ति कारक रजोदर्शनादि से हीन नपुंसक योग मानना तर्क संगत है।

ये योग तभी प्रभावी होंगे, जब पूर्वोक्त पुरुष-स्त्री जन्म योगों का अभाव हो। यदि पूर्वोक्त योगों के साथ नपुंसक योग भी स्थित हों तो पूर्वोक्त स्त्री-पुरुष जन्म योगों को ही बलवान् मानना चाहिए।

जातक (जन्म) में इनका विचार करते समय यह पद्धति अपनाएं। यदि एक नपुंसक योग हो तो अत्यन्त साधारण नगण्य प्रभाव बताएँ। दो योग हों तो पूर्ण नपुंसक बताएँ। यदि योग कारक ग्रह निर्बल या अल्पबली हो तो कादाचित्क नपुंसकता उसकी दशान्तर्दशा में बताएँ। जैसे अर्जुन का निश्चित अवधि वाला नपुंसकत्व। अथवा भावना, लिंग, वीर्य आदि होने पर भी शीघ्रपतनादि जन्य या शुक्राणु निर्बलता जन्य नपुंसकता कहनी चाहिए।

'एते क्लीबयोगा उक्ताः न केवलमाधानप्रश्नकालाभ्यां नपुंसक जन्म सूचकाः जातस्य जन्मकाले सति चेत्संतति हानिकारिका इति केचित् ।

(दशाध्यायी)

लेकिन रुद्रभट्ट ने इनका प्रयोग जन्म कुण्डली में भी करना बताया है–

'एते पूर्वोक्त योगाभावे वक्तव्याः । तेषां योगानामेतेषां च सम्भवे तेषामेव बलवत्त्वम् । एंज्जातकेऽपि विचिन्तनीयम् । (विवरण)

यमलगर्भ के विशेष योग–

युग्मे चन्द्रसितावथौजभवने स्युर्ज्ञारजीवोदयाः,
लग्नेन्दू नृनिरीक्षितौ च समगौ युग्मेषु वा प्राणिनः ।
कुर्यस्ते मिथुनं ग्रहोदयगतान् द्व्यंगांशकान् पश्यति,
स्वांशे ज्ञे त्रितयं ज्ञगांशकवशाद् युग्मं त्वमिश्रैः समम् । ।14 । ।

(शार्दूलविक्रीडित)

एक ही गर्भ से दो या अधिक सन्तान की उत्पत्ति के योग बताए जा रहे हैं–

सम राशि में शुक्र व चन्द्रमा तथा विषम राशि में बुध, मंगल, गुरु व लग्न हों यह एक योग है ।

लग्न व चन्द्रमा इन दोनों की स्थिति सम राशि में हो तथा पुरुष ग्रहों (सूर्य, मंगल, गुरु) से दृष्ट हों तो यह दूसरा मिथुन जन्म योग है ।

सम राशियों में **(युग्मेषु ते वा प्राणिनः)** गुरु, बुध, मंगल व लग्न बलवान् हों तो युगल जन्म होता है । यह तृतीय योग है ।

यदि सभी ग्रह व लग्न द्विस्वभाव राशियों में हों तथा अपने नवांश (मिथुन कन्या) में स्थित बुध, लग्न को देखे, यह चौथा योग है । इसमें तीन बच्चे गर्भ में होते हैं ।

इस चौथे योग में स्त्री व पुरुष की संख्या का निर्णय बुध की नवांश राशि के आधार (ज्ञगांशकवशात्) पर किया जाएगा । जैसे बुध मिथुन नवांश में हो तो दो लड़के व एक लड़की, कन्या नवांश में हो तो दो लड़की व एक लड़का मानें । **'अमिश्रैः समम्'** अर्थात् बुध व सभी ग्रह एवं लग्न अमिश्रित हों अर्थात् पुरुष संज्ञक द्विस्वभाव (मिथुन धनु) में हों तो तीनों लड़के तथा (कन्या मीन) में हों तो तीनों लड़कियाँ होती हैं ।

इन श्लोकों में बताई गई पद्धति से ही जातक म भी फल विचार करना योग्य है । उक्त योगों की परीक्षा कुछ वास्तविक उदाहरणों में करते हैं ।

जन्म लग्न **नवांश लग्न**

6 शु. | 4 सू. | मं. 7 | 5 बु. | गु. 3 | 8 के. | 2 रा. | 9 | श. चं. 11 | 1 | 10 | 12

11 | 9 के. मं. | सू. 12 | 10 शु. | 8 | 1 श. बु. | 7 गु. | 2 | 4 | 6 | 3 रा. चं. | 5

तिथि 15 अगस्त, 1965 ई०

यह प्रथम योग का उदाहरण है। बुध, मंगल, गुरु व लग्न चारों विषम राशि में हैं। शुक्र सम में है तथा चन्द्रमा विषम राशि के 30 वें अंश में है। प्रथम योग मामूली अन्तर से लगभग सम्पूर्ण घटित है। यह जुडवाँ दो लड़कियों की कुण्डली है।

तिथि 18-7-1959 ई०

8 | 6 रा. | 9 श. चं. | 7 बृ. | 5 मं. शु. | 10 | सू. 4 बु. | 11 | 1 | 3 | 12 के. | 2

'द्वयंगस्था बुधवीक्षणाच्च' के पूर्वोक्त नियम को भी यहाँ देखेंगे। गुरु, लग्न, मंगल ये विषम गत हैं। बुध सम में है। यहाँ 75% योग घटित हुआ। साथ ही शुक्र व चन्द्रमा दोनों ही विषम में हैं, लेकिन चन्द्रमा द्विस्वभाव राशि व नवांश में है। लग्न में भी द्विस्वभाव नवांश है। यह भी दो युगल कन्याओं की कुण्डली है। उक्त दोनों उदाहरणों के युगल जीवित हैं।

तीन से अधिक सन्तान के योग–

धनुर्धरस्यान्त्यगते विलग्ने ग्रहैस्तदंशोपगतैर्बलिष्ठः ।
ज्ञेनार्किणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूता अपि कोशसंस्थाः ।।15।।

(उपजाति)

लग्न में धनुराशि व धनु नवांश हो तथा बलवान् बुध व शनि लग्न को देखते हों तथा सभी ग्रह किसी भी राशि में स्थित होते हुए भी वर्गोत्तम, अन्तिम या धनु नवांश में हों तो गर्भ में बहुत से बच्चे हो सकते हैं।

उक्त योग में **'अपि'** शब्द के द्वारा अनिश्चित संख्या का द्योतन है। सभी ग्रह धनु नवांश में हों, ऐसी व्याख्या प्रसिद्ध है। हमारे विचार से **'तदंशोपगतैः'** में तत् शब्द का सम्बन्ध अन्तिम नवांश से भी हो सकता है। अतः हमने सभी ग्रहों की अन्तिम नवांश स्थिति भी स्वीकार की है। धनु राशि में अन्तिम नवांश धनु का ही होने से वर्गोत्तम नवांश का भी ग्रहण है। अतः किसी भी राशि में स्थित होकर यदि सभी ग्रह वर्गोत्तम नवांश या धनु नवांश या अन्तिम नवांश में हों तो गर्भस्थ शिशु बहुत होते हैं। वृष, कन्या, मकर में धनु का नवांश ही नहीं होता है, यह भी ध्यान में रखें।

यदि जन्म कुण्डली में उक्त योग हो तो ऐसे व्यक्ति का परिवार बहुत बड़ा बताना चाहिए, यह रुद्रभट्ट ने अतिरिक्त कहा है।

गर्भ के मासाधिपति–

कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनताः,
सितकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किबुधाः परतः ।
उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिताः,
भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम् ।।16।।

(कुटक)

गर्भाधान के बाद प्रथम मास में कलल (डिम्ब शुक्राणु मिश्रण), दूसरे मास में पिण्ड या लोथड़ा (घन), तीसरे मास में अवयवदर्शन (अंकुर), चौथे मास में हड्डी, पाँचवें मास में त्वचा, छठे मास में रोम (अंगज), सातवें मास में चेतनता, आ जाती है। इन सातों मासों के अधिपति क्रमशः शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध हैं।

इसके बाद (परतः) लग्नेश (आधान या प्रश्न लग्नेश) आठवें मास का, चन्द्रमा नवें का व सूर्य दसवें मास का अधिपति होता है।

मासाधिपति के शुभाशुभत्व से ही गर्भ का शुभ या अशुभ निर्णीत होता है।

यहाँ विचारणीय बात यह है कि सौर मास से गणना करेंगे या नाक्षत्रादि मास से ? प्रथम दृष्ट्या सामान्यतः सौरमास से गणना अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। एक सौर मास लगभग 30 दिनों का तथा नाक्षत्र मास लगभग 27 दिनों का होता है। प्रायः प्रसव नवें मास की समाप्ति के बाद या 38 सप्ताहों के बाद चिकित्सक लोग उचित मानते हैं। तब 38×7 = 266 दिन अर्थात् नौ सौरमास समाप्त होते-होते प्रसव होता है या दसवें नाक्षत्र मास के समाप्त होते हुए भी प्रसव होता है। इसी कारण 270 दिन में गर्भ मोक्ष होना उपयुक्त माना गया है।

ऐसी स्थिति में सौरमास नौ व नाक्षत्र मास 10 ही लगते हैं तथा गर्भ मासाधिपति भी दस बताए हैं। इसीलिए यह व्यवस्था अपनायी जाएगी। प्रथम सात सौर मासों के अधिपति क्रमशः शुक्र, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र शनि व बुध होंगे। पहले मास में शुक्र, रजो-वीर्य मिश्रण कारक, मंगल गर्भ को घनीभूत या पिण्डीभूत करने वाला, गुरु तृतीय मास में पुरुष-स्त्री विभाग कारक अवयव दर्शक, सूर्य चौथे मास में गर्भस्थ शिशु की हड्डियाँ बनाने वाला, पांचवें मास में चन्द्रमा त्वचा, छठे मास में शनि रोम, नख आदि, सातवें मास में बुध चैतन्य कारक होता है। इस प्रकार ये सातों ग्रह गर्भ के सुख-दुःखादि के प्रदर्शक होते हैं। ततः आठ, नौ, दस मास में क्रमशः आधान लग्नेश, चन्द्र व सूर्य पुनः स्वामी होते है। जिस मास में प्रसव हो, उसका स्वामी नियमतः सूर्य ही होता है। **'सविता प्रसवानामधिपतिः स'** इत्यादि श्रुति भी है। अतः प्रसव मास के स्थान पर यथावसर प्रसव काल समझना चाहिए।

यदि पूरे सौर मास दस लगें तो 300 दिन या बारहवें नाक्षत्र मास में प्रसव होता है। ऐसी परिस्थिति में कुछ विद्वानों ने पहले सात नाक्षत्र मासों व अन्तिम तीन के अधिपति इसी प्रकार मानकर बीच के दो मासों के अधिपति क्रमशः राहु व केतु को माना है। यह अर्थ कहाँ से आया ? 'परतः' शब्द का प्रयोग करने से आचार्य ने संज्ञाध्याय में सब ग्रहों का कथन करने के पश्चात **'राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः'** इत्यादि कहा था, अतः 'परतः' शब्द से ग्रहों के परतः उक्त राहु व केतु का ग्रहण है।

यह विभाग यथावसर स्वबुद्धि से समझें। पहले सप्तमासाधिपतियों को एक समस्त पद से बताकर प्रसव सम्भावना तदनन्तर भी होती है, ऐसा संकेत किया है। अतः सात सौर मास व्यतीत होने पर जब भी गर्भ का विचार करें तो लग्नेश, सूर्य व चन्द्रमा का समवेत विचार करना युक्त है। इन तीनों में से जितने अधिक तत्त्व पीड़ित होंगे, उतनी ही जल्दी गर्भ मोक्ष

(प्रसव) होगा। सात मासों के बाद प्रसव संज्ञा है। ततः पूर्व गर्भपात व तृतीय मास तक गर्भस्राव कहते हैं।

हमारे विचार से नौ सौर मास के अधिपति यथाक्रम मानकर प्रसव मास में प्रसव काल यावत् सूर्य का आधिपत्य है, तथापि चन्द्र बल व लग्न बल की प्रधानता भी रहने से तीनों का संयुक्त विचार करना चाहिए। स्वयं वराह ने लघुजातक में नवम मास में ही उद्वेग अर्थात् गर्भ से बाहर आने की छटपटाहट बताई है–

अशनोद्वेग प्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम्।

स्त्री के स्राव का सम्बन्ध चन्द्रमा से होने के कारण नाक्षत्र पद्धति से मास विचार हमें उपयुक्त लगता है।

मासेशों से फल विचार करने में क्या विधि रहेगी, इस विषय में भट्टोत्पल ने कहा है कि आधान लग्न में जो मासेश पीड़ित हो, उसी के मास में यथावसर गर्भस्राव, पात या प्रसव कहना चाहिए। लेकिन बहुमतानुसार तत्कालीन गोचर से इसका विचार करना चाहिए। जिस मास में उस मास का स्वामी गोचर में पीड़ित, पराजित, नीचास्तंगत हो उसी मास में पीड़ा बतानी चाहिए। पीड़ा की मात्रा बलाबल से देखेंगे। आचार्य वराह ने भी **'तत्कालं स्रवणं समादिशेत्,** कहकर आधान कालिक ग्रहस्थिति की अपेक्षा तात्कालिक ग्रहस्थिति को अधिक विचारणीय माना है।

जिस मास में उसका अधिपति शुभोच्च स्वगृही आदि होगा, उस मास में गर्भ-वृद्धि व पीड़ित होने पर क्षय होता है।

मासलक्षणयुक्तश्चेद्गर्भः सुखमाप्नुयात्। (पृथुयशा)

पुनश्च 'तत्तत्सर्वं तस्य योज्यं दशायाम्' के वक्ष्यमाण न्याय से वराह मिहिर ने भी ऐसा ही तात्कालिक विचार करने का निर्देश दिया है।

मासेश के स्वभाव व प्रकृति के अनुसार फल कहें। इसका क्या आशय है ? मासेश के कटु लवण तिक्तादि रसों से उस मास में गर्भिणी की इच्छा का, देवाम्ब्वाग्नि आदि ग्रहस्थानों से गर्भिणी की विहार स्थानेच्छा, बताएँ।

ग्रह की प्रकृति के अनुसार ज्वर, सूजन, कमजोरी, गर्भ क्षय या गर्भ वृद्धि में रुकावट बताएँ। प्रत्येक मास में मासेश की पूजा करें, उसके मन्त्र का जप करें। जिस राशि में मासेश हो, उसकी सौम्यासौम्य, चरस्थिरत्व, दिगीशत्वादि के द्वारा गर्भिणी के स्वभाव में परिवर्तन बताएँ। पीड़ित मासेश

के पृथ्वी, जलादि तत्त्वानुसार, वात पित्तादि दोषानुसार गर्भ व गर्भिणी की अवस्था बताएँ।

भ्रूण का न्यूनाधिक्य–

त्रिकोणगे ज्ञे विबलैस्ततोऽपरै र्मुखाङ्घ्रिहस्तैर्द्विगुणैस्तदा भवेत्।
अवाग्गवीन्दावशुभैर्भसन्धिगैः, शुभेक्षिते चेत् कुरुते गिरं चिरात्।।17।।

(वंशस्थ)

लग्न से त्रिकोण में बुध हो तथा शेष ग्रह निर्बल हों तो बालक के मुख, हाथ, पैर आदि दुगुने होते हैं।

यदि वृष में चन्द्रमा तथा पापग्रह राशि सन्धि (गण्डान्त) में हों तो बालक गूँगा (अवाक) होता है।

यदि इस द्वितीय योग में शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो अधिक दिनों के बाद बोलता है।

यह विचार आधान, प्रश्न व जन्म में करना है। गर्भस्थ शिशु के आंगिक विकारों का मौलिक नियम बताया जा रहा है। एक एक करके समझते हैं। प्रथम योग में त्रिकोणस्थ बुध के साथ 'अपरैः' शब्द के प्रयोग से कुछ विशेष अर्थ ध्वनित है। अपर का अर्थ है–अन्य या बाद वाले ग्रह, बुध से पहले पठित (न परैः अपरैः पूर्वैः) सूर्य, चन्द्र, मंगल या व्युत्क्रम से मंगल चन्द्र सूर्य हुए। अथवा इसी प्रकार पूर्वरूप न मानकर 'पर' शब्द से बुध के बाद में पठित ग्रह गुरु, शुक्र, शनि हुए। अतः 'अपरै' शब्द से पूर्वापर तीन–तीन ग्रहों का ग्रहण है। इसी प्रकार क्रम मानकर **'मुखाङ्घ्रिहस्तैःद्विगुणैः'** में पूर्वापर ग्रहद्वय से क्रमशः मुख, पैर व हाथ का द्विगुणत्व समझना होगा। यदि बुध का पूर्वापर मंगल गुरु विबल हों तो दो मुख, यदि ततः पूर्वापर चन्द्र शुक्र विबल हों तो पैरों की द्विगुणता तथा सूर्य शनि विबल हों तो हाथों की द्विगुणता होती है। यह एक पक्ष है।

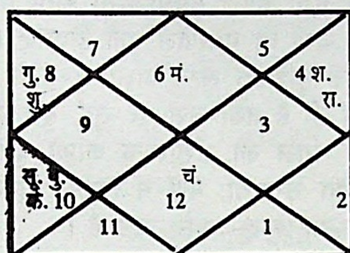
कुछ लोगों ने त्रिकोण में बुध अर्थात् 1.5.9 में बुध रहने पर, लग्न में बुध रहे तथा शेष ग्रह निर्बल हों तो दो मुख, पंचमस्थ बुध व शेष की निर्बलता हो तो चार पैरों वाला एवं नवमस्थ बुध व निर्बल ग्रह होने से चार हाथों वाला होता है, ऐसी भी व्याख्या की है। यह द्वितीय पक्ष है। यदि शेष ग्रह बलवान् होंगे तो तत्तत् अंगों की परिपुष्टि होगी।

उत्तरार्ध में वाणी विकार का मौलिक नियम कहा है। चन्द्रमा वृष (गवि) राशि में हो तथा पापग्रह भसन्धि अर्थात् राशि सन्धि, गण्डान्त में (कर्क-वृश्चिकमीनान्त) या भाव सन्धि में हों तो व्यक्ति या शिशु (अवाक) गूँगा होगा। यह मूल नियम है।

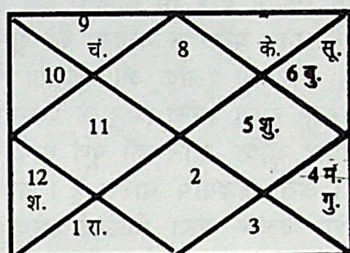
वृष राशि मुख की परिचायक है। यहाँ कुछ लोग द्वितीय भाव में चन्द्र हो, ऐसा अर्थ भी करते हैं। गो का अर्थ बैल व वाणी दोनों ही होता है। अतः गवि का अर्थ वृष में या वाणी स्थान (द्वितीय) में दोनों ही स्वीकृत हो सकते हैं।

यदि उक्त प्रकार से स्थित चन्द्र को शुभ ग्रह देखें तो विलम्ब से बोलता है। इससे द्वितीय राशिस्थ चन्द्र पर पाप दृष्टि से वाग्हीन होता है। जन्म समय में चन्द्रमा या द्वितीय भाव पाप दृष्ट हो तो विलम्ब से व शुभ दृष्ट हो तो शीघ्र बोलता है, यह नियम भी स्पष्ट है।

मूक बधिर की कुण्डली



विकृत वाणी की कुण्डली



मूक बधिर की कुण्डली में चन्द्र से द्वितीय भाव व चन्द्रमा एक साथ पापिष्ठ अष्टमेश मंगल से दृष्ट है। शनि व राहु दोनों पाप ग्रह कर्क राशि के अन्तिम द्रेष्काण में हैं। द्वितीयेश शुक्र भी गण्डान्त राशि में है तथा चन्द्रमा भी गण्डान्त राशि में है। वास्तव में लक्ष्योदाहरण से लक्षण परीक्षा होनी चाहिए। देखिए सम्पूर्ण योग न बनने पर भी अन्य सामान्य नियमों से भाव हानि प्रतीत होने पर फल होता है।

दूसरी कुण्डली का व्यक्ति सब बातों को दो बार बोलता है। बहुत अस्वाभाविक ऊँची आवाज तथा कुछ विक्षिप्त सा रहता है। देखिए यहाँ योग पूरा सा घट रहा है लेकिन फल आधा ही मिला। चन्द्रमा सन्धि व द्वितीय भाव में व मंगल शनि कर्क मीन के अन्तिम व प्रथम द्रेष्काण में हैं। किन्तु शनि प्रथमं द्रेष्काण में होता हुआ भी भाव सन्धि में गया है। हमारे विचार से युक्ति पूर्वक सब बातों का विचार करना चाहिए।

कुब्जादि योग विचार–

सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत् सदन्तोऽत्र जातः,
कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे।

पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे,

सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत् सौम्य दृष्टिः ।।18।।

शनि व मंगल यदि बुध की राशि व अंश में स्थित हों तो बालक दाँत सहित पैदा होता है।

यदि चन्द्रमा लग्नस्थ स्वराशि में शनि व मंगल से दृष्ट हो तो कुबड़ा होता है।

यदि मीन लग्न में चन्द्रमा, शनि, मंगल की दृष्टि हो तो व्यक्ति लँगड़ा होता है।

यदि चन्द्रमा, सन्धि अर्थात् राश्यादि सन्धि (गण्डान्त) में हो तथा उसे शुभ ग्रह न देखें तो व्यक्ति जड़ अर्थात् गूंगा बहरा मृत्पिण्ड-सा होता है। यदि उक्त योगों में चन्द्रमा को शुभ ग्रह देखें तो योगफल नहीं होता है।

पिछले श्लोक की व्याख्या में प्रदत्त वृश्चिक लग्न वाली कुण्डली में चन्द्रमा राशि सन्धि (धनु के प्रथमांश) में ही है तथा उस पर सूर्य, बुध की त्रिपाद दृष्टि, शनि की पूर्ण दृष्टि तथा मंगल की अंशात्मक काफी दृष्टि है। अतः जडयोग घटित है। यह व्यक्ति उन्मादी, पैरों में विकृति युक्त, वाणी विकार वाला, विक्षिप्त खोया-खोया-सा, बुद्धू अर्थात् जड़ है।

वामनादि योग–

सौरशशांकदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्ने ।

धीनवमोदयगैश्च दृकाणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात् ।।19।।

(दोधक)

मकर के अन्तिम नवांश में या अन्तिम द्रेष्काण में लग्न हो तथा शनि, चन्द्र व सूर्य लग्न को देखें तो व्यक्ति अधिक बौना होता है।

यदि पंचम, नवम व लग्न में स्थित द्रेष्काण में पापग्रह स्थित हों तथा शनि, चन्द्र व सूर्य की दृष्टि इन पर हो तो व्यक्ति बिना हाथ, बिना पैर एवं बिना सिर वाला होता है। शुभ दृष्टि रहने से फल में कुछ तारतम्य होता है।

'अन्त्य' शब्द की सामर्थ्य से मीन लग्न के अन्तिम नवांश में जन्म हो तथा शनि, चन्द्र, सूर्य उसे देखें तो वामनक होता है, ऐसा अर्थ भी ग्राह्य है। 'क' प्रत्यय अल्पार्थ में किया गया है। अतः बलवान् शनि सूर्य आदि देखें तो व्यक्ति वामनक अर्थात् अधिक बौना, मध्यबली हों तो अपेक्षया कम बौना तथा अल्पबली हों तो थोड़ा बौना होता है। यह तारतम्य ध्यान में रखना चाहिए।

द्वितीय योग में पंचमस्थ द्रेष्काण पापयुक्त हो तथा शनि चन्द्र व सूर्य से दृष्ट हो तो शिशु अभुजा (बिना हाथ वाला), नवमस्थ द्रेष्काण पापयुक्त होकर सौर शंशाक दिवाकर दृष्ट हो तो बिना पैर वाला तथा लग्न, द्रेष्काण पाप युक्त होकर पूर्ववत् शनि आदि से दृष्ट हो तो शिशु बिना सिर का होता है। गार्गि ने ऐसा ही कहा है। पाप ग्रहों में हमारे विचार से मंगल,राहु व केतु को समझना चाहिए–

लग्नद्रेष्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः।
कुर्याद् विशिरसं तद्वत् पंचमे भुजवर्जितम्।।
विपादं नवमस्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः।। (गार्गि)

पिछले श्लोक के अन्त में प्रोक्त **'न चेत् सौम्य दृष्टिः'** का यहाँ भी प्रयोग है। अर्थात् शुभ दृष्टि रहने पर कुफल में अवश्य कमी होगी।

जन्म कुण्डली में ये योग होने पर तत्तत् दशाओं में उक्त अंगों का नाश बताना चाहिए। बलाबल से सर्वथा अंग नाश या विकलता कहें।

नेत्र नाश योग–

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षिते,
नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुद्लोचनः।
व्ययगृहगतश्चन्द्रोवामं हिनस्त्यपरं रवि-
स्त्वशुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः।।20।।

(हरिणी)

सिंह लग्न में चन्द्रमा व सूर्य स्थित हों तथा मंगल शनि देखते हों तो शिशु जन्म से ही नेत्रहीन होता है। यदि सिंह लग्नस्थ चन्द्रमा शुभ (गुरु शुक्र) अशुभ (मंगल शनि) मिश्रित ग्रहों से दृष्ट हो तो आँखों में सफेदी, निशान, फूला आदि होता है। बारहवें स्थान में चन्द्रमा बायीं आँख का एवं द्वितीय में सूर्य दाँयी आँख का नाश करता है।

पूर्वोक्त सभी अशुभ योगों में शुभ दृष्टि रहने से शरीर दोष याप्य अर्थात् निर्वाह योग्य होते हैं।

उक्त श्लोक में सूर्य को दायीं आँख व चन्द्र को बायीं आँख का प्रतिनिधित्व दिया है। अतः सिंह लग्न में सूर्य हो तथा सौर-शंशाक -दिवाकर-दृष्ट हो तो दायीं आँख का एवं चन्द्रमा हो तो बायीं आँख का अन्धा अर्थात् काणा होगा, यह विशेष ध्यातव्य है।

श्लोक के चतुर्थ चरण का सम्बन्ध पूर्वोक्त सभी गर्भदोष प्रदर्शक योगों से है। अर्थात् शुभ दृष्टि से ये योग कम प्रभावशाली होते हैं। औषधि

प्रयोग, मन्त्र प्रयोग एव सावधानी से इन दोषों को नियन्त्रित किया जा सकता है ।

आधान या प्रश्न से जन्म काल निश्चय–

तत्कालमिन्दुसहितोद्विरसांशकोयस्तत्तुल्यराशिसहिते परतः शशांके ।
यावानुदेति दिनरात्रिसमानभागस्तावद्गते दिननिशोः प्रवदन्ति जन्म । ।21 । ।

(वसन्ततिलका)

आधान या प्रश्न के समय चन्द्रमा जिस द्वादशांश में स्थित हो, उस द्वादशांश की क्रमसंख्यानुसार, उतने ही आगे द्वादशांश राशि में चन्द्रमा रहते हुए दसवें मास में (नाक्षत्र व सौर) जन्म कहना चाहिए ।

दिन बली व रात्रि बली लग्न राशि के गतांशों से अनुपात करके दिनगत व रात्रिगत इष्टकाल का निर्णय करें ।

आधान लग्न या प्रश्न लग्न में प्रथम द्वितीयादि जो द्वादशांश हो, उस द्वादशांश राशि से उतने ही आगे जाने पर जो राशि मिले, वह जन्म चन्द्र है । उदाहरणार्थ आधान या प्रश्न में चन्द्रमा 2. 11^0 राश्यंश में है तो यह पांचवें द्वादशांश में है तथा द्वादशांश राशि तुला है । अतः तुला से पांचवीं राशि (कुम्भ) में जब चन्द्रमा दसवें मास में होगा तो प्रसव काल समझें । दिवा बली रात्रि बली राशि के गतांश अर्थात् लग्न स्पष्ट के अंशों से अनुपात करें । उदाहरणार्थ 3. 5^0 लग्न है तो 30 अंश में पूरा दिनमान तो गतांश में कितना ? माना कि दिन मान 30 घड़ी ही हो तो 5 घड़ी दिन बीतने पर दिन बली लग्न होने पर तथा 5 घड़ी रात बीतने पर रात्रिबली लग्न (आधान या प्रश्न) में जन्म समझें ।

स्पष्ट जन्म चन्द्रमा से नक्षत्र जानकर तिथि भी निश्चित की जा सकती है । $2^0.30'$ या $150'$ कला (एक द्वादशांश) में 30^0 अंश तो प्रश्न कालीन चन्द्रमा के वर्तमान द्वादशांश के युक्त भागों से कितने अंश इस प्रकार से अनुपात करें ।

माना कि आधान कालीन चन्द्रमा 2. 11^0. $30'$ है । $2^0.30'$ का एक द्वादशांश अतः 4 द्वादशांश बीतकर चौथे द्वादशांश का $1^0.30'$ भाग भी व्यतीत है । मिथुन से पांचवां द्वादशांश तुला का है, अतः तुला से पाँचवीं राशि कुम्भ में चन्द्रमा रहने पर दसवें महीने में प्रसव होगा । कुम्भ राशि में धनिष्ठा के दो चरण अर्थात $6^0.40'$ अंशादि व शतभिषा के दो चरण $6^0.40'$ अंशादि, कुल $13^0.20'$ अशांदि के भीतर रहने से चन्द्रमा शतभिषा द्वितीय चरण में है । द्वितीय चरण का भुक्त भाग 1^0. $30'$ या 90 कला तथा भोग्य भाग 1^0. $50'$ या 110 कला शेष हैं । एक द्वादशांश की $150'$ कला = 30^0 तो वर्तमान

द्वादशांश की गत कलाएँ 90′ में कितने अंश ? तब भुक्त द्वादशांश कला $\frac{90' \times 30\text{अंश}}{150'} = \frac{90}{5}$ अर्थात् 18 अंश मिलें। अतः पूर्व प्राप्त कुम्भ राशि के 18 अंश व्यतीत होने पर जन्म होगा। या 10.18^0 जन्म कालीन चन्द्र होगा। इस चन्द्र की संगति से भी प्रसव समय व दिन का निश्चय किया जाना सुगम है।

अब जन्मेष्टकाल साधनार्थ उपाय बताया जा रहा है। आधान या **प्रश्न** लग्न स्पष्ट माना कि 3. 5^0. 48′ है। यह कर्क राशि **'गोऽजाश्विकर्कि इत्यादि** न्याय से रात्रि-बली है। अतः रात में जन्म होगा। लग्न स्पष्ट के **अंशों** को घड़ी पल मान कर दिन मान में जोड़ा 30 + 5.48 = 35.48 इष्ट काल पर जन्म होगा। लग्न स्पष्ट में जितने अंश कला उतने ही घड़ी पल प्रायः रात या दिन बीतने पर जन्म होगा यह व्याख्या बहु प्रचलित है। गार्गि ने कहा है–

> **यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थितः।**
> **तत्संख्यो यस्ततोराशिर्जन्मेन्दौ तद्गते वदेत्।।**
> **तत्कालदिवसनिशासंज्ञं समुदेति राशिभागोऽयम्।**
> **यावानुदयस्तावद् वाच्यो दिवसस्य रात्रेर्वा।।**

यदि दिमना 30 घड़ी से कम अधिक हो तो $\frac{\text{दिनमान} \times \text{लग्नगतांश}}{30 \text{ अंश}}$ सूत्र से अनुपात करके भी दिनगत या रात्रिगत घटी जानी जा सकती हैं। हमें लग्नगतांशों के बराबर ही घटी मानना अभीष्ट है।

इस श्लोक की व्याख्या में अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार अपनाए हैं। उन सब की सोदाहरण चर्चा यहाँ करना सम्भव नहीं है। पुनश्च मुख्य मतों का दिग्दर्शन कराना हम आवश्यक व उपयोगी समझते हैं। हमने बहुमत सिद्ध व आर्षवचन प्रमाणित व्याख्या ऊपर बता दी है। विभिन्न अर्थों पर दृष्टिपात करने से पूर्व गर्भाधान के विषय में कुछ बातें बताना आवश्यक हैं। गर्भाधान के समय जब अरबों शुक्राणु गर्भाशय द्वार में प्रवेश करते हैं तब स्त्री की दो फैलोपियन ट्यूबों से बारी-बारी से प्रतिमास अण्डा बाहर निकलता है। इस अण्डे से किसी एक शुक्राणु का संयोग हो जाने पर गर्भाधान होता है। यह क्रिया कभी-कभी समागम के तुरन्त बाद ही हो जाती है तथा कभी 5-6 घंटों के बाद भी हो सकती है। कारण, शुक्राणु का जीवन इतना ही होता है। वे इतने समय तक योनि में बड़ी चंचलता के साथ विचरण करते हैं। तब वास्तविक गर्भाधान का समय जानना आज कल

उपकरणों के माध्यम से सम्भव है। जिस जमाने में यह बात लिखी गई थी तब सम्भोग काल को ही आधान का समय मानकर सारी क्रिया की जाती थी। अतः कई विकल्प चलन में आ गए थे। यह विधि कितनी प्रामाणिक है, इसकी परीक्षा आज सम्भव है। अस्तु विविध मत-मतान्तरों की झाँकी प्रस्तुत है।

(i) **'तत्तुल्य राशि सहिते'** में तत् शब्द का अर्थ द्वादशांश गणना सदैव स्वराशि से होने पर भी कुछ लोग मेषादि से गणना भी करना मानते हैं। अर्थात् जिस संख्यक द्वादशांश में चन्द्र हो, उतनी ही मेषादि राशि में चन्द्र रहने पर जन्म होता है। तब **'स्फुटमिहभवति द्वित्रिसंवादभावाद्'** इस वराहोक्त नियम से द्वादशांश से पूर्व प्राप्त चन्द्रमा तथा मेषादि गणना से प्राप्त चन्द्रमा में समानता या परस्पर 1.5.9 रहने पर चन्द्र को शुद्ध मानते हैं। यह नियम सारे मतों में लागू समझें।

'मेषादिगणनेन द्वादशांशादिगणनेन च प्राप्तयोः प्रसवचन्द्रयोरैक्ये त्रिकोणसम्बन्धे वा सति निःसंशयेन वक्तव्यत्वं भवति।' (विवरण में उद्धृत)।

(ii) वर्तमान चन्द्र द्वादशांश से जन्म राशि का निर्णय कर सम्पूर्ण द्वादशांश को 9 भागों में बाँट लें। एक-एक भाग उस राशि के नक्षत्रों का चरण होगा। तदनुसार भी जन्म-नक्षत्र व चरण का निश्चय करें।

'तत्कालेन्दु द्वादशांशस्य नवधा खण्डितस्य गतागतवशेन प्रसवनक्षत्रमपि वक्तव्यम्।'

(iii) चन्द्रमा के अधिष्ठित नवांश के 12 भाग कर लें। यह भाग 1 नवांश = 15 घड़ी तथा 900 पल ÷ 12 = 75 या 1 घड़ी 15 पल के बराबर होता है। मूल में आए **'शकोय'** शब्द का कटपयादि से यही अर्थ है। अतः अधिष्ठित द्वादशांश के नवांश नियम (ii) से व नवांश के द्वादशांश से भी देखें।

'चन्द्राधिष्ठितनवांशद्वादशांशकेनापि विचिन्तनीय इत्यत्र प्रदर्शितेन 'शकोय' इति शब्देन द्योत्यते।

(iv) 'द्विरसांशको यः' इसमें प्रयुक्त द्विरस शब्द का अर्थ द्विरसन या द्विजिह्व या सर्प होने से राहु भी है। अतः नियम 3 के अनुसार राहु के नवांशक के द्वादशांश से भी देखना चाहिए।

(v) दक्षिण भारतीय व्याख्याओं में तत्काल का अर्थ 'क्षणिक' लिया गया है। यह तात्कालिक स्पष्ट न होकर क्षण राहु व क्षण चन्द्र इस प्रकार से कहा जाता है। इसकी विधि ग्रह स्पष्ट से पृथक् है। दिन गत घड़ियों

(इष्टकाल) को विपलात्मक बनाकर 1000 का भाग दें। लब्धि राशि है। शेष को 30 से गुणा कर पुनः 1000 का भाग दें तो अंश व शेष × 60 को 1000 से भाग देने पर कला होंगीं। इस राश्यंश कलात्मक मान को 12 राशि में से घटाने पर **क्षणराहु** होता है। विस्तार अन्यत्र देखें। इस राहु की भी नवांश राशि या नवांश की द्वादशांश राशि में चन्द्र रहने पर प्रसव होता है।

(vi) 'तत्काल इन्दु सहितो द्विरसांशको यः' इसका अर्थ 'काल लग्न' या 'होरा लग्न' है। अतः उस लग्न में यदि तत्काल (क्षण) चन्द्रमा हो पड़े तो उसके द्वादशांश या नवांश आदि राशि में चन्द्र रहने पर प्रसव होगा। अथवा लग्न चन्द्र स्पष्ट योग में स्थित द्वादशांशादि से विचार करें।

इष्टकाल के विपल बनाकर 30 से भाग देकर पूर्ववत् राश्यंश प्राप्त करके कर्क से आगे गिनकर उतने ही राश्यंशों में तत्काल चन्द्र रहता है। अथवा इष्ट विपल को 45 से भाग देकर सिंहादि तत्काल चन्द्र है। अथवा इष्ट विपलों को 15 से भाग देकर प्राप्त राश्यादि में लग्न राशि जोड़ने से क्षण चन्द्र होता है।

(vii) तत्काल चन्द्र व तत्काल गुलिक (द्विरसंन) के नवांश के बारहवें भाग (द्वादशांश) से प्रसव चन्द्र देखें। गुलिक के नवांशादि की गणना उल्टे क्रम से होगी। दोनों के योग के भी नवांश गत द्वादशांश से देखें। दक्षिण भारतीय विद्वान् इन विधियों को विशेष मान्यता देते हैं।

नवांशको नवांशस्य नवांशद्वादशांशकौ।
द्वादशांशश्च लग्नेन्दुमान्दीनां बन्धसूचकाः।।
नवांशकं तु प्रथमं पश्चान्नवनवांशकम्।
नवांशद्वादशांशश्च द्वादशांशमतः परम्।।
चत्वार्येतानि कर्माणि कृत्वा लब्धं विचिन्तयेत्।"

उक्त प्रमाण से नवांश, नवांश का नवांश, द्वादशांश, नवांश का द्वादशांश ये चार बातें प्रमुखता से देखें। पुनश्च नवांश का नवांश, नवांश का द्वादशांश व लग्न चन्द्र व गुलिक के संयुक्त या पृथक द्वादशांश से फल देखें।

इस प्रकार विविध सम्प्रदायानुसारी अर्थ यहाँ विद्वान् पाठकों की सूचनार्थ प्रस्तुत किए गए हैं। बहुत से प्रकारों से समान फल पाने पर

निर्णय विश्वसनीय होता है। इनमें भी लग्न, चन्द्र, गुलिक के नवांश, द्वादशांश व नवांश के द्वादशांश से अवश्य विचार करें, ऐसा हमारा विचार है।

प्रसवकाल का विशेष योग–

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे,
यदि भवति निषेकः सूतिरब्दत्रयेण।
शशिनि तु विधिरेवं द्वादशाब्दे प्रकुर्या–
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या।।22।।

यदि लग्न में शनि की राशि (मकर व कुम्भ) का नवांश हो तथा शनि सप्तम में हो तो इस योग में आधान होने पर तीन वर्षों में प्रसव होता है।

इसी प्रकार से लग्न में चन्द्र का नवांश हो तथा चन्द्रमा सप्तम में स्थित हो तो बारह वर्षो या मासों में प्रसव होता है।

यहाँ इस अध्याय में बताए गए सारे नियमों का प्रयोग युक्ति, बुद्धि व कुशलता से जातक में भी करना चाहिए।

तीन वर्ष या बारह वर्ष पश्चात् प्रसव हो यह बात बिल्कुल सम्भव नहीं है। यदि 10 मास से अधिक समय हो जाए तथा प्रसव पीड़ा न हो तो कृत्रिम पीड़ा बनाकर या शल्य चिकित्सा द्वारा प्रसव करा दिया जाता है, यह चिकित्सकाचार है। तब वराह जैसे महामति आचार्य ने ऐसे योगों को यहाँ क्यों कहा ? आधान होने पर जन्म समय जानने हेतु **'द्वादशाब्द'** शब्द का अर्थ बारह मासात्मक नाक्षत्र मासमय वर्ष है। ऐसे योग में 324 दिन के बाद या 12 वें मास में सामान्य प्रसव होते देखा है। **'अबति सीमानं रक्षति'** इस व्युत्पत्ति (अब्+दन्) से बने अब्द शब्द का वास्तविक अर्थ **'समय सीमा'** है। अतः यथा प्रसंग मास या वर्ष या दिन अर्थ लिया जा सकता है।

'द्वादशाब्द इति द्वादशभिर्नाक्षत्रमासैः स्त्रीणामृतुकालाधिकरणैः यः संवत्सरो भवति स द्वादशाब्दः।' (रुद्रभट्ट)

लेकिन **'अब्दत्रयेण'** में यह संगति नहीं लगेगी। तीन मास में प्रसव संज्ञा नहीं होती है। तब वहाँ अब्द का अर्थ वर्ष ही लेना पड़ेगा। कदाचित् तीन वर्षों में भी प्रसव होता होगा।

क़हा जाता है कि चर आधान लग्न को चन्द्र देखे तो प्रायः 287 दिन, स्थिर लग्न को देखे तो 292 दिन, द्विस्वभाव लग्न को देखे तो 281 दिनों में प्रसव होता है। ये दिन सौर मान से हैं। कल्याण वर्मा व पृथुयशा ने

प्रसव काल की परमावधि 12 मास ही कही है। अतः आचार्य ने यहाँ युक्तिपूर्वक 'अब्द' शब्द से प्रसव काल में मास तथा प्रश्न व जातकादि में सन्तानोत्पत्ति समय के कथन की विधि बताई है। त्रय शब्द का कटपयादि से अर्थ 12 तथा द्वादश का अर्थ सीधे ही 12 होता है। प्रथम योग में स्वयं ही स्वाभाविक प्रसव हो जाता है तथा दूसरे में 'युक्त्या' तरकीब लगाकर, कृत्रिम उपायों से प्रसव होता है। 'अब्दत्रयेण' अर्थात् तीन वर्ष या 12 मासों में प्रसव काल जातक व आधान में यथावसर कहने का नियम कहा गया है। सब ग्रहों में मन्द ग्रह शनैश्चर से तो तीन वर्ष कहे और सर्वतीव्र ग्रह चन्द्रमा से बारह वर्षों में प्रसव कहना स्वयं ही विरोधी हो जाएगा। अतः यहाँ 'अब्द' शब्द का यथावसर वर्ष व मास रूपी अर्थ ही आचार्य को अभिप्रेत है।

जन्मकुण्डली में अध्यायोक्त योगों का किस प्रकार विचार करना है, इस विषय को साथ-साथ ही स्पष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार श्लोकोक्त योगों की जन्मकालीन स्थिति बनने पर विवाहोपरान्त तीन व बारह वर्षों के बाद सन्तति लाभ की सम्भावना कहनी चाहिए। ऐसा समझना योग्य है। 'सूतिकालेऽपि' कहकर जातक में भी विचार करना, ऐसे वचन से स्पष्ट है कि यहाँ तक प्रोक्त नियमों की सम्भवता असम्भवता का बुद्धि से निर्णय करके यथाप्रसंग प्रश्न आदि में अन्यत्र भी प्रयोग करना चाहिए। यहाँ तक बताए गए नियम अधिकार सूत्रों की तरह अधिकार नियम या आधारभूत नियम हैं तथा इनका यथासम्भव व यथाप्रसंग सर्वत्र प्रयोग किया जा सकता है। इसी तरह प्रश्न लग्न में भी विचार करना योग्य है। इस अध्याय में श्लोक 4 से आगे 'दिवाकरेन्द्वौ स्मरगौ' इत्यादि श्लोकों से जो रोग या मृत्यु योग बताए हैं, वे सब आधान, प्रश्न व जन्म में समान रूप से लागू होंगे।

श्लोक में **'युक्त्या'** शब्द का सम्बन्ध **'चिन्त्यम्'** व **'प्रकुर्यात्'** दोनों क्रियाओं के साथ है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायामाधानाध्यायश्चतुर्थः।।

[5]

(स्थिति खण्डः)

अथ जन्माध्यायः

प्रसव समय में पिता की अवस्था–

पितुर्जातः परोक्षस्य लग्नमिन्दावपश्यति ।
विदेशस्थस्य चरभे मध्याद् भ्रष्टे दिवाकरे ।। 1 ।।

(अनुष्टुप्)

यदि जन्म लग्न को चन्द्रमा न देखता हो तो पिता की अनुपस्थिति में प्रसव कहना चाहिए । उक्त योग के साथ यदि सूर्य भी दशम स्थान से पीछे हो, अर्थात् 9. 8. 7 आदि चतुर्थपर्यन्त भावों में चरराशि में हो तो पिता विदेश में होता है । स्थिर राशि से स्वदेश में तथा द्विस्वभाव राशि से मार्ग में पिता है, ऐसा स्वयं सिद्ध है । दशम में ही सूर्य हो तो योग नहीं बनेगा ।

जन्म लग्न को देखकर उसकी प्रामाणिकता का निश्चय एवं पृच्छक को विश्वासोत्पादन ये दो उद्देश्य हैं । एक साथ अनेक बातें यदि घटित हों तो लग्नादि को शुद्ध समझना चाहिए । लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि पिता की उपस्थिति को द्योतित करती है तथा लग्न पर चन्द्र दृष्टि न होना पिता की अनुपस्थिति का मूलाधार है । चन्द्र दष्टि न रहने पर सूर्य यदि मध्यान्हेतर राशि से बाद की चर राशि (दशम से पीछे) में हो तो विदेश गत (ग्रामान्तर या दूसरे शहर में भी) होने से परोक्ष, स्थिरगत हो तो पिता अपने ही शहर

में होता हुआ भी प्रसूति स्थल से दूर होता है तथा द्विस्वभाव राशि में सूर्य 9. 8. 7 भावों में तथा चन्द्र लग्न को न देखे तो पिता अपने शहर व दूसरे शहर के बीच मार्ग में होता है। दशम स्थान से पीछे 9. 8. 7 आदि भावों में सूर्य रहने पर जातक जन्म स्थान से दूर रोजगार करता है, यह विशेष अर्थ है।

यहाँ से एक वास्तविक उदाहरण लेकर चलते हैं। इसी उदाहरण के संदर्भ में सारी प्रक्रिया को यथावसर समझते चलेंगे। इससे पूर्व **'मध्याद् भ्रष्टे'** कां तात्पर्य समझना आवश्यक है। मध्य शब्द का तात्पर्य लग्न से दशम राशि होती है। सभी टीकाकारों ने यही अर्थ माना हैं। मध्य से भ्रष्ट अर्थात् दशम स्थान से नीचे की ओर आने वाला अवरोही सूर्य 'मध्याद्भ्रष्ट' रहेगा। इसीलिए रुद्रभट्ट ने नवम, अष्टम, सप्तम आदि भावों को माना है। भट्टोत्पल ने लिखा है कि 9.8 या 11. 12 भाव। सब उसी का अन्धानुकरण करते गए। वास्तव में 'लक्ष्यसंगमनेन लक्षणपरीक्षा' इस सिद्धान्त से ही देखना चाहिए। जो बात व्यवहार में दृक्तुल्य या खरी उतरे, वही मानिए। जहाँ तक शास्त्रीय प्रमाण की बात है सारावली में स्पष्टतया दशम भाव से च्युत या चर राशि गत सूर्य कहीं भी होने पर पितृपरोक्षकहता है। वराह मिहिर के पुत्र पृथुयशा ने कहीं भी चर राशि व नवांश में सूर्य रहने पर पिता को विदेशस्थ कहा है। 9.8 तथा सप्तम भाव से आगे के भाग में सूर्य होने पर उक्त फल मानना चाहिये। इस विषय में यवन ने कहा है–

'चरस्थितेऽर्केऽष्टमधर्मगे वा'।

चरराशिगते भानौ नवमाष्टमसंस्थिते। (शुक जातक)

लग्न पर चन्द्र की दृष्टि न होना तथा सूर्य का दशम भाव से आगे पीछे दृश्यार्ध में होना पिता की परोक्षता का आधार है। यह पराशर का कथन है।

कर्मभावं बिना दृश्ये चरभे यदि भास्करः।
लग्नं चन्द्रो न पश्येच्चेद् दूरसंस्थः शिशोः पिता।। (पाराशर होरा)

हमारे विचार से रुद्रभट्ट का मत अधिक उपयुक्त है। तदनुसार दशम से नीचे 9. 8. 7. 6. 5. 4. तक क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक दूर पिता होता है–

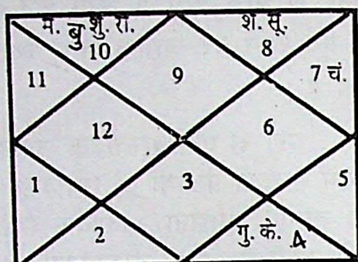
'दिवाकरे' शब्द का देहली दीपक-न्याय से अगले श्लोक के **'उदयस्थेऽपि'** से भी सम्बन्ध है।

उदाहरणम्

लग्न



नवांश



जन्मतिथिः– 2. 12. 1982 ई० स्थान–नई दिल्ली समय– 7.15 a.m.

(ग्रह स्पष्ट)

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	लग्न	दशम
7	2	9	7	7	7	6	2	7	4
15	0	0	22	1	22	6	10	18	29
53	38	2	47	20	50	39	39	57	54

प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्रमा की दृष्टि लग्न पर नहीं है। तथा सूर्य स्थिर राशि में लग्नांशों से मामूली पीछे ही है। अतः पिता स्वदेश में, अपने ही शहर में, उसी कालोनी में लेकिन प्रसूति स्थल से थोड़ा दूर था। यह वास्तविकता है। अगले श्लोक में लग्नस्थ सूर्य को भी पितृ परोक्ष कारक बताया है।

उदयस्थेऽपि वा मन्दे कुजे वास्तं समागते।
स्थिते वान्तः क्षपानाथे शशांकसुतशुक्रयोः ।।2।।

लग्न में सूर्य हो तथा चन्द्रमा लग्न को न देखे, यह एक योग है। लग्न में शनि हो तथा चन्द्रमा लग्न को न देखे यह द्वितीय योग है। सप्तम में मंगल हो तथा चन्द्रमा लग्न को न देखे यह तृतीय योग है। चन्द्रमा बुध व शुक्र के मध्य में स्थित हो यह चौथा योग है। इन सब योगों में पिता के परोक्ष (अनुपस्थिति) में प्रसव होता है।

'उदयेस्थेऽपि' का पिछले श्लोक के 'दिवाकरे' से भी सम्बन्ध है। अतः ऐसा अर्थ किया गया है। रुद्रभट्ट ने कहा है– **'अत्र पितृपारोक्ष्यविषये चत्वारो योगा उक्ताः।'** बीच में चन्द्रमा से तात्पर्य है कि चन्द्रमा के अगले पिछले भावों में 2. 12 या एक राशि के अगले पिछले अंशों में बुध शुक्र हों। **'इन्दावपश्यति'**

अर्थात् चन्द्रमा लग्न को न देखे इसका अध्याहार पहले तीन योगों में है। वराह ने स्वयं लघुजातक में कहा है–

चन्द्रे लग्नमपश्यति मध्ये वा सौम्यशुक्रयोश्चन्द्रे ।
जन्मपरोक्षस्य पितुर्यमोदये वा कुजे चास्ते ।।

सर्पवेष्टित जन्म योग–

शशांके पापलग्ने वा वृश्चिकेशत्रिभागगे ।
शुभैः स्वायस्थितैर्जातः सर्पस्तद्वेष्टितो ऽपिवा ।। 3 ।।

चन्द्रमा या पाप ग्रह की राशि लग्न में मंगल का द्रेष्काण पड़े तथा शुभ ग्रह 2. 12 भावों में स्थित हों तो मानवी के गर्भ से सर्प या सर्पवेष्टित बालक का जन्म होता है।

भट्टोत्पल ने ये दो योग माने हैं। किसी भी राशि में स्थित चन्द्रमा यदि मेष या वृश्चिक के द्रेष्काण में हो तथा 2. 11 भावों में शुभ ग्रह स्थित हों, यह एक योग है।

पापलग्न अर्थात् पापी ग्रह की राशि लग्न में हो और 2. 11 में शुभ ग्रह एवं लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो, यह दूसरा योग है।

भट्टोत्पल ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि 2. 11 भावों का विचार सदैव लग्न से करना है या चन्द्र व लग्न से।

रुद्रभट्ट ने इसे एक ही योग माना है। तन्मतानुसार चन्द्रमा लग्न में हो, लग्न में पाप ग्रह की राशि हो तथा लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो एवं लग्न से 2. 11 भावों में शुभ ग्रह हो, तब पूरा योग बनता है। हमारे विचार से 2. 11 भाव सदैव लग्न से ही देखें तथा लग्न या चन्द्रमा में से कोई भी या दोनों मंगल के द्रेष्काण में पड़ें तब योग बनेगा। लेकिन प्रभाव में न्यूनाधिकता होगी।

यह वास्तव में मानव जन्म योग ही है, वियोनि योग नहीं। मंगल के स्थान पर वृश्चिकेश कहकर वृश्चिक द्रेष्काण में अधिक व मेष में कम फल का संकेत किया है। हम भट्टोत्पल की व्याख्या को अधिक सही मानते हैं। यदि लग्न व चन्द्रमा से एक साथ वृश्चिक योग बने तो निसन्देह सर्पाकार, विकृत शरीर वाला मानव जन्म होता है।

यदि मेष द्रेष्काण हो तो कम बली योग, सर्प युक्त, नाल युक्त, सर्प चिन्ह से युक्त, सर्पाकार फुंसियों वाले विसर्प रोग से युक्त बालक का जन्म होता है। यह असम्भव योग नहीं है। यदि असम्भव होता तो आचार्य वज्रादि योगों की तरह शंका प्रकट करते।

ऐसा व्यक्ति विष प्रयोग में निपुण या सपेरा, साँपों का नियन्त्रक, साँप की तरह लोच युक्त शरीर वाला अथवा साँप की तरह क्रूर, बदले की भावना से युक्त स्वभाव वाला होता है। यदि बलवान् योग हो तो साक्षात् सर्प तथा कम बली योग हो तो उक्त सर्पवत् चिन्ह, गुण व स्वभाव युक्त बालक का जन्म होगा। यह विशेष अर्थ है।

'जातः सर्पः सर्पवत् क्रूर स्वभावो भवति। सर्पवेष्टितः सर्पवेष्टित शरीरत्वादिप्रदर्शनकुशलो भवति। इति प्रदर्शयितुं लक्षणमुक्तमिति सव-'मनवद्यम्।' (विवरण)

जरायु वेष्टित यमल–

चतुष्पदगते भानौ शेषैर्वीर्यसमन्वितैः।
द्वितनुस्थैश्च यमलौ भवतः कोशवेष्टितौ।।4।।

सूर्य यदि चतुष्पद राशि में हो तथा शेष ग्रह द्विस्वभाव राशि में बलवान् हों तो एक जरायु (गर्भकोष) से वेष्टित दो बालकों का जन्म होता है। यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो तथा शेष ग्रह कम बलवान् होकर चर या स्थिर राशि में हों तो एक ही बालक का जरायु (प्लेसेंटा) से लिपटा हुआ जन्म होता है। यह अतिरिक्त ध्वन्यमान अर्थ है।

मेष, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्ध, मकर का पूर्वार्ध इनमें से किसी में सूर्य स्थिति हो तथा शेष ग्रह बलवान् (केन्द्रगतादि) द्विस्वभाव राशि में हों तो दो बालक जरायु में लिपटे होते हैं।

यदि अन्यथा पूर्वोक्त प्रकार से युगल जन्म प्रतीत न होता हो तो एक ही बालक को जरायुवेष्टित कहें। अथवा शेष ग्रहों के कम बली होने पर या केन्द्रों से अन्यत्र स्थित होने पर भी एक बालक का जन्म होता है, ऐसा यथावसर समझें। हमारे विचार से पूर्वोक्त यमल योगों का विचार यहाँ आवश्यक है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि इस योग में उत्पन्न जातक यदि जीवित रहे (प्रायिकत्वे जातो जीवति) तो बहुत कोश (खजाने) वाला होता है। अथवा खजाने से घिरा हुआ होता है।

'धनेन परस्पर सम्बन्धवान् सदा सहचारी भवतीत्यर्थोऽपि द्योत्यते।'

छागसिंहवृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे।
राश्यंश सदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः।।5।।

मेष, सिंह या वृष लग्न में मंगल अथवा शनि स्थित हो तो लग्न में उदित नवांश की राशि से निर्दिष्ट शरीरांग में नाल से लिपटे हुए बालक का जन्म होता है।

नाल अर्थात् नाभि नाल जिसके माध्यम से बालक गर्भावस्था में माता के खाए हुए भोजन से स्वजीवनार्थ रस ग्रहण करता है। वह नाल जन्म समय में कभी-कभी शरीर पर लिपटी होती है। गले पर लिपटी होने से बालक के प्राण भी संकट में पड़ जाते हैं। तब कुशल चिकित्सक व नर्स तत्परता से उसे हटा कर बालक की प्राण रक्षा करते हैं।

जार जात योग–

न लग्नमिन्दुं च गुरुर्निरीक्षते न वा शशांकं रविणा समागतम्।
सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात्।। 6।।

यदि बृहस्पति लग्न व चन्द्रमा को या एकत्र स्थित रवि चन्द्र को न देखता हो तो पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से उत्पन्न होने या न होने का विशेष ऊहापोह के साथ कथन करना चाहिए। पापी ग्रहों से युक्त चन्द्रमा साथ में सूर्य से भी युक्त हो तो पर पुरुष से उत्पन्न जातक समझना चाहिए।

लग्न गत या अन्यत्र स्थित चन्द्रमा या लग्न को बृहस्पति न देखता हो तो जातक पर पुरुषोत्पन्न होता है, ऐसी सम्भावना रहेगी। **निः निष्कर्षेण चयः चयनमन्वेषणमिति निश्चयः**। ल्यब्लोपे पंचमी होने से 'निश्चयात्' शब्द का अर्थ है– अत्यन्त गम्भीर विश्लेषण करके।

गुरु का निरीक्षण कहकर आचार्य ने किसी भी प्रकार से लग्न या चन्द्रमा या दोनों से गुरु का राशि, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, दृष्टि या योग सम्बन्ध बताया है। अतः गुरु का लग्न चन्द्र से सम्बन्धाभाव पर पुरुष जातत्व का आधार है। गर्गि का कथन है–

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यराशिगे।
तद्द्रेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते।।

रुद्रभट्ट के अनुसार द्वितीयार्ध में प्रोक्त योग पूर्वोक्त योग का अपवाद है। सूर्य व चन्द्रमा एक साथ न हों अर्थात् एक राशि में या सर्वथा अंशात्मक युति न करें तो परजातत्व का आधार बनता है। अतः सूर्य चन्द्रमा एक साथ हों तो पर जात नहीं होगा, यह तात्पर्य है। रुद्रभट्ट ने कहा है–

'रविचन्द्रावेकस्थौ चेत् परेण जातत्वं न वक्तव्यमिति तात्पर्यम्।

लेकिन उक्त व्याख्या करते समय उन्होंने पाठ भेद माना है। **'न वा शशांको रविणा समागतः।'** इस पाठ से उक्त अर्थ युक्त ही है।

भट्टोत्पल ने **'शशांकं रविणा समागतं'** कहकर अमावस्या के चन्द्रमा को गुरु न देखे तब उक्त परजात योग कहा है। हमें भट्टोत्पल वाला पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

गुरु की दृष्टि का अभाव रहे तथा सूर्य चन्द्रमा एक साथ युति करें। अमावस्या को सूर्य चन्द्र का समागम होता है। तब सूर्य चन्द्रमा की युति होने पर गुरु की दृष्टि न रहे, यह द्वितीय योग बनता है, जो उपयुक्त ही है।

तीसरे योग में चन्द्र यदि पापग्रहों से युक्त हो (समान अंश) तथा साथ में सूर्य भी उसी राशि में युति करे तब तृतीय जार जात योग है।

रुद्रभट्ट उक्त योगों को उत्तरोत्तर अपवाद मानते हैं, जबकि भट्टोत्पल तीन पृथक् योग मानते हैं।

हमारे विचार से लग्न या चन्द्र से बृहस्पति का सम्बन्ध न होना अथवा सूर्य चन्द्रमा के एक साथ रहने पर उनसे गुरु का राशि या वर्ग या दृष्टि या योग से सम्बन्ध न होना ये दो आधार है।

सूर्य व चन्द्रमा के एकत्र रहने पर गुरु की दृष्टि हो या न हो, लेकिन मंगल शनि भी उनके साथ हों तो भी परजात कहना चाहिए। उक्त दो योगों में गुरु की दृष्टि निर्णायक है। तीसरे योग में गुरु की दृष्टि रहने पर भी पत्नी पति की इच्छा से परगमन करती है तथा गुरु की दृष्टि न रहने पर स्वेच्छाचार से परपुरुष के पास जाती है, यह विशेष है।

संज्ञाध्यायादि में प्रोक्त ग्रहादि स्वरूप व द्रेष्काण विचार से 'जार' का रूप व प्रकृति, जन्म लग्न से 9. 10 भाव भावेश या सूर्य से निर्णय कर सकते हैं।

पिता की कष्टावस्था–

क्रूरर्क्षगतावशोभनौसूर्याद्यूननवात्मजस्थितौ।
बद्धस्तु पिता विदेशगः स्वे वा राशिवशात्तथा पथि।।7।।

(वैतालीय)

यदि दो पाप ग्रह सूर्य से 5. 7. 9. भावों में पापग्रह की राशि में (स्वराशि उच्च रहित) हों तो जातक का पिता बद्ध अर्थात् कारागार में या अन्यथा मजबूर होता है।

सूर्य चर राशि में हो तो विदेश में, स्थिर हो तो देश में व द्विस्वभाव राशि में हो तो मार्ग में बँधा हुआ समझना चाहिए।

'बद्ध' से तात्पर्य साक्षाद् बद्ध अर्थात् हथकड़ी बेड़ियों से बँधा हुआ, सर्वथा दूसरे के वश में हो। अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कार्याधिक्य, से, राजाज्ञा से, अफसर के आदेश से मजबूर हो।

यदि सूर्य निगड पाश सर्प द्रेष्काण में हो तो साक्षात् अन्यथा कार्य वशात् बद्ध समझना चाहिए।

कर्क का अन्तिम व मध्य, वृश्चिक का मध्य व प्रथम एवं मीन का अन्तिम ये 5 द्रेष्काण सर्पसंज्ञक हैं। मकर का प्रथम द्रेष्काण 'निगड संज्ञक एवं वृश्चिक का मध्य द्रेष्काण ही पाश संज्ञक भी है।

इस योग में उत्पन्न जातक अपने पिता के दोषों का परिणाम प्राप्त करता है, यह रुद्रभट्ट ने अतिरिक्त अर्थ कहा है। अर्थात् पिता के किए कार्यो का दण्डात्मक नतीजा भुगतता है। यह बात हमने भी अनेकत्र संगत ही पाई है।

प्रसव स्थान विचार–

पूर्णे शशिनि स्वराशिगे सौम्ये लग्नगते शुभे सुखे।
लग्ने जलजेऽस्तगेऽपि वा चन्द्रे पोत गता प्रसूयते।।8।।

(वैतालीय)

यदि पूर्ण चन्द्रमा कर्क में, बुध लग्न में व कोई शुभ ग्रह चतुर्थ में हो तो जल में अर्थात् जलयानादि में प्रसव होता है।

अथवा लग्न में जल चर राशि हो तथा सप्तम में चन्द्रमा हो तो भी पोत में या जल प्रदेशों में प्रसव होता है। ये दो योग हैं।

पूर्ण चन्द्रमा कर्क में हो, यह योग तभी बनेगा जब सूर्य मकर गत हो। तब बुध धनु, मकर, कुम्भ, लग्न में रह सकता है। अतः मकर मास में धनु लग्न में बुध, मीन में गुरु, शुक्र यथासम्भव किसी स्थान में हो अथवा मकर लग्न में, मकर मास में, लग्नगत बुध, मेष में गुरु या कुम्भ लग्न में वृषस्थ गुरु रहने पर योग बनेगा। उक्त स्थिति सदैव प्रातःकाल बनने से स्नान समय में जलगत प्रसव सम्भव हो सकता है। 'पोतगता' कहने से नाव आदि द्वारा गम्य स्थान (टापू) आदि में भी जल मध्य रहने से योग सम्भव रहेगा। दूसरे योग में जल चर राशि मकर, कर्क, मीन लग्न में सप्तमस्थ चन्द्र हो तो भी जलीय प्रदेशों में जन्म होता है। ऐसा जातक जीवन में समुद्री व्यापार, यात्रा या विदेशों से लाभ कमाता है, ऐसा रुद्रभट्ट ने विशेष कहा है।

आप्योदयमाप्यगः शशी सम्पूर्णः सम वेक्षतेऽथवा।
मेषूरणबन्धुलग्नगः स्यात्सूतिः सलिले न संशयः।।9।।

(वैतालीय)

यदि जलचर राशि लग्न को जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा पूर्ण दृष्टि से देखे तो निश्चय से जल में प्रसव होता है। यह एक योग है।

अथवा जलचर राशि लग्न में हो और सम्पूर्ण कलाओं वाला चन्द्रमा 1. 4. 10 भावों में स्थित हो तो भी जल में प्रसव होता है।

सम्पूर्ण चन्द्र से पूर्णिमा के चन्द्र का ही ग्रहण है। रुद्रभट्ट के मतानुसार 'आप्य' शब्द से जलमय शुक्र की राशि (2. 7) का भी ग्रहण है। तब शुक्र राशि लग्न हो या इन राशियों में चन्द्रमा हो तब भी यही योग होगा। कर्क, मीन व मकर का उत्तरार्ध लग्न में रहने पर, सप्तम में भी जलचर राशि हो, यह योग कर्क व मकर में ही बनेगा। दूसरे योग में लग्न में जलचर राशि होना आवश्यक है तथा चन्द्रमा 1. 4. 10 में किसी भी राशि में हो तब योग होगा। निष्कर्षतः लग्न में जलचर राशि हो तथा केन्द्र स्थानों में चन्द्रमा सम्पूर्ण हो, इतना कहने से दोनों योगों का ग्रहण हो जाता है।

सम्पूर्ण चन्द्र से तात्पर्य पूर्णिमा का चन्द्रमा होगा। रुद्रभट्ट के मतानुसार ऐसा जातक जलमार्ग से धन कमाता है। यदि चन्द्रमा स्थिर राशि में हो तो घी तेल विक्रयादि से तथा कृषि कार्य से धनागम होता है।

स्थल प्रदेश विभाग–

उदयोडुपयोर्व्ययस्थिते गुप्त्यां पापनिरीक्षिते यमे।
अलिकर्कियुते विलग्नगे सौरे शीतकरेक्षितेऽवटे।।10।।

(वैतालीय)

लग्न व चन्द्रमा से बारहवें भाव में शनि स्थित हो तथा उसे पापग्रह भी देखता हो तो गुप्ति अर्थात् तहखाने, जेल, कारागार, निगूढ़ स्थान आदि में प्रसव होता है।

वृश्चिक या कर्क लग्न में जन्म हो तथा लग्न में शनि हो एवं चन्द्रमा, शनि को देखता हो तो गहरे स्थान (गढ्ढे) में जैसे घाटी, स्थल तल से नीचे के प्रदेश, खान आदि में प्रसव होता है।

प्रथम योग में लग्न में चन्द्रमा रहने पर योग पूर्णतया घटित होगा। यदि लग्न से अन्यत्र चन्द्रमा हो तो किसी एक से द्वादश में शनि रहने पर भी अल्पबली योग होता है।

क्रीडागृहादि में प्रसव योग–

मन्देऽब्जगते विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते क्रमात्।
क्रीडाभवने सुरालये प्रसवं सोषरभूमिषूद्दिशेत्।।11।।

शनि लग्न में जलचर राशि में स्थित हो तथा बुध से पूर्ण दृष्ट हो तो क्रीड़ा आमोद-प्रमोद स्थान, रति स्थान, शयन कक्ष में या उसके निकट प्रसव होता है।

यदि जलराशिगत लग्नस्थ शनि को सूर्य देखे तो देवालय में जन्म होता है। यदि लग्नस्थ जलराशिगत शनि को चन्द्रमा देखे तो ऊषर भूमि (बंजर, रेतीले) प्रदेश में जन्म होता है।

इन योगों में जातक प्रथम योग में नृत्य, गीत, वाद्य, क्रीड़ा (खेल) से, द्वितीय योग में मन्दिर से सम्बन्धित कार्यों से तथा तृतीय योग में नमक आदि बनाने या बेचने के काम से जीविका कमाता है। 'सुरालये' का अर्थ देवागार प्राचीन वचनों के आधार पर कहा गया है–

रविणा देवागारे तथोषरे चैव चन्द्रेण।

(समुद्रजातक)

श्मशानादि में प्रसव योग–

नृलग्नगं प्रेक्ष्य कुजः श्मशाने, रम्ये सितेन्दू गुरुरग्निहोत्रे।
रविर्नरेन्द्रामरगोकुलेषु, शिल्पालये ज्ञः प्रसवं करोति।।12।।

(उपजाति)

यदि लग्न में द्विपद राशि में स्थित शनि को मंगल देखे तो श्मशान में, शुक्र एवं चन्द्रमा देखें तो रमणीय स्थान में, बृहस्पति देखे तो अग्निहोत्र यज्ञशालादि प्रदेशों में, सूर्य देखे तो राजमहल, देवालय या गोशाला में, बुध देखे तो शिल्प कला स्थान में प्रसव होता है।

पूर्व श्लोक से 'शनि' का ग्रहण है। जातक की प्रथम योग में बहुत शवों का दाह, द्वितीय में रमणीय निवास, तृतीय में अग्नि होत्र सम्बन्ध से जीविका, चतुर्थ में महल, देवालय या गोशाला में स्थिति एवं पंचम में शिल्प मन्दिर से सम्बन्ध द्वारा जीविकादि होती है, यह विशेष उद्भावना रुद्रभट्ट ने की है।

प्रसवदेश निश्चय का मुख्य योग–

राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म चरे स्थिरे गृहे।
स्वर्क्षांशगते स्वमन्दिरे बलयोगात्फलमंशकर्क्षयोः।। 13।।

(वैतालीय)

लग्न में स्थित राशि या नवांश के समान संज्ञाध्यायोक्त प्रदेशों में प्रसव बताना चाहिए। चर राशि नवांश या लग्न हो तो मार्ग में, स्थिर हो तो घर में राशि प्रदेश तुल्य स्थान में प्रसव होता है। द्विस्वभाव राशि को पूर्वार्ध में स्थिरवत् व उत्तरार्ध को चरवत् समझें।

लग्न राशीश या नवांशेश स्वराशि में हो तो अपने निजी स्वामित्व वाले मकान में प्रसव होता है। नवांश व राशि में से जो बलवान् हो, उसके बलानुसार उस राशि के प्रदेश में जन्म कहें।

'स्वचराश्च सर्वे' कहकर पहले राशियों के जो प्रदेश कहे हैं, उनका यहाँ उपयोग है। लग्न राशि व नवांश राशि में से जो बलवान् हो, तदनुसार प्रसूति स्थल का निश्चय होगा। वह राशीश स्वक्षेत्र में हो तो अपने मकान में, शत्रुगृह में रहने से शत्रु (खराब सम्बन्धों वाले मकान मालिक) के घर में, मित्र गृह से मित्रगृह में प्रसव समझें। श्लोक 13 से पहले के योगों की स्थिति न दिखे तब **'राश्यंश समान गोचरे'** का प्रयोग करें।

पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न वृश्चिक व नवांश धनु है। नवांशेश गुरु केन्द्र बली, नवांश में उच्च है। लग्नेश स्वोच्च में वर्गोत्तम नवांश में है। अतः दोनों के आधार पर ही निर्णय करते हैं। वृश्चिक के प्रदेश गड्ढा, बिल, विषैले रसायन युक्त प्रदेश, ढके हुए बन्द प्रदेश, कीट प्रदेश हैं–

'गुहाबिलश्वभ्रविषाश्मगुप्तिः'। (वृद्धयवन)

धनु के प्रदेश अश्वशाला, मोटर पार्किंग, औजार युक्त प्रदेश, यज्ञ प्रदेश आदि हैं।

उक्त जातक का जन्म बन्द स्थान, औजार युक्त स्थान, बहुत बड़े पार्किंग स्थल के ऊपर, रसायनादि युक्त प्रदेश (अस्पताल का ऑपरेशन थियेटर) में हुआ था।

मातृपरित्यक्त योग–

आरार्कजयोस्त्रिकोणगे, चन्द्रेऽस्ते च विसृज्यतेऽम्बया।
दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा, दीर्घायुः सुखभाक् च स स्मृतः।।14।।

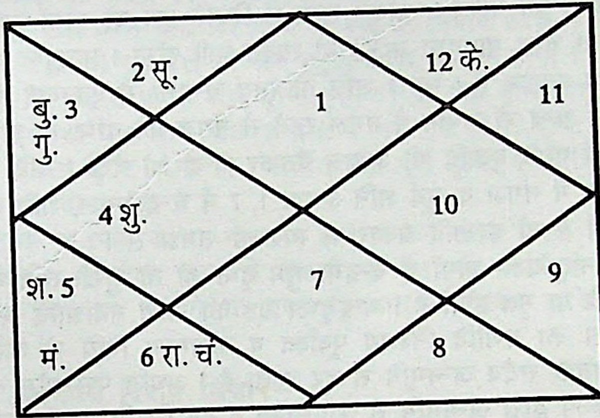
(वैतालीय)

मंगल व शनि दोनों से त्रिकोण या सप्तम में चन्द्रमा हो तो बालक को उसकी माता त्याग देती है। यदि उक्त योग रहने पर चन्द्रमा बृहस्पति से दृष्ट हो तो बालक मातृपरित्यक्त होने पर भी दीर्घायु व सुखी होता है, ऐसा शास्त्र वचन है।

मंगल व शनि से एक साथ त्रिकोण में चन्द्रमा होने पर ही योग बनेगा। सीधी बात यह है कि मंगल, शनि व चन्द्रमा, किसी भी प्रकार से परस्पर 1. 5. 9 में हों। मंगल शनि एक राशि में हों, तब भी उनसे 5-9 में चन्द्र रहने पर योग बनेगा। **'अस्ते च'** के साथ ही **'अर्केच'** भी पाठ मिलता है। भट्टोत्पली में **'अस्ते च'** है। तदनुसार मंगल शनि से सप्तम में चन्द्र रहने पर

भी योग है । यहाँ विचारणीय है कि यह स्थिति भी मंगल शनि के एक राशि में रहने पर बनेगी । **'आरार्कजयोः'** में द्वन्द्व समास रहने से दोनों से एक साथ उक्त भावों में स्थिति रहने पर ही योग बनता है । रुद्रभट्ट कहते हैं कि मंगल शनि से त्रिकोण में सूर्य हो तो पिता द्वारा तथा चन्द्रमा रहने पर माता द्वारा (बदनामी आदि के भय से) तथा दोनों के रहने पर माता-पिता द्वारा त्यक्त होता है । हमें रुद्रभट्ट वाला पाठ 'अर्कैच' भी उपयुक्त दिखता है । साधारणतया **'चन्द्रे'**शब्द से लग्न भी समझना चाहिए । अतः लग्न, सूर्य या चन्द्रमा से त्रिकोण में मंगल शनि की स्थिति शोकप्रद ही है ।

इसी प्रकार गुरु से दृष्ट होने को भी सब शुभ ग्रहों का उपलक्षण मानना चाहिए । कोई भी शुभ ग्रह देखे तो बालक जीवित व सुखी रहता है ।



उक्त जातक माता पिता से परित्यक्त बाद में अन्य के द्वारा पाला गया है । केवल लग्न से त्रिकोण में मंगल शनि एकत्र हैं । शुभ मध्य में रहने से पालक तो मिला है लेकिन गुरु आद्रि की साधारण दृष्टि रहने से बहुत चाह के साथ नहीं पाला जा रहा है । मातृ त्याग योगों में जो शुभ ग्रह चन्द्रमा को देखे तदनुसार वर्ण, प्रकृति वाला पुरुष बालक को पालता है ।

मातृसंत्यक्तयोगेषु चन्द्रं पश्यन्ति ये शुभाः ।
ग्रहवर्ण समो बालं गृह्णाति नियतं नरः ।।

यहाँ सर्वाधिक दृष्टि गुरु व बुध की है । बुध स्वक्षेत्री होने से अपेक्षया बली है । अतः बुध का वर्ण द्विजातिभिन्न है । तदनुसार ऐसे ही व्यक्ति ने इसे लिया था ।

पापेक्षिते तुहिनगावुदये कुजेऽस्ते, त्यक्तो विनश्यति कुजार्कजयोस्तथा ये।
सौम्येऽभिपश्यति तथा विधहस्तमेति, सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः।।15।।

(वसन्ततिलका)

लग्न में पापदृष्ट चन्द्रमा तथा सप्तम में मंगल हो, यह एक योग है। यदि मंगल शनि एकादश स्थान में व चन्द्रमा लग्न में पाप दृष्ट हो, यह द्वितीय योग है। इन योगों में बालक माता द्वारा त्यक्त होकर जीवित नहीं रहता है।

जैसा शुभ ग्रह चन्द्रमा को देखे, वैसा ही व्यक्ति बालक को पालता है। यदि चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो बालक परहस्तगत होकर भी आयु हीन होता है।

चन्द्रमा की पापदृष्ट होकर लग्न में स्थिति इन दो योगों का आधार है। लग्नगत चन्द्र पापदृष्ट न रहे तो त्यक्त नहीं होगा। पापदृष्ट कहने से सूर्यदृष्ट का आशय है। मंगल शनि तो स्वयं चन्द्रमा से एकादश में होंगे। प्रथमयोग में चन्द्र से सप्तम में मंगल रहने से मंगल की दृष्टि तो होगी ही। शनि व सूर्य पापी बुधादि भी अन्यत्र बैठकर चन्द्र को देखें। यदि लग्न में चन्द्र, सप्तम में मंगल व सूर्य शनि अथवा 1. 7 में चन्द्र मंगल, शनि एकादश में या चतुर्थ में हो इत्यादि प्रकार से व्यवस्था समझ लें।

इन मातृत्यक्त योगों में चन्द्रमा शुभ दृष्ट हो तो सुखी तथा पापदृष्ट हो तो दुःखी या मृत होता है। चन्द्रदृष्टा ग्रह की राशि नवांशादि स्थिति से पालक पिता का वर्णादि निश्चय पूर्वोक्त व वक्ष्यमाण विधि से करें। इन योगों में जातक सदैव जन्मभूमि से दूर रहता है। अर्थात् पूरा योग न बनने पर स्व विकल्प द्वारा जन्मभूमि से अनासक्ति व दूर स्थिति का निर्णय करें। कर्ण, भोज राज, शुनः शेफ आदि बालक मातृपरित्यक्त होकर भी दीर्घायु व यशस्वी थे।

प्रसूति गृह विचार–

पितृमातृगृहेषु तद्बलात् तरुसालादिषु नीचगैः शुभैः।
यदि नैकगतैस्तु वीक्षितौ लग्नेन्दू विजने प्रसूयते।।16।।

पितृ मातृ कारक ग्रह की बलवत्ता से पिता या माता के घर में प्रसव समझें। सभी शुभ ग्रह नीच में हों तो तरुशाला वनादि में व सब शुभ ग्रह एकत्र होकर लग्न व चन्द्रमा को न देखें तो निर्जन स्थान में प्रसव होता है।

पहले **'दिवाऽर्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ'** इत्यादि श्लोक से पिता व माता के बलवान् कारक का निर्णय करके, अथवा पितृकारक सूर्य व मातृ कारक चन्द्रमा से ननिहाल या पिता के घर में बालक के जन्म का निर्णय करें।

इसी तरह नवमेश व दशमेश, व चतुर्थेश से पितृमातृ गृह का निर्णय करें। रुद्रभट्ट कहते हैं कि पहले ही श्लोक 13 में **'स्वर्क्षांशगते स्वमन्दिरे'** कहकर प्रसूति गृह का निर्णय बताया, तब यहाँ पुनः विशेषार्थ बताने के लिए बता रहे हैं। **'स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणम्'** इत्यादि आयुर्दायाध्याय में वक्ष्यमाण विधि से पिता या माता के कारक ग्रह की उच्चादि स्थिति से पितृ मातृ गृहों की संख्या का निश्चय करें। इसी लिए वराह ने यहाँ 'गृहेषु' यह बहुवचन प्रयोग किया है। किसी से पैदा हुआ, किसी के यहाँ रहकर पला बढ़ा (दत्तक), घर जमाई हो गया या किसी के द्वारा पुत्रवत् समझा जाने लगा हो, इत्यादि भेद से माता-पिता के घरों का जातक में निश्चय करें। यह विशेष है।

सभी शुभ ग्रह नीच में हों तो पीड़ा व मनस्ताप पूर्वक खुले प्रदेश में सिर पर छत भी न हो, ऐसी स्थित में प्रसव होगा। यदि सब शुभ ग्रह एक राशि में हों तथा लग्न चन्द्र पर दृष्टि न रखें तो निर्जन प्रदेश में जन्म होता है। लग्न चन्द्र को ग्रह देखें तो जन बहुल प्रदेश में जन्म होगा। रुद्रभट्ट का कहना है कि पद्धति प्रोक्त अंश दृष्टि (स्पष्ट) से यहाँ दृष्टि देखना। जैसे लग्न से एक दो भाव आगे पीछे चन्द्रमा व सब ग्रह हों तो दृष्टि शून्य प्रायः होती है अन्यत्र दृष्टि होगी ही। अर्थात् यहाँ पूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त दृष्टि होने पर भी योग होता है।

माता या पिता के घर में प्रसव होने से बड़े होकर उनके प्रति अधिक लगाव आदि, तरुशाला प्रसव से लकड़ी या वृक्षजन्य पदार्थ से एवं अरण्य जन्मयोग रहने पर वन में या एकान्त स्थान में रहकर व्यक्ति जीविका कमाता है।

प्रसूति स्थानादि विशेष विचार–

मन्दर्क्षांशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा,
तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ।
यद्वद्राशिर्व्रजति हरिजं गर्भमोक्षस्तु तद्वत्,
पापैश्चन्द्रस्मरसुखगतैः क्लेशमाहुर्जनन्याः॥17॥

(मन्दाक्रान्ता)

(क) यदि जन्म समय में चतुर्थगत चन्द्रमा शनि के नवांश में हो, यह एक योग है। चन्द्रमा जल राशि में स्थित हो और शनि से दृष्ट हो यह अलग योग है। चन्द्रमा कहीं भी शनि से युक्त हो यह तृतीय योग है। इनमें प्रसूता का बिस्तर अन्धकार में रहता है।

तीन या उससे अधिक ग्रह नीचगत हों तो भूमि पर बिस्तर रहता है। लग्न राशि जिस प्रकार (शीर्षोदय, पृष्ठोदय) से पूर्वी क्षितिज पर उदित

होती है, उसी प्रकार से बालक भी गर्भ से बाहर आता है। चन्द्रमा से 1. 4. 7 में कई पाप ग्रह हों तो माता को प्रसव में अधिक कष्ट होता है।

(ख) चन्द्र कहीं भी मकर या कुम्भ के नवांश में हो, चन्द्रमा चतुर्थ में हो, कहीं भी स्थित चन्द्रमा को शनि देखे या योग करे, चन्द्रमा कर्क या मीन के नवांश में हो। ये पाँच योग अन्धकार प्रसव के हैं।

लग्न राशि के उदय स्वभावानुसार गर्भस्थ शिशु का उदय होता है। चन्द्रमा के साथ या लग्न से 4. 7 में पाप ग्रह हों तो मातृ कष्ट पूर्वक प्रसव होता है।

अन्धकार प्रसव–

इस श्लोक की व्याख्या में टीकाकारों में मतभेद है। पहली व्याख्या विवरणकार की एवं द्वितीय भट्टोत्पल कृत है। ये दोनों ही व्याख्याएँ, विशेष विचारणीय हैं। स्वयं रुद्रभट्ट को दोनों वैकल्पिक व्याख्याएँ स्वीकार थीं। लेकिन प्रथम व्याख्या को वे ऊँचा दर्जा देते थे।

'इति योगत्रितयम्। केचित्तु मन्दर्क्षांशे शशिनि-----चेति अत्र तमः शयनस्य योगपंचकमाचक्षते।'

हमारे विचार से प्रथम व्याख्या श्रेष्ठ है। उसी व्याख्या में प्रोक्त योगों की आनुपातिक न्यूनता स्वीकार कर लेने पर पाँचों योगों का या और भी न्यूनतायुक्त रहने पर भी फल प्राप्ति हो जाती है। अधिक दृष्टिकोणों से योग घटित हो तो अधिक व न्यूनता से फल में भी न्यूनता होती है, यह बात सर्वत्र मान्य है। अतः उत्कट योग में सर्वथा अन्धकार, मध्यबली में मध्यम अन्धकार, झुटपुटा सा, अल्पबली में साधारण अन्धकार कहें। घरों में कोई कमरा अधिक प्रकाशित व कोई कम रोशनी वाला होता है। बिजली न रहने पर और अधिक अंधेरा होगा। बिजली रहने पर भी सूर्य के प्रकाश के आवागमन से या बिजली के बल्ब की शक्ति के अनुसार रोशनी में तारतम्य होगा ही। अतः योगतारतम्य से फल तारतम्य समझें। यदि चन्द्र को सूर्य देखे तो अन्धकार योग में भी प्रकाश रहता ही है।

यद्वद्राशिर्व्रजतिः– वराहमिहिर ने इस पंक्ति में बच्चा गर्भ से किस तरफ से बाहर आता है, यह निर्णय दिया है। शीर्षोदय, पृष्ठोदय व उभयोदय राशियों का विभाग पीछे बता चुके हैं। कुछ लोग कहते हैं कि शीर्षोदय लग्न में सिर की ओर से, पृष्ठोदय लग्न मे पैरों की ओर से तथा उभयोदय (मीन) में भुजाओं की ओर से प्रसव होता है। यह बात सारावली में कही गई है तथा रुद्रभट्ट यही व्याख्या करते हैं। हमें यह उचित प्रतीत नहीं होती। प्रायः सिर की ओर से प्रसव होता है। पाद प्रसव या भुजा प्रसव अपवाद

स्वरूप होते हैं। पुनश्च 7 शीर्षोदय राशियाँ, 4 पृष्ठोदय व 1 उभयोदय है। तब पृष्ठोदय राशियों (1. 2. 4. 9. 10) में नियमतः पाद प्रसव ही मानना पड़ेगा। इस विषय में भट्टोत्पल का दृष्टिकोण अधिक संगत है। शीर्षोदय लग्न में ऊपर को पेट (उत्तानोदर, उर्ध्वमुख) अर्थात् भूमि की ओर कमर व. माता की ओर पेट मुख आदि करके चित लेटा हुआ सा बच्चा पैदा होता है। पृष्ठोदय लग्न में पीठ ऊपर व पेट नीचे अर्थात् अधोमुख प्रसव होता है। मीन में करवट से प्रसव होता है। यदि लग्नेश या लग्न नवांशेश वक्री हो तो मणित्थ के कथनानुसार पूर्व सिद्ध गर्भमोक्ष विधि को विपरीत समझें।

शयनं नीच संस्थैः– इस विषय में बहुमत सम्मत अर्थ यह है कि तीन या अधिक ग्रह नीचगत हों तो प्रसूता स्त्री को भूमि शयन करना पड़ता है। कुछ लोग शयन स्थानेश (द्वादशेश) नीच गत हो अथवा चन्द्रमा चतुर्थ या लग्न में नीचगत हो इन योगों में भूशयन होता है। 'शयनं' इस शब्द को ही उपर्युक्त प्रकारों से आचार्यो ने व्याख्यात किया है। रुद्रभट्ट कहते हैं कि शय्यासुख, सुरत प्रश्नादि में भी इन योगों का प्रयोग हो सकता है। भूमि शयन से तात्पर्य पुआल (तृण) बिछा कर जमीन पर शय्या बनाना अथवा चार पाई के बिना जमीन पर किसी भी प्रकार के बिस्तर पर सोना।

चन्द्रमा के साथ, सुख स्थान या सप्तम स्थान इन तीनों का ग्रहण चन्द्र **स्मरसुखगतैः** से होता ही है तथापि लग्नात् 1. 4. 7 स्थानों का भी विचार करने में हानि नहीं है।

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में चन्द्र लग्न में राहु, सप्तम में केतु स्थित है। मातृकष्ट सम्भव योग है। द्वादशेश शुभ स्थान में तथा द्वादश में उच्चगत ग्रह अस्पताल की अच्छी शय्या को संकेतित करते हैं। अन्धकार प्रसव योग नहीं बनता है। शल्य द्वारा प्रसव होने से पादादि प्रसव ज्ञान सम्भव नहीं है।

सूतिका गृह में दीपक विचार–

स्नेहः शशांकादुदयाच्च वर्तिर्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यैः।

द्वारं च तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्वाच्यं ग्रहैर्वीर्य समन्वितैर्वा।।18।।

चन्द्रमा की अधिष्ठित राशि में अंश कलात्मक स्थिति आदि से दीपक में विद्यमान तेल की मात्रा का विचार करें। लग्न के भी राश्यंशों से बत्ती की नूतनता, अर्धदग्धता या समाप्त प्रायिकता का विचार करें। जिस राशि (भाव) में सूर्य स्थित हो, उसकी चर, स्थिर, द्विस्वभाव आदि स्थिति से दीपक की स्थान परिवर्तनीयता, स्थिरता आदि को देखें। केन्द्रगत ग्रहों की

दिशा से प्रसूतिगृह का द्वार विचार करें। अथवा बली ग्रहों से द्वार दिशा का विचार करें।

स्नेहः शशांकात्:– चन्द्रमा से दीपक का तेल घी आदि जानें। सारावली में चन्द्रमा की कलाओं के आधार पर तेल का निर्णय है, यह उचित नहीं है। ऐसी स्थिति में अमावस्या के दिन सब का ही नियमतः अंधेरे में जन्म मानना पड़ेगा। अतः चन्द्रमा राशि के प्रथम द्रेष्काण में हो तो लगभग पूरा भरा हुआ, मध्य द्रेष्काण में आधा व राश्यन्त द्रेष्काण में हो तो तेल या घी कम कहना चाहिए। यदि चन्द्रमा अपनी होरा में हो तो गाय-भैंस के घी का दीपक, यदि सूर्य होरा में हो तो तिल, नारियल, सरसों आदि का दिया जलाया गया था। यह विशेष बात रुद्रभट्ट ने कही है। पुनश्च देश काल व अवस्था का अनुमान अवश्य करें। आजकल बिजली आदि की व्यवस्था रहने से दीपक को (मंगलार्थ) जलाया गया भी समझें। यदि आवश्यक हो तो मोम बत्ती, टॉर्च, गैस दीपक आदि का विचार करें। चन्द्रमा व लग्न के गतांशों से यथासम्भव उनकी भी भुक्त व शेष मात्रा जान सकते हैं। **'उदयाच्चवर्तिः'** अर्थात् लग्नांश से बत्ती, अर्थात् लौ देने वाले अंग का विचार करें।

दीपोऽर्कयुक्तर्क्षः– सूर्य जिस राशि में स्थित हो, उससे दीपक का स्थान ज्ञान करें। अर्थात् चर राशि में चलायमान दीप, स्थिर राशि में स्थिर एवं द्विस्वभाव के पूर्वार्ध में स्थिरवत् तथा उत्तरार्ध में चरवत् या मिश्रित जानें। यदि स्थिर हो तो दीपक का स्थान निश्चय करने के लिए सूतिका गृह में सूर्याधिष्ठित, भाव जिस दिशा **'प्राच्यादिगृहेक्रियादयाः'** में पड़े, वहीं पर दीपक कहें। यदि चर राशि हो तो दीपक उस दिशा स्थान पर रखा गया था, ऐसा कहें। यहाँ राशि से तात्पर्य भाव से है। कुण्डली में सूर्य जिस दिशा में हो वहीं दीपक कहें। यदि राशि दिशा से कहेंगे तो महीने भर तक सब जगह दीपक की दिशा निश्चित ही रहेगी। सूर्य की राशि की धातु से दीपक की धातु कहें। उच्चगत, मूलत्रिकोणी, बली ग्रहों से युक्त दृष्ट या स्वयं उच्चादिगत सूर्य हो तो कीमती, सुन्दर दिखने वाला दीपक कहें। उसी राशि के वर्ण से दीपक का वर्ण, गोलाकारादि आकार का विचार देश-काल के औचित्य को देखते हुए कहें।

द्वारं च तद्वास्तुनिः– केन्द्र में स्थित ग्रह की दिशा में प्रसूति गृह का दरवाजा कहें। यदि कई ग्रह केन्द्र में हों तो बलवान् ग्रह की दिशा में, यदि दो ग्रह केन्द्र में बली हों तो दो दरवाजे, तीन बली हों तो तीन इत्यादि प्रकार से कहें। सर्वत्र ग्रह दिशा **'प्रागाद्या रवि शुक्र लोहिततमः'** इत्यादि पूर्वोक्त विधि से निर्णय करें। यदि लग्न में कोई ग्रह न हो तो लग्न राशि से दिशा का निर्णय करें। लग्न की राशि की दिशा में द्वार होता है।

मणित्थ का मत है कि लग्न में पड़ने वालो द्वादशांश राशि से दिशा का निर्णय करें।

पूर्वोक्त उदाहरण में केन्द्र में सूर्य बुध गुरु शुक्र बलवान् हैं। इनमें भी बुध गुरु अधिक बली व सूर्य बली तथा शुक्र साधारण बली है। अतः प्रसूति गृह में तीन चार द्वार हैं। उत्तर व ईशान तुल्य दिशा में दो तथा तीसरा पूर्व में सिद्ध होता है। वास्तव में प्रसूति गृह में तीन द्वार थे। पूर्वाभिमुख मुख्य द्वार तथा दो दरवाजे क्रमशः दायीं बायीं दीवार में थे। अतः एक सूर्य दिशा में, दूसरा बुध दिशा में, तीसरा लग्नेश मंगल दिशा में हुआ।

सूतिका गृह स्वरूप–

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ,
काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते चानेकशिल्प्युद्भवम्।
रम्यं चित्रयुतं नवं च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं,
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत्।। 19।।

(शार्दूलविक्रीडित)

सूतिका गृह का स्वरूप सर्वबली ग्रह से निर्णय करें। यदि उक्त ग्रह शनि हो तो पुराना मरम्मत किया हुआ, मंगल से कहीं से जला हुआ, चन्द्रमा से नया, सूर्य से लकड़ी बहुल किन्तु कम मजबूत, बुध से शिल्पवास्तु कला का नमूना, शुक्र से सुन्दर, चित्रयुक्त, नया भवन, बृहस्पति से मजबूत घर बताना चाहिए। इस ग्रह के साथ स्थित ग्रहों से या केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम आदि में गत ग्रहों से पड़ौसी भवनों का निर्णय करें।

बलवान् ग्रह से निर्णय होगा। रुद्रभट्ट के मत से चतुर्थगत ग्रह या चतुर्थेश से भी विचार करें।

चक्रस्थैःसे कुण्डली में स्थित ग्रहों का आशय है। पहले बलवान् गृह कारक का निर्णय करें। उससे केन्द्रगत, पणफर गत, आपोक्लिमगत ग्रहों से सामने, पिछवाड़े व आजू बाजू के घरों का स्वरूप जानें। सामन्त पूर्वान् अर्थात् **समन्तभवाः सामन्तास्तेपूर्वे येषां ते सामन्तपूर्वास्तान्।** अतः सामन्त गृह बिल्कुल निकटस्थ, पणफरस्थ से मध्यम दूरी पर व आपोक्लिम् से अधिक दूर के भवन देखें। यह रुद्रभट्ट का मत है। हमारे विचार से गृह कारक ग्रह के साथ स्थित ग्रह से पिछवाड़े के घर का, उस ग्रह से दायीं ओर अर्थात् चतुर्थगत से दायीं ओर का, दशमस्थ से बायीं ओर का और सप्तमस्थ से सम्मुख भवन का निर्णय करें। **'देवाम्ब्वग्नि विहार कोश'** आदि प्रोक्त प्रकार से भी पड़ौसी भवनों का स्वरूप देखें। सूतिका गृह विचार में ग्रह की उच्च नीचतादि से भवन की उत्तम मध्यमाधमता का, उन ग्रहों की परस्पर पंचधा

मैत्री से शत्रुमित्र समतादि भवनों के निवासियों से जानें। बृहस्पति दशम में उच्चगत हो तो चार मंजिला, धनु में हो तो तीन मंजिला तथा अन्य द्विस्वभाव राशियों में हो तो दो मंजिला मकान होता है। यह विचार प्रसूतिगृह का है, पड़ौसी भवनों का नहीं।

गुरुरुच्चे दशमस्थे द्वित्रिचतुर्भूमिकं करोति गृहम्।
धनुषि सबले त्रिशालं द्विशालमन्येषु यमलेषु।। (लघु जातक)

प्रसूति गृह की दिशा–

मेषकुलीरतुलालिघटैः प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु।
पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ।।20।।

(दोधक)

भवन में सूतिका का कमरा किस दिशा में है, एतदर्थ 1. 4. 7. 8. 11 लग्न हो तो पूर्व में, 9. 12. 3. 6 लग्न हो तो उत्तर में, वृष लग्न हो तो पश्चिम में तथा 5. 10 लग्न हो तो दक्षिण दिशा में समझें।

सूतिकाकक्ष में शय्या की दिशा–

प्राच्यादि गृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्त्तयः।
शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेत् पादैः षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैः।।21।।

(वैतालीय)

सूतिका कक्ष में पूर्वादि दिशाओं में मेष वृषादि से दो दो राशियाँ तथा चारों कोनों में सभी द्विस्वभाव राशियाँ क्रमशः रहती हैं। इसी प्रकार सूतिका की शय्या पर भी लग्नादि द्वादश भावों को क्रमशः सिरहाना (पूर्व) क्रम से समझें। 3. 6. 9. 12 भावों को वहाँ चारपाई के चारों पैर क्रमशः मानना चाहिए।

पूर्व दिशा में मेष वृष, अग्नि कोण में मिथुन, दक्षिण में कर्क सिंह, नैर्ऋत्य में कन्या, पश्चिम में तुला वृश्चिक, वायव्य में धनु, उत्तर में मकर कुम्भ व ईशान में मीन ये राशियाँ समझें। 'प्राच्यादि' कहकर आचार्य ने दिशा क्रम में प्रदक्षिण क्रम को संकेतित किया है। अर्थात् पूर्व, अग्निकोण आदि, जिस क्रम से दिक्पालों की पूजा होती है, वह क्रम, जिस प्रकार दक्षिण भारत में राशि चक्र लिखते हैं, वह क्रम मानना है। एक प्रसिद्ध हिन्दी टीकाकार ने मिथुन को ईशान में, कन्या को वायव्य में, धनु को नैर्ऋत्य में व मीन को अग्नि कोण में कहा है। यह उचित प्रतीत नहीं होता है। हमने उक्त अर्थ रुद्रभट्ट भट्टोत्पल के आधार पर किया है। जो जन्म लग्न हो उससे शय्या की दिशा स्थिति सूतिका गृह में जानें। जैसे मेष वृष लग्न हो तो पूर्वी दीवार

के साथ, मिथुन लग्न हो तो अग्नि कोण से सटी हुई शय्या इत्यादि प्रकार से समझें।

इसी तरह जन्म लग्न व द्वितीय भाव सिरहाना (शिरोदल), सप्तम भाव अष्टम पाददल, तृतीय, षष्ठ, नवम, द्वादश भाव क्रमशः दायाँ (सिरहाने वाला), दायाँ पैरों वाला, बायाँ पैरों वाला व बायाँ (सिरहाने वाला) पाया समझें। शेष राशियों को वाम भाग व दक्षिण भाग का दण्ड, लग्न कुण्डली के दृश्यार्ध व अदृश्यार्ध के अनुसार समझें। लग्न भुक्तांश से सप्तम भोग्यांश तक 1. 12. 11. 10. 9. 8. 7 भाव दृश्य व शेष अदृश्य हैं। जहाँ सम राशि पड़े, उस भाग में चारपाई झुकी हुई अर्थात् नरम तथा विषम राशियों में कठोर व सीधी समझें। जिस स्थान की राशि पापयुक्त हो, उसी भाग में कक्ष व शय्या में विकार टूट-फूट समझें। स्वगृही व उच्चस्थ पापी को शुभ ही मानना चाहिए।

पापग्रहोऽपि स्वोच्चराशित्रिकोणमित्रक्षेत्रस्थ अशुभफलकरो न भवति।'

(विवरण)

उपसूतिका विचार–

चन्द्र लग्नान्तर्गतैर्ग्रहैः स्युरुपसूतिकाः।

बहिरन्तश्च चक्रार्धे दृश्यादृश्येऽन्यथा परे।।22।। (अनुष्टुप)

लग्न की राशि से चन्द्र राशि के बीच जितने ग्रह पड़ें, उतनी ही उप सूतिकाएँ (प्रसव सहायिकाएँ) होती हैं। दृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाएँ प्रसव कक्ष से बाहर तथा अदृश्य चक्रार्ध में जितने हों, उतनी अन्दर रहती हैं। कुछ आचार्य दृश्य भागस्थ ग्रह संख्या से भीतर की व अदृश्य भाग गत ग्रहों से बाहर की उपसूतिका संख्या कहते हैं। यह प्रसिद्ध अर्थ है।

ऊपर उपसूतिका बताने के दो प्रकार कहे गए हैं। प्रथम लग्न से चन्द्रमा की राशि तक देखें, उनमें स्थित ग्रह संख्या तुल्य उपसूतिकाएँ होती हैं। यदि यह प्रकार उपयोगी न हो तो दूसरा प्रकार देखें। लग्न से दृश्य चक्रार्ध में स्थित संख्या के बराबर उपसूतिकाएँ घर के बाहर तथा अदृश्यार्ध में स्थित ग्रह तुल्य अन्दर रहती हैं। यह एक मत है।

लग्न से चन्द्रमा तक देखना है, चन्द्र से लग्न तक नहीं। यह प्रायः सभी व्याख्याकारों का मत है। हमारे विचार से आचार्य ने चन्द्र का पहले कथन किया व लग्न का बाद में। तब **'चन्द्रमा से लग्न तक'** यह अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। सारावली में भी **'शशिलग्नविवरयुक्ता'** कहा

गया है । इस विषय में हम समझते हैं कि चन्द्रमा से लग्न के बीच व लग्न से चन्द्रमा के बीच यथासम्भव देखें ? यह मध्यम मार्ग है । लग्न में मेष राशि तथा चन्द्रमा मीन में हो तब मेष से मीन तक गिनें या मीन से मेष तक, दोनों में महान् अन्तर उपस्थित हो जाएगा । रुद्रभट्ट कहते हैं–**'लग्नाद्यावच्चन्द्रं ग्रहाः गृह्यन्ते, न चन्द्रात् लग्नावधि स्थिताः** । लेकिन क्यों यह स्पष्ट नहीं किया । भट्टोत्पल ने भी इसी का समर्थन कर दिया ।

'अत्र चन्द्रमारभ्य लग्नपर्यन्तं गणना कर्त्तव्या । तदन्तर्वर्तिनो ग्रहाः, अनुदिते दृश्येऽर्धे यदि भवन्ति तदा तावन्त्य उपसूतिकाः --- । (बलभद्र मिश्र)

चन्द्रमा से लग्न तक देखें, यही श्रेष्ठ पक्ष है । चन्द्रमा से लग्न मध्य में पड़ने वाले जितने ग्रह दृश्यार्ध में पड़ें वे बाहर तथा अदृश्यार्ध में पड़ें तो अन्तःस्थ उपसूतिकाएँ होंगीं । चन्द्रमा माता है व प्रसव लग्न शिशु, अतः चन्द्र से लग्न मध्यम में देखना होगा ।

आचार्य ने 'अन्यथापरे कहकर यही कहा है कि कुछ आचार्य लग्नात् चन्द्र पर्यन्त एवं दृश्यादृश्यार्ध से भीतरी व बाहरी उपसूतिकाएँ मानते हैं, लेकिन वह हमें मान्य नहीं । अतः **'अन्यथापरे'** का सम्बन्ध सर्वत्र है ।

उदयशशिमध्यस्थैः ग्रहैः स्युरुपसूतिकास्तत्र । (जीवशर्मा)

इन उपसूतिका प्रदर्शक ग्रहों में से जो उच्चगत व वक्री हों उन्हें आयुर्दाय विधि के अनुसार तिगुना आदि करके गिनें । ग्रहों की जाति, वर्ण आदि से उपसूतिका की प्रकृति, रूप, रंग आदि का निश्चय करें ।

बालक का स्वरूप निश्चय–

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद् वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।
चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः कादिविलग्न विभक्तभगात्रः ।। 23 ।।

लग्न में जिस ग्रह का नवांश हो, उसी ग्रह के पूर्वोक्त ग्रहस्वरूपानुसार जातक का शरीर होता है । अथवा बलवान् केन्द्रगत ग्रह के स्वरूपानुसार शरीर होता है । चन्द्रमा जिस ग्रह के नवांश में हो, उसके अनुसार जातक का गोरा, काला आदि वर्ण होता है ।

लग्न को सिर मान कर कालांग (काल पुरुष) क्रम से जातक के शरीर में सब भाव राशियाँ मान कर जातक के शरीरांगों का विचार करें ।

लग्न के नवांशेश के सदृश या सर्वबली ग्रह के स्वरूप के समान जातक का चतुरस्र, दीर्घ, मध्य आदि शरीर स्वरूप होता है । राशि व ग्रह दोनों के

स्वरूप की तुलना अवश्य करें, यह अनुभव है। उदाहरणार्थ कर्क लग्न में सिंह नवांश है। 'मधुपिंगलदृक् चतुरस्रतनुः' के नियमानुसार सूर्य का शरीर चौकोर है। लेकिन मध्यम कद या साधारण या ऊँचा कद, यह निश्चय राशि के तारतम्य से करेंगे। कर्क मध्यम कद, सिंह उससे अधिक अतः मध्यम कद भारत वर्ष में साढ़े पाँच फुट रखें तो उससे थोड़ा अधिक होना चाहिए। चन्द्रमा वृत्ततनु व सूर्य चतुरस्रतनु है। अतः गोलाई लिए हुए चौकोर सा अर्थात् हाथ फैलाकर चौड़ाई व पैर से सिर तक ऊंचाँई (आयाम व दैर्घ्य) प्रायः बराबर सी होनी चाहिए। कर्क अर्थात् केंकड़ा, बीच में मोटा व आगे पीछे से क्रमिक घटता हुआ होता है, अतः अण्डाकार सा शरीर सिद्ध होता है। इसी विधि से सर्वत्र समन्वय स्थापित करके निश्चय करें।

साथ में वीर्यवान् ग्रह अर्थात् सब ग्रहों में अधिक बली, लेकिन लग्नद्रष्टा या केन्द्रगत ग्रह से विचार करें। बलवान् होकर भी केन्द्र में न हो या लग्न को न देखे तो शरीराकार को प्रभावित नहीं करेगा। इसीलिए केन्द्रगत बलवान ग्रह, ऐसा अर्थ किया है—'तत्काले यो वीर्याधिको ग्रहः केन्द्रस्थित इत्यर्थाद् भवति। रुद्रभट्ट ने ऐसा ही कहा है। 'स्यात्' ऐसा कहकर आचार्य ने सम्भाव्यता का विचार करना आवश्यक बताया है। अर्थात् अमेरिकावासियों का मध्यम कद, भारतीयों व चीनियों का मध्यम कद मान पृथक् होगा। यही स्थिति रंग में भी होगी। अतः देश काल का विचार अवश्य करें।

'चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः' अर्थात् चन्द्राधिष्ठित नवांशेश से बालक का वर्ण देखें। यहाँ भी पूर्वोक्त राशि स्वरूप व नवांशेश स्वरूप तथा लग्न नवांशेश स्वरूप भी अवश्य देखें। मूलनियामक लग्ननवांशेश ही है, चन्द्रनवांशेश उसमें तारतम्य करेगा। यह विशेष अर्थ है।

जिस प्रकार मेष को सिर, वृष को मुख कहा था उसी प्रकार (क) सिर से लेकर पैर पर्यन्त शरीरांगों की विभक्ति लग्न चक्र में भी समझें। अतः लग्न से सिर, द्वितीय भाव से मुख, तृतीय भाव से छाती, चतुर्थ से हृदय, पंचम से पेट, षष्ठ से कमर, सप्तम से बस्ति, अष्टम से गूढांग, नवम से जाँघें, दशम भाव से घुटने, एकादश से पिण्डलियाँ व द्वादश से पैरों का विचार करें। जहाँ दीर्घ राशि या दीर्घ राशीश पड़े वह अंग दीर्घ व जहाँ ह्रस्व राशि राशीश पड़े वह अंग ह्रस्व होता है। इस प्रकार निश्चय करके लग्न शुद्धि व पृच्छक की सन्तुष्टि एक साथ ही हो जाती है। यह भावांग विचार सर्वलग्न साधारण है। अतः यह स्थिर चक्र विचार है। आगे चल चक्र विचार कर रहे हैं।

द्रेष्काणानुसार अंग विभाग–

कंदृक् श्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रं च होरादयः,
ते कण्ठांसक बाहुपार्श्व हृदय क्रोडानि नाभिस्तथा ।
बस्ति शिश्न गुदे ततश्च वृषणावूरू ततो जानुनी,
जङ्घेंऽघ्रीत्युभयत्र वाममुदितै द्रेष्काण भागैस्त्रिधा ।।२४ ।।

सिर से मुख तक, गले से नाभि तक, बस्ति से पैरों तक ये शरीर के तीन विभाग द्रेष्काणानुसार होते हैं । दृश्य चक्रार्ध से वाम भाग एवं अदृश्य से दायाँ भाग समझें ।

(i) सिर से मुख तक – लग्न भाव का अनुदित भाग– सिर का दायाँ अर्धांश, उदित भाग–वामार्ध । द्वितीय भाव–दायाँ नेत्र । तृतीय भाव–दायाँ कान । चतुर्थ भाव–दायाँ नाक । पंचम भाव–दायाँ गाल । षष्ठ भाव–हनु (ठोडी) का दायाँ भाग । सप्तम भाव का अनुदित–दायाँ मुखार्ध । सप्तम भाव उदित–वाम मुखार्ध । अष्टम–बायाँ हनु भाग । नवम–बायाँ गाल इत्यादि क्रम से विपरीत प्रकार अपना कर समस्त पूर्वोक्त बायाँ हिस्सा ।

(ii) कण्ठ से नाभि तक– लग्नानुदित भाग– गले का दायाँ अर्धांश, उदित भाग–वामांश । इसी प्रकार द्वितीय से सप्तम के अनुदित भाग तक कंधा, हाथ (भुजा), पार्श्व या बगल, हृदय (छाती) पेट, नाभि को द्योतित करते हैं तथा विपरीत क्रम से 7. 8. 9. 10. 11. 12. भाव उक्त अंगों के बाएँ हिस्सों को बताते हैं । जैसे सप्तम के अनुदित भाग से दायाँ नाभि स्थल, अष्टम भाव से पैर का बाँया भाग इत्यादि ।

(iii) बस्ति (नाभि का अधोभाग) से पैर तक– अनुदित लग्न से अनुदित सप्तम तक क्रमशः पूर्वोक्त प्रकार से बस्ति (नाभि व लिंग के बीच का भाग), लिंग व गुदा द्वितीय भाव, दायाँ अण्डकोष, दायीं जाँघ, दायाँ घुटना, दांयी पिंडली, दायाँ पैर इन अंगों को तथा सप्तम उदित से लग्न के उदित तक विपरीत क्रम से बाँया पैर, बाँयी पिंडली इत्यादि प्रकार से बस्ति के वामार्ध तक अंग होते हैं ।

लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रथम विधि से, द्वितीय द्रेष्काण में लग्न हो तो दूसरी विधि व तृतीय द्रेष्काण हो तो तीसरी विधि अपनाएँ । इस विषय में प्रायः सब का मतैक्य है । यह सर्व प्रसिद्ध अर्थ है ।

पूर्व श्लोक में **'कादिविलग्न विभक्तभगात्रः'** कहकर अव्यवहित रूप से यह शरीरांग विभाग कहा है । सब लोग यह मानते चले आ रहे हैं कि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रथम प्रकार, मध्य द्रेष्काण हो तो मध्य प्रकार इत्यादि विधि अपनाएँ । इस अंग विभाग का प्रयोजन क्या है ? भट्टोत्पल कहते हैं

कि शरीर के तत्तत् अंगों में तिल, मस्सा, लहसुन, निशान, चिन्ह आदि जानने के लिए आचार्य ने यह विभाग बताया है । रुद्रभट्ट भी कहते हैं कि तृतीय द्रेष्काण में जन्म हो तो लग्न–बस्ति, 2. 12 भाव–लिंग व गुदा, 3. 11 भाव अण्डकोष, 4. 10 भाव–दोनों जाँघ, 5. 9 भाव–दोनों घुटने, 6. 8 भाव–दोनों पिण्डली, सप्तम भाव–पैर ।

इस प्रकार शरीर के सारे अंगों का न्यास द्रेष्काणानुसार कर लेना योग्य है । रुद्रभट्ट कहते हैं कि द्रेष्काण राशियों के बलाबल से भी अंगों का विचार करना चाहिए । वे द्रेष्काणानुसार उक्त विभाग को अधिक उपयुक्त मानते हैं तथा सूक्ष्म विचारार्थ इसी विभाग का प्रयोग करने की बात कहते हैं–

'अयं पाठः श्रेयान् । अत्र शीर्षोदयपृष्ठोदयोभयोदयराशिभिरुर्ध्व मुखाधोमुख तिर्यङ्मुखैश्च द्रेष्काणवशाद् बलवशेन स्थानविशेषो वक्तव्यः । तत्र द्रेष्काणाधिपस्य बलवत्त्वे शीर्षोदयादिना, आदित्यस्य बलवत्त्वे उर्ध्वमुखादिना इति सम्प्रदायः ।

(विवरण टीका)

उक्त उद्धरण में दक्षिण भारतीय सम्प्रदायों के चलन का संकेत भी किया है । लेकिन बहुमत सम्मत विभागानुसार द्रेष्काण को ही आधार बनाना चाहिए । भट्टोत्पल ने भावगत राश्यनुसार समस्त अंगों की स्थापना बारहों भावों में कही है । उससे भी द्रेष्काणानुसारी उक्त विभाग बिल्कुल मेल खाता है । सम्पूर्ण राशि में अंग न्यास करने पर भी विशेष विचार करने के लिए अवश्य ही सम्पूर्ण राशि को तीन समान भागों में बाँटना ही पड़ेगा । प्रत्येक भावगत राशि, विशेषतया लग्न स्पष्ट में 10-10 अंश जोड़ते जाने से उदित द्रेष्काणों का स्पष्ट मान आ जाएगा । उनमें बारम्बार तीनों भागों के अंगों की स्थापना करके ग्रहयोगादि से तिलादि विचार करना योग्य है ।

'त्रिभिः प्रकारैस्त्रिधा त्रिभिर्द्रेष्काणभागैः त्रिधाशरीरप्रविभाग ।

(भट्टोत्पल)

समूचे विषय को अन्य प्रकार से भी समझने का प्रयत्न करते हैं । हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न स्पष्ट 7. 18°. 57′ है । भट्टोत्पल का गूढ़ आशय है कि लग्नगत राशि वृश्चिक के मध्य द्रेष्काण 11° - 20′ को उदित, 21° - 30′ तक तथा 0° - 10′ तक अगले पिछले द्रेष्काण भाग मानकर, इनमें पड़ने वाले ग्रहों से विचार करें । रुद्रभट्ट के अनुसार लग्न स्पष्ट में 10 - 10 अंश जोड़ने से विभाग प्राप्त होंगे । तब 7. 18°. 57 तक उदित द्रेष्काण, 7. 28°. 57′ से 8. 8°. 57′ **तक** अगला व 7. 8°. 57′ से 7. 18°. 57′ **तक पिछला**

द्रेष्काण होगा । दोनों में महान् भेद उपस्थित हो जाएगा । भट्टोत्पलय मत से सब लग्नों में द्रेष्काण विभाग सर्वसामान्य होगा, जबकि रुद्रभट्ट के मत से प्रत्येक लग्न में द्रेष्काण भागों की सीमाएँ पृथक् पृथक् ही रहेंगीं ।

दोनों ही व्याख्याएँ ग्राह्य हैं । यथावसर जिससे फल अधिक सटीक मिले अर्थात् लक्ष्य संगमन से परीक्षा करनी चाहिए । दृश्य व अदृश्यार्ध की बात करके आचार्य ने लग्न स्पष्ट से ही प्रारम्भ करके विभाग मानने का संकेत दिया है तथापि हमें भट्टोत्पल वाला राश्यात्मक सर्वसाधारण भाव द्रेष्काण विभाग अधिक उपयुक्त लगता है ।

रुद्रभट्ट भी यही प्रयोजन मानते हैं । लेकिन शंका यह है कि प्रथम द्रेष्काण में जन्म हो तो प्रथम प्रकार से, द्वितीय द्रेष्काण में हो तो द्वितीय प्रकार से तथा तृतीय द्रेष्काण में हो तो तीसरे प्रकार से अंग न्यास करें, यह तो ठीक है, परन्तु बारहों भाव तो प्रत्येक प्रकारों में अलग अलग समाप्त हो जाते हैं, तब क्या इनकी पुनरावृत्ति मानी जाएगी या यही माना जाएगा कि प्रथम द्रेष्काणोत्पन्न व्यक्ति को केवल सिर से मुख तक, द्वितीय द्रेष्काणोत्पन्न जातक को कण्ठ से लेकर नाभि तक तथा तृतीय द्रेष्काणोत्पन्न बालक को बस्ति से पैरों तक ही तिल या मस्सा होगा ।

वास्तव में प्रचलित मत का समुचित स्पष्टीकरण होना चाहिए । आचार्य ने **'द्रेष्काणभागैस्त्रिधा'** कहकर तीनों विभागों का अंग न्यास उदित द्रेष्काणानुसार सर्वत्र करने की विधि कही है । किसी भी द्रेष्काण में जन्म हो, वहीं से निर्दिष्ट विभाग के अनुसार अंग न्यास करते चलेंगे तो द्रेष्काण क्रम से तीनों विभागों के अंगों का न्यास सर्वत्र हो जाएगा । दृश्य चक्रार्ध में बाएँ अंग व अदृश्यार्ध में दाएँ अंग आएंगे । सिर से लेकर पैरों तक के सारे अंगों को यथाक्रम द्रेष्काणोदय के आधार पर न्यस्त करना सार्वत्रिक है । यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो 1. 2. 3, यदि द्वितीय द्रेष्काण लग्न में हो तो 2. 3. 1, यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण हो तो 3. 2. 1 द्रेष्काणक्रम रहेगा । तदनुसार अंग विभाग इस प्रकार स्थापित हो जाता है । यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो–

लग्न का उदित द्रेष्काण– सिर, 2. 12 भावों का उदित द्रेष्काण–दोनों नेत्र, 3. 11 भावद्रेष्काण–दोनों कान, 4. 10 का द्रेष्काण–दोनों नासिका भाग, 5. 9 भाव द्रेष्काण–दोनों गाल, 6. 8 भाव द्रेष्काण–दोनों हनूभाग, सप्तम भाव द्रेष्काण–मुख ।

इसी क्रम से भावों के द्वितीय द्रेष्काणों में लग्न–कण्ठ, 2. 12 – दोनों कन्धे, 3. 11– दोनों भुजाएँ, 4. 10 – दोनों पार्श्व, 5. 9 – हृदय के दो भाग, 6. 8 दोनों भाग पेट, सप्तम भाव का द्वितीय द्रेष्काण नाभि ।

नासापुट, 5. 9 भावों के प्रथम द्रेष्काण दोनों कपोल, 6. 8 भावों के प्रथम द्रेष्काण हनू तथा सप्तम का अदृश्य व दृश्य भाग दाँये, बाएँ मुख प्रान्त

का द्योतक होगा। पुनश्च लग्नादि भावों में कण्ठादि अंगों की कल्पना पूर्वोक्त प्रकार से द्रेष्काण भेद से करनी है। अर्थात् लग्नादि भावों के मध्य द्रेष्काणों में कण्ठादि अंग एवं लग्नादि के तृतीय द्रेष्काणों में बस्ति आदि अंगों की कल्पना करेंगे। इस प्रकार प्रथम द्रेष्काणोत्पन्न जातक के समस्त अंगों की आवृत्ति व स्थापना लग्नादि भावों में 'द्रेक्काणभागैः त्रिधा' करके स्पष्ट हो जाती है।

(ख) लग्न में मध्य द्रेष्काण हो तो– लग्न मध्य द्रेष्काण सिर, 2. 12 के मध्य द्रेष्काण क्रमशः दोनों नेत्र, 3. 11 के मध्य द्रेष्काण दोनों कान इत्यादि प्रकार से पहले मध्य द्रेष्काणों में, पुनः अन्तिम द्रेष्काणों में व पुनः प्रथम द्रेष्काणों में त्रिधा परिकल्पना करनी है।

(ग) लग्न में अन्तिम द्रेष्काण हो तो– लग्न का अन्तिम द्रेष्काण सिर पूर्वोक्त क्रम से होकर सब भावों में यथावत् अंग स्थापन करके सप्तम में अन्तिम द्रेष्काण में मुख होगा। इसके बाद सब भावों के प्रथम द्रेष्काणों में कण्ठादि अंग व मध्य द्रेष्काणों में बस्ति आदि अंगों को स्थापित करना है।

पुनः स्पष्ट करते हैं। लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रथम, द्वितीय तृतीय द्रेष्काण क्रम से। मध्य द्रेष्काण हो तो मध्य, अन्तिम व प्रथम क्रम से एवं अन्तिम द्रेष्काण हो तो अन्तिम, प्रथम व मध्य द्रेष्काण क्रम से तीनों खण्डों के सभी अंगों को लग्नादि भावों में अनिवार्यतः स्थापित करके देखना।

रुद्रभट्ट भी इस श्लोक की व्याख्या में समस्त अंगों का तीन प्रकार से विभाग कर द्रेष्काणनिरपेक्ष स्थापना करते हैं। अतः 'द्रेक्काणभागैः' का अर्थ है लग्नादि भावों में जो तात्कालिक द्रेष्काण उदित हों लग्न के प्रथम, मध्य, द्रेष्काणानुसार ही सब भावों में प्रथमादि द्रेक्काण उदित होते हैं। अतः सब भावों में, सर्वत्र, सब जातकों के सभी अंगों की स्थापना, सब लग्नों में चक्रानुसार करनी चाहिए। यही उचित आशय है।

उक्त अंग विभाग का प्रयोजन–

तस्मिन् पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशेत्,
स्वक्षांशे स्थिरसंयुते च सहजः स्यादन्यथागन्तुकः।
मन्देश्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभवः
सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगौ शृंग्यब्जजोऽन्यैः शुभम्।।25।।

(शार्दूलविक्रीडित)

पिछले श्लोक में बताई गई विधि से अंग विभाग कर लें। जिस भाग में पापग्रह स्थित हो, वहाँ घाव (व्रण) होता है। यदि वह पापग्रह शुभ युक्त या दृष्ट हो तो केवल निशान (मस्सा, तिल) आदि ही होता है, घाव नहीं।

यदि पापग्रह अपनी राशि में, अपने नवांश में स्थिर राशि में हो तो उक्त घाव या निशान जन्म से ही होता है।

यदि पापग्रह स्वराशि नवांशादि में न हो तो घाव या निशान बाद में (आगन्तुक) लगता है। यदि वह पापग्रह शनि हो तो पत्थर या हवा से, मंगल हो तो अग्नि, शस्त्र या विषैले पदार्थ से, बुध हो तो भूमि से टकराने से, सूर्य हो तो लकड़ी से या पशुओं से, क्षीण चन्द्र हो तो सींग वाले या जल जन्तु के कारण घाव आदि होता है। जहाँ अन्य शुभ ग्रह हों वहाँ शुभ होता है। अर्थात् आभूषण, स्वाभाविक सुन्दर चिन्ह, रेखाएँ आदि, पुष्टता व सुन्दरता होती है।

'पापयुते' एकवचन कहने से केवल एक ही पापग्रह व्रणादि करने में सक्षम है, ऐसा स्पष्ट है। पापयुक्त बुध, क्षीण चन्द्रमा, शनि, मंगल सूर्य, राहु केतु ये पाप ग्रह हैं। बुध, गुरु, शुक्र , पुष्ट चन्द्र ये शुभ ग्रह हैं। राहु व केतु को स्वभावानुसार सरीसृप साँप आदि के काटने से, कृमि उपघात से तथा केतु से अग्नि, (शिखी), तेजाब, रसायन आदि से घाव समझें।

अपने उदाहरण में लग्न में सूर्य वृश्चिक के उदित मध्यद्रेष्काण में है। अतः यह भाग कण्ठ है। द्वितीयस्थ केतु भी लग्न से द्वितीय राशि के मध्य द्रेष्काण में है, अतः दाएँ कन्धे का प्रतिनिधि हुआ। तृतीयस्थ मंगल राशि के प्रथम द्रेष्काण में है। अतः उदित से पिछले द्रेष्काण विभागानुसार दाएँ कान का द्योतक है। अष्टम में राहु राशि के द्वितीय द्रेष्काण में है। अतः बाएँ उदरभाग का द्योतक है। द्वादश में शनि प्रथम द्रेष्काण में (उदित से पिछला) है। अतः बाँयी आँख का द्योतक है।

इनमें सूर्य व राहु शुभ युक्त है। अतः सिर मस्तक एवं बाएं उदर भाग में तिलादि चिन्ह होगा। सूर्य स्थिर नवांश में रहने से सिर में जन्म से ही उक्त चिन्ह होगा। राहु चर नवांश में है, अतः अपनी दशान्तर्दशा में उक्त चिन्ह या निशान आदि पैदा करेगा।

मंगल व शनि शुभ युक्त या दृष्ट नहीं है, लेकिन दोनों उच्चस्थ हैं। शनि स्थिर नवांश में हैं, अतः जन्म से ही बाँयी आँख के पास या उसके अन्दर चोट, घाव या विकार चिन्ह होगा एवं मंगलकृत चिन्ह (व्रणादि) चर नवांश गत होने से इसकी दशार्न्तशा में होगा। दोनों उच्च राशि में रहने से विशेष घातक व्रण नहीं होगा। यह भट्टोत्पलीय विभाग है। अति सूक्ष्म विचारार्थ रुद्रभट्ट के मत की भी परीक्षा करते हैं।

इस मत में प्रत्येक राशि में भाव मध्य से शुरू कर द्रेष्काण विभाग मानने से सूर्य सिर का, केतु आँख का, मंगल अण्डकोष का इत्यादि प्रकार से प्रतिनिधित्व करते हैं। फलस्वरूप उक्त अंगों में चिन्ह होने के योग हैं। इस उदाहरण में रुद्रभट्ट के विभागानुसार चिन्ह, तिल वास्तव में भी विद्यमान पाए गए तथा भट्टोत्पल मत से कान व पेट पर चिन्ह नहीं मिला। अस्तु अनेक

उदाहरणों में घटाकर देखना चाहिए। जिस प्रकार से तर्क व उपपत्ति युक्त फल दिखे, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

समनुपतिता यस्मिन् गात्रे त्रयः सबुधा ग्रहाः,
भवति नियमात् तस्यावाप्तिः शुभेष्वशुभेषु वा।
व्रणकृदशुभः षष्ठे देहे तनोर्भसमाश्रिते,
तिलकमषकृद् दृष्टः सौम्यैर्युतश्च स लक्ष्मवान्।।26।।

(हरिणी)

शरीर के जिस भाग में बुध सहित तीन और ग्रह (शुभ या अशुभ) पड़ें हों तो उस अंग में नियमतः व्रण या चिन्ह या पुष्टि अवश्य होती है। अर्थात् उन चारों में बलवान् ग्रह अशुभ हो तो व्रण कारक, शुभ हो तो आभूषण व पोषकारक होता है। यदि मिश्रित ग्रह बलवान् हों तो चिन्हकारक समझें।

लग्न से षष्ठ में स्थित पापग्रह काल पुरुषांग विभाग से ज्ञायमान शरीरांग में अवश्य व्रण कारक होता है। यदि उक्त व्रणकारक ग्रह (षष्ठस्थ) शुभ युक्त या दृष्ट हों तो केवल चिन्ह होता है।

बुध सहित चार ग्रह नियमतः जन्म से या स्वदशान्तर्दशा में पिछले श्लोक में बताए गए प्रकार से (**स्वर्क्षांशस्थिरसंयुतः**) व्रण या तिलकारक नियमतः होते हैं। लग्न से षष्ठ में यदि शुभदृगयोग से रहित पापग्रह हो तो अपनी राशि के अधिष्ठित अंग (**कालांगानिवराङ्गमाननम्**) में व्रण कारक होगा। शुभ युक्त दृष्ट होने पर केवल चिन्ह कारक होता है। '**समनुपतिता**' के अर्थ में रुद्रभट्ट कहते हैं कि सूर्य चन्द्र सहित बुध हो तो रोगादि द्वारा तथा मंगलादि तीन ग्रहों से युक्त हो तो नियमतः उस अंग में घाव, दबाव, गड्ढा आदि होता है।

'**त्रयः सबुधा ग्रहाः**' में बुध तीन अन्य ग्रहों से युक्त हो तो नियमतः स्वबलाबलानुसार व्रण कारक, दो अन्य ग्रहों से युक्त हो तो स्वबलाबलानुसार उस अंग में रोगकारक होते हैं। यह तारतम्य भी ध्यान में रखना चाहिए। बुध की स्थिति एक पाप ग्रह (सूर्य सहित) के साथ भी हो जाए तथा वे शुभ दृष्ट न हों तो भी उस अंग में चकत्ता, निशान, उभार या दबाव आदि हमने देखा है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां जन्माध्यायः पंचमः।।

[6]

अथ सद्योऽरिष्टाध्यायः

सद्यः मरणयोग—

सन्ध्यायां हिमदीधितिहोरा पापैर्भान्तगतैर्निधनाय ।
प्रत्येकं शशिपापसमेतैः केन्द्रैर्वा सविनाशमुपैति ।।1।।

(उपचित्रा)

किसी भी लग्न में सन्ध्या (प्रातः सायं) काल में जन्म हो, जन्म लग्न में चन्द्रमा की होरा हो, सभी पापग्रह राशि के अन्तिम नवांश में गए हों तो यह एक योग है।

चन्द्रमा व पापग्रह चारों केन्द्रों में यथा तथा स्थित हों तो यह द्वितीय योग है। इनमें बालक तुरन्त विनाश को प्राप्त हो जाता है।

सूर्यास्त व सूर्योदय के समय सूर्य केन्द्र के उदय से पूर्व तथा सूर्य केन्द्र के अस्त के बाद तारे दिखने से पूर्व सन्ध्या होती है। यह समय 48 मिनट या 2 घड़ी का होता है। अहोरात्र की सन्धि में सम्पूर्ण सूर्य बिम्ब छिपने तक या प्रकाश रहने तक तथा सूर्योदय के समय प्रकाश दिखने से सूर्य केन्द्रोदय (पंचांगस्थ सूर्योदय) तक सन्ध्या काल है।

अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा च सन्ध्या प्रकीर्तिता ।
द्विनाडिका भवेत्साधुर्यावदाज्योतिदर्शनम् ।। (गर्गः)

वराह के मत से सूर्य केन्द्रोदय से सूर्य केन्द्रास्त तक दिन है। अतः ठीक सूर्योदय व सूर्यास्त (पंचांगस्थ) के समय या उससे मामूली इधर-उधर जन्म होने पर उक्त फल होगा। होरा षड्वर्गों में पठित होरा है तथा राश्यन्त का तात्पर्य राशि के अन्तिम नवांश से है। अतः 26°.40′ अंश से जितना

आगे ग्रह होगा, उतना ही कुप्रभाव बढ़ेगा। बहुवचन से कम से कम तीन पापग्रह (मंगल, शनि, सूर्य) का बोध है।

द्वितीय योग में चन्द्रमा पापी हो या शुभ यह आवश्यक नहीं है। अतः केवल चन्द्रमा से केन्द्र में व लग्न से केन्द्र में एक साथ पापग्रहों की किसी भी प्रकार से स्थिति सद्यः मरणकारक होती है।

चक्रस्य पूर्वापर भागगेषु क्रूरेषु सौम्येषु च कीटलग्ने।

क्षिप्रं विनाशं समुपैति जातः पापैर्विलग्नास्तमयाभितश्च।।2।।

(इन्द्रवज्रा)

वृश्चिक (व कर्क) लग्न में पूर्वार्ध (दशम से चतुर्थ तक) में पाप ग्रह व पश्चिमार्ध में शुभ ग्रह हों तो बालक शीघ्र ही मर जाता है।

यदि लग्न एवं सप्तम के दोनों ओर पापग्रह स्थिति हो तो भी सद्यःमरण होता है।

कीट लग्न से तात्पर्य पहले राशि भेदाध्याय में 'कीटनराम्बुचराः' इत्यादि प्रसंग में वृश्चिक कहा था, अब कर्क का भी ग्रहण बादरायण के आप्तवचनानुसार किया गया है।

पूर्वापरभागगतैरशुभैरलिनिकर्कटे लग्ने।

जातस्य शिशोर्मरणं सद्यः कथयति यवनेन्द्रः।। (बादरायण)

'केन्द्रस्था द्विपदादयोऽह्नि निशि च इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक में कीट राशियों को सन्ध्या काल में बलवान् कहा है तथा इस श्लोक में वृश्चिक, मकर, मीन को कीट माना है। यह प्रसंगभेद से भेद है, तात्त्विक नहीं। यह बात प्रायः सब टीकाकारों ने कही है। सारावली में स्पष्टतया वृश्चिक लग्न का ही ग्रहण है।

अभितः शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है। अभितः– दोनों ओर और अभितः– सम्मुख। दोनों ओर वाले तात्पर्य में 6. 8 तथा 2. 12 भावों का एवं सम्मुखार्थ में 6.12 एवं 2. 8 का ग्रहण होता है। गार्गि ने इसीलिए 6. 12 में पापग्रह रहने से एक योग, 2. 8 में रहने से दूसरा योग लग्न के पापमध्यत्व में तीसरा व सप्तम के पाप मध्यत्व में चौथा योग मानकर दूसरे योग के चार उपभेद कह दिए है–

रिपुव्ययगतैः पापैर्यदि वा धनमृत्युगैः।

लग्ने वा पापमध्यस्थे द्यूने वा मृत्युमाप्नुयात्।। (गार्गि)

हमारे विचार में इन सब योगों में फल का तारतम्य है। विलग्न व अस्तमय को एक समास में रखकर आचार्य ने एक साथ 2. 12. 6. 8 में पाप

योग को ही त्वरित नाशक माना है। ऐसा स्पष्ट है। गार्गि प्रोक्त योगों को इसी योग का प्रस्तार मानकर उनमें भी कुफल होता ही है। यह कहना युक्त है।

भौमे विलग्ने शुभदैरदृष्टे षष्ठेऽष्टमे वार्कसुतेन युक्ते।
तौ चार्कसंस्थौ शुभदृष्टिहीनौ जातस्य सद्यः कुरुते प्रणाशम्।।3।।

(इन्द्रवज्रा)

यदि लग्न में मंगल को कोई भी शुभफल कारक ग्रह न देखे एवं 6. 8 में कहीं शनि हो अथवा 6. 8 में शनि मंगल साथ हों व दोनों ही अस्तंगत हों, शुभ ग्रह उन्हें न देखें तो जातक की इन दो योगों में भी तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

यह श्लोक भट्टोत्पली टीका में कम है। विवरणकार ने इस पर टीका भी लिखी है। लग्न में मंगल किसी भी शुभफल कारक (नित्य शुभ नहीं) ग्रह से दृष्ट न हो, साथ में 6 या 8 भाव में शनि हो तो यह पूर्ण योग है। **'विलग्न'** कहकर सर्वथा लग्न भाव तुल्य मंगल, किसी भी कारक ग्रह से अदृष्ट हो व षष्ठ या अष्टम में शनि हो, यह मरणकारक योग है। **'शुभदैः'** से केन्द्रेश, त्रिकोणेश, कारक ग्रह, लग्नेश आदि पाराशर सिद्धान्त से शुभ कारक ग्रह का बोध है, न कि नित्य शुभ ग्रह का। उसके लिए तो **'शुभैः'** कहना ही काफी था।

द्वितीय योग में शनि व मंगल की एक साथ 6. 8 में स्थिति तथा सूर्य के साथ रहना आवश्यक बताया है। 'अर्कसंस्थौ' का अर्थ सर्वथा अस्त है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि इसी प्रकार अस्तंगत मंगल शनि यदि लग्न में भी हों तो भी उक्त योग है। **'च शब्देन विलग्न इत्यनुकृष्यते।'** वैकल्पिक रूप से **'अर्कसंस्थौ'** से बारहवाँ भाव भी ग्रहीत है। अर्क–सूर्य से द्योतित संख्या 12 है। अतः द्वादश में भी सूर्य, मंगल व शनि की युति हो तो सद्यः मरण. होता है। यवनेश्वर ने कहा है–

पापेषु लग्नाभिमुखेषु नश्येदवाप्तवीर्येष्वशुभर्क्षगेषु।

अन्य सद्योऽरिष्ट योग–

पापावुदयास्तगतौ क्रूरेण युतश्च शशी।
दृष्टश्च शुभैर्न यदा मृत्युस्तु भवेदचिरात्।।4।।

(अनुष्टुप, भेद)

लग्न व सप्तम में एक साथ कम से कम एक-एक पापग्रह हो, चन्द्रमा भी एक क्रूरग्रह से युक्त हो एवं तथाविध चन्द्रमा पर कोई भी शुभ ग्रह दृष्टि न रखता हो तो अविलम्ब प्राणनाश हो जाता है।

लग्न व सप्तम में विशेषतया मंगल व शनि की परस्पर दृष्टि हो, मंगल की स्थिति व शनि की दृष्टि विशेष घातक होती है। अतः लग्न में मंगल व सप्तम में शनि यह प्रथम स्थिति है। शनि लग्न में व मंगल सप्तम में यह द्वितीय स्थिति है। अन्य पापग्रहों में सूर्य ही शेष है। राहु व केतु का ग्रहण यहाँ नहीं है। इसी विधि से जिस भाव में मंगल हो तथा शनि उस भाव से सप्तम में हो तो उस भाव का भी नाश समझना चाहिए, यदि भावेश भी क्रूर युक्त या अस्तंगत आदि हो। यह विशेष पद्धति यहाँ पुनः स्पष्ट है।

क्रूरसंयुतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः।
कण्टकाद् बहिः शुभैरनीक्षितश्च मृत्युदः।।5।।

यदि पापयुक्त चन्द्रमा 1. 7. 8. 12 में हो तथा केन्द्र में कोई भी शुभ ग्रह न हो तथा चन्द्रमा शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो अविलम्ब मृत्यु होती है।

'संयुतः' शब्द से केवल साथ स्थित होना न होकर समान अंशों पर रहने का बोध है। अतः चन्द्रमा व पापग्रह एक राशि में समानांशक हों तब पूर्ण योग होगा। केन्द्र में शुभ ग्रह न हों, इससे लग्न से केन्द्र का ग्रहण है। अतः चन्द्रमा पर शुभ दृष्टि अभाव व लग्न से केन्द्र में शुभाभाव ये दोनों बातें योग कारक हैं तथा लग्न से केन्द्र में शुभ हो तथा चन्द्रमा शुभ योग या दृष्टि हो तो योग का अपवाद हो जाता है।

क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः।
केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् क्षिप्रं निधनं प्रवदेत्।।6।।

(अनुष्टुप)

यदि क्षीण (कलाहीन) चन्द्रमा द्वादश भाव में हो तथा कई पाप ग्रह 1. 8 भावों में हों व केन्द्र में कोई भी शुभ ग्रह न हो तो त्वरित मृत्यु बतानी चाहिए।

अन्य अरिष्ट योग–

शशिन्यरिविनाशगे निधनमाशुपापेक्षिते,
शुभैरथ समाष्टकं दलमतश्च मिश्रेक्षिते।
असद्भिरवलोकिते बलिभिरत्रमासं शुभे,
कलत्रसहिते च पापविजिते विलग्नाधिपे।।7।।

(पृथिवी)

यदि चन्द्रमा 6. 8 में स्थित हो और उसे पाप ग्रह देखे तो तुरन्त मृत्यु होती है। यदि 6. 8 में स्थित चन्द्र को शुभ ग्रह भी देखें तो आठ वर्ष की आयु, यदि शुभ व पाप ग्रह देखें तो उसकी आधी (दल) चार वर्ष की आयु होती है। यदि 6. 8 में ही स्थित किसी शुभ ग्रह (गुरु, बुध, शुक्र) को बलवान् पापग्रह भी देखे तो एक मास आयु होती है।

यदि लग्नेश पापग्रह से पराजित होकर सप्तम स्थान में स्थित हो तो भी एक मास का जीवन होता है।

उक्त सभी योगों में चन्द्रमा की क्षीणता या निर्बलता अवश्य विचारणीय है। 'अथ' शब्द का प्रयोग आनन्तर्य में है। अतः प्रथम चरण का सर्वत्र अन्वय होगा। 6. 8 में पाप दृष्ट चन्द्रमा हो तो अविलम्ब मृत्युकारक होता है। यदि उक्त चन्द्र को शुभ देखे तो आठ वर्ष लेकिन शुभ व अशुभ देखें तो मासमात्र आयु है, ऐसा समझें। लेकिन कृष्ण पक्ष में दिन में व शुक्लपक्ष में रात में जन्म हो तथा शुभाशुभ दृष्ट चन्द्रमा 6. 8 में पाप राशि में शुभयुक्त हो या शुभ राशि में हो तो अरिष्ट नहीं होता है। विशेष विस्तारार्थ वृद्धयवन जातक व सारावली देखें। चन्द्रमा की 6. 8 में स्थिति अनिष्ट है, यह मौलिक नियम बताकर शुभ, अशुभ या मिश्र ग्रहों के योग या दृष्टि से उसमें तारताम्य होता है। यह संकेत किया है।

जिस प्रकार चन्द्रमा से विचार है, तद्वत् प्रत्येक शुभ ग्रह की 6. 8 स्थिति को भी अनिष्ट कारक जान कर दृष्टि व योग से तारतम्य समझें। अतः 6. 8 में गुरु, बुध, शुक्र पर बलवान् पापग्रह की दृष्टि भी नाशक है, ऐसा अर्थ स्फुटतया ध्वनित है।

चन्द्र से अन्य अरिष्ट विचार–

लग्ने क्षीणे शशिनि निधनं रन्ध्रकेन्द्रेषु पापैः,
पापान्तःस्थे निधनहिबुकद्यूनयुक्ते च चन्द्रे।
एवं लग्ने भवति मदनच्छिद्रसंस्थे च पापे,
मात्रा सार्धं यदि न च शुभैर्वीक्षितः शक्तिमद्भिः।।8।।

(मन्दाक्रान्ता)

यदि लग्न में क्षीण चन्द्रमा एवं अष्टम भाव व केन्द्रों में सारे पाप ग्रह हों। यदि चन्द्रमा 4. 7. 8 भावों में पापग्रहों के बीच में स्थित हो। लग्न में स्थित चन्द्रमा यदि पाप ग्रहों के बीच में स्थित हो तथा 7. 8 भावों में पाप ग्रह हों तथा उसे बलवान् शुभ ग्रह न देखते हों हो माता के सहित ही शिशु का मरण हो जाता है। यदि शुभ ग्रह देखें तो माता का मरण नहीं होता है। ये तीन योग हैं।

राश्यन्तगे सद्भिरनीक्ष्यमाणे चन्द्रे त्रिकोणेपगतैश्च पापैः ।

प्राणैः प्रयात्याशु शिशुर्वियोगमस्ते च पापैस्तुहिनांशुलग्ने ।।9।।

(इन्द्रव्रजा)

यदि चन्द्रमा राशि के अन्तिम नवांश में स्थित हो तथा उसे शुभ ग्रह न देखें। साथ ही त्रिकोण भवनों में शेष सब शुभाशुभ ग्रह अथवा कई पापग्रह हों तो जातक की अविलम्ब मृत्यु होती है।

यदि लग्नस्थ चन्द्रमा से सप्तम में कई पाप ग्रह स्थित हों तो भी जातक की शीघ्र मृत्यु होती है।

'तुहिनांशु लग्ने' अर्थात् चन्द्रमा लग्न में हो तब ऐसा अर्थ लघुजातक के आधार पर किया गया है। अतः चन्द्रमा का लग्न (कर्क लग्न) या केवल चन्द्र कुण्डली से सप्तम में पाप स्थिति, ऐसे अर्थ नहीं किए हैं।

'उदयगतो वा चन्द्रः सप्तमराशिस्थितैः पापैः। (लघुजातक)

अशुभसहिते ग्रस्ते चन्द्रे कुजे निधनाश्रिते,

जननि सुतयोर्मत्युर्लग्ने रवौ तौ सशस्त्रजः।

उदयति रवौ शीतांशौ वा त्रिकोणविनाशगैः,

र्निधनमशुभैर्वीर्योपेतैः शुभैरयुतेक्षितैः ।। 10 ।।

(हरिणी)

यदि ग्रहण कालीन चन्द्रमा लग्न में पाप ग्रह से युक्त हो और मंगल लग्न से अष्टम में गया हो। इस योग में माता सहित पुत्र की मृत्यु होती है।

यदि ग्रहण कालीन सूर्य लग्न में पाप युक्त हो तथा अष्टम में मंगल हो तो माता व पुत्र का मरण शस्त्र से होता है।

इसी प्रकार लग्नगत चन्द्रमा या सूर्य हो तथा 5. 8. 9 भावों में बहुत से (यथासम्भव सब) पाप ग्रह हों तथा बलवान् शुभ ग्रह से दृष्ट या युत लग्न न हो तो शीघ्र मरण होता है। यदि शुभ योग या दृष्टि हो तो मरण नहीं होता, यह बात स्वयं सिद्ध है।

अन्य ग्रहों से अरिष्ट–

असि तरविशशांकभूमिजैर्व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः।

भवति मरणमाशुदेहिनां यदि बलिना गुरुणा न वीक्षिताः ।।11।।

(अपरवक्त्र)

शनि, सूर्य, चन्द्रमा व मंगल क्रमशः 12. 9. 1. 8 में स्थित हों तथा बलवान् बृहस्पति से दृष्ट न हों तो शीघ्र ही जातक का मरण होता है।

'वीक्षिताः' में बहुवचन प्रयोग से सिद्ध होता है कि बलवान् बृहस्पति की एक साथ शनि, सूर्य, चन्द्र, मंगल पर दृष्टि न हो, तभी योग होगा। यदि बलहीन गुरु सब को भी देखे तब मरण होगा ही, यह प्रत्यक्ष है। यदि बृहस्पति कुछ पर दृष्टि रखे तथा कुछ पर न रखे तब भी मरण होता है, लेकिन तब शीघ्र नहीं होता। यह विशेष ध्वन्यर्थ है।

यदि बृहस्पति पंचम में हो तो अष्टमस्थ मंगल व द्वादशस्थ शनि को त्रिपाद दृष्टि से, नवमस्थ व लग्नस्थ सूर्य चन्द्र को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

सुतमदननवमान्त्यरन्ध्रलग्नेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा।।12।।

(पुष्पिताग्रा)

यदि 5. 7. 9. 12. 8. 1 भावों में कहीं पर पाप ग्रह से युक्त चन्द्रमा स्थित हो तो सद्योमरण होता है। यदि उसे बलवान् गुरु, शुक्र, बुध ये तीनों न देखें या योग न करें तभी उक्त फल कहना चाहिए। यदि गुरु, शुक्र, बुध से युक्त दृष्ट हो तो मरण नहीं होता।

यदि बलवान् तीनों शुभ ग्रह देखें या योग करें यह आवश्यक है या नहीं, इस विषय में ध्यातव्य है कि चन्द्रमा अत्यन्त क्षीण होकर उक्त भावों में अशुभयुक्त हो तो तीनों ग्रहों का योग दृष्टि सर्वथा अरिष्टाभाव को बताएगी। यदि चन्द्रमा बली हो तथा बलवान् गुरु या शुक्र या बुध देखे तब भी अरिष्टनाशक होगा। भट्टोत्पल ने कहा है कि तीनों में बली होकर एक भी देखे या योग करे तब भी अरिष्ट नाशक है। इस श्लोक में आचार्य ने अन्यथा अरिष्ट नाशक योगों का संकेत भी अध्यायान्त में कर दिया है। लग्न बलवान् हो तथा बलवान् बुध, गुरु, शुक्र में से किसी से भी दृष्ट या युक्त हो, अथवा पापयुक्त चन्द्र या लग्न को अधिक संख्यक बली शुभ ग्रह देखें या योग करें। इनमें सर्वारिष्ट नाश होता है। बलवान् शुभ ग्रह से तात्पर्य केन्द्रगत स्वराश्यादिस्थ का ग्रहण है। इसका विस्तार **सारावली** में देखें।

अरिष्ट का कालनिश्चय–

योगे स्थानं गतवति बलिनश्चन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथवा।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम्।।13।।

(भ्रमर विलसित)

जिन योगों में मृत्यु का समय नहीं बताया गया है, उन योगों में मृत्यु निर्णय का प्रकार बताया जा रहा है। अरिष्ट योग कारक ग्रहों में जो सर्वाधिक बलवान् ग्रह हो उसका निर्णय करें। उसी बलवान् ग्रह की अधिष्ठित राशि में जब चन्द्रमा आए तब मरण होगा। अथवा जन्म लग्न राशि में चन्द्रमा आने पर अथवा जन्म कालीन चन्द्रमा की राशि में ही पुनः चन्द्रमा आने पर मृत्यु होती है। उक्त गोचर एक वर्ष के अन्दर देखें।

जब वर्ष के अन्दर कभी भी चन्द्रमा उक्त प्रकार से स्थित व बलवान् हो तथा अधिक पाप ग्रहों से दृष्ट हो तब मरण होता है, ऐसा मुनिजनों ने कहा है।

(i) अरिष्ट कारक बलवान् ग्रह की अधिष्ठित राशि में (ii) चन्द्र या लग्न राशि में जब भी चन्द्रमा गोचरवशात् बलवान् हो तथा अधिक पाप ग्रहों से दृष्ट हों तब मृत्यु होगी। अतः प्रतिमास गोचर स्थिति की समीक्षा करके फलागम निश्चय करें। यदि उस चन्द्रमा पर शुभ योग या दृष्टि बने तो मरण नहीं होगा, यह ध्यान रखें। पूरे वर्ष में चन्द्रमा के 13 भगण होते हैं। इस कारण बलवान् अरिष्टकारक ग्रह की, जन्म लग्न की, जन्म चन्द्र की इन तीन राशियों में आने पर 13×3=39 कालावधियाँ विचारणीय होंगी। इसी श्लोक का विस्तार **'प्रश्न मार्ग'** के अध्याय 10 में भी देखें।

इतिश्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां सद्योऽरिष्टाध्यायः षष्ठः ।।

[7]

अथायुर्दायाध्यायः

पिण्डायुर्दाय विचार–

मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैर्दिवसकरादिषु वत्सराः प्रदिष्टाः ।
नवतिथि विषयाश्विभूतरुद्रा दशसहिता दशभिःस्वतुङ्गभेषु ।।1 ।।

(पुष्पिताग्रा)

मय, यवनाचार्य मणित्थ (मणिन्ध) व पराशर (शक्ति पुत्र) इन आचार्यों ने सूर्यादि ग्रहों के परमोच्च में रहने पर क्रमशः 19, 25, 15, 12, 15, 21, व 20 वर्ष आयुर्दाय के लिए निर्दिष्ट किए हैं ।

'शक्तिपूर्वः' में पूर्व शब्द से पूर्वज (पिता) का ग्रहण है । अतः शक्ति पुत्र पराशर का बोध है । **'दशभिः सहिताः'** का क्रमशः 9 (नव) 15 (तिथि) 5 (विषम) 2 (अश्वि) 5 (भूत) 11 (रुद्र) व दस से सम्बन्ध है । यद्यपि 'तुंगमेषु' कहा है तथापि परमोच्च में रहने पर उक्त वर्ष तथा उच्च से इधर-उधर रहने पर आनुपातिक विधि अपनानी चाहिए ।

उक्त आयु में अन्य संस्कार–

नीचेऽतोऽर्धं ह्रसति हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातो,
होरात्वंश प्रतिममपरे राशितुल्यं वदन्ति ।
हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागः,
सूर्योच्छिन्नद्युतिषु च दलं प्रोज्झ्य शुक्रार्कपुत्रौ ।। 2 ।।

यदि ग्रह परम नीच में स्थित हों तो उक्त आयु वर्षों में से आधी हानि हो जाती है । यदि ग्रह परम नीच व परमोच्च के बीच में हो तो अनुपात द्वारा आयु वर्षों का निश्चय करें ।

लग्न के आयु वर्ष जानने के लिए लग्न में स्थित नवांश की संख्या जानें। नवांश संख्या के तुल्य वर्ष लग्नायुर्दाय के होते हैं। कुछ आचार्य लग्न में स्थित राशि की संख्या के बराबर आयु वर्ष कहते हैं।

मंगल को (या वक्री ग्रह को) छोड़कर, जो ग्रह अपने शत्रु क्षेत्र में हो तो उसके प्राप्त आयु वर्षो का तृतीयांश नष्ट हो जाता है।

शुक्र व शनि को छोड़कर शेष ग्रह यदि अस्तंगत हों तो उनकी आयु का आधा भाग कम करना चाहिए।

प्रथम चरण में आयुर्दाय वर्षो का आनुपातिक साधन कहा है। द्वितीय चरण में लग्नायुर्दाय के दो प्रकार कहे गए हैं। **'बलयोगात् फलमंशकर्क्षयोः'** इत्यादि पूर्वोक्त न्याय से नवांश बली हों तो नवांश संख्यातुल्य व लग्न राशि बली हो तो राशितुल्य वर्ष लग्न के होते हैं। सारावली में यही व्यवस्था है।

'हित्वावक्रं' में वक्र का अर्थ वक्री ग्रह व वक्र (मंगल) ये दोनों ही कहे जाते हैं। तदनुसार कुछ लोग शत्रु क्षेत्र हरण मंगल रहित शेष ग्रहों का तथा कुछ लोग किसी भी वक्री ग्रह को छोड़कर शेष का करते हैं। बादरायण, रुद्रभट्ट, वैद्यनाथ आदि ने स्पष्टतया 'मंगल' वाला अर्थ माना है। भट्टोत्पल ने 'वक्र' का अर्थ वक्री ग्रह ही किया है। हमारे विचार से 'मंगल' वाला अर्थ भी उपयुक्त है–

त्र्यंशं रिपोर्भवनगेऽवनिजं च मुक्त्वा। (पृथुयशा)

'भौमं वर्जयित्वा शिष्टैर्ग्रहैः शत्रुक्षेत्रस्थितैः--- ।। (रुद्रभट्ट)

'क्षोणिपुत्रं वर्जयित्वा रिपुस्थाः'। (वैद्यनाथ)

भूम्याः पुत्रं वर्जयित्वाऽरिभस्थाः। (बादरायण)

प्राचीन काल से ही इस विषय में दोनों मतों के पोषक आचार्य हुए हैं। मय, मणित्थ आदि के मूल ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। हम समझते हैं कि भट्टोत्पल ने जो कहा है कि आचार्य को मंगल वाला अर्थ अभीष्ट होता तो वे 'हित्वा भौमं' कह सकते थे; लेकिन नहीं कहा, यह सप्रयोजन है। सूर्य चन्द्र कभी वक्री नहीं होते तथा मंगलादि पाँच ग्रह वक्री मार्गी होते हैं। यहाँ 'वक्र' कहकर आचार्य ने **'एकवृन्तगत फलद्वयन्याय'** से कहा है कि मंगल वक्री न हो और यदि शत्रु क्षेत्री हो तो भी त्रिभाग हानि नहीं करेगा। यदि अन्य वक्री ग्रह शत्रु क्षेत्री हों तो उसकी भी शत्रु क्षेत्र हानि नहीं होगी। अतः मंगल को मार्गी व वक्री किसी भी स्थिति में वक्र गति निरपेक्ष सार्वत्रिक शत्रुक्षेत्र हानि प्राप्त नहीं होती है तथा शेष ग्रहों को केवल मार्गी रहने पर ही यह हानि होती है।

वक्री ग्रह की प्राप्त आयु को आगे स्वयं आचार्य ने बढ़ाने के लिए कहा है । 'पुनश्च **'सत्त्वं कुजः'** के न्याय से मंगल सेनापति व धीर वीर ग्रह है, वह शत्रु के क्षेत्र में भी जाकर अपनी वीरता, सत्त्व व चमक दिखाएगा, यह भी शास्त्र व लोक से सिद्ध है ।

आयु साधन का उदाहरणः– ग्रह स्पष्ट को परम उच्च में से या परमोच्च में से ग्रह स्पष्ट को घटा लें । शेष यदि 6 राशि से कम हो तो उसे 12 में से घटाएँ । यदि 6 राशि से अधिक हो तो 12 में से न घटाएँ । उस शेष राशि को ग्रह के आयु वर्षों से गुणा करें । लब्धि आयु होगी ।

(सूर्य) ग्रह– 7. 15. 53. 00	0. 10. 0 स्वोच्च
स्वोच्च– 0. 10. 0. 0	–7. 15. 53 ग्रह (सूर्य)
7. 5 . 53. 0	12 - 4. 24. 7
(कर्म योग्य राशि)	= 7. 5. 53 कर्म योग्य राशि

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है । कर्म योग्य राशि या उच्च नीच का अन्तरस्थ अनुपात 7.5. 53 × 19 (सूर्य के आयु वर्ष) करने से प्राप्त संख्या ही सूर्य के आयु वर्ष होंगे ।

उक्त गुणनफल 133. 95°. 1007' है । अथवा सरल करने पर 136. 21°. 47' है । राशि में 12 से भाग दिया तो 11 वर्ष 1 मास 21 दिन 47 घड़ी सूर्य की प्रदत्त आयु है । इसी विधि से सबकी आयु साधित कर सकते हैं ।

चन्द्रमा2. 0. 38	मंगल 9. 0. 2	बुध 7. 22. 47
स्वोच्च –1. 3. 0	– 9. 28. 0	– 5. 15. 00
0. 27. 38	11. 2. 2	2. 7. 47
द्वादश शुद्ध	11. 2. 22×25 =	11.2. 2×15 =
		9. 22. 13×12 =
आयु वर्ष	275. 50. 550	165. 30. 30 108
		. 264. 156
सरल 276. 29. 10	मासादि 166. 0. 30	मासादि 116. 26. 36 मासादि
अथवा 23. 0. 29. 10	वर्षादि 13. 10. 0. 30	वर्षादि 9. 8. 26. 36 वर्षादि
आयु ।		
गुरु 7. 1. 20	शुक्र7. 22. 50	शनि 6. 6. 39
स्वोच्च – 3. 5. 0	–11. 27. 0	–6. 20. 00
मण्डल शुद्ध 8. 33. 40×15 =	7. 25. 50×21 =	11. 16. 39×20 =
120. 495. 600	147. 525. 1050	220.320. 780
अथवा 136. 25. 0 .	मासादि 165 . 2. 30 मासादि	231. 3. 0 मासिक
11. 4. 25. 0 वर्ष	13. 9. 2. 30 वर्ष	19. 3. 3. 0 वर्ष

लग्नायु साधनः– लग्न स्पष्ट 7. 18°. 57′ में पाँच नवांश बीत चुके हैं। उनका मान 3°. 20′ × 5 = 16°-40′ है। छठा नवांश वर्तमान है। उसका भी 2°. 17′ बीत चुका है। अतः भुक्त नवांश संख्या के बराबर पाँच वर्ष निश्चित हुए। शेष वर्तमान से अनुपात किया। एक नवांश 3°. 20′ या 200′ कला में आयु 12 मास है तो 137 कला में कितनी ? अतः $\frac{12 \times 137}{200} = \frac{3 \times 137}{50}$ = 8 मास 6 दिन 18 घड़ी मिले। तब लग्न नवांश से आयु 5. 8. 6.18 वर्षादि है।

यहाँ लग्न स्वयं **'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता'** न्याय से बुध, गुरु शुक्र से युत है। अतः राशि बली होने से तदनुसार आयु होगी। लग्न 7. 18°. 57′ में से 7 राशि ही 7 वर्ष हैं। शेष 18°. 57′ कला 1137 है। 1 राशि या 30° या 1800 कला में 12 मास तो 1137′ कला में कितने ? $\frac{12 \times 1137}{1800} = \frac{1137}{150}$ या 7 वर्ष 7 मास 17 दिन हुए। अतः 7 वर्ष 7 मास 17 दिन लग्नायुर्दाय है।

हानिपूर्व आयुर्दाय चक्र (उदाहरण)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
वर्ष	11	23	13	9	11	13	19	7
मास	1	0	10	8	4	9	3	7
दिन	21	29	0	26	25	2	3	17
घड़ी	47	10	30	36	0	30	0	00

यदि आप चाहें तो घड़ियों को 30 से अधिक रहने पर एक पूरा दिन भी मान सकते हैं। 'अर्धाधिके रूपं (पूर्ण) ग्राह्यम्' यह नियम भी है।

चक्रपात हानि का कथन–

सर्वार्धत्रिचरणपंचषष्ठभागाः क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सु वामम्।
सत्स्वर्धं ह्रसति ततस्त्वथैकगानामेकोऽंशं हरति बली तथाह सत्यः ।।3।।

(प्रहर्षिणी)

द्वादश भाव से विपरीत क्रम से 12. 11. 10. 9. 8. 7 भावों में (दृश्य चक्रार्ध) स्थित पापग्रह क्रमशः अपनी पूर्वागत आयु का $\frac{1}{1}, \frac{1}{2}, \frac{1}{3}, \frac{1}{4}, \frac{1}{5}, \frac{1}{6}$ भाग कम कर देते हैं।

सब शुभ ग्रहों की प्रदत्त आयु में से दृश्यचक्रार्ध हानि पापग्रह की अपेक्षा आधी होती है।

यदि एक ही भाव में कई ग्रह हों तो उनमें से बलवान् एक ग्रह की हानि करनी चाहिए। ऐसा सत्याचार्य का मत है।

इसे चक्रार्ध हानि भी कहते हैं। उक्त क्रम सर्वमान्य है। इस विषय में रुद्रभट्ट कहते हैं कि बिल्कुल भावतुल्य ग्रह हो तो उक्त मान से उक्त पूरी हानि तथा भावान्तराल अर्थात् सन्धि में हो तो अनुपात से हानि की मात्रा जानें।

'भावान्तरालेषु तु त्रैराशिकेन हरणं कर्त्तव्यमित्यर्थादुक्तं भवति।'

(रुद्रभट्टः)

लग्न स्पष्ट में एक-एक राशि जोड़कर भाव विचार करें। लग्न स्पष्ट -15^0 = द्वादश भाव विराम (विपरीत क्रम से आदि) जानकर उसमें क्रमशः 1-1 राशि जोड़े। उन भावों में पड़ने वाले ग्रह की चक्रार्ध हानि करें।

हमारे उदाहरण में शनि द्वादशस्थ है। लग्न 7. 18. 57 – 15^0 = 7. 3^0. 57′ से लेकर पीछे 6. 3^0. 57′ तक द्वादश भाव है। शनि स्पष्ट 6. 6^0. 39′ द्वादश भाव में ही पड़ा। अतः उसे सर्व हानि प्राप्त है। पद्धति ग्रन्थों में भाव मध्य पर सम्पूर्ण हानि तथा उससे इधर उधर भी आनुपातिक हानि कही गई है। यह विषय जातक पद्धतियों से देखें। पुनश्च आचार्य वराहमिहिर ने सम्भवतः आनुपातिक विधि स्वीकार न करके 'राशि, क्षेत्र, गृह, ऋक्ष, भ आदि को पर्याय वाचक कहकर सम्पूर्ण भाव में कहीं भी रहने पर हानि मानी है। सदैव स्पष्ट लग्न में से स्पष्ट ग्रह को घटाने पर यदि 6 राशि से कम बचे तभी उक्त हानि होगी, अन्यथा नहीं।

क्रूरोदय हानि–

सार्धोदितोदित नवांशहतात्समस्ताद्
भागोऽष्टयुक्तशतसंख्य उपैति नाशम्।
क्रूरे विलग्न सहिते विधिनात्वनेन,
सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति।।4।। (वस. ति.)

सर्वप्रथम शब्दार्थ बताया जा रहा है । व्याख्या व मत-मतान्तर पश्चात् कहेंगे । लग्न में क्रूर ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) स्थित हो तो लग्नगत पाप ग्रह हानि संस्कार या क्रूरोदय हरण होता है । एतदर्थ लग्न में उदित नवांश सहित भुक्त नवांश संख्या से उसके आयुर्दाय के वर्षों को गुणा (हत) करें । गुणनफल में 108 से भाग दें । जो वर्षादि लब्धि होगी, उतना भाग आयुर्दाय में से नष्ट हो जाता है ।

यदि लग्नगत पापग्रह को शुभ ग्रह देखे तो पूर्व प्राप्त हानि का आधा भाग ही कम किया जाता है ।

इस श्लोक की व्याख्या दो प्रकार से की जाती रही है । उसे बताने से पूर्व **'सार्धोदित नवांश'** का आशय समझ लीजिए । अर्धोदित अर्थात् आधा उदित नवांश । आशय है कि लग्न में भुक्त नवांश संख्या तथा वर्तमान नवांश का जितना भाग बीत गया हो उसे भी भुक्त नवांश में जोड़ना चाहिए । आधा उदित अर्थात् बिल्कुल आधा नहीं, अपितु खण्ड, अपूर्ण या अनवसित नवांश का अवयव या भाग । अतः सावयव वर्तमान नवांश तक भुक्त नवांश संख्या यह अर्थ है ।

प्रथम मत से लग्न में कुल नवांश संख्या को जानने के लिए मेष से ही नवांश संख्या जानी जाती है । अर्थात् राशि चक्र मेषारम्भ से लेकर लग्न तक व्यतीत नवांशों की संख्या ली जाती है । जैसे वृष लग्न के 7^0. 15' अंश हों तो मेष के व्यतीत 9 नवांश तथा वृष के 2 सम्पूर्ण नवांश कुल 11 नवांश भुक्त तथा अर्धोदित नवांश का 35' कला वाला भाग लगभग सवा ग्यारह नवांश मानें । इस मत के पोषक भट्टोत्पल आदि हैं ।

द्वितीय मत से लग्न राशि के ही उदित नवांश लेने हैं, न कि राशि चक्र के । अर्थात् वृष राशि 7^0. 15' पर केवल सवा दो नवांश ही 'सार्धोदित नवांश हैं । इसके समर्थक रुद्रभट्ट, गोविन्द सोमयाजी व बाद के कई पद्धतिकार आदि हैं ।

पहले मत में प्रत्यक्ष दोष यह बताया जाता है कि किसी व्यक्ति का जन्म मीन के अन्तिम नवांश में हो तो लगभग 108 नवांश बीत चुके होंगे । तब तो आयु वर्षों को लगभग 108 से गुणा कर 108 से ही भाग देने पर आयु लगभग 0 वर्ष होगी तथा इस स्थिति में उत्पन्न सब जातकों का सद्यःमरण अवश्य होगा, जो कि व्यवहार्य नहीं है । फिर इसी अध्याय में आचार्य स्वयं **'अनिमिषपरमांशके विलग्ने'** आदि कहकर पूर्णायु योग कहेंगे, यह प्रत्यक्ष विरोध है ।

हमें दूसरा मत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अतः लग्न स्पष्ट की राशि को छोड़कर अंशादि से अर्धोदित नवांश जानने योग्य हैं। इस विषय में बहुमत भी यही मानता है–

लिप्तीभूतैर्लग्नभागैर्निहन्यात् (जातक पारिजात)

(श्रीपति)

'अत्र केचित् सार्धोदित नवांशानां मेषादितो गणनमाचक्षते ......तदसदेव।

(विवरणकार)

लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुषा (सारावली)

दायांशद्युसदां पृथक् तनुलवात्.... । (केशवीय पद्धति)

अतः सरल प्रकार यह होगा। पहले शत्रु क्षेत्र हानि, अस्तंगत हानि व चक्रपात हानि करके आयु वर्ष जान लें। तब क्रूरोदय हरण करेंगे। यह ध्यान रखें। यह सूत्र प्रयुक्त करें।

$$\frac{\text{उक्त हानि संस्कृत ग्रहायुः} \times \text{लग्न के स्पष्ट अंशादि (राशि रहित)}}{\text{108 नवांश या } 360^{\circ} \text{ अंश या } 21600' \text{ कला}}$$

ऐसा करने पर क्रूरोदय हरण की मात्रा ज्ञात हो जाएगी। इस गुणा में गोमूत्रिका का प्रयोग करें तो सरलता होगी।

पूर्वोक्त उदाहरण में सर्वप्रथम हानि संस्कार करेंगे। सूर्य मित्र क्षेत्री है, अतः शत्रु क्षेत्र हानि तथा अस्तंगतत्व हानि उसे स्वभावतः प्राप्त नहीं है। चन्द्रमा को केवल चक्रपात हानि प्राप्त है। चन्द्र स्पष्ट 2. 0. 38 को लग्न 7. 18. 57 में से घटाया तो 5. 18. 19 शेष है। यह 6 राशि से कम है। अतः चक्रपात हानि होगी। भाव विभाग से यह सप्तम में है। अतः $\frac{1}{12}$ भाग कम होगा। तब चन्द्रमा की आयु 21 वर्ष 1 मास 27 दिन रही।

बुध शुक्र को अस्तंगत हानि प्राप्त है। तब शुक्र को यह हानि न होने से केवल बुध की आयु का आधा भाग कम किया तो 4 वर्ष 10 मास 13 दिन बुधायु है। शनि द्वादशस्थ होने से पूर्ण हानि का पात्र है। तब उसकी समस्त प्रदत्तायु का त्याग होगा।

हानि विचार करते समय सर्व प्रथम नीचोच्चमध्यस्थ अनुपात, तब शत्रु क्षेत्र हानि पुनः अस्तंगतत्व हानि पुनश्च चक्रपात हानि और क्रूरोदयहरण करें, यह क्रम है। लग्न में पाप ग्रह सूर्य है। अतः क्रूरोदय हरण प्राप्त है। लग्न स्पष्ट 7. 18°. 57' में पूर्ण भुक्त नवांश 5 तथा छठे नवांश का 2°. 17' भाग व्यतीत है। तब लग्न कला पिण्ड 1137 कला है। 1137 ÷ 200 = **5** नवांश

2°. 17′ ही प्राप्त होता है । **5. 2°. 17′** सार्धोदित नवांश हुआ । अथवा $\frac{1137}{200}$ को ही नवांश संख्या समझ कर आयुर्भाग से गुणा करेंगे ।

$$\frac{\text{सूर्यायु 11. 1. 22 वर्ष} \times \text{लग्नगत नवांश कला 1137}}{21600}$$

$\frac{4012 \times 1137}{21600}$ है ।

लब्धि 211 दिन या 0 वर्ष 7 मास 1 दिन है । यह भाग सूर्यायु में से कम कर दिया तो 10 वर्ष 6 मास 21 दिन सूर्यायु है । इसी विधि से सब ग्रहों की आयु में से हानि हो जाएगी । क्रूरोदय हानि सब ग्रहों की आयु में से होती है, केवल लग्न में स्थित पापग्रह की अपनी आयु में से नहीं ।

अथवा समस्त ग्रहों की पूर्व प्राप्त आयु को जोड़कर भी लग्न नवांश कला से गुणा कर चक्र कला से भाग देने पर प्राप्त लब्धि को घटाने पर एक ही बार में क्रूरोदय हरण हो जाता है । अलग-अलग ग्रहों में यह संस्कार करना इस लिए कहा है क्योंकि आयुर्दशा अलग-अलग ग्रहों की ही लगेगी ।

आयुर्दायचक्रोदाहरण

ग्रह	**सं० आयु वर्ष**	**क्रूरोदयहरण**	**आयु वर्ष**	
सूर्य	11. 1. 22	0. 7. 1	10. 6. 21	**वर्षादि**
चन्द्र	21. 1. 27	1. 0. 11	20. 0. 16	**वर्षादि**
मंगल	13. 10. 0	0. 8. 22	13. 1. 8	**वर्षादि**
बुध	4. 10. 13	0. 3. 2	4. 7. 11	**वर्षादि**
गुरु	11. 4. 25	0. 7. 6	10. 9. 19	**वर्षादि**
शुक्र	13. 9. 2	0. 8. 21	13. 0. 11	**वर्षादि**
शनि	0. 0. 0	0. 0. 0	0. 0. 0	**वर्षादि**
लग्न	7. 7. 17	0. 4. 25	7. 2. 22	**वर्षादि**
योग	83. 9. 16	4. 4. 28	79. 4. 18	**वर्षादि**

इस प्रसंग में सूर्य, मंगल, शनि को ही पापी या क्रूर मानेंगे। क्षीण चन्द्रमा या पापयुक्त बुध पापी नहीं समझा जाएगा। लग्न में एक पापग्रह हो चाहे अधिक, प्रत्येक अवस्था में एक ही बार यह हानि की जाएगी, यह एक मत है। कुछ लोग कहते हैं कि जितने पापग्रह लग्न में हों, उतनी ही बार यह हानि करें। जैसे लग्न में शनि व मंगल व सूर्य तीनों हों तो क्रूरोदय हरण के वर्षों को तीन बार घटाएँ। यह मत ठीक नहीं है। बहुमत सम्मत पद्धति यही है कि एक ही बार यह हानि करें।

दूसरी बात यह है कि उक्त क्रूरोदय हरण लग्नस्थ पापग्रह की आयु में से ही घटाएँ या सब ग्रहों की आयु में से। एतदर्थ भी दोनों ही बातें प्रचलित हैं। आचार्य की सम्मति सब ग्रहों में से ही घटाने की दिखती है।

पुनश्च विशेष ध्यातव्य यह है कि लग्नगत पापग्रह यदि स्वोच्चगत हो अथवा स्वक्षेत्री हो तो वह लग्न में रहने पर भी क्रूरोदय हरण का कारण नहीं है। तब यह हानि नहीं करेंगे।

शुभ ग्रह से यदि लग्नस्थ पाप ग्रह दृष्ट हो तो उक्त हानि का आधा भाग ही घटाएँ। यह बात स्पष्ट कही गई है। लेकिन लग्न में यदि शुभ ग्रह स्वयं बैठे हों, तब यह हानि होगी या नहीं ? इस विषय में सब मौन हैं। **'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता'** के न्याय से प्रस्तुत उदाहरण में लग्न बली है, तब वहाँ सूर्य के रहने से प्राप्त हानि संस्कार पूरा होगा या आधा ? यह विचारणीय प्रश्न है। हम समझते हैं कि पिण्डायुर्दाय में लग्न में शुभ ग्रह रहने पर भी क्रूरोदयहरण होगा, अन्यथा आचार्य ने इसका उल्लेख किया होता। यदि लग्न में सूर्य होगा तब केवल बृहस्पति की दृष्टि ही लग्न पर हो सकती है। क्योंकि बुध शुक्र तो सूर्य के आस-पास ही रहते हैं। यदि शुभ योग में हानि न करनी होती तो प्राचीन आचार्य इस सूची में सूर्य को न रखते।

सूर्यांगारशनीनामेकस्मिन् लग्नगे भवति हानिः।
विधिना त्वनेन सौम्येक्षिते दलं पातयेल्लब्धम्।।

(बादरायण)

'लग्ने यदा पापसौम्यौ भवतस्तदा यो लग्नोदितांशक समीपवर्ती स एवसग्राह्यः।(भट्टोत्पल)

उक्त कथन से यही प्रतीत होता है कि लग्न में शुभ योग होने पर भी क्रूरोदय हरण होगा।

तिष्ठतः शुभपापौ चेत् पापोदयविधिःस्मृतः। (पराशर)

लग्न में अकेला/राहु या केतु हो तब भी यह हानि नहीं होगी। अतः सूर्य, मंगल, शनि इस प्रसंग में पाप हैं तथा शेष ग्रह शुभ हैं। दृष्टि भी हमारे विचार से पूर्ण हो तो आधी हानि, अन्यथा दृष्टि से हानि वर्षों को आधा करना उपयुक्त नहीं है। तब आनुपातिक ह्रास करना चाहिए।

उक्त प्रकार से सिद्ध आयु सावन मान से होती है। अतः उक्त आयुवर्षों को सौर मान से बनाकर व्यवहृत करना चाहिए। सौर वर्ष, सावन वर्ष की अपेक्षा 5 दिन, 15 घड़ी 22 पल 30 विपल अधिक है। अतः पूर्व प्राप्त आयु वर्षों को 360 से गुणा करके 365 का भाग देना चाहिए। यह बात कुछ विद्वानों ने कही है। साधारणतया 360 दिन सावन वर्ष से सौर वर्ष का अधिक मान (5. 15. 22 दिनादि) को प्रतिवर्ष के हिसाब से कम कर देने पर भी कार्य साधक त्वरित बोध हो जाता है। उदाहरणार्थ हमारे उदाहरण में सूर्य की आयु 10 वर्ष 6 मास 21 दिन है। अतः इसे 5. 15. 22 से गुणा करके जो फल दिनादि मिले, उसे पूर्वायु में से घटा लेंगे। यह अन्तर 1 मास 25 दिन के लगभग है। अतः सूर्य की आयु 10 वर्ष 4 मास 26 दिन मानी जाएगी।

इस विषय में हम कहना चाहते हैं कि ग्रहों का पूर्वोक्त आयुर्मान यथा सूर्य के 19 वर्ष इत्यादि के विषय में निश्चित मत नहीं हैं कि वे वर्ष सावन हैं या सौर ? मनुष्य की परमायु 120 वर्ष 5 दिन कही है। ये वर्ष सौर हैं या सावन या चान्द्र ? इस विषय में भी निश्चित प्रमाण नहीं है। पद्धतिकारों ने इन्हें सावन वर्ष ही समझा है। लेकिन ये सौर भी हो सकते हैं।। आचार्य ने स्वयं **'वत्सराः प्रदिष्टाः'** तथा **'समाः षष्टिर्द्विघ्नाः'** में वत्सर व समा शब्द का प्रयोग किया है। **'वसन्ति अयनर्तुमासपक्षवारादय अस्मिन् इति वत्सरः'** इस व्युत्पत्ति से यह चान्द्र, सावन, सौर कुछ भी हो सकता है। लेकिन जब इसे अयनद्वयात्मक, द्वादश मासात्मक आदि कहते हैं तो यह सौर ही अधिक प्रतीत होता है। चूडोपनयनादि में सावन मान से, व्रत पर्वादि चान्द्रमान से व अवधि गणना सौर मान से करने का शास्त्रीय नियम भी है। तब वराहाचार्य या पूर्व ऋषि इन्हें सावन मान से क्यों कहते ? पुनश्च 'समा' शब्द का प्रयोग सदैव सौर वर्ष के लिए ही होता है, यह ध्वनित है। **'गताः समाः पादयुता'** में वर्ष प्रवेश सौर मान से ही होता है। सौर वर्ष सदैव प्राथम्येन गणनीय, प्रधान वर्ष है। 'वेदांग ज्योतिष में प्रभवादि संवत्सरों की प्रवृत्ति भी सौर मान से मानी जाती थी।

भानुध्नभागादि समैरहोभिस्तस्य प्रवृत्तिः प्रथमं क्रियात्।

(वेदांग ज्योतिष)

सूर्यसिद्धान्त में ग्रहों के भगण सौर मान से ही दिए गए हैं। अतः कालाविधि नापने के लिए सौर वर्ष को ही आधार माना जाता है। पूर्वोक्त आयु वर्ष ऋषियों ने स्वयं ही सौर मान से कहे हैं। वर्ष गणना प्राचीन भारत में सुदूर अतीत काल से ही सौर मान से होती आई है। अतः हमारे विचार से ये वर्ष मान सौर ही हैं। इन्हें पृथक् सौर मान से बताने की आवश्यकता नहीं है। भट्टोत्पल ने अपनी टीका के उदाहरणों में इनका सौरीकरण नहीं दिखलाया है, इससे लगता है कि उनके समय में ये मान सौरात्मक ही थे। फिर भी विनिगमक प्रमाण के अभाव में निश्चित नहीं कहा जा सकता। पिण्डायु में पूर्वोक्त आयु वर्षों का योग 127 वर्ष है तथा उसमें लग्नायु के वर्ष अधिकतम 12 और मिला लें तो 139 वर्ष परमायु आती है। 120 वर्षों के सौर वर्ष 630 दिन या पौने दो वर्ष कम 118 वर्ष के लगभग बैठते हैं। अतः विशेष अन्तर सौरीकरण से नहीं पड़ता। तब यह व्यर्थ का गणित क्यो? पुनश्च आयुर्दायों की आलोचना स्वयं आचार्य भी आगे करेंगे, तब यह बात और स्पष्ट हो जाएगी।

प्राणियों का परमायु मान–

> **समाः षष्टिर्द्विघ्नाः मनुजकरिणां पंच च निश्ग**
> **हयानां द्वात्रिंशत् खरकरभयोः पंचककृतिः।**
> **विरूपा सा त्वायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनां,**
> **स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम्।।5।।**

मनुष्य व हाथी की परमायु 120 वर्ष 5 दिन (अहोरात्र), घोड़े की 32 वर्ष, गधे व ऊँट की 25 वर्ष, बैल व भैंस की 24 वर्ष, कुत्ते की 12 वर्ष तथा भेड़, बकरी आदि की 16 वर्ष परमायु है।

पूर्वोक्त प्रकार से साधित आयु 120 वर्ष मानव आयु मानकर कही गई है। यहाँ अन्य प्राणियों की आयु कहने का प्रयोजन है कि उक्त स्थिति में जिस प्राणी का जन्म हो, उसी के परमायु वर्षों से अनुपात करके उस जन्तु की आयु जान सकते हैं। प्राचीन काल में शौकीन लोग अपने पालतू जानवरों के विषय में भी जिज्ञासा करते थे। अपि च शास्त्र की इयत्ता व शक्ति परीक्षार्थ भी इसका उपयोग हो सकता है। जैसे किसी मनुष्य की आयु 80 वर्ष आयी तो उसी समय यदि किसी घोड़े का जन्म हुआ हो तो 80 वर्ष

मानवायु तो घोड़े की परमायु 32 वर्ष से गुणा कर 120 से भाग दिया तो 21 वर्ष 4 मास घोड़े की आयु होगी। इसी विधि से सर्वत्र समझें।

मनुष्य की 120 वर्ष आयु मध्यम मान से है। यह सभी ग्रहों को परमोच्चगत समझ कर निकाली गई है। लेकिन वास्तव में इससे कहीं अधिक आयु भी हो सकती है, यह देश काल सापेक्ष है। धरती पर बहुत से स्थान ऐसे हैं, जहाँ 150 वर्ष या अधिक आयु भी होती है। इस आयु मान में काल परिवर्तन व युगभेद से भेद सम्भव है।

रुद्रभट्ट का अनुमान है कि आचार्य ने यहाँ 'षष्टि' 60 वर्ष के दुगुने वर्ष कह कर 60 वर्ष का उल्लेख विशेष प्रयोजन से किया है। यदि आवश्यक हो तो 60 वर्ष परम मानकर भी गणना करनी चाहिए। यदि अल्पायु योग प्रतीत हों तब ऐसा करें। इसी कारण पहले श्लोक में 'दशसहिताः' कहकर 'नवतिथि विषयाश्विभूत रुद्राः' अलग से कहा। कुल ये आयु वर्ष 127 हैं। इनमें से सात ग्रहों के 10-10 वर्ष निकाल लेने पर शेष वर्षों की आयु का विचार भी कर सकते हैं।

'अत्र समाः षष्टिरिति प्रथममुक्त्वा पश्चाद् द्विघ्नेति विशेषणेन केषुचिद् विषयेषु षष्टेरपि परमायुष्येन ग्रहणमाचार्यस्याभिप्रेतमिति द्योत्यते। तदर्थमेव पूर्वं ग्रहाणां वत्सरकथनेऽपि..... दशकमपहायशेषस्य निर्देशः कृतः। अतोऽल्पायुविर्षयविशेषेषु एवमप्यायुर्दायानयनं कर्तव्यमित्युक्तं भवति।'

(विवरण)

परमायु योग का लक्षण–

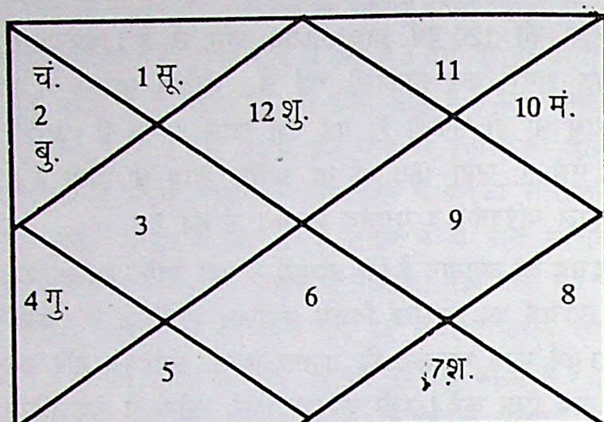
अनिमिषपरमांशके विलग्ने शशितनये गवि पंचवर्गलिप्ते
भवति हि परमायुषः प्रमाणं यदि सकलाः सहिताः स्वतुङ्गभेषु ।। 6 ।।

(पुष्पिताग्रा)

यदि मीन लग्न के अन्तिम अंश (तीसवाँ अंश) में जन्म हो, बुध वृष राशि में केवल 25 कला चला हो और शेष ग्रह अपने-अपने परमोच्च स्थान पर हों तो मनुष्य की आयु 120 वर्ष 5 दिन होती है।

गणित द्वारा इस स्थिति की कल्पना की गई है। गणित से ही मनुष्यों की आयु इससे अधिक भी आ सकती है। यहाँ आदर्श स्थिति की कल्पना है।

लग्न 11. 29°. 59′



सभी ग्रहों की परमोच्च में स्थिति से सूर्य के 19 वर्ष, चन्द्रमा के 25 बुध की गणितागत आयु 7 वर्ष 6 मास 5 दिन, गुरु की 15, शुक्र 19, वर्ष रहेगी, मंगल को एकादशस्थ होने से आधी चक्रार्ध हानि होगी तब उसकी आयु 7 वर्ष 6 मास तथा शनि की अष्टमस्थिति होने से दृश्यार्ध हानि होकर पाँचवा भाग घटेगा। तब 16 वर्ष तथा लग्न की अन्तिम नवांश स्थिति से 9 वर्ष होंगे। सबका योग 120 वर्ष 5 दिन आता है। परम नीच व उच्च में रहने पर शत्रु क्षेत्रास्तंगतत्व हानि नहीं होती, यह ध्यान रखें। इस स्थिति में बुध वृष के 4 अंश तक भी रह सकता है। यह ध्यान रखें। तब बुध की आयु में 1 मास 17 दिनों की अधिकता हो जाएगी।

पराशर का दोष प्रदर्शनः–

[आयुर्दायं विष्णुगुप्तोऽपि चैवं देवस्वामी सिद्धसेनश्च चक्रे।
दोषश्चैषां जायतेऽष्टावरिष्टं हित्वा नायुर्विंशतेः स्यादधस्तात्॥7॥]

विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने भी इसी प्रकार से आयुर्दाय का साधन कहा है तथा देवस्वामी व सिद्धसेन मे भी यही प्रकार माना है। इस प्रकार से न्यूनतम आयु 20 वर्ष आती है, जबकि जन्म से 8 वर्ष तक अरिष्ट को छोड़कर तत्पश्चात् 20 वर्ष से पहले भी मरण होता है, यह इसका बड़ा दोष है।

मय, यवन, मणित्थ व पराशर का नाम पहले लिया जा चुका है। इस ऋषि सम्मत आयु को पूर्वोक्त चाणक्यादि आचार्यो ने भी माना है। यह

विष्णुगुप्त चाणक्य ही है, ऐसा भट्टोत्पल व रुद्रभट्ट ने कहा है। भट्टोत्पल ने इनके मौलिक वचनों को भी उद्धृत किया है–

परमोच्चगतैः सर्वैर्मीनमीनांशसंस्थिते।

सौम्ये च वृषगे जातः परमायुः स जीवति।। (विष्णुगुप्त)

सूर्याद्यैरुच्चगतैर्मीने मीनांशसंस्थिते लग्ने।

सौम्ये वृषगे याते जातः परमायुराप्नोति।। (देवस्वामी)

मीने परमांशगते सौम्ये गवि पंचवर्गलिप्तास्थे।

सर्वैः परमोच्चगतैर्जातः परमायुराप्नोति।। (सिद्धसेन)

वराहमिहिर आगे स्वयं सत्याचार्य के मत से आयु साधन का समर्थन करेंगे। इस प्रकार में जो प्रत्यक्ष तथा कथित दोष बताया गया है उसे समझिए। पहले कह चुके हैं कि शुभैरथसमाष्टकं (अरिष्ट 0.6) अर्थात् अरिष्ट योग जन्म से 8 वर्ष की आयु तक प्रभावी रहते हैं। तत्पश्चात् यदि मृत्यु होती है, तो वह अरिष्टकृत न होकर आयु पूर्ण होने पर ही कही जाएगी। अतः 8 वर्ष के बाद जिसकी जब मृत्यु हो, उसकी उतनी ही आयु माननी चाहिए। संसार में बहुत से लड़के 20 वर्ष की आयु पाने से पहले ही मर जाते हैं। पिण्डायु में कम से कम आयुर्दाय 20 वर्ष का आता है, अतः यह मय, यवन, मणित्थ पराशर, चाणक्य, सिद्धसेन, देवस्वामी आदि का दोष है, उन की अज्ञानता है। यह उक्त श्लोक का आशय है।

बीस वर्ष आयु की उपपत्तिः– जिस प्रकार मीन के परमांश में तथा सब ग्रहों के उच्च में रहने से अधिकतम आयु आती है उसी प्रकार लग्न में शून्य अंश गत मानकर तथा सब ग्रहों को परम नीच में मानकर, बुध को वृष से सप्तम राशि वृश्चिक में 25' कला पर समझ कर गणित करेंगे तो आयु 20 वर्ष आएगी। परम नीच में आयु आधी होती है। लग्न में शून्यांश होने से उसकी आयु 0 होगी।

भट्टोत्पल कहते हैं कि पिण्डायु में 20 से कम भी आयु आती है। इसके लिए उन्होंने उदाहरण देकर भी समझाया है कि कुम्भलग्न के शून्यांश व 1 कला मानकर, सब ग्रहों को परम नीच पर स्थापित कर बुध को 11. 14° पर समझ कर गणित करने से आयु लगभग 15 वर्ष 6 मास आती है। यह प्रत्यक्ष गणित सिद्ध ही है। पुनश्च आचार्य ने जो मीन लग्न का उदाहरण देकर परमायु कही है, वह तभी सिद्ध होती है जब लग्न में क्रूरग्रह न हो। यदि लग्न में क्रूर ग्रह हो तो आयु 15 वर्ष से और भी कम आएगी। अतः '20 वर्ष से नीचे आयु नहीं होती' यह कहना बिल्कुल अज्ञानता है।

रुद्रभट्ट भी इस विषय में प्रायः ऐसी ही धारणा रखते हैं। दोनों विद्वान् टीकाकारों का मत है कि इस श्लोक में उठायी गई शंका निराधार है। अतः यह श्लोक निश्चित रूप से वराह मिहिर का नहीं है, बाद में किसी ने लिखकर मिला दिया है।

(i) जो वराह मिहिर एक भी फालतू शब्द का प्रयोग नहीं करते, बहुत सुविचारित ढंग से शब्द प्रयोग करते हैं तथा अपने ग्रन्थ में व्यर्थ विस्तार से बचते हैं वे पूरा श्लोक चाणक्यादि का नाम लेने में व एक झूठा दोष दिखाने में खर्च क्यों करेंगे ?

(ii) यदि आचार्य का ही श्लोक हो तब जो मामूली बात भट्टोत्पल को समझ आ गई कि 20 वर्ष से कम आयु भी हो सकती है, वही बात महामति वराहमिहिर को समझ में नहीं आयी होगी ? अतः यह श्लोक प्रक्षिप्त है तथा किसी दुःसाहसी, अल्पज्ञ ने बाद में मिला दिया है। इस प्रसंग में रुद्रभट्ट ने बहुत लम्बा अनुच्छेद लिखकर ऐसे प्रक्षेपकारों को जी भर कर कोसा है–

"---करतलामलकवदुपलभ्यमान सकलभुवनान्तिर्वर्ति समस्त वृत्तान्त नितान्तमहनीयमहिमभिः मयासुर पराशरादिभिः...... जगदनुग्रहाय महाकारुणिकैरुपदिष्टेषु होराशास्त्रेषु, स्वयमविज्ञात चिरायुरल्पायुर्विषय स–म्प्रदायप्रायैरविज्ञात गुरुकुलवासपरिश्रमैः..... विदग्धमानि लक्षण प्र–थमोदाहरणभूतैः यैः कैश्चिदुत्तान बुद्धिभिरुद्घोषितमुत्थापितात्मदूषणमिदं दूषगद्वयमाचार्येण.... वराहमिहिरेण..... इत्यादि।'

'हथेली पर रखे आँवले के समान, समस्त विषय व वृत्तान्त प्रत्यक्ष हैं जिनको, ऐसे महिमाशाली मय, पराशर मणित्थादि आचार्यों व ऋषियों ने, संसार के कल्याणार्थ जो होराशास्त्र उपदिष्ट किया, उस शास्त्र के विषय में, वे लोग जिन्होंने गुरुकुल का मुख नहीं देखा तथा स्वयं को विशिष्ट विद्वान् मानने लगे, ऐसी उल्टी बुद्धि वाले लोगों ने, जिन्हें स्वयं विषय का ज्ञान ही नहीं है, अपनी गलतियों को आचार्य वराहमिहिर के माथे मढ दिया-- ।' इत्यादि।

यस्मिन्योगे पूर्णमायुः प्रदिष्टं तस्मिन्प्रोक्तं चक्रवर्तित्वमन्यत्।
प्रत्यक्षोऽयं तेषु दोषोऽपरोऽपि जीवन्त्यायुः पूर्णमर्थैर्विनापि।।8।।

'अनिमिष परमांशके विलग्ने' इत्यादि श्लोक में जिस योग में पूर्णायु बताई है, उसी योग में दूसरे स्थान पर उन्हीं आचार्यों ने चक्रवर्ती सम्राट होना लिखा है। यह इन आचार्यों का प्रत्यक्ष दोष है क्योंकि बहुत से लोग इस संसार में धनहीन होकर भी पूर्णायु जीते हैं।

बात बिल्कुल स्पष्ट है कि 6 ग्रह परमोच्च में हों तो व्यक्ति चक्रवर्ती होता है, ऐसा शास्त्र वचन है तथा पहले बुध रहित 6 ग्रहों को परमोच्च में मानकर ही परमायु (120 वर्ष) की कल्पना की है। तब यह बात परस्पर सम्बद्ध हो जाती है कि जो-जो चक्रवर्ती होगा वह 120 वर्ष भी जिएगा। अतः राजयोग व दीर्घायु ये दो पदार्थ अन्वय व्यतिरेकी हो जाते हैं। राजयोगों में सर्वत्र दीर्घायु तथा दीर्घायु में सर्वत्र राजयोग नियमतः मानना पड़ेगा, यह इस पिण्डायु में प्रत्यक्ष दोष है।

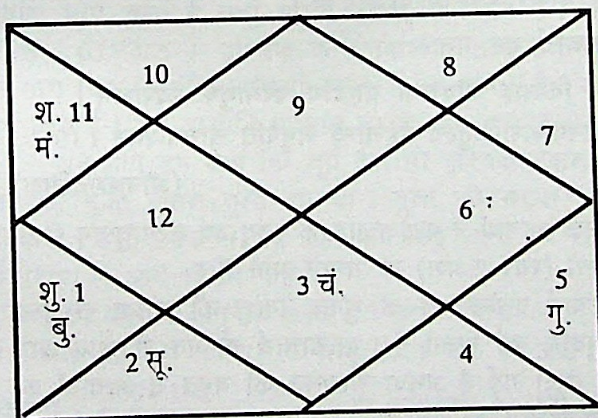
वास्तव में यह श्लोक भी किसी और व्यक्ति ने लिखकर ग्रन्थ में मिला दिया है। यह सुनिश्चित है कि श्लोक 7. 8 (शालिनी छन्द) किसी एक ही व्यक्ति की करामात है।

(i) यदि परमोच्च से थोड़ा पहले 6 ग्रहों को मान लें तो मीन के परमांश में भी 120 वर्ष से कम आयु आ जाती है। तब आयु दीर्घ होगी तथा चक्रवर्तित्व योग नहीं रहेगा।

(ii) यदि अन्य लग्नों में 6 ग्रह उच्च हों तो और भी कम आयु आएगी।

(iii) चार स्वोच्चस्थ ग्रहों से भी राजा होता है। अतः राजत्व में तारतम्य होने पर भी आयु का दीर्घ रहना सर्वत्र प्रमाणित नहीं है। इसीलिए आयु व राजयोग परस्पर आश्रित नहीं हैं। अतः श्लोकोक्त दोष भ्रम ही है।

(iv) भट्टोत्पल ने धनु लग्न का एक उदाहरण दिया है जिसमें आयु 114 वर्ष से अधिक आती है तथा 'केमद्रुम योग' भी घटित होता है। जिसमें चक्रवर्तित्व के बिना भी पूर्णायु योग घटित होगा।



लग्न – 8. 29. 59
सूर्य – 1. 10°
चन्द्र – 2. 3°
मंगल – 10. 28°
बुध – 0. 15°
गुरु – 4. 5°
शुक्र – 0. 27°. 20'
शनि – 10. 20°

यहाँ केन्द्रगत होने से केमद्रुम योग का अभाव नहीं समझना चाहिए। अकेला, किसी भी ग्रह से अदृष्ट तथा उससे 2. 12 स्थानों में सूर्य के अलावा कोई ग्रह न हो तो केन्द्रस्थ से भी केमद्रुम होता है–

व्ययार्थ केन्द्रगश्चन्द्रात् बिना भानुं न चेद्ग्रहः।
कश्चित्स्याद् वा विना चन्द्रलग्नात् केन्द्रगतोऽथवा।।
योगः केमद्रुमोनाम तदा स्यात्तत्र गर्हितः।
भवन्ति निन्दिता चारा दारिद्र्यामय संयुताः।।" (गार्गिः)

लेकिन आगे भट्टोत्पल लिखते हैं कि असम्भव दोषों को उठाने के कारण ये दो श्लोक वराहकृत नहीं हो सकते हैं। इसमें तथ्यात्मक त्रुटियाँ हैं।

(v) दो बार 'अपि' शब्द का प्रयोग कवि की अशक्ति बतलाता है। जबकि दूसरे निरर्थक 'अपि' शब्द के स्थान पर 'विना ते' 'विनेह' 'विहीनाः' इत्यादि अनेक विकल्प थे। छन्दः शास्त्र जिनके सामने दासवत् सिर झुकाकर रहता हो, ऐसे वराहमिहिर का यह ढीला छन्द नहीं हो सकता।

(vi) पुनश्च 'जीवन्त्यायुः पूर्ण' में 'जीवन्तिं व 'आयुः पूर्ण' में पुनरावृत्ति हैं। ये छन्दः शास्त्र, साहित्य शास्त्र की दृष्टि से दोष हैं।

(vii) अतः 'विंशतेः स्यादधस्ताद' तथा 'तस्मिन्प्रोक्तं चक्रवर्तित्वमन्यत्' ये दोष उठाना ही गलत है। ये दोनों दोष असम्भव हैं।

हमारे विचार से लिपिकर्ता ने अपनी बुद्धि से ये श्लोक त्वरित ढंग से अपनी लिपि में लिख लिए होंगे, जो बाद में मूल ग्रन्थ के साथ किसी प्रकार से सम्मिश्रित होकर प्रचलित हो गए हैं।

जीवशर्मा व सत्याचार्य का मतः–

स्वमतेन किलाह जीवशर्मा ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशम्।
ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्।।9।।

(औपच्छन्दसिक)

जीवशर्मा नामक आचार्य ने प्रत्येक ग्रह के आयु वर्ष परमायुमान (120 वर्ष) का सातवें हिस्से (स्वर 7 अंश) के समान माने हैं।

लेकिन सत्याचार्य प्रत्येक ग्रह के भुक्त नवांश की संख्या के तुल्य प्रत्येक ग्रह के आयुर्दाय वर्ष मानते हैं। सत्याचार्य के मत से प्राप्त आयु लोक में सही होती देखी गई है अथवा सत्यमत को बहुत से आचार्यो का समर्थन प्राप्त है। सत्याचार्य का मत ही वराहमिहिर को अभीष्ट है।

इस अध्याय में 'मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैः' से परमत की अवतारणा कर इस श्लोक के प्रथमार्ध तक दूसरे आचार्यों के वे मत प्रस्तुत किए हैं, जो प्रसिद्ध हैं, लेकिन वराह मिहिराचार्य को मान्य नहीं हैं। बाद के दो चरणों में स्वामीष्ट मत की अवतारणा की है।

पिण्डायु व जीवशर्मायु की विधि तो वही है, लेकिन अपने परमोच्च में ग्रह कितने वर्ष की आयु देता है, इस विषय में जीवशर्मा की कल्पना है (स्वमतेन आत्मोत्प्रेक्ष्येति रुद्रभट्टः) कि ग्रह सात हैं तथा परमायु मान 120 वर्ष है। अतः प्रत्येक ग्रह आयु स्वोच्च में $\frac{120}{7}$ वर्ष या 17 वर्ष 1 मास 22 दिन के लगभग होती है। विशेष विस्तारार्थ हमारा आयुर्निर्णय आभिनव भाष्य देखें। इसमें भी नीचार्धहरण, शत्रु क्षेत्र अस्तंगत हरण व क्रूरोदय चक्रपातादि भी होता है।

सत्योक्त आयुः प्रकार में ग्रह स्पष्ट की भुक्त नवांश संख्या के बराबर वर्ष प्रत्येक ग्रह देता है। नवांश संख्या मेष से गिनेंगे। तथा वह संख्या 12 से अधिक हो तो 12 से भाग देकर शेष का ग्रहण करेंगे। अर्थात् ग्रह जिस नवांश में हो, उस नवांश की 1-2-3 आदि संख्या जान लें। यह संख्या मेष के प्रारम्भ से गिनें। जो संख्या मिले उसे ही वर्ष समझें। अथवा ग्रह या लग्न में जिस राशि का भुक्त नवांश हो उस राशि संख्या के बराबर आयु वर्ष जानकर वर्तमान नवांश की कला से अनुपात द्वारा मासादि जानें। दोनों प्रकार से परिणाम वही रहेगा।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में सूर्य स्पष्ट 7. 15. 53 है। वृश्चिक में चार नवांश भोग चुका है तथा पांचवें नवांश में स्थित है। मेष से तुला तक $7 \times 9 = 63$ नवांश + वृश्चिक के 4 नवांश = 67 नवांश भुक्त हैं। इसे 12 से भाग दिया, क्योंकि राशियाँ बारह हैं, तो शेष 7 है। अतः सूर्य के आयु वर्ष सात हैं। शेष मासादि वर्तमान नवांश की भुक्त कलाओं से जान लेंगे।

अब यदि हम देखें कि सूर्य वैसे भी वृश्चिक नवांश में स्थित है, तब ग्रह का भुक्त नवांश तुला का था। तुला की संख्या 7 वर्ष सूर्यायु प्राप्त होती है। इसी विधि से सब ग्रहों की आयु जानी जा सकती है। लग्नायु के विषय में आगे विशेष कहेंगे।

शेष कला से अनुपात करते हैं। पांचवें नवांश का $2^{0}.33'$ या 153' भुक्त हैं। अतः 200' (1 नवांश) में आयु है, 1 वर्ष या 360 दिन तो 153' में कितना ? $\frac{360 \times 153}{200} = \frac{9 \times 153}{5}$ या 275 दिन 24 घड़ी आयु और है। तब 7 वर्ष 275 दिन (9 मास 5 दिन) 24 घड़ी सूर्य की सत्यायु या अशांयु हुई।

सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्य शतद्वयेनाप्तम् ।
मंडलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः ।। 10 ।।

(आर्या)

जिस ग्रह की आयु जाननी हो, उस ग्रह को कलात्मक बनाकर 200 से भाग दें। लब्धि वर्ष होती है। यदि लब्धि 12 से अधिक हो तो उसे 12 से भाग देकर शेष को वर्ष समझें। 200 से भाग देकर बचे शेष को 12 से गुणाकर पुनः 200 से भाग दें तो लब्धि मास तथा शेष × 30 को पुनः 200 से भाग देने पर लब्धि दिन होती है। यह सत्याचार्य के मत से आयु साधन में अनुपात की क्रिया है।

यद्यपि भट्टोत्पल ने इस श्लोक पर टीका लिखी है, तथापि यह श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होता है।

(i) पूरे प्रकरण में कहीं भी अनुपात की प्रक्रिया को स्वयं श्लोक बद्ध न करके केवल 'अनुपात द्वारा जान लें, ऐसा ही कहा है। **'नीचेऽतोऽर्धंह्रसतिहि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातः'** ।अतः गणित का जोड़ घटा दिखाना आचार्य की प्रकृति के अनुकूल भी नहीं हैं।

(ii) लघुजातक में बादरायण के एतद्विषयक श्लोक को ज्यों का त्यों ले लिया था। इससे लगता है कि प्रसिद्ध विषयार्थ में आचार्य शब्द का अपव्यय नहीं करते।

राश्यंशकलागुणिताद् द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः ।
द्वादश हृतावशेषेऽब्दमासदिननाडिकाः क्रमशः ।।

(बादरायण)

(iii) बादरायण के इस श्लोक का सम्पूर्ण मन्तव्य **'बृहज्जातक के 'ग्रहभुक्त नवांश राशि तुल्यं'** इस श्लोकांश में बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। तब पुनरावृत्ति क्यों ?

(iv) यदि आचार्य को विषय की स्पष्टता दिखानी थी तो कठिन व सन्देह योग्य स्थल **'सार्धोदितोदित नवांश'** आदि में दिखाते।

(v) रुद्रभट्ट ने इस श्लोक पर टीका नहीं लिखी है। यह एक बड़ा हेतु है। ये भट्टोत्पल से प्राचीन हैं तथा भट्टोत्पल पर इनका स्पष्ट प्रभाव है। दशाध्यायीकार भी रुद्रभट्ट के ऋणी हैं।अतः रुद्रभट्ट की इस श्लोक पर टीका न होने को उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

(vi) श्लोक 9 व 11 के बीच यह श्लोक प्रासंगिक भी नहीं लगता। श्लोक 9 में 'सत्योक्त वाक्य बहसाम्य रखता है। यह सामान्य मतोपस्थान

करके श्लोक 11 में तुरन्त 'इयान्विशेषस्तुभदन्तभाषिते' कहकर विशेष नियम प्रस्तुत करते हैं। अतः इनके बीच में यह श्लोक क्रमभंग करता है।

(vii) किसी लिपिकर्त्ता या पाठक ने अपनी पुस्तक में सुविधार्थ यह श्लोक बना कर लिख लिया होगा, जो बाद में मूल में सम्मिलित हो गया है।

(viii) बहुप्रचलित पाठ 'लिप्तीकृत्वा' अशुद्ध है। लिप्तीकृत्य पाठ रखने पर भी छन्दो भंग नहीं होता। भट्टोत्पल ने टीका में लिप्तीकृत्य ही कहा है।

(ix) इस प्रकार से कलात्मक बनाकर किसी भी आचार्य ने गणित नहीं दिखाया है। (देखें बादरायण वाक्य, सारावली एवं पाराशरहोरा)।

सत्यमत में विशेष संस्कार–

स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसंङ्गुणं द्विरुत्तमस्वांश गृहत्रिभागगैः।

इयान् विशेषस्तु भदन्तभाषिते समानमन्यत् प्रथमेऽप्युदीरितम्।।11।।

पूर्वोक्त प्रकार से आयुर्दाय का साधन करके उच्चस्थ व वक्री ग्रह की आयु को तीन गुणा करें। वर्गोत्तम नवांश, स्वनवांश, उच्च नवांश में अथवा स्वद्रेष्काण में स्थित ग्रह की आयु को दो गुना करें। भदन्त (सत्याचार्य) के मत में यह विशेष है। शेष अस्तंगत शत्रुक्षेत्रादि संस्कार व चक्रपात हानि यहाँ भी पूर्ववत् करनी होगी।

यह सत्याचार्य का आयुः प्रकार आचार्य वराहमिहिर को अभीष्ट है। इसमें ग्रहों की उच्च या नीच स्थिति से ग्रहों के आयु वर्ष न जानकर भुक्त नवांश की राशि के तुल्य वर्ष सर्वत्र होता है।

पुनः विशेष संस्कार–

किन्त्वत्रभांशप्रतिमं ददाति वीर्यान्विता राशिसमं च होरा।

क्रूरोदये योऽपचयः स नात्र कार्यं च नाब्दैः प्रथमोपदिष्टैः।।12।।

इस अंशायु प्रकार में लग्न भी अपने भुक्त नवांश की राशि के बराबर आयु वर्ष देता है। अर्थात् सब ग्रहों की तरह लग्नायु भी निकालनी चाहिए ' यदि लग्न बुध, गुरु या लग्नेश से युत दृष्ट हो तो अपनी राशि के बराबर संख्या तुल्य वर्ष और अधिक देता है।

पूर्वोक्त पिण्डायु में लग्न में पापग्रह रहने से जो क्रूरोदय हानि बताई है, वह यहाँ नहीं होती है। पिण्डायु के पूर्वोक्त वर्षों से यहाँ कोई क्रिया नहीं करते, अपितु प्रत्येक ग्रह की आयु उसके भुक्त नवांश से सदैव जानी जाती है।

लग्नायुर्दाय में विशेष बात यह है कि लग्न बली हो तो लग्नगत भुक्त नवांश के आधार पर आयुवर्ष जान कर उसमें लग्न में स्थित राशि की संख्या के बराबर और मिलाएँ, तब लग्नायुर्दाय होगा। यदि लग्न निर्बल हो तो केवल अपने भुक्त नवांश के बराबर आयुवर्ष ही देगा, तब राशि तुल्य वर्ष और नहीं मिलाने होंगे।

लग्न की बलवत्ता का निर्णय पहले बताए गए प्रकार से ही करना। यदि लग्न पर उसके स्वामी ग्रह, बुध या गुरु की दृष्टि या योग हो तो वह बलवान् है, अन्यथा बलवान् नहीं है। अर्थात् '**होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षित**-युता नान्यैश्च वीर्योत्कटा' के नियमानुसार लग्न के बलाबल का निर्णय करें।

लेकिन यहाँ लग्न में बुध, गुरु की दृष्टि या योग रहने पर सूर्य की दृष्टि या योग भी रहने की अधिक सम्भावना होगी, तब क्या उपाय होगा? इस विषय में किसी ने स्पष्टीकरण नहीं दिया है। हमारे विचार से लग्न पर बुध, गुरु व शुक्र का योग या दृष्टि हो तथा किसी अन्य की दृष्टि या योग न हो तो लग्न में जो राशि पड़े, यथा मेष में एक वर्ष, तुला में सात वर्ष, मीन में बारह वर्ष पूरे जोड़ लें। यदि लग्नेश को छोड़कर अन्य किसी पाप ग्रह की दृष्टि या योग भी हो तो आधे वर्ष जोड़ने की पिण्डायु विधि यहाँ न अपनाएँ। ऐसी स्थिति में केवल नवांश द्वारा प्राप्त आयु वर्ष ही लग्नायु के वास्तविक वर्ष समझें। लेकिन सूर्य की योग दृष्टि रहने पर आधे वर्ष जोड़े जाने चाहिएं। सूर्य यहाँ बलाबल का सर्वथा नाशक न होकर उसमें न्यूनाधिक्य ही करेगा। इस सन्दर्भ में विद्वान् विचार करें। पृथुयशा कहते हैं कि शुभ ग्रहों का दृष्टि योग भाव वृद्धि कारक व पाप योग दृष्टि भाव हानिकारक है। अतः शुभाशुभ मिश्रित युक्त दृष्टि होने पर अनुपात द्वारा वर्ष ज्ञान करना शास्त्रानुसारी ही है।

सत्यमत की प्रशंसा–

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः।
आचार्यकं त्वत्र बहुध्नतायामेकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम्।।3।।

(इन्द्रवज्रा)

सब आयुः प्रकारों में सत्याचार्य का यह अंशायु प्रकार श्रेष्ठ (वर) है। लेकिन इस प्रकार को भी अनेक गणनाएँ प्राप्त होने पर सारी गणनाएँ करके, लोग अयोग्य (अव्यवहार्य) बना देते हैं। वास्तव में बहुत से हानि वृद्धि संस्कार यदि एक ही ग्रह को प्राप्त हों तो जो उनमें सबसे बड़ी हानि या वृद्धि हो, उसे ही एक बार करना चाहिए।

आशय यह है कि किसी ग्रह के आयु वर्ष 10 हुए तथा वही ग्रह यदि परमोच्च में हो तथा वर्गोत्तम नवांश में भी हो, वक्री भी हो (जैसे मीन के अन्तिम नवांश में शुक्र) तो 'स्वतुंगवक्रोपगतै त्रिसंगुणं' से उच्चस्थ होने से तिगुना 10 × 3 = 30 वर्ष पुनः वक्र होने से तिगुना 30 × 3 = 90 पुनश्च वर्गोत्तम होने से दुगुना 90 × 2 = 180 वर्ष संस्कार करना सर्वथा भ्रामक है। अपितु दो बार तिगुना व एक बार दुगुना संस्कार प्राप्त होने पर सबसे बड़ा संस्कार 'तिगुनी वृद्धि' एक ही बार करनी चाहिए।

भट्टोत्पल ने कहा है कि सारावली में जो वराहमिहिर की इस बात का खण्डन किया गया है, वह अनुचित ही है।

'बहुताडन सम्प्राप्तौ यां करोत्येकवर्गणाम्।

वराहमिहिराचार्यः सा न दृष्टा पुरातनैः।। एतदप्युक्तम् ।।

वराहमिहिर ने लघुजातक में इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। यदि कोई ग्रह एक साथ वर्गोत्तम, स्वद्रेष्काण व स्वनवांश में हो तो तीन बार दुगुनी वृद्धि प्राप्त होने पर भी एक ही बार दुगुनी वृद्धि करनी चाहिए।

वर्गोत्तमे स्वद्रेष्काणे स्वनवांशके सकृद्द्विगुणम्।

वक्रोच्चयोस्त्रिगुणित द्वित्रिगुणत्वे सकृत् त्रिगुणम्।।'

इस प्रसंग में आचार्यो का सम्प्रदाय (आचार्यकं) तो यही है कि बहुताडना की प्राप्ति होने पर सबसे बड़ी एक ही हानि वृद्धि करें।

लेकिन चक्रपात हानि यहाँ यथावत् होगी। शत्रुक्षेत्र व अस्तंगत होने पर भी एक ही बार हानि करनी चाहिए।

'किन्तु' शब्द के प्रयोग से आचार्य ने एक बात और भी बताई है। यदि लग्न बली हो तो अंशायु, सूर्य बली हो तो पिण्डायु तथा चन्द्रमा बलवान् हो तो निसर्गायु का साधन करके आयुर्निर्णय करना चाहिए।

'विलग्नेऽति बलोपेते शुभदृष्टेंऽशसम्भवः।

रवौ पिण्डोद्‌भवं कुर्यादिति ब्रुयुश्चिरन्तनाः।। (मणित्थ)

यदि दोनों प्रकार से आयु विचार निश्चित होता हो तो वक्ष्यमाण दशा-अन्तर्दशा दोनों प्रकारों से लगानी चाहिए।

'यदा अंशायुः पिण्डायुषी द्वेऽपि कार्ये तदा द्वाभ्यामपि दशान्तर्दशा पाककल्पना कार्या।' इति

(रुद्रभट्ट)

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में सूर्य की अशांयु 7. 9. 5 वर्षादि पहले निकाल चुके हैं। चन्द्रमा मिथुन के प्रथम नवांश में 0°. 38′ पर है। अतः

तुला नवांश में होने से 6 वर्ष व शेष कलाओं से 68 दिन मिले । मंगल मकर में 0°-2′ पर है, अतः 9 वर्ष 3 दिन, बुध मकर नवांश में 2°. 47′ चल चुका है, अतः 9 वर्ष 1 मास, गुरु कर्क नवांश में 1°. 20′ चला है । अतः 3 वर्ष 144 दिन आयु देता है । शुक्र मकर नवांश में 2°. 50′ चला है, अतः 9 वर्ष 306 दिन । शनि वृश्चिक नवांश में बिल्कुल अन्त में है अतः लगभग 8 वर्ष आयु देगा । लग्न में धनु नवांश तथा 2°. 17′ भुक्त नवांश भाग है । अतः 8 वर्ष 246 दिन आयु देता है । लग्न बुध, गुरु, शुक्र से युक्त है । साथ में सूर्य भी लग्नांशों के निकट है । अतः हमारे विचार से लग्न राशि के आधे 4 वर्ष और देगा । उक्त उदाहरण में आयुर्दाय इस प्रकार है–

ग्रह	अशांयु		हानि	वृद्धि	योग	
	वर्ष	दिन			वर्ष	दिन
सूर्य	7	275	–	वर्गोत्तम	8	190
चन्द्र	6	38	चक्राधे	–	5	178
मंगल	9	३	–	उच्च	27	9
बुध	9	30	अस्तंगत	स्वद्रेष्काण	9	30
गुरु	3	144	–	–	3	144
शुक्र	9	306	–	स्वद्रेष्काण	10	252
शनि	·8	–	चक्रार्ध	उच्च	–	–
लग्न	8	246		शुभारम्भ	12	246
				योग	76 वर्ष 10 मास 29 दिन	

अथवा लग्नराशि के आधे वर्ष न जोड़ने पर 72 वर्ष 11 मास के लगभग आयु सिद्ध होती है । सूर्य, चन्द्र व लग्न में से लग्न ही अधिक बली है । अतः अंशायु प्रकार अधिक घटित होगा ।

अमितायु योग–

गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने शशितनये भृगुजे च केन्द्रयाते ।
भवरिपुसहजोपगैश्च शेषैरमितमिहायुरनुक्रमाद् विना स्यात् ।। 14 ।।

(पुष्पिताग्रा)

यदि कर्क लग्न में बृहस्पति व चन्द्रमा हो, बुध व शुक्र केन्द्र स्थानों में स्थित हो तथा शेष ग्रह (पाप ग्रह) 3. 6. 11 भावों में हों तो गणित द्वारा आयु साधन वृथा है । इस योग में अनुक्रम (आयुर्दायक्रम) के बिना ही अमित अर्थात् बहुत लम्बी आयु होती है ।

उक्त योग रहने पर गणित द्वारा प्राप्त आयु वर्षों के बाद भी जातक जीवित रहता है । अतः इस योग के अतिरिक्त ही गणितायु करनी चाहिए । इसके अतिरिक्त योग रहने पर गणितायु घटित होती है ।

इस योग में चन्द्रमा क्षीण रहने पर भी गणितागतायु से बाद में मरण समझें । 3. 6. 11 में पाप ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) किसी भी प्रकार से अलग-अलग या एक साथ भी स्थित रह सकते हैं । यदि यह योग कन्या, धनु व वृष के सूर्य मास में ही सम्भव हो तब यदि कन्या में सूर्य होगा तो कर्क में चन्द्रमा क्षीण ही रहेगा । इसी प्रकार वृषस्थ सूर्य में कर्कस्थ चन्द्रमा भी मध्यबली ही रहेगा । अतः चन्द्रमा की क्षीणता यहाँ पाप नहीं मानी जाएगी ।

योग पूर्ण न घटित होने पर पूर्वोक्त आयु, प्रकारों में से यथावसर आयुविचार करना योग्य होगा । भावतुल्य रहने पर ग्रहों को योगकर्त्ता मानें, अन्यथा न्यूनाधिक्य अवश्यंभावी है ।

हमारे विचार से 'अमित' शब्द का ध्वन्यर्थ दीर्घ आयु ही है । गणित द्वारा उक्त स्थितियों में गणितागत आयु कम दिखने पर भी व्यक्ति परम धार्मिक सदाचारी, प्रकृति के अनुकूल जीवन यापन करने वाला होने से गणितागत आयु से अधिक ही आयु भोगता है ।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रेबृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायामायुर्दायाध्यायः सप्तमः ।।

[8]

अथ दशाध्यायः

दशेश क्रम का निर्णय–

> **उदयरविशशांकप्राणिकेन्द्रादिसंस्थाः**
> **प्रथमवयसि मध्येऽन्त्ये च दद्युः फलानि ।**
> **नहि न फलविपाकः केन्द्रसंस्थाद्यभावे**
> **भवति हि फलपक्तिः पूर्वमापोक्लिमेऽपि । । 1 । ।** (मालिनी)

लग्न, सूर्य व चन्द्रमा में से जो सबसे बली हो उसी से केन्द्रस्थ ग्रहों की दशा प्रथम आयु खण्ड में, उससे पणफर स्थानों में स्थित ग्रह की दशा मध्य आयु खण्ड में एवं उसी से आपोक्लिमस्थ ग्रहों की दशा जीवन के अन्तिम त्रिभाग में फल देती है । अर्थात् सम्पूर्ण जीवन काल (आयुर्दाय) के तीन समान भागों में (प्रथम मध्य व अन्तिम) में क्रमशः केन्द्र, पणफर आपोक्लिमस्थ ग्रहों की दशा रहती है ।

यदि केन्द्र या पणफर या आपोक्लिम में कहीं ग्रह न हों तो भी ग्रह स्थिति के अनुसार दशा क्रम होता है । आपोक्लिमस्थ ग्रह की भी प्रथम दशा हो सकती है । यदि केन्द्र में ग्रह न हों तो पणफरस्थ से, यदि केन्द्र व पणफर में ग्रह न हों तो आपोक्लिमस्थ ग्रहों से क्रमशः दशा समझनी चाहिए ।

सम्पूर्ण जीवन काल को तीन भागों (आदि, मध्य व अन्त्य) में बाँट कर किस ग्रह की दशा कब रहेगी, इसका निर्णय बताया है । सर्वप्रथम लग्न, सूर्य व चन्द्रमा इन तीनों में सबसे बलवान् का निश्चय करें । उसी की सबसे पहली दशा, उसके बाद प्रथम दशेश से केन्द्र भाव गत ग्रहों की दशा रहेगी । यदि केन्द्रों में कई ग्रह हों तो उनका षड्बल देखकर अधिक बली की पहले व उत्तरोत्तर कम बली की तत्पश्चात् दशाएँ होती जाएँगी । सब केन्द्रगत ग्रहों की दशा के बाद बल क्रम से पणफरस्थों की व ततः

आपोक्लिमस्थ ग्रहों की दशाएँ बलक्रम से रहेंगीं। यदि किसी कारण से दो ग्रहों का बल समान हो तो उनमें अधिक आयु वर्षों वाले ग्रह की पहले व कम आयु वर्षों वाले ग्रह की बाद में दशा रहेगी। यदि आयु वर्ष भी समान हों तो जो ग्रह उनमें से पहले उदित (अस्त के बाद) हुआ हो, उसकी दशा पहले रहेगी। यदि लग्न, सूर्य व चन्द्रमा में भी समान बल हो तो आयु वर्षों से निर्णय करें। यदि आयु वर्ष भी कदाचित् समान हो जाएं तो प्रथम कथन के बल से पहली दशा लग्न की मानें। इस प्रकार दशेशों का क्रम निश्चय किया जाएगा। किसी भी आयुः प्रकार से जीवन काल जानना हो, सर्वत्र क्रम–निर्धारण की यही विधि है। निसर्गायु प्रकार में ही दशेशों का क्रम पूर्व निश्चित है। पिण्डायु, अंशायु, जीवशर्मायु प्रकारों में प्रत्येक जातक का उक्त प्रकार से दशा क्रम पृथक् निर्धारित किया जाएगा।

पुनः दशा क्रम व वर्षों का निश्चय–

आयुः कृतं येन हि यत्तदेव कल्प्या दशा सा प्रबलस्य पूर्वा।
साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्य।।2।।

(इन्द्रवज्रा)

आयुः साधन प्रकार से जिस ग्रह की जितनी आयु मिले; वही समयावधि उस ग्रह का दशा काल होता है। यदि एक स्थान में या केन्द्र, पणफरादि में कई ग्रह स्थित हों तो उनमें बल के क्रमिक ह्रास से क्रमशः दशेश रहेंगे। यदि बल समान हो तो (बहुवर्षद) अधिक आयुः काल वाले ग्रह की दशा पहले होगी। यदि आयु वर्षों में भी समानता हो तो प्रथम उदित (सूर्य किरण मुक्त) ग्रह की दशा पहले होगी।

अपने पूर्वोक्त उदाहरण के संदर्भ में विषय को स्पष्ट किया जा रहा है। लग्न, सूर्य व चन्द्रमा में से लग्न सर्वाधिक बली है। अतः सबसे पहली दशा लग्न की होगी। लग्न से केन्द्र में सूर्य, बुध, शुक्र, गुरु स्थित हैं। इनमें बलक्रम से आगे के दशेश होंगे। षड्बल के आधार पर निर्णय करना चाहिए। इनमें बुध व गुरु दिग्बली हैं। इनमें भी बुध अस्त है तथा गुरु उच्च नवांश व मित्र क्षेत्र में है। अतः लग्न के बाद गुरु की दशा व उसके बाद शुक्र, बुध व सूर्य आदि की दशा रहेगी। पणफरों में केवल चन्द्रमा है। अतः केन्द्रगत ग्रहों के बाद चन्द्र की दशा होगी। आपोक्लिम में शनि व मंगल हैं। दोनों उच्च गत हैं। मंगल वर्गोत्तमी है। सूर्य से मुक्त है जबकि शनि सूर्यानुग है। अतः चन्द्रमा के बाद मंगल की व ततः शनि की दशा रहेगी। यह स्थूलानुमान से दशाक्रम है।

इस श्लोक में रुद्रभट्ट ने प्रश्न समय में भी फलनिर्देश का गूढ़ प्रकार निहित है ऐसा माना है। विवाह, सन्तान, आयु, रोगशान्ति आदि प्रश्नों में पृच्छक या उसके प्रतिनिधि आदि के लक्षण, चेष्टा, शकुन आदि देखकर आयु आदि का निश्चय करें। सवर्ण, समान प्रकृति, समानस्तरीय दूत कार्य सिद्धि का द्योतक है। उसके विपरीत कार्य हानि होती है। यदि बहुत से व्यक्ति प्रश्न पूछते समय उपस्थित हों तो सबसे वृद्ध की चेष्टादि से फलकथन करें। यदि कई व्यक्ति समान वयस्क हों तो, उनमें जो पहले उदित अर्थात् प्रथम प्रविष्ट हुआ हो, उससे निर्णय करें। इस विषय में वराहमिहिर की योग यात्रा से उद्धरण भी दिया है–

"अपृच्छतः पृच्छतो वा जिज्ञासोर्यस्य कस्यचित्।
होरा केन्द्रत्रिकोणेभ्यस्तत्र वक्तुः शुभाशुभम्।।" (यात्रा)

तस्मात् तत्काल लक्षणानि सम्यगवधार्य दैवज्ञेन जिज्ञासून् प्रति शुभाशुभं वक्तव्यमिति अभिप्रायः स्पष्टः। तत्प्रदर्शनमत्रापिकृतमिति। (रुद्रभट्ट)

योग यात्रा का पूर्वापर ज्ञात न होने से अनुमान किया जाता है कि प्रश्न के समय सहसा दिखने या प्रकट होने वाले लक्षणों से फल कथन में विशेष निर्देश करें।

ततो वक्तरि श्रोतरि तटस्थे च यानि तात्कालिक लक्षणानि सहसादृश्यन्ते, तान्यपि सम्यगवधार्य फलनिर्देशः कर्त्तव्यः इति तत्प्रकार सूचनमप्यत्र श्लोके परमकारुणिकेनाचार्येणकृतं वेदितव्यम्। (विवरणटीका)

प्रश्न समय में अनुकूल लक्षण, चेष्टा, कथन, अवस्था आदि अनुकूल फल देती हैं। उसी चेष्टादि कारक से फल सिद्धि का समय निश्चय करें। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति या उसका प्रतिनिधि (दूतादि) सन्तान के विषय में प्रश्न करता है तब उसकी चेष्टादि से फल कथन में सहायता मिलेगी। यदि उस समय में सवर्ण चीजों का दर्शन या आगमन हो जैसे बच्चा ही आ जाए, या किसी बालक के रोने हँसने आदि का स्वर या कोई अन्य बाल चेष्टा दिखे तो यह अनुकूल लक्षण है। स्वयं पृच्छक के मुख से अप्रशस्त वचन निकलना अशुभ व उसकी शुभ चेष्टा वचनादि कार्य सिद्धि कारक हैं। पृच्छक या तटस्थ (वहाँ उपस्थित) व्यक्ति के साथ जो सामान हो, उससे भी शकुन विचार कर फ़ल कहें। इत्यादि। समय निर्देश में आयु क्रम, बल स्तर या प्रतिष्ठा क्रम या वर्ण (ब्राह्मणादि क्रम) को ध्यान में रखकर निश्चय करें। इस विषय को दक्षिण भारतीय ग्रन्थ 'प्रश्न मार्ग' में बताया गया है।

अन्तर्दशा निर्णय–

एकर्क्षगोऽर्धमपहृत्य ददाति तु स्वं,
त्र्यंशं त्रिकोणगृहगः स्मरगः स्वरांशम् ।
पादं फलस्य चतुरस्रगतः स होरा–
स्त्वेवं परस्परगताः परिपाचयन्ति ।।3।। (वसन्ततिलका)

केन्द्रगत ग्रहों में 1. 4. 7 भावस्थ, पणफरस्थों में 5. 8 भावस्थ तथा आपोक्लिमस्थों में से नवमस्थ ग्रह की अन्तर्दशाएँ होती हैं ।

यदि दशेश 1.5.9.4.7.8 में कोई ग्रह न हो तो उसमें कोई अर्न्तदशा नहीं होगी । उक्त स्थानों में जितने ग्रह स्थित हों, उन्हीं की अन्तर्दशा इस अनुपात से रहेगी । दशेश के साथ स्थित एक या अनेक ग्रहों में से सर्वाधिक बली एक ग्रह की $\frac{1}{2}$ भाग अन्तर्दशा रहेगी । 9. 5 में स्थित बली ग्रह की $\frac{1}{2}$ भाग तथा 4. 8 में स्थित बली ग्रह की $\frac{1}{4}$ भाग अन्तर्दशा रहेगी । सप्तमस्थ ग्रहों में से केवल एक की $\frac{1}{7}$ भाग अन्तर्दशा होती है । इसी विधि से लग्न की भी अन्तर्दशाएँ होंगी । अर्थात् सात सूर्यादि ग्रह एवं आठवाँ लग्न ये दशाधिपति होते हैं । जिस दशा में अन्तर्दशा देखनी हो, उस दशेश से उक्त स्थानों में कोई भी ग्रह लग्न सहित पड़ जाए तो उसी की अन्तर्दशा रहेगी, अन्यथा नहीं ।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में प्रथम दशा लग्न की है । उसमें लग्न सम्पूर्ण दशा का स्वामी है । अर्थात् उसका भाग $\frac{1}{1}$ है । साथ में कई ग्रह स्थित हैं, लेकिन उनमें सर्व बली गुरु, सम्पूर्ण लग्न दशा के $\frac{1}{2}$ भाग का पाचक अर्थात् फलदाता अर्थात् अपने गुणों व दशेश से अपने सम्बन्धादि के आधार पर आधे भाग में फल देगा । शेष स्थानों में केवल अष्टम में चन्द्रमा है, अतः अष्टमस्थ चन्द्रमा सम्पूर्ण दशा के $\frac{1}{4}$ भाग का अन्तर्दशेश रहेगा । लग्न में ये दो ही अन्तर्दशाएँ रहेंगीं ।

अन्तर्दशा की गणित क्रिया–

स्थानान्यथैतानि सवर्णयित्वा सर्वाण्यधश्छेदविवर्जितानि ।
दशाब्दपिण्डे गुणका यथांशं छेदस्तदैक्येन दशाप्रभेदः ।।4।।

(इन्द्रवजा)

पिछले श्लोक के अनुसार अन्तर्दशेशों व उनके भागों को जान कर एक स्थान पर लिख लें। उन दशा भागों के हर (Denominator) को समान बना लें। तब सब अंशों (Numerator) को जोड़ने से प्राप्त संख्या 'भाजक' होती है।

समान बनाने के बाद 'हरों' को छोड़ देंगे। अंश भागों से अलग-अलग दशा वर्षों को गुणा कर 'भाजक' का भाग देने से प्राप्त वर्षादि अन्तर्दशा होती है।

अंक गणितीय भिन्न विधि को जानने वाले लोगों के लिए विषय स्वयं स्पष्ट है। हमारे उदाहरण में लग्न के साथ (प्रथम दशेश) कई ग्रह स्थित हैं। उनमें से सर्वबली गुरु की ही $\frac{1}{2}$ अर्न्तदशा रहेगी। लग्न से अष्टम में चन्द्रमा की $\frac{1}{4}$ अन्तर्दशा रहेगी। अतः इन सबके भागों को एकत्र लिखा तो लग्न $\frac{1}{1}$, गुरु का $\frac{1}{2}$ तथा चन्द्र का $\frac{1}{4}$ भाग पूर्व श्लोक में कथित प्रकार से अन्तर्दशा काल रहेगा। तब $\frac{1}{1}, \frac{1}{2}, \frac{1}{4}$ को समान हर (समच्छेद) वाला बनाया तो $\frac{4}{4}, \frac{2}{4}, \frac{1}{4}$ हुआ। इनमें से हरों को त्याग दिया। केवल अंशों का योग $4+2+1=7$ यह भाजक है तथा पृथक्-पृथक् अंश, गुणक हैं। लग्न की दशा की अवधि पहले अंशायु प्रकार में 12 वर्ष 246 दिन है अथवा 4566 दिन है। $\frac{4566 \times \text{लग्नगुणक} 4}{7} = 2609$ दिन (स्वल्पान्तरात्) लग्न की अन्तर्दशा रही। अब पुनः $\frac{4566 \times \text{गुरुगुणक} 2}{7} = 1304$ दिन गुरु की अर्न्तदशा तथा $\frac{4566 \times \text{चन्द्रगुणक} 1}{7} = 652$ दिन चन्द्र दशा रहेगी। तीनों का योग कुल दशा के बराबर रहना चाहिए। इसी प्रकार जितने अन्तर्दशेश सिद्ध होते हों, उन सबके निचले हिस्से (हर) का सवर्णन (समान बनाना या Common Denominator) करके पूर्ववत् गुणक व भाजक जान लें, तथा उनसे दशावधि ज्ञात कर सकते हैं।

स्थूणाभिखनन न्याय से इसी उदाहरण में शनि से चतुर्थ में मंगल तथा नवम. में चन्द्रमा है। शनि $\frac{1}{1}$, मंगल $\frac{1}{4}$, चन्द्रमा $\frac{1}{3}$ का समच्छेद $\frac{12}{12}, \frac{3}{12}, \frac{4}{12}$ है। गुणक 12, 3, 4 तथा इनका योग 19 भाजक है।

अतः शनि दशा वर्षों को अन्तर्दशेशों के गुणकों से बारम्बार गुणाकर 19 से भाग देने से अन्तर्दशाएँ मिल जाएँगी।

इस प्रकार जिस दशेश से 1.5.9.4.8.7 में कोई ग्रह न हो उसमें अन्तर्दशा नहीं होती तथा जहाँ अन्तर्दशाएँ होगीं तब अन्तर्दशाओं में भी दशेशों वाला क्रम ही रहेगा।

आदौ अन्तर्दशापाको भवत्येव दशापतेः।
ततः परं तु वक्तव्यं दशापाकक्रमेण तु।। (गार्गि)

दशाओं के नाम–

सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता।
नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेयानिष्टफलादशा प्रसूतौ।।5।।

(वैतालीय)

स्थान, दिक्, काल, चेष्टादि बलों से सम्यक् युक्त ग्रह की दशा का नाम 'सम्पूर्णा' है। परमोच्चगत ग्रह की दशा भी सम्पूर्णा ही होती है। सर्वथा उक्त बलों से रहित ग्रह की दशा 'रिक्ता' होती है। परम नीचगत तथा शत्रु नवांशगत ग्रह की दशा का नाम 'अनिष्ट फला' या 'अनिष्टा' होती है।

उक्त दशाओं का फल नामानुसार ही होता है। जो ग्रह स्थानादि चारों बलों से युक्त तथा परमोच्च में भी हो तो पूरा शुभ फल मिलेगा। इसमें धन, सम्पति, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य बढ़ेगा। यदि परमोच्चगत होकर तीन बलों से या दो बलों से या एक ही प्रकार के बल से युक्त हो तो उक्त शुभफल तिहाई, आधा या चौथाई मिलेगा, यह तारतम्य ध्यान में रखें। इसी तरह उच्चराशिगत ग्रह भी अधिक बली या मध्यबली भी हो तो उसकी दशा 'पूर्णा' होकर धनवृद्धि करेगी। परम नीचगत व शत्रु नवांशगत भी हो तो महान् अनर्थ, केवल नीचराशि में हो तथा मध्य बली हो तो साधारण अनर्थ तथा बलहीन व नीचगत हो तो सब सम्पदाओं का नाश करने वाली दशा होगी। गार्गि के निम्नलिखित उद्धरण में ऐसा ही बताया गया है–

सर्वबलैरुपेतस्य परमोच्चगतस्य च ।
सम्पूर्णाख्या दशा ज्ञेया धनारोग्य विवर्धिनी ।।
स्वोच्चराशिगतस्याथ किंचिद् बलयुतस्य च ।
पूर्णा नाम दशा ज्ञेया धनवृद्धिकरी शुभा ।।
सर्वैर्बलैरपेतस्य नीचराशिगतस्य च ।
रिक्ता नाम दशा ज्ञेया धननाशस्य कारिणी ।।
यः स्यात् परम नीचास्थस्तथाचारिनवांशके ।
तस्यानिष्टफला नाम दशानर्थविवर्धिनी ।।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि सम्यक् बली व उच्चस्थादि ग्रह की दशा किसी भी दशा प्रकार में जब भी आएगी तो धनवृद्धि व आरोग्यकर्त्री ही होगी ।

भ्रष्टस्यतुङ्गादवरोहिसंज्ञा मध्या भवेत् सा सुहृदुच्चभांशे ।
आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत् सा ।।6 ।।

(इन्द्रवज्रा)

परमोच्च से आगे निकल चुके ग्रह की दशा 'अवरोहिणी' होती है । यदि वह उच्चभ्रष्ट, उच्चनवांश या मित्रनवांश में हो तो दशा 'मध्या' होती है । परमनीच से आगे बढ़े हुए ग्रह की दशा 'आरोहिणी' होती है । यदि उक्त नीचभ्रष्ट ग्रह नीच नवांश, शत्रु नवांश में हो तो यह आरोहिणी दशा भी अधम फल देने वाली होती है ।

अवरोहिणी दशा अशुभ व आरोहिणी दशा शुभ होती है, यह सामान्य नियम है । यदि अवरोही ग्रह भी उच्चादि नवांश में चला गया हो तो मध्यम अर्थात् शुभाशुभ मिश्रित हो जाती है । इसी प्रकार आरोही ग्रह भी नीचादि नवांश में चला गया हो तो वह अशुभ फलद हो जाता है । ये अपवाद कहे हैं । परमनीच से 6 राशि के भीतर अपवादों को छोड़कर परमोच्च तक शुभ फल क्रमशः बढ़ता हुआ तथा परमोच्च से 6 राशियों तक क्रमशः क्षीण होता जाता है ।

नीचारिभांशे समवस्थितस्य शस्ते गृहे मिश्रफला प्रदिष्टा ।
संज्ञानुरूपाणि फलानि चैषां दशासु वक्ष्यामि यथोपयोगम् ।।7 ।।

(उपजाति)

जो ग्रह प्रशस्त स्थानों (मूल त्रिकोण स्वक्षेत्रादि) में स्थित हो तथा साथ ही वह ग्रह नवांश में नीच, शत्रु क्षेत्रादि भागों में चला गया हो तो उसकी दशा मिश्रित फल देने वाली होती है । इन सब पूर्वोक्त दशाओं का

फल अपने नामों के अनुसार ही होता है । इन्हीं दशाओं का विशेष पृथक्-पृथक् फल आगे बताया जा रहा है ।

लग्न दशा का विशेष फल–

उभयेऽधममध्यपूजिता द्रेष्काणैश्चरमेषु चोत्क्रमात् ।
अशुभेष्टसमा स्थिरक्रमाद् होरायाः परिकल्पिता दशा ।।8।।

(वैतालीय)

यद्यपि लग्न की दशा का सामान्यफल लग्नेश ग्रह से पूर्वोक्त नियमों के आधार पर समझ लेना चाहिए, तथापि लग्न दशा में यह विशेष योजना भी करनी होगी । यदि लग्न में द्विस्वभाव राशि हो तो प्रथम द्रेष्काणगत लग्न की दशा अशुभ, मध्य द्रेष्काण गत लग्न दशा मध्यम तथा अन्तिम द्रेष्काणगत लग्न दशा उत्तम फल देने वाली होती है ।

यदि लग्न में चर राशि हो तो प्रथम द्रेष्काण में उत्तम, मध्यम में मध्यम तथा अन्तिम द्रेष्काण में अधम फलदायिनी होती है ।

स्थिर राशि लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, मध्य द्रेष्काण में उत्तम एवं अन्तिम द्रेष्काण में मध्यम फल दायिनी होती है ।

निसर्गदशाक्रम–

एकं द्वे नवविंशतिर्धृतिकृती पंचाशदेषां क्रमा– ।
च्चन्द्रारेन्दुजशुक्रजीवदिनकृद्दैवाकरीणांसमाः ।
स्वे स्वे पुष्टफला निसर्गजनिता पक्तिर्दशायाः क्रमा–
दन्त्ये लग्नदशाशुभेति यवना नेच्छन्ति केचित्तथा ।।9।।

(शार्दूलविक्रीडित)

चन्द्रमा, मंगल, बुध, शुक्र, गुरु, सूर्य, शनि की निसर्ग दशा जन्म से लेकर क्रमशः 1, 2, 9, 20, 18, 20, 50 वर्षों (कुल 120 वर्ष) तक रहती है । इनमें से जो ग्रह बलवान् होकर उपचय भावों में हों उनकी दशा शुभ तथा अल्पबली व अनुपचयस्थ ग्रहों की दशा अशुभ होती है । सप्तमाध्यायोक्त आयुर्दाय व निसर्ग आयुर्दाय यदि समान काल में उपस्थित हो तो उस समय में वह ग्रह बहुत पुष्ट फल देता है । यदि 120 वर्ष के बाद भी कोई जीवित रहे तो तब जीवन काल पर्यन्त लग्न की दशा रहती है । यह लग्न की दशा सदैव शुभ ही होती है, ऐसा यवनों ने कहा है, लेकिन कुछ लोग (वराह सहित) उस लग्न दशा को सदैव शुभ न मानकर द्रेष्काण विधि से (श्लोक 8) अधम, मध्यम या उत्तम मानते हैं ।

यह निसर्ग दशा सब ग्रहों की होना आवश्यक नहीं है। जितनी आयु हो, उस समय में जो ग्रह दशाएँ बीत जाएँ, वे ही मानी जाती हैं। जैसे 70 वर्ष तक जीने वाले लोगों को शनि दशा नहीं रहती है। परमायु 120 वर्ष मानकर पुनः तदुपरि जो लग्न दशा कही है, वह विरुद्ध नहीं है। क्योंकि सत्याचार्य के मत से आयु साधन करने पर 120 वर्ष से बहुत अधिक आयु भी आ सकती है। भट्टोत्पल ने मीन के अन्तिम नवांश में लग्न व मेष में सूर्य रहने पर, शेष ग्रहों के मीन नवांश में रहने से आयु 267 वर्ष तक रहने की सम्भावना व्यक्त की है।

दशा प्रवेश काल से फल निश्चय–

पाकस्वामिनि लग्नगे सुहृदि वा वर्गेऽस्य सौम्येऽपि वा,
प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशषड्लाभेषु वा पाकपे।
मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदगः पाकेश्वरस्य स्थित-
श्चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा।।10।।

दशा प्रवेश के समय यदि दशेश (अन्तर्दशेश) लग्न में स्थित हो अथवा दशेश का मित्र ग्रह लग्न में हो अथवा लग्न में दशेश या दशेश के मित्रों के वर्ग पड़े हों या शुभ ग्रहों के वर्ग में दशा प्रवेश लग्न हो अथवा दशेश 3.6. 10. 11 भाव में स्थित हो तो ऐसे समय में प्रविष्ट दशा शुभ फल देने वाली होती है। इसके विपरीत पापग्रहों के वर्ग में या दशेश के शत्रु ग्रह के वर्ग में या लग्नगत शत्रु ग्रह से अथवा दशेश 6. 8. 12 में विशेषतया तथा शेष अनुपचय स्थानों में स्थित हो तो उस समय में प्रविष्ट दशा अनिष्टकारिणी होती है। उक्त दशा काल में जब भी चन्द्रमा दशेश से 3.6.10. 11 में या दशेश की उच्च, स्वक्षेत्र, मूलत्रिकोण राशि में या मित्र ग्रह की राशि में या शुभ ग्रहों के वर्ग में जाएगा तब दशा का शुभ फल विशेषतया अनुभव में आएगा। इसके विपरीत स्थितियों में जब चन्द्रमा गोचर करेगा तब अशुभ फल होगा।

चन्द्रमा का उक्त गोचर दशेश की अधिष्ठित राशि से देखना योग्य है। प्रथम दशारम्भ का समय जन्म समय ही होता है। जन्मकालीन शक संवत् एवं तात्कालिक मध्यम सूर्य में आगामी दशा के वर्ष, मास, दिन, घटी, पलादि जोड़ने पर अगली दशा का प्रवेश समय ज्ञात हो जाएगा। अर्थात् उक्त सूर्य जिस समय रहे, वही दशा प्रवेश का समय है।

अभीष्ट दशा के दिनों को दो स्थानों पर रखें। प्रथम स्थान पर 13 से गुणा कर 990 से भाग दें। लब्धि को दूसरे स्थान पर जोड़ने पर मध्यम सावन दिन दशा होती है। दशेश के दशा वर्षों के तुल्य पलों को उसमें

और जोड़ देने से स्पष्ट सावन दिन दशा होगी। इस सावन दशा में जन्म कालीन सावयव अहर्गण जोड़ देने से, दशा प्रवेश कालीन अहर्गण हो जाता है। इसी अहर्गण से सिद्धान्तोक्त या करणोक्त विधि से ग्रह व लग्नादि का साधन करें। यह सूक्ष्मविधि है। सामान्यतया जन्मकालीन सूर्य व शक संवत् में दशान्तर्दशा का काल जोड़कर प्राप्त सूर्य जिस समय पंचांग में प्राप्त हो, उसी समय का लग्न बनाकर दशा प्रवेश जाना जा सकता है।

दशारम्भ में चन्द्रमा से फल निर्णय–

प्रारब्धा हिमगौ दशा स्वगृहगे मानार्थसौख्यावहा,
कौजे दूषयति स्त्रियं बुधगृहे विद्यासुहृद् वित्तदा।
दुर्गारण्यपथालये कृषिकरी सिंहे सितर्क्षेऽन्नदा,
कुस्त्रीदा मृगकुम्भयोर्गुरुगृहे मानार्थसौख्यावहा।।11।।

दशा प्रवेश के समय चन्द्रमा कर्क में हो तो मान, सुख व धन प्राप्त होता है। मेष वृश्चिक गत हो तो स्त्री पक्ष के कष्ट, चिन्ता आदि, मिथुन कन्या में हो तो विद्या, धन व मित्र की प्राप्ति, सिंह में चन्द्रमा हो तो दुर्ग, जंगल, मार्ग या घर के समीप विशेषतया कृषि वृद्धि, वृष तुला में हो तो प्रभूत अन्न लाभ, मकर कुम्भ में हो तो कुस्त्री की प्राप्ति तथा धनु मीन में हो तो सम्मान, धन व सुख सम्पूर्ण दशा काल में मिलता है।

सूर्य दशा फल–

सौर्यां स्वं नखदन्तचर्मकनकक्रौर्याध्वभूपाहवै-
स्तैक्ष्ण्यं धैर्यमजस्रमुद्यमरतिः ख्यातिः प्रतापोन्नतिः।
भार्यापुत्रधनारिशस्त्रहुतभुग्भूपोद्भवा व्यापद–
स्त्यागः पापरतिः स्वभृत्यकलहो हृत्क्रोड पीडामयाः।।12।।

सूर्य की शुभ दशा में नख, गजदन्त आदि, चमड़ा, सोना इत्यादि पदार्थों के व्यापार से लाभ होता है। क्रूरता, यात्रा, राजसम्बन्ध, युद्ध (पराक्रम कार्य) से धन लाभ होता है। इस दशा में तीक्ष्णता (उग्रता, आक्रामकता, इक्कबाल बुलन्दी) धैर्य (लक्ष्य से भ्रष्ट न होना, अध्यवसाय) हर्ष शोक में तुल्य रहना, लगातार परिश्रम, प्रीति, ख्याति, प्रतापवृद्धि इत्यादि शुभफल होते हैं।

स्त्री, पुत्र, धन, शत्रु, शस्त्र, अग्नि, राजा की ओर से कष्ट, त्याग भावना (निर्मोह का उदय) पाप कार्यो में रति, अपने अधीनस्थों से कलह, हृदय व पेट में पीड़ा या रोग होते हैं। ये सूर्य की अशुभ दशा के फल हैं। मिश्र दशा में सर्वत्र उक्त फलों का सम्मिश्रण समझना चाहिए।

चन्द्रदशाफल–

इन्दोः प्राप्य दशां फलानि लभते मन्त्रद्विजात्युद्भवा–
नीक्षुक्षीरविकारवस्त्रकुसुमक्रीडातिलान्नश्रमैः ।
निद्रालस्यमृदुद्विजामररतिः स्त्रीजन्ममेधाविता,
कीर्त्यर्थोपचयक्षयौ च बलिभिर्वैरं स्वपक्षेण च ।।13।।

चन्द्रमा की शुभ दशा में मन्त्र प्रयोग या मन्त्र शक्ति (निर्णयशक्ति) व ब्राह्मणों से लाभ, गुड़ शक्कर, चीनी या मीठे पदार्थों, दूध से बने पदार्थों, कपड़ा, पुष्प क्रीड़ा, तेल, अन्न एवं परिश्रम से लाभ होता है।

अशुभ दशा में नींद की अधिकता, आलस्य, कोमल स्वभाव वाले द्विजों व देवताओं के प्रति विशेष आकर्षण, कन्या जन्म, बुद्धिमत्ता , कीर्ति व धन की कभी वृद्धि, कभी हानि, बलवान् व्यक्ति एवं स्वबान्धवों या स्वपक्ष से वैर होता है।

चन्द्रमा के जन्म कालीन बलाबल को देखकर उक्त शुभ, अशुभ या मिश्रित फल कहने चाहिएं।

मंगल दशा फल–

भौमस्यारि विमर्दभूपसहजक्षित्या विकाजैर्धनं,
प्रद्वेषः सुतमित्रदारसहजै विद्वद्गुरुद्वेषिता ।
तृष्णासृग्ज्वरभंग पित्तजनिता रोगाः परस्त्रीष्टता,
प्रीतिः पापरतैरधर्मनिरतिः पारुष्यतैक्ष्ण्यादि च ।।14।।

मंगल की शुभ दशा में शत्रुओं पर विजय, राजा, भाई, पृथ्वी, भेड़ बकरी आदि से धन लाभ होता है।

अशुभ दशा में पुत्र, मित्र, स्त्री, भाई, विद्वान् व्यक्ति, गुरु से द्वेष, प्यास लगना, रक्त विकार, चोट, पराजय, पित्तविकार, परस्त्री के प्रति आकर्षण, पाप कार्यों में रति, अधर्म कार्य, कठोरता व उग्रता आदि फल होते हैं।

बुध दशा फल–

बौध्यां दौत्यसुहृद्गुरुद्विजधनं विद्वत्प्रशंसा यशो-
युक्ति द्रव्यसुवर्णवेसरमही सौभाग्यसौख्याप्तयः ।
हास्योपासनकौशलं मतिचयो धर्मक्रियासिद्धयः,
पारुष्यश्रमबन्धमानसरुजा पीडा च धातुत्रयात् ।।15।।

बुध की शुभ दशा या अन्तर्दशा में दूत कर्म, मित्र, गुरु व ब्राह्मणों से धन लाभ, विद्वानों द्वारा प्रशंसा, यशो लाभ, पीतल कांसा आदि मिश्रित धातुओं से लाभ, सोना, अश्व (वाहन) भूमि, सौभाग्य व सुख की प्राप्ति होती है। हँसी मजाक में कुशलता से, बुद्धि वृद्धि, धर्म क्रिया में सफलता मिलती है। अशुभ दशा में परुषता, परिश्रम, बन्धन, मानसिक क्लेश, रोग व वात, पित्त कफजन्य पीड़ा होती है।

गुरुदशा फल–

जैव्यां मानगुणोदयो मतिचयः कान्तिः प्रतापोन्नति-
र्माहात्म्योद्यम मन्त्रनीति नृपतिस्वाध्याययज्ञैर्धनम्।
हेमाश्वात्मज कुंजराम्बरचयः प्रीतिश्च सद्भूमिपैः,
सूक्ष्मोहागमनैपुणं श्रवणरुक् वैरं विधर्माश्रितैः।।16।।

गुरु की शुभ दशा में मान सम्मान, गुणों का उदय, बुद्धि, वृद्धि कान्ति, प्रताप वृद्धि, महत्त्व बढ़ना, व्यवसाय, मन्त्र, नीति से लाभ, राजा, स्वाध्याय, यज्ञादि से धनागम, सुवर्ण, अश्व (वाहन) पुत्र, हाथी (विशाल वाहन) वस्त्र आभूषण, अच्छे राजाओं से प्रेम बढ़ता है। सूक्ष्म विचारशालिता से कार्य सिद्धि होती है। अशुभ दशा में कानों में रोग, एवं विधर्मियों से शत्रुता होती है।

शुक्रदशाफल–

शौक्रयांगीतरतिप्रमोदसुरभिद्रव्यान्नपानाम्बर,
स्त्रीरत्नद्युतिमन्यथोपकरण ज्ञानेष्ट मित्रागमाः।
कौशल्यं क्रयविक्रये कृषिनिधिप्राप्तिर्धनस्यागमो
वृन्दोर्वीशनिषादधर्म रहितैर्वैरं शुचः स्नेहतः।।17।।

शुक्र की शुभदशा में गीतादि के प्रति आकर्षण, आमोद प्रमोद, सुगन्धित द्रव्य लाभ, भोजन पानादि व वस्त्रों की प्राप्ति, सुन्दर योग्य स्त्री का लाभ, शोभा, कामोपकरण (विलासमाग्री) की प्राप्ति, ज्ञान, इष्ट मित्रों से समागम, व्यापार में निपुणता, कृषि से लाभ, खजाने की प्राप्ति व धनागम होता है। अशुभ दशा में राजसमुदाय या पाठान्तर 'वन्यव्याधनिषाद' जंगली जानवर, व्याध, निषाद आदि से व अधार्मिक लोगों से वैर तथा प्रेम प्रसंगों में मनस्ताप होता है।

शनि दशा फल–

सौरीं प्राप्य खरोष्ट्रपक्षिमहिषी वृद्धाङ्गना वाप्तयः,
श्रेणीग्रामपुराधिकारजनितापूजा कुधान्यागमः ।
श्लेष्मेर्ष्यानिलकोपमोहमलिनव्यापत्तितन्द्राश्रमाः,
भृत्यापत्य कलत्रभर्त्सनमपि प्राप्नोति च व्यङ्गताम् ।।18।।

शनि की शुभ दशा में गधा, ऊँट, पक्षी, भैंस, वृद्धा (अवस्था में अधिक) स्त्री की प्राप्ति होती है। अपने वर्ग (श्रेणी) ग्राम, पुर आदि के अधिकार से पूजनीयता, मोटे अनाज की प्राप्ति आदि होती है।

अशुभ शनि दशा में कफ विकार, ईर्ष्या, वृद्धि, वात रोग, बेहोशी या बुद्धि भ्रम, मलिन कार्य आदि से पीड़ा, तन्द्रा, (उनींदापन) विकार, अलसाया शरीर, चुस्ती की कमी, जम्हाई अधिक आना आदि, परिश्रम की अधिकता, नौकरों, स्त्री, सन्तान की ओर से ताड़ना एवं विकलांगता आदि फल होते हैं।

दशा में शुभाशुभ फलविभाग व लग्न दशा–

दशासु शस्तासु शुभानि कुर्वन्त्यनिष्टसंज्ञास्वशुभानि चैवम् ।
मिश्रासु मिश्राणि दशाफलानि, होराफलं लग्नपतेः समानम् ।।19।।

(उपजाति)

सम्पूर्णा, पूर्णा, आरोहिणी आदि शुभ नामवाली दशाओं में ग्रह अपना शुभ फल देता है तथा अवरोहिणी, रिक्ता आदि दशाओं में अशुभ फल देता है। यदि शुभाशुभ लक्षण मिश्रित ग्रह हो तो वह मिश्रित (मिलाजुला) फल देता है। लग्न की दशा का विवेक लग्नेश ग्रह की स्थिति से करना चाहिए। दशानुसार ही अन्तर्दशाओं में फल समझना चाहिए, यह बात अन्यथा स्पष्ट है। पुनश्च दशा प्रवेश के समय शुभ स्थिति से काफी हद तक अशुभ फल का परिहार हो जाता है। यह बात सारावली में बताई गई है।

दशाफल निर्णय की सरणि–

संज्ञाध्याये यस्य यद् द्रव्यमुक्तं कर्माजीवे यस्य यच्चोपदिष्टम् ।
भावस्थानालोकयोगोद्भवं यत् तत्तत् सर्व तस्य योज्यं दशायाम् ।।20।।

(शालिनी)

पहले संज्ञाध्याय में जिस ग्रह के जो पदार्थ कहे गए हैं तथा आगे कर्मा जीवाध्याय में जिस ग्रह के जो कार्य कहे जाएँगे वे सब ग्रह की दशा

में समझने चाहिएं। भावगत फल, स्थान गत, दृष्टि जन्य एवं योग जन्य जो फल जिस ग्रह का जैसा उक्त व वक्ष्यमाण है, वह सब भी उस ग्रह की दशा में मिलता है।

पहले मणि, मुक्ता, हेम आदि, धातु, विविध, वस्त्र, रंग, प्रकृति व द्रव्य कहे गए हैं, उन सबकी यथायोग्य प्राप्ति ग्रह की दशा में होगी। जिस ग्रह से जो जीविका क्षेत्र बताया जाएगा, उससे अपनी दशा में ग्रह लाभ करवाते हैं। इसके अतिरिक्त आगे या पीछे अनिष्ट या इष्ट फल सूर्य, चन्द्रादि योग, राजयोगादि जो फल कहे जाएँगे, वे सब भी दशान्तर्दशा में दशेश के बलाबलानुसार बताने योग्य हैं।

ग्रह दशा में पंचभूतों की छाया–

छायां महाभूतकृतां च सर्वेऽभिव्यंजयन्ति स्वदशामवाप्य।
क्ष्वम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान् गुणांश्च नासास्यदृक्त्वक् छ्रवणानुमेयान्।।21।।

(इन्द्रवज्रा)

पहले संज्ञाध्याय में 'शिखिभूखपयोमरुद्गणानां' इत्यादि श्लोकांश में प्रत्येक ग्रह के पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंच तत्त्व कहे गए हैं।

मंगलादि सभी ग्रह अपनी दशा में क्रमशः तेज, भूमि, आकाश, जल, व वायु तत्त्वों की आभा, कान्ति या छाया को अपनी-अपनी दशा में जातक के शरीर में प्रकट करते हैं। इन पाँचों तत्त्वों के गुणों (तन्मात्रा) गन्ध रस, रूप, स्पर्श, शब्द का क्रमशः नाक, जिह्वा, नेत्र, त्वचा व कानों में विशेषतया अनुमान होता है।

उदाहरणार्थ मंगल का महाभूत तेज है। उसका गुण रूप है। अतः बली मंगल अपनी दशा में नीरोग, चमकीले व रौबदार नेत्रों को करेगा। अथवा रूप की प्राप्ति होगी। बुध की दशा में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता से गन्ध लाभ, नासेन्द्रिय की तीव्रता आदि होगी। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। जिस व्यक्ति का जन्म समयादि ज्ञात न हो तो उसकी शरीरच्छाया से वर्तमान दशा का अनुमान करके फल कहना चाहिए। बृहत्संहिता में कहा गया है–

छाया शुभाशुभ फलानि निवेदयन्ती
लक्ष्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणज्ञैः।।

वाहट ने इस विषय में विभाग पूर्वक कहा है कि आकाश तत्त्व की छाया स्वच्छ, निर्मल, नीलाभ, चिकनी व प्रभायुक्त होती है। वायुज छाया मनोज्ञ, रुचिर, मनभावन, साँवली, रूखी, प्रभाहीन, अग्निज छाया शुद्ध स्वच्छ लाल, प्रदीप्त तथापि दर्शनप्रिय एवं जलज छाया शुद्ध मरकत (पन्ना)

छायावाली, स्वच्छ, विमल, चिकनी, शुभ होती है। पृथ्वी तत्त्व की छाया स्थिर, स्निग्ध, घनश्यामल, शुद्ध, स्वच्छ, सफेद, चमकीली होती है।

खादीनां पंचपंचानां छाया विविधलक्षणा।
नाभसी निर्मला नीला सस्नेहा सप्रभैव च।।
वातजा रुचिरा श्यामा भस्मरूक्षा हतप्रभा।
विशुद्धरक्ता त्वाग्नेयी दीप्तभा दर्शनप्रिया।।
शुद्ध वैडूर्य विमला सुस्निग्धा तोयजा शुभा।
स्थिरा स्निग्धा घनश्यामा शुद्धा श्वेता च पार्थिवी।। (वाहट)

आचार्य ने संहिता के पुरुष लक्षणाध्याय में कहा है कि भूमिच्छाया पुष्टि, धन, अभ्युदय व आस्तिकता को, जलच्छाया सौभाग्य व सर्वसिद्धि करी, अग्निच्छाया जयकरी, वायवी वध-बन्धन व कष्टकरी तथा आकाशीय छाया कार्यसाधक उदारतावर्धक व शुभ होती है।

उक्त छाया लक्षण मंगलादि ग्रहों के द्वारा स्वयं अपनी दशान्तर्दशा में अथवा इनके द्वारा युक्तेक्षित अथवा इनकी राशि में स्थित बली ग्रह की दशान्तर्दशा में प्रकट होते हैं। अतः छाया, नष्ट जातक में सहायक होती है। बहुत से नष्टजातक उपकरणों में से एक उपकरण छाया भी है।

उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति मौलिक रूप से वैसा न होकर भी जब मधुराम्ल रस प्रिय हो जाए तो क्रमशः चन्द्र व शुक्र की जलीय छाया समझ सकते हैं। जब व्यक्ति कान्तिमान् दीप्त, रूपवान् व दर्शनीय हो तो सूर्य मंगल की छाया समझें। स्पर्श कोमल, नाजुक शरीर, मलिन वर्ण, कक्ष्या (बगल) व पसीने से अधिक दुर्गन्ध आने लगे तथा व्यक्ति अधिक स्त्री लोंल हो जाए तो शनि कृत वायवी छाया समझें। जब गीत, वाद्य, नृत्यादि में रुचि रहे, मनोरंजक व सामुदायिक कार्यों में रुचि लेने लगे तो जीवकृत नाभसी छाया समझें।

अथवा इस प्रकार से समझें। जैसे शनि का तत्त्ववायु तथा उसका गुण स्पर्श है। स्पर्श त्वगिन्द्रिय द्वारा ज्ञेय है। अतः शुभ शनि की दशा में त्वचा में कान्ति, रूप, चमक तथा श्रेष्ठ स्पर्श जैसे भौतिक सुख-साधनों का लाभ तथा अशुभशनि दशा में इन बातों से कष्ट जैसे त्वचा में रोग, कष्ट, भौतिक सुख लोलुपता में वृद्धि तथा तज्जन्य कष्ट होंगें।

दशा लक्षणों की पहचान–

शुभफलद दशायां तादृगेवान्तरात्मा,
बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागमं च।
कथितफलविपाकैस्तर्कयेद् वर्तमानां
परिणमति फलोक्तिः स्वप्नचिन्ता स्ववीर्यैः ।।22।।

(मालिनी)

शुभफल देने वाली दशा में मनुष्य की अन्तरात्मा भी वैसी ही हो जाती है। अर्थात् सूर्य चन्द्र की दशा में राजा के समान, मंगल की दशा में सेनापति के समान इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए। शुभफल दशा में मनुष्यों को सुख व धनागम प्रभूत मात्रा में होता है।

दशा के प्रोक्त फलों को वर्तमान जीवन में प्रत्यक्ष देखकर मनुष्य की वर्तमान दशा का निर्णय करना चाहिए। इसके विपरीत अशुभ फल देने वाली निर्बल ग्रह दशा का फल वास्तव में न होकर केवल विचारगत तथा स्वप्न आदि में ही अनुभूत होता है। अर्थात् बलवान् शुभग्रह अपनी दशा में अपना शुभफल व निर्बल ग्रह अपना अशुभ फल देते हैं एवं निर्बल ग्रह अपना फल केवल कल्पना या स्वप्न में ही देते हैं, वास्तव में नहीं।

दो विरोधी दशाफलों में समन्वय–

एक ग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे
नाशं वदेद् यदधिकं परिपच्यते तत्।
नान्यो ग्रहः सदृशमन्यफलं हिनस्ति,
स्वां स्वां दशामुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः ।।23।।

(वसन्ततिलका)

यदि कोई एक ही ग्रह किसी एक कारण से वृद्धि कारक व अन्य कारण से हानिकारक सिद्ध होता हो तो उन दोनों विरोधी फलों में समान बल रहने से दोनों का नाश हो जाता है, अर्थात् शुभ या अशुभ कोई भी फल नहीं मिलता है। यदि किसी ग्रह के फलों में न्यूनाधिक्य हो तो जो अधिक फल हो, उसी का भोग होता है। यह एक ग्रह की व्यवस्था है। यदि दो भिन्न ग्रहों में समान रूप से शुभ या अशुभ फल दिखे तो उनका नाश नहीं होता है, अपितु दोनों ही फलों का यथावसर लाभ होगा। अपनी-अपनी दशा या अन्तर्दशा में उक्त दोनों फलों की प्राप्ति होगी।

श्लोक 22 में बताया गया है कि दशा का फल अवश्य मिलता है। लेकिन कोई एक ही ग्रह जब दोनों प्रकार के विरोधी गुणों से युक्त हो, जैसे मेष लग्न में मंगल लग्नेश होने से शुभ व अष्टमेश रहने से अशुभ भी है तब इन दोनों फलों की प्राप्ति नहीं होगी, यदि दोनों फल समान मात्रा में हों। यदि दोनों में से कोई फल अधिक हो तो जो शुभ या अशुभ फल अधिक हो, उसी की प्राप्ति होती है। षड्वर्ग से इसका निर्णय सरलता से हो सकता है। यदि तीन शुभ व तीन अशुभ वर्ग हों तो शुभाशुभ कुछ भी फल न होकर साधारण फल होता है। यदि 4 या 5 वर्गों में शुभ व 2 या 1 वर्ग में अशुभ हो तो अधिक शुभ फल मिलेगा।

लेकिन जब दो या तीन या चार या पाँच या छह ग्रहों में से कुछ ग्रह शुभ व कुछ अशुभ हों तो सब ग्रह अपनी-अपनी दशान्तर्दशा में यथायोग्य शुभ या अशुभ फल देंगे। महादशेश का फल सदैव प्रधान होता है। बलवान् अशुभ महादशेश में निर्बल शुभ ग्रह की अन्तर्दशा आने पर मनोरथों या कल्पना में ही शुभ फल तथा बली शुभ की अन्तर्दशा में स्वबलानुसार शुभफल होगा। बली महादशा में शुभान्तर रहने पर शुभ तथा अशुभान्तर में सामान्य अशुभ रहेगा। यह व्यवस्था है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां दशाध्यायोऽष्टमः ।।

[9]

अथाष्टकवर्गाध्याय:

सूर्याष्टक वर्ग–

स्वादर्कः प्रथमाय बन्धुनिधनद्वयाज्ञातपोधूनगो,
वक्रात् स्वादिव तद्वदेव रविजाच्छुक्रात् स्मरान्त्यारिषु ।
जीवाद् धर्मसुताय शत्रुषु दशत्र्यायारिगः शीतगो-,
स्तेष्वेवान्त्यतपः सुतेषु च बुधाल्लग्नात् सबन्ध्वन्त्यगः ।।1।।

जन्म समय में सूर्य जिस राशि में स्थित हो उस राशि से गोचर वशात् जब वह 1. 11. 4. 8. 2. 10. 9. 7 स्थानों में आए तो शुभ है। इसी प्रकार मंगल व शनि की अधिष्ठित राशि से भी इन्हीं स्थानों में गोचर करता हुआ सूर्य शुभ है। शुक्र से 6. 7. 12 में शुभ है। गुरु से 9. 5. 11. 6 में शुभ है। चन्द्रमा से 10. 3. 11. 6 में शुभ है। बुध से 10. 3. 11. 6 एवं 12. 9. 5 में गोचर क्रम से सूर्य शुभ है। लग्न राशि से गोचर में 10. 3. 11. 6. 4. 12 भावगत सूर्य शुभ है। कहे गए स्थानों के अतिरिक्त स्थानों में अशुभ है। इस प्रकार सूर्य के कुल 48 शुभ गोचर स्थान हैं।

दृढ़ कर्मोपार्जित फलों की प्राप्ति का काल निश्चय दशान्तर्दशा से बताकर अब इस अध्याय में अदृढ कर्मोपार्जित फलों की प्राप्ति का समय निर्धारित करना बताया जा रहा है। सूर्यादि सात ग्रह एवं लग्न ये आठ चीजें उपकरणत्वेन गृहीत होने से अष्टक (आठ का समूह) वर्ग (उनका समुदाय) नाम सार्थक है। ये आठों जन्म समय जिस राशि में पड़ें, उन राशियों से, सम्बन्धित ग्रह जब प्रोक्त शुभ स्थानों में गोचरवशात् आएगा तो शुभ फल देगा। श्लोकों में पठित स्थान शुभ हैं। इसका बोध अध्यायान्त

में 'इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद्' इत्यादि कथन से हो जाता है। अथवा श्लोक तीन में उक्त 'शुभ' शब्द का अन्वय सर्वत्र है।

जन्म समय में हमारे पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में सूर्य वृश्चिक राशि में स्थित है। अतः वृश्चिक से 1.11.4.8.2.10.9.7 स्थानों में अर्थात् वृश्चिक, धनु, कुम्भ, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या राशि में जब-जब वर्ष मध्य में आएगा, तब तब शुभ फल देगा। इसी प्रकार सब ग्रहों की अधिष्ठित राशि से उक्त स्थानों में गोचर करता हुआ सूर्य शुभ होगा। सूर्य एक राशि में तीस दिनों तक रहेगा। उन तीस दिनों का भी सूक्ष्म फल जानने का प्रकार आचार्य ने यहाँ अन्त में लग्न का उल्लेख करके बताया है। शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र व लग्न यह कक्ष्या क्रम है। अर्थात् आकाश में इस क्रम से ग्रहों की अधोऽधः स्थिति है।

शनैश्चर सुरगुरु भौमार्क शुक्रबुधचन्द्राः।
सप्तैते होरेशाः शनैश्चराद्या यथाक्रमं शीघ्राः।। (आर्य भट्ट)

अतः प्रत्येक ग्रह के एक राशि चार के समय को आठ भागों मे बाँट लें। 3°. 45′ अंश का एक भाग रहेगा। प्रथम भाग शनि कक्ष्या, द्वितीय भाग गुरु कक्ष्या इत्यादि क्रम से अन्त में लग्न की कक्ष्या होगी। तब उदाहरणार्थ सूर्य अपनी अधिष्ठित राशि से पूर्वोक्त शुभ राशियों में जब चौथे भाग अर्थात् 11°. 15′ से 15° अंशों तक गोचर करेगा तब अपना शुभ फल विशेषतया देगा। मंगल की कही हुई राशियों में भी जब सूर्य मंगल कक्ष्या (तीसरी) 7°. 30′ से 11°. 15′ तक रहेगा तब विशेष शुभ फल देगा। इस प्रकार प्रत्येक राशि में 8 विभाग रहने से $12 \times 8 = 96$ विभाग बारह राशियों में बनेंगे। चन्द्रमा आदि के गोचर में भी आगे वक्ष्यमाण स्थानों में इसी प्रकार कक्ष्या क्रम से फल निर्देश करना चाहिए। इस विषय में विशेष विस्तार से हम अपने 'अष्टक वर्ग महानिबन्ध मंजुलाक्षरा' में लिख चुके हैं। इसी विधि से संक्राति प्रवेश के समय आठों ग्रहों का अष्टक वर्ग बनाकर कुल रेखा योग से मासिक फल, इसी प्रकार वर्ष प्रवेश के समय के संयुक्त अष्टक वर्ग (समुदायाष्टक) से वर्ष का फल विचार करना योग्य है। जिस मास या दिन में कुल रेखा योग 112 से कम हो तो वह अशुभ है। 112 से 225 तक मध्यम तथा उससे ऊपर श्रेष्ठ होता है। विशेषतया संक्रान्ति या वर्ष प्रवेशादि के समय सब ग्रह जिन राशियों में हों, उन्हीं राशियों की रेखाएँ सम्बन्धित अष्टक वर्ग (जन्मकालीन) चक्र से ले लें। उन सबका योग करके उक्त प्रकार से फल देखें।

माना किसी व्यक्ति के वर्ष प्रवेश के दिन सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र मकर में, चन्द्रमा मिथुन में, बृहस्पति तुला में व शनि कुम्भ में है। माना जन्म समय में सूर्याष्टक वर्ग में मकर में 3, चन्द्राष्टक वर्ग में मिथुन में 4, मंगलाष्टक में मकर में 2, बुधाष्टक में मकर में 3, गुर्वष्टक में तुला में 7, शुक्राष्टकमें मकर में 3 तथा शन्यष्टक में कुम्भ में 1 रेखा, एवं सब का योग 23 है। सात ग्रहों की 8-8 रेखाओं का योग 56 है। अतः इसका आधा 28 मध्यम तथा इसका आधा 14 अधम फलकारक है। 14 से नीचे रेखाएँ हों तो निश्चय से मरण होता है। अतः पूर्वोक्त वर्ष मध्यम फलप्रद है।

इसी बात को सामुदायिक अष्टवर्ग से देखते हैं। मकर में माना कुल रेखाएँ 27 हैं। मकर में चार ग्रह होने से $27 \times 4 = 108$. मिथुन में 35, तुला में 28 तथा कुम्भ में 24 रेखा योग है। सब का योग 195 है। 225 तक मध्यम फलद रहने से वर्ष मध्यम रहेगा।

इसी प्रकार संक्रान्ति दिन से या ताजिकोक्त मासप्रवेश से मास का तथा दैनिक ग्रहों से दिन का फल जाना जा सकता है। विशेष विस्तार के लिए हमारा 'अष्टकवर्ग मंजुलाक्षरा' देखें।

चन्द्राष्टकवर्ग–

लग्नात्षट्त्रिदशायगः सधनधीधर्मेषु चाराच्छशी,
स्वात्सास्तादिषु साष्टसप्तसु रवेः षट्त्र्यायधीस्थो यमात्।
धीत्र्यायाष्टम कण्टकेषु च बुधाज्जीवाद् व्ययायाष्टगः,
केन्द्रस्थश्च सितात्तु धर्मसुखधीत्र्यायास्पदानंगगः ।।2।।

चन्द्रमा लग्न से 6. 3. 10. 11 में, मंगल से 2. 5. 9. 6. 3. 10. 11 में अपनी अधिष्ठित राशि से 3. 6. 10. 11. 7. 1 स्थानों में, सूर्य से 3. 6. 10. 11. 7. 8 में शनि 3. 6. 5. 11 में, बुध से 5. 3. 11. 8. 1. 4. 7. 10 में, गुरु से 1. 4. 7. 10. 12. 11. 8 स्थानों में, शुक्र से 9. 4. 5. 3. 11. 10. 7 में, शुभ होता है। इस तरह चन्द्रमा के कुल 49 शुभ रेखा स्थान हुए।

जीवाद् व्ययायाष्टगः के स्थान धनायाष्टगः पाठ विवरण टीका में मिलता है। तब जीव से रेखा स्थानों में 12 के स्थान पर 2 समझना चाहिए। लेकिन विद्वत्समुदाय द्वादश को ही रेखा स्थान मानता है। विवरण टीका का यह पाठ भी प्रामाणिक है। लघु जातक में आचार्य ने कहा है–

ज्ञात्केन्द्रत्रिसुतायाष्टमगो गुरोर्व्ययभवाष्ट केन्द्रेषु।

मंगलाष्टक वर्ग–

> **वक्रस्तूपचयेष्विनात् सतनयेष्वाद्याधिकेषूदयाच्**
> **चन्द्राद् द्विट्त्रिफलेषु केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः स्वाच्छुभः ।**
> **धर्मायाष्टमकेन्द्रगोऽर्कतनयाज्ज्ञात्षट्त्रिधीलाभगः,**
> **शुक्रात्षड्व्ययलाभमृत्युषु गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु ।।3।।**

मंगल सूर्य की अधिष्ठित राशि से 3. 5. 6. 10. 11 स्थानों में, लग्न से 1. 3. 6. 10. 11 में, चन्द्र से 3. 6. 11 में, मंगल स्वयं स्वाधिष्ठित राशि से 1. 4. 7. 10. 8. 11. 2 में, शनि से 9. 11. 8. 1. 4. 7. 10 में, बुध से 6. 3. 5. 11 में, शुक्र से 6. 12. 11. 8 स्थानों में, गुरु से 10. 12. 11. 6 स्थानों में, शुभ एवं अनुक्त स्थानों में अशुभ होता है। इस प्रकार कुल 39 शुभ रेखा स्थान हैं।

बुधाष्टक वर्ग–

> **द्व्याद्यायाष्टतपः सुखेषु भृगुजात् सत्र्यात्मजेष्विन्दुजः,**
> **साज्ञास्तेषु यमारयोर्व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगो वाक्पतेः ।**
> **धर्मायारिसुतव्ययेषु सवितुः स्यात् साघकर्मत्रिगः,**
> **षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु हिमगोः साद्येषु लग्नाच्छुभः ।।4।।**

बुध, शुक्र के अधिष्ठित स्थान से 1. 2. 11. 8. 9. 4. 3. 5 में, मंगल व शनि से 1. 2. 11. 8. 9. 4. 7. 10 में, गुरु से 12. 6. 11. 8 में, सूर्य से 9. 11. 6. 5. 12 में, अपने अधिष्ठित स्थान से 5. 6. 9. 11. 12. 1. 10. 3 में,चन्द्र से 6. 2. 11. 8. 4. 10 में तथा लग्न से 1. 2. 4. 6. 8. 10. 11 में, कुल 54 स्थानों में शुभ होता है।

गुर्वष्टक वर्ग–

> **दिक्स्वाद्याष्टमदायबन्धुषु कुजात् स्वात् सत्रिकेष्वङ्गिराः,**
> **सूर्यात्सत्रितपस्सु धीस्वनवदिग्लाभारिगो भार्गवात् ।**
> **जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मन्दात त्रिषड्धी व्यये**
> **दिग्धीषट् स्वसुखाय पूर्व नवगो ज्ञात् सस्मरश्चोदयात् ।।5।।**

बृहस्पति मंगल की अधिष्ठित राशि से 10. 2. 1. 8. 7. 11. 4 में, अपनी अधिष्ठित राशि से 10. 2. 1. 8. 7. 11. 4. 3 में, सूर्य से 10. 2. 1. 8. 7. 11. 4. 3. 9 में, शुक्र से 5. 2. 9. 10. 11. 6 में, चन्द्रमा से 7. 11. 2. 9. 5 में, शनि से 3. 6. 5. 12 में, बुद्ध से 10. 5. 6. 2. 4. 11. 1. 9. में, लग्न से 10. 5. 6. 2. 4. 11. 1. 9. 7 में, शुभ होता है। ये कुल 56 शुभ स्थान हैं।

यहाँ कई स्थानों पर वराहमिहिर ने सत्याचार्य के स्थान पर यवनाचार्यो का मत स्वीकार किया है। सत्याचार्य कहते हैं कि बृहस्पति अपनी राशि से उन्हीं स्थानों में शुभ होता है, जिनमें बुध, चन्द्राष्टक वर्ग में शुभ है।

'येषु बुधस्यशशांकस्तेषु गुरुः पुष्कलः स्वकात्स्थानात्।' (सत्याचार्य)

चन्द्राष्टक में 1. 3. 4. 5. 7. 8. 10. 11 में बुध शुभ है। लेकिन वराह ने गुरु को स्वराशि से यहाँ 1. 2. 3. 4. 7. 8. 10. 11 में शुभ कहा है। अतः 2.5 स्थानों में विभिन्नता है। सत्यमत की अपेक्षा वराहमत श्रेष्ठ है। यही सर्वत्र प्रचलित है।

'स्वस्थानतः स्थानसुतार्थमानप्राप्तिं द्वितीये च गुरुः करोति।
विवाददैन्याध्वगदस्त्रिकोणे.......... । (यवनेश्वर)

अतः द्वितीय स्थान में शुभ व पंचम में अशुभ है। यह यवनोक्त मत वराह को अभीष्ट है।

शुक्राष्टकवर्ग–

लग्नादासुतलाभरन्ध्रनवगः सान्त्यः शशांकात् सितः,
स्वात्साज्ञेषु सुखत्रिधीनवदशाच्छिद्राप्तिगः सूर्यजात्।
रन्ध्रायव्ययगो रवेर्नवदशप्राप्त्यत्यष्टधीस्थो गुरोः,
ज्ञाद्धीत्र्यायनवारिगस्त्रिनवषड् पुत्राय सान्त्यः कुजात्।।6।।

शुक्र लग्न से 1. 2. 3. 4. 5. 11. 8. 9 में, चन्द्रमा से 1. 2. 3. 4. 5. 11. 8. 9. 12 में, स्थान अपने से 1. 2. 3. 4. 5. 11. 8. 9. 10 में, शनि से 4. 3. 5. 9. 10. 8. 11 में, सूर्य से 8. 11. 12 में, गुरु से 9. 10. 11. 8. 5 में, बुध से 5. 3. 11. 9. 6 में, मंगल से 3. 9. 6. 5. 11. 12 में शुभ रेखा प्रद तथा अन्यत्र अशुभ है।

शन्यष्टक वर्ग–

मन्दः स्वात् त्रिसुताय शत्रुषु शुभः साज्ञान्त्यगो भूमिजात्,
केन्द्रायाष्टधनेष्विनादुपचयेष्वाद्ये सुखे चोदयात्।
धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु बुधाच्चन्द्रात् त्रिषड्लाभगः,
षष्ठायान्त्यगतः सितात्सुरगुरोः प्राप्त्यन्त्यधीशत्रुगः।। 7।।

शनि अपने अधिष्ठित स्थान से 3. 5. 11. 6 में, मंगल से 10. 12. 3. 5. 11. 6 में, सूर्य से 1. 4. 7. 10. 11. 8. 2 में, लग्न से 3. 6. 10. 11. 1. 4 में, बुध से 9. 11. 6. 10. 12. 8 में, चन्द्र से 3. 6. 11 में, शुक्र से 6. 11. 12 में, गुरु से 11. 12. 5. 6 में शुभ व अन्यत्र अशुभ है।

फलनिरूपण का प्रकार—

> **इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद् विशेषाद्**
> **अधिकफलविपाकं जन्मिनां तत्र दद्युः ।**
> **उपचय गृह मित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं,**
> **त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ।।8।। (मालिनी)**

पिछले श्लोकों में ग्रहों के शुभ स्थान कहे गए हैं। उक्त स्थानों के अतिरिक्त स्थान अशुभ हैं। शुभ या अशुभ चिन्हों को लगाकर जो अधिक हो, उसी का फल ग्रह देता है। अर्थात् शुभ रेखाधिक्य हो तो शुभ तथा बिन्दुओं की अधिकता रहने पर अशुभ फल होगा।

यदि उक्त प्रकार से निर्णीत शुभ स्थान, जातक की जन्म लग्न या जन्म राशि से उपचय (3. 6. 10. 11) में अथवा स्वक्षेत्री, मित्र क्षेत्री, उच्च या मूल त्रिकोणादि में हो तो शुभ फल विशेष पुष्ट होकर तथा अन्यथा (शत्रु, नीच, अस्तंगत या अनुपचयगत) रहने पर अशुभ फल की विशेष पुष्टता रहेगी।

अष्टक वर्ग में शुभ स्थानों व अशुभ स्थानों को राशिवशात् जान कर लिख लेना चाहिए। उत्तरी भारत में शुभफल को रेखा (।) से व अशुभ को बिन्दु या शून्य (0) से द्योतित करते हैं। दक्षिण भारतीय लोग शुभफल को 0 से प्रकट करते हैं। पूर्वोक्त प्रकार से ज्ञात शुभ व अशुभ स्थानों में अधिक रेखाएँ मिली हों तो शुभ फल तथा बिन्दु अधिक हों तो अशुभ फल रहेगा, ऐसा समझें। जो अधिक भाग है, उसी का भोग होगा। उदाहरणार्थ पिछले क्रमिक उदाहरण में सूर्य का अष्टकवर्ग निकाल कर दिखाया जा रहा है।

सूर्याष्टक वर्ग (उदाहरण)

	वृ	धनु	मक.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	कर्क	सिंह	क.	तुला
शनि	।	0	।	0	0	।	।	।	।	।	0	।
बृ.	0	0	0	0	।	।	0	0	।	0	।	0
मं.	।	0	।	।	0	।	0	0	।	।	।	।
सूर्य	।	।	0	।	0	0	।	।	।	।	।	0
शुक्र	0	0	0	0	0	।	।	0	0	0	0	।
बुध	0	0	।	0	।	।	0	0	।	।	।	।

चन्द्र	I	0	0	0	0	I	0	0	0	I	0	0
लग्न	0	0	I	I	0	I	0	0	0	I	I	I
रेखा योग	4	I	4	3	2	7	3	2	5	6	5	5
बि. योग	4	7	4	5	6	I	5	6	3	2	3	3

प्रत्येक ग्रह को उसके आश्रित स्थान से लेकर गणना की गई है। जैसे सूर्य जन्म समय में वृश्चिक में है तो वृश्चिक से 1. 2. 4. 7. 8. 9. 10. 11 स्थानों में शुभ रेखा तथा शेष स्थानों पर अशुभ बिन्दु दिए हैं। इसी तरह चन्द्रमा मिथुन में होने से मिथनु से आगे 3. 6. 10. 11 में बिन्दु लगाए गए हैं। यही सार्वत्रिक विधि है। इसी प्रकार से सब ग्रहों का अष्टक वर्ग साध लेना चाहिए। अब फल विधि जानने के लिए लग्न राशि वृश्चिक में 4 रेखा 4 बिन्दु हैं। दोनों का अन्तर 0 रहने से वह स्थान मध्यम है। जब गोचर में सूर्य वृश्चिक में आएगा तो वह शुभ या अशुभ कुछ भी विशेष न देकर साधारण फल देगा। लेकिन धनु में बिन्दु रेखा का अन्तर 6 बिन्दु हैं अतः धनुगत सूर्य $\frac{6}{8}$ या 75% अशुभ फल देगा। जब वह मेष में जाएगा तो 6 रेखा शेष होने से 75% शुभ रहेगा। इसी विधि से सब ग्रहों का सब राशियों में गोचर देखा जा सकता है। मेष राशि जन्म चन्द्र से उपचय होने से विशेष शुभ फल मिलेगा। यह विशेष है। सूर्य वर्गोत्तमी व मित्र क्षेत्री आदि रहने से अशुभ रहने पर भी विशेष अशुभ फल नहीं देगा। यह विशेष तारतम्य है।

सप्तम अध्याय में आयुर्दाय (दशा), अष्टम में दशाफल कहकर अब इस अध्याय में तात्कालिक ग्रहगोचर व जन्म कालीन ग्रह स्थिति का तुलनात्मक विवेचन परक फल निर्देश किया गया है। यदि दशाफल व अष्टक वर्गफल में परस्पर भिन्नता दिखाई दे तो दोनों ही फल यथावसर गोचर क्रम में कक्ष्यान्तर्गत होने पर प्राप्त हो सकते हैं। पुनश्च विरोध होने पर दशा फल को ही मुख्य मानना चाहिए, ऐसा बहुमत है। मूल पाचक (फलोपभोग कारक) दशापति ही है। केवल गोचर से फल कहना स्थूल प्रकार है।

सब ग्रह अपनी प्रकृति, गुण, धर्म, भाव कारकत्व तथा भावेशत्व के अनुसार इष्ट या अनिष्ट फल देंगे।

इस प्रकार आचार्य ने तीन प्रकार के पाकों (फलपाक) में से दो प्रकार बता दिए हैं। प्रथम दशान्तर्दशा से दृढ़ कर्म मूलक (सर्वदा प्राप्य) अष्टकवर्ग से अदृढ़कर्म मूलक (क्षणिक, तात्कालिक या समयानुसार कादाचित्क रूप से प्राप्य) तथा तीसरा भेद दृढ़ादृढ़ कर्म मूलक योगायोग विचार है। यह आगे दशमाध्याय से बताया जा रहा है।

दशाप्रभेदेन विचिन्तयेद्दृढं दृढेतरं चाष्टकवर्गगोचरैः।

दृढादृढं योगवशेन चिन्तयेदिति त्रिधा जातक सूक्ष्मसंग्रहः।।

श्रीपति ने कहा है कि यवनों ने पाक के बारह प्रकार, मणित्थ व बादरायण ने 8 प्रकार, सिद्ध सेनादि ने 6 तथा विष्णुगुप्तादि ने तीन प्रकार माने हैं। वराह की तीन प्रकार ही अभीष्ट हैं, क्योंकि शेष सब का अन्तर्भाव इन्हीं तीनों में हो जाता है। पाक के बारह भेद इस प्रकार होते हैं–

नैसर्गिक पाक, दशाक्रम, अन्तर्दशा, दशा, राशि फल, भावफल, योगफल, दृष्टिफल, अष्ट वर्ग, होरादि वर्ग, वर्षफल, सत्त्वशरीर धातु आदि।

नैसर्गिकः स्यात्प्रथमोऽत्र भेदः दशाक्रमाख्यस्तु पुनर्द्वितीयः।

अन्तर्दशाख्यः कथितस्तृतीयः प्रोक्तश्चतुर्थोऽपि दशाभिधानः।।

स्याद्राशिसंज्ञः खलु पंचमोऽत्र षष्ठस्तथा भावफलाख्यभेदः।

योगाभिधानः खलु सप्तमोऽपि स्यादष्टमो दृष्टिफलाभिधानः।।

प्रोक्तोऽष्टवर्गो नवमो मुनीन्द्रैः होरादि वर्गो दशमो ग्रहाणाम्।

प्रत्यब्दमासद्युनिशाफलैः स्यादेकादशो मैथुनभोजनाद्यैः।।

स्याद्द्वादशः सत्त्वशरीरधातुः स्वरूपभेदैः कथितोऽत्र तज्ज्ञैः।।

वराहमिहिर ने यहाँ लग्न के अष्टक वर्ग स्थान पृथक् नहीं बताए हैं। इन्हीं स्थानों में से गूढ़चार वृत्ति से लग्न स्थान भी सुगम हो जाते हैं। सूर्याष्टक वर्ग में लग्न 3. 4. 6. 10. 11. 12 में रेखाप्रद है तो लग्नाष्टक में सूर्य इन्हीं स्थानों में रेखा देगा। चन्द्राष्टक में लग्न 3. 6. 10. 11 रेखाप्रद है तो लग्नाष्टक में चन्द्रमा भी इन्हीं स्थानों में व द्वितीयस्थ चन्द्रमा शुभ होने से द्वादश में भी रेखाप्रद होगा। मंगलाष्टक में लग्न 1. 3. 6. 10. 11 में शुभ है तो लग्नाष्टक में मंगल इन्हीं स्थानों में शुभ होगा। इसी विधि से बुधाष्टक में लग्न के शुभ स्थान, लग्नाष्टक में बुध के इत्यादि प्रकार से सब स्थान जाने जा सकते हैं। इसीलिए आचार्य ने उन्हें पृथक् नहीं कहा। अन्य ग्रहों के विषय में परस्पर यह परिपाटी नहीं है। एतदर्थ उनका पृथक् निर्देश किया है।

लग्नाष्टक वर्ग (रेखाप्रद स्थान)

लग्न	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	शुक्र	गुरु	शनि
3	3	3	1	1	1	1	1
6	4	6	3	2	2	2	3
10	6	10	6	4	4	3	4
11	10	11	10	6	5	4	6
	11	12	11	8	6	5	10
	12			10	7	8	11
				11	9	9	
					10		
					11		

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्य प्रणीते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्य टीकायामष्टकवर्गाध्यायो नवमः ।।

[10]

अथ कर्माजीवाध्याय:

धनदाता ग्रह का निर्णय–

अर्थाप्तिः पितृजननी सपत्नमित्र-भ्रातृस्त्रीभृतकजनाद् दिवाकराद्यैः ।
होरेन्द्वोर्दशमगतैर्विकल्पनीया भेन्द्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या ।।1।।

(प्रहर्षिणी)

जन्म लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान में स्थित ग्रह से धनागम प्रकार जानना चाहिए। दशमगत सूर्यादि ग्रह क्रमशः पिता, माता, शत्रु, मित्र, भाई, स्त्री व नौकर (सेवक या कर्मचारियों द्वारा) धनागम होता है।

भ (लग्न) इन्दु (चन्द्र) अर्क (सूर्य) इन तीनों से दशमस्थानेश (आस्पदपति) जिस ग्रह के नवांश में गए हों, उस ग्रह की प्रकृति के अनुसार वृत्ति या जीविका से मनुष्य धन कमाता है।

सर्वप्रथम दशमस्थ ग्रह धनदाता है। यदि वहाँ कोई ग्रह न हो तो सूर्य, चन्द्र व लग्न से दशमेश के नवांशेश को देखना चाहिए। यहाँ धनप्रद ग्रह निर्णय के दो प्रकार कहे गए हैं। मनुष्य को अनेक प्रकार से लाभ हो सकता है। अतः सब ग्रहों के बलाबल से धनागम का निर्णय करना चाहिए। क्योंकि गार्गि ने सब दशमेशों व उनके नवांशेशों को स्वदशा में धनप्रद कहा है–

भवन्ति वित्तदास्तेऽपि स्वदशासु विनिश्चिताः। (गार्गि)

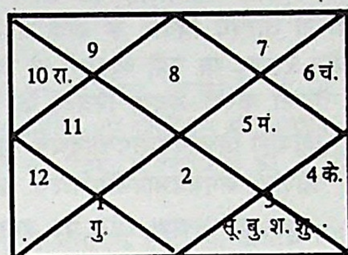
हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न व चन्द्र से दशम स्थान ग्रहरहित है। अतः सूर्य से दशमेश स्वयं सूर्य, लग्न से दशमेश भी सूर्य तथा चन्द्र से दशमेश गुरु क्रमशः वर्गोत्तमी मंगल नवांश एवं गुरु उच्च चन्द्र नवांश में है। तब इस जातक को अग्नि कार्य, साहसिक कार्य, प्रहारकर्म (युद्ध) अथवा अध्ययन-अध्यापन, जप तप मन्त्र, परोपकार, धर्माचरण से जीविका या अर्थागम

होगा। इसमें भी लग्न व सूर्य से मंगल दशमेश प्रधान है। स्वयं उच्चगत है। वर्गोत्तमी है। अतः यह व्यक्ति श्रेष्ठ धातुकर्म (शल्यचिकित्सा, मशीनी इंजीनियरिंग आदि) अग्नि कर्म (फैक्टरी,आयुधशाला आदि) साहस कर्म (युद्ध कला, नेतृत्व, निशाने बाजी, खतरनाक काम) से धन कमाएगा। यह जीविका कारक ग्रह स्वयं पराक्रम स्थान में स्थित है, अतः उक्त फल अधिक प्रामाणिक हो जाता है।

कु. सं० 1,



कु. सं० 2,



कुण्डली सं० 1 में दशमेश बुध मीन नवांश में, चन्द्रदशमेश बुध भी वहीं तथा सूर्य से दशमेश मंगल सूर्य नवांश में है। गुरु नवांश में रहने से पूजा-पाठ, अध्ययन, अध्यापन, मन्त्र-तन्त्रादि से वृत्ति दिखती है। यह एक बड़े विद्वान् प्रोफेसर की कुण्डली है।

कुण्डली संख्या 2 में दशमस्थ मंगल स्वयं साहसी युद्धादि कार्यो से वृत्ति दिखाता है। चन्द्रमा से दशमेश बुध, सूर्य दशमेश गुरु व लग्न दशमेश सूर्य में बुध, शुक्र नवांश में है। सूर्य मंगल नवांश में फलस्वरूप सेना, कृषि, गाय-भैंस पालन तथा कृषि से इनकी जविका रही।

ग्रहों से संकेतित जीविका–

अर्कांशेतृणकनकोर्णभेषजाद्यैश्चन्द्रांशेकृषिजलजाङ्गनाश्रयाच्च।
धात्वग्निप्रहरणसाहसैः कुजांशे सौम्यांशे लिपिगणितादि काव्यशिल्पैः।।2।।

(प्रहर्षिणी)

पूर्व श्लोक के चतुर्थ पाद से सम्बन्ध है। लग्न, चन्द्र व सूर्य से दशमेशों का अधिष्ठित नवांशेश अर्थात् 'भेन्द्वर्कास्पदगांशनाथ' यदि सूर्य हो तो तृण, सुवर्ण, ऊन, दवा आदि से। चन्द्रमा हो तो कृषि, जलज पदार्थ, स्त्री, आदि

के कारण । मंगल हो तो धातु, अग्नि, प्रहार, साहस कार्यों से एवं बुध हो तो लेखन, लिपिकरण, गणित, काव्य, कला-कौशल, शिल्प से मनुष्य जीविका कमाता है ।

तृण अर्थात् घास फूस, जड़ी बूटी, सुगन्धित पदार्थ, होमसाधनोपकरण, घास या छोटी वनस्पतियों से बनने वाले पदार्थ आदि का ग्रहण है । आदि शब्द से सर्वत्र स्वकल्पना, देश, काल व परिस्थिति देखकर समानश्रेणिक कामों से जीविका कहें ।

जलज अर्थात् जल से पैदा होने वाले पदार्थ, मछली, मुक्ता, प्रवालादि, नौका विहार, जलयात्रा, जल तरण अर्थात् जल सम्बन्ध से जीविका समझें । स्त्री से तात्पर्य विवाह के बाद अपनी पत्नी से या किसी स्त्री अफसर के अधीन रहकर या स्त्री व्यापारी से व्यापार करके अथवा, स्त्रियों के अस्पताल में नौकरी करके अथवा स्त्रियों के सम्बन्धित काम करके जीविका समझें ।

जीवांशे द्विजविबुधागमादिधर्मैः शुक्रांशे मणिरजतादिगोमहिष्यैः ।
सौरांशे श्रमवधभारनीचशिल्पैः कर्मेशाध्युषितसमानकर्मसिद्धिः ।। 3 ।।

गुरु का नवांश रहने पर ब्राह्मण, द्विजाति, विद्वत्ता व आगम धर्म से अर्थात् कर्मकाण्ड, अध्यपनाध्यापन, दान ग्रहण, मन्त्र जप तप आदि से, शुक्रांश हो तो मणि, चाँदी, आदि धातु, गाय भैस जैसे दुधारू पशुओं, कृषि कार्य से वृत्ति होती है । शनि का नवांश रहने पर परिश्रम कार्य, भार ढ़ोना, दासवृत्ति, प्रेष्य, चपरासी, कुली, मजदूर, वध, बन्धन आदि वृत्ति, (पुलिस आदि) अथवा निम्न वृत्ति होती है ।

इस प्रकार लग्न, चन्द्र या सूर्य से अधिष्ठित नवांशेश या राशीश के समान कर्म से जीविका होती है ।

भट्टोत्पली में चतुर्थपादान्तर्गत 'समान' शब्द के स्थान पर 'नवांश' शब्द कहा है । हमें 'समान' वाला पाठ अधिक उपयुक्त लगता है । भट्टोत्पल स्वयं कहते हैं– 'अत्र केचित्कर्मेशाध्युषित समान कर्मसिद्धिरिति पठन्ति ।' विवरणकार ने 'समान' शब्द मानकर इससे नवांश व राशि दोनों का ग्रहण किया है–

'कर्मेशाध्युषितान्नवांशकाद् बलाधिक्ये सति कर्मेशाध्युषित राशिनापि कर्माजीवो वक्तव्य इत्युक्तं भवति ।' (विवरण टीका)

इसी पाठ को मानने से आगे के प्रसंग से भी संगति लगती है ।

धनागम का विशेष विचार–

मित्रारिस्वगहगृतैस्ततस्ततोऽर्थास्तुङ्गस्थे बलिनि च भास्करे स्ववीर्यात् ।
आयस्थैरुदयधनाश्रितैश्च सौम्यैः संचिन्त्यं बलसहितैरनेकधा स्वम् ।। 4 ।।

पूर्वोक्त दशमेश अथवा दशमेश का नवांशेश (कर्मेशाध्युषितनवांशेश) यदि मित्रगृह में हो तो मित्रों द्वारा, शत्रु गृह में हो तो शत्रुओं द्वारा तथा स्वगृही हो तो अपने ही बन्धुओं के प्रयत्नों द्वारा पूर्वोक्त कार्यों में लाभ होता है। यदि सूर्य उच्चगत हो या बलवान् हो तो मनुष्य अपने ही परिश्रम से धन कमाता है।

एकादश, द्वितीय, लग्न में स्थित शुभ ग्रहों से या बलवान् ग्रहों से विविध प्रकार से धनागम होता है।

यदि जीविकानाथ ग्रह मित्रक्षेत्री हो तो मित्र, शत्रुक्षेत्री हो तो शत्रु तथा स्वक्षेत्री हो तो अपने परिवार जन व्यक्ति की जीविका में सहायक होते हैं। स्वक्षेत्री ग्रहों से हमने प्रायः व्यक्ति को पैतृक व्यवसाय में भी लगते हुए देखा है।

बलवान् सूर्य हो तो स्व पराक्रम से धनागम होता है, अर्थात् नीचगत या निर्बल सूर्य हो तो व्यक्ति पराश्रित अथवा दूसरों के किए हुए, कमाए हुए पर मौज उड़ाता है। यह बात अन्यथा सिद्ध है।

1.2.11 में जितने बलवान् या शुभ ग्रह हों, सब अपने-अपने स्वभावानुसार निरन्तर विविध प्रकार से धनागम करवाते हैं।

लाभार्थलग्नगैः सौम्यैर्येन येनैवकर्मणा ।
धनार्जन प्रार्थयते नायत्नात्स्वयमश्नुते ।। (गार्गि)

अर्थात 1..2. 11 में शुभ ग्रह हों तो व्यक्ति को मामूली परिश्रम से ही यथेच्छ सफलता मिलती है।

व्यक्ति के कर्माजीव का दर्यालोचन कर, विचार पूर्वक दशागोचर दिये फलयोग बताना चाहिए, यह भी स्पष्ट है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां कर्माजीवाध्यायो दशमः ।।

[11]

अथ राजयोगाध्यायः

पापग्रहों से राजयोग–

प्राहुर्यवनाः स्वतुङ्गगैः क्रूरैः क्रूरमति र्महीपतिः ।
क्रूरैस्तु न जीवशर्मणः पक्षे क्षित्यधिपः प्रजायते ।। 1 ।।

(वैतालीय)

तीन या उससे अधिक ग्रहों के स्वोच्चगत रहने पर यवनाचार्यों ने व्यक्ति को क्रूरबुद्धि वाला राजा होना कहा है । अर्थात् अधिक शुभ ग्रह स्वोच्च में हों तो सद्बुद्धि वाला तथा मिश्रित ग्रहों से मिश्रित बुद्धि वाला राजा होता है । लेकिन जीवशर्मा के मत से क्रूर ग्रहों के उच्च रहने पर भी व्यक्ति राजा न होकर राजसदृश, धनी, राज प्रतिरूप होता है ।

राजकुलोत्पन्न व्यक्ति तीन उच्चगत ग्रहों से भी राजा हो जाता है तथा पाँच ग्रहों से अन्य कुलोद्भव भी राजा होगा, ऐसा आचार्य ने अपने लघुजातक में कहा है । बहुवचन 'क्रूरैः' शब्द से तीन या अधिक ग्रहों का ग्रहण है । मणित्थ के कथनानुसार शुभ ग्रह से सुबुद्धि राजा होता है–

पापैः पापमतिः स्यात् स्वोच्चगतैर्धर्मवांस्तथासौम्यैः ।
व्यामिश्रैर्मिश्रमतिः पृथ्वीशो जायते मनुजः । (मणित्थ)

जीव शर्मा का प्रमाण वाक्य इस प्रकार है–

पापैरुच्चगतैर्जाता न भवन्ति नराधिपाः ।
किन्तु वित्ताधिकास्ते स्युः क्रोधनाः कलहप्रियाः ।।

लेकिन यवनों ने क्रूरात्मा व धर्मात्मा प्रकार से द्विविध राजा मानकर तीन उच्चगत रहने से राजकुलोत्पन्न को तथा त्र्यधिक उच्च रहने पर साधारण कुलोत्पन्न को राजा कहा है।

बत्तीस राजयोग विचार–

वक्रार्कजार्कगुरुभिःसकलैस्त्रिभिश्च,
स्वोच्चेषु षोडश नृपाः कथितैक लग्ने ।
द्व्येकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने
स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः ।। 2 ।।

(वसन्ततिलका)

मंगल, शनि, सूर्य व बृहस्पति ये चारों या तीन अपने उच्च में हों तथा इनमें से एक उच्चस्थ ग्रह लग्न में हो तो 16 राजयोग बनते हैं। उक्त चारों ग्रहों में से दो या एक ग्रह उंच्च गत हो, उनमें से एक ग्रह लग्न में हो तथा चन्द्रमा कर्क राशि में हो तो 16 अन्य राजयोग बनते हैं। इस प्रकार 32 राजयोग इस श्लोक में कहे गए हैं।

यवनाचार्यो ने ये राजयोग भेद बताए हैं। समासशैली का सुन्दर प्रयोग करके आचार्य ने यहाँ प्रौढ़िमा के साथ बहुवाक्य समाप्य विषय को भी श्लोक मात्र से कह दिया है। समस्त भेदों को संक्षेप में समझते हैं। मकर में मंगल, तुला में शनि, मेष में सूर्य व कर्क में बृहस्पति हो तथा 1 4. 7. 10 लग्नों में से किसी एक में जन्म हो तो कुल चार राज योग हुए। ग्रहस्थिति यथावत् राशि में रहकर केवल उदय. लग्न के भेद से 4 योग बने हैं। अब तीन ग्रह उच्च में हों तो मंगल शनि सूर्य अथवा मंगल सूर्य गुरु, या मंगल शनि गुरु या सूर्य गुरु शनि अपने उच्च में हों तथा एक ग्रह इनमें से लग्न में हो तो लग्नभेद से 1. 7. 10 या 10. 1. 4 या 10. 7. 4 या 1 4. 7 लग्नों में 12 भेद बनकर कुल 16 राजयोग बने। उक्त ग्रहों के अतिरिक्त शेष ग्रह कहीं भी रह सकते हैं।

	लग्न	स्वोच्चस्थ
1	मेष	मंगल शनि सूर्य गुरु
2	कर्क	मंगल शनि सूर्य गुरु
3	तुला	मंगल शनि सूर्य गुरु
4	मकर	मंगल शनि सूर्य गुरु
5	मेष	सूर्य गुरु शनि
6	कर्क	सूर्य गुरु शनि
7	तुला	सूर्य गुरु शनि
8	मेष	सूर्य गुरु शनि
9	तुला	सूर्य शनि मंगल
10	मकर	सूर्य शनि मंगल
11	कर्क	गुरु शनि मंगल
12	तुला	गुरु शनि मंगल
13	मकर	गुरु शनि मंगल
14	मेष	सूर्य गुरु मंगल
15	कर्क	सूर्य गुरु मंगल
16	मकर	सूर्य गुरु मंगल

इसी तरह 2 ग्रह उच्च में हों तथा उनमें से एक ग्रह लग्न में हो, चन्द्रमा स्वक्षेत्र (क़र्क) में गया हो तो कुल 12 राजयोग और बनते हैं। इनका प्रस्तार देखिए। कर्क में चन्द्रमा रहने पर ये योग बनेंगे अन्यथा नहीं। इसी प्रक़ार लग्न में उच्चगत ग्रह न हो तब भी ये योग नहीं बनेंगे। लग्न में उच्चस्थ ग्रह तथा साथ में कर्क में चन्द्रमा रहना इनकी मूलभूत शर्त है।

1- मेष लग्नस्थ सूर्य व कर्क में गुरु चन्द्र।

2. कर्क लग्न में चन्द्र गुरु व मेष में सूर्य।

3. मेष लग्न में सूर्य, तुला में शनि, कर्क में चन्द्र।

4. तुला लग्न में शनि, कर्क में चन्द्र, मेष में सूर्य।

5. मेष लग्न में सूर्य, कर्क में चन्द्र, मकर में मंगल ।
6. मकर लग्न में मंगल, कर्क में चन्द्र एवं मेष में सूर्य ।
7. कर्क लग्न में गुरु चन्द्र व तुला में शनि ।
8. तुला लग्न में शनि व कर्क में गुरु चन्द्र ।
9. कर्क लग्न में गुरु चन्द्र । व मकर में मंगल ।
10. मकर लग्न में मंगल व कर्क में गुरु चन्द्र ।
11. तुला लग्न में शनि, कर्क में चन्द्र व मकर में मंगल ।
12. मकर लग्न में मंगल, कर्क में चन्द्र व तुला में शनि ।

इसी तरह एक ग्रह उच्चस्थ होकर लग्न में हो तथा कर्क में चन्द्र हो तो कुल 4 योग बनेंगे । मेष लग्न में सूर्य, कर्क लग्न में गुरु चन्द्र, मकर लग्न में मंगल व तुला लग्न में शनि हो तथा सर्वत्र चन्द्रमा कर्क में अनिवार्य रूप से रहे तो ये 4 योग + द्विग्रहकत 12 योग + त्रिग्रहकत 12 योग + चतुर्ग्रह कृत 4 योग मिलकर कुल 32 राजयोग भेद बनते हैं ।

चवालीस अन्य राजयोग–

वर्गोत्तमगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्र वर्जितैः ।
चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः ।।3।।

(अनुष्टुप्)

वर्गोत्तम लग्न या वर्गोत्तम चन्द्रमा पर चन्द्रमा को छोड़कर अन्य 4 या 5 ग्रहों या 6 ग्रहों की दृष्टि हो तो 22-22 राजयोग बनते हैं । अर्थात् लग्न से 22 व चन्द्रमा से 22 कुल 44 योग होते हैं ।

कम से कम चार ग्रहों की दृष्टि वर्गोत्तम गत लग्न पर या वर्गोत्तमी चन्द्र पर हो यह मौलिक बात है । इससे कम दृष्टि कारक हों तो योग नहीं बनता, यह ध्यान रखें । वर्गोत्तम लग्न को चन्द्रमा देखे तो वह योगविधायक या योग नाशक नहीं है । अर्थात् चन्द्रमा को दृष्टि कारक ग्रहों में नहीं गिनना है, चाहे वह लग्न को देखता भी हो । साथ ही उसके देखने से योग का नाश नहीं होगा ।

'तत्र लग्ने चन्द्रेण दृश्यमानेन योगभंगः, किन्तु पश्यतां मध्ये स न गण्यते । स तु पश्यतु वा न वा । अन्यैश्चतुरादिभिर्ग्रहैर्दृष्टे योगा भवन्ति ।'

(विवरण टीका)

हमारे विचार से यहाँ संख्या प्रदर्शन करना परम्परा गत गड्डलिका प्रवाह (भेड़ चाल) ही है । चार ग्रह देखें, पाँच या छह ग्रह देखें इस प्रकार चार ग्रहों की दृष्टि से 15 भेद, पाँच ग्रहों की दृष्टि से 6 भेद तथा 6 ग्रहों

की दृष्टि से 1 भेद बनकर कुल 22 लग्न से तथा अन्य 22 चन्द्र से बनते हैं।

वास्तव में ये दो योग ही हैं। लग्न में वर्गोत्तम नवांश हो तथा उसे 4 या 5 या 6 ग्रह चन्द्रातिरिक्त देखें, यह एक योग तथा चन्द्रमा वर्गोत्तमी हो तो उसे 4. 5. 6 ग्रह देखें तो यह दूसरा योग है। संख्या प्रदर्शन का आग्रह यहाँ भेड़ चाल ही है। यदि संख्या दिखानी ही अभीष्ट हो तो एक लग्न में 22 योग तो 12 लग्नों में 22 × 12 = 264 योग लग्न से होते हैं। उनकी अवहेलना क्यों होगी ? क्योंकि राशि भेद से भेद मानकर पहले भी भेद संख्या बतायी है, तब यहाँ यह नवीन विधि कयों ? वास्तव में यवनाचार्यों ने 22 योग कह दिए तथा वे यथावत् प्रसिद्ध हो गए हैं। पुनश्च समन्वय करने के लिए कहा जा सकता है कि 'वर्गोत्तम मात्र' कहकर आचार्य ने राशि से बनने वाले भेदों का ग्रहण नहीं किया है। अतः वर्गोत्तम सामान्य से ये 22 भेद बनते हैं। माण्डव्य का उद्धरण देकर भट्टोत्पल ने स्पष्टतया संख्या प्रदर्शन की निरर्थकता दिखा दी है। सारावली में भी इसे लग्न या चन्द्र से विकल्पानुसार एक ही योग माना है। इस योग में साधारण कुलोत्पन्न भी राजा होता है। अतः 'नृपाः द्वाविंशतिःस्मृताः' कहना विशेष उपयुक्त न होकर यवनों का अन्धानुकरण ही है।

पाँच अन्य राजयोग—

> **यमे कुम्भेऽर्केऽजे शशिनिगवि तैरेव तनुगै—**
> **नृयुक् सिंहालिस्थैः शशिजगुरु वक्रैर्नृपतयः।**
> **यमेन्दू तुङ्गेऽङ्गे सवितृशशिजौ षष्ठभवने।**
> **तुलाजेन्दुक्षेत्रैः ससितकुजजीवैश्च नरपौ।। 4।।**

(शिखरिणी)

मेष, वृष या कुम्भ लग्न में जन्म हो तथा सूर्य चन्द्र उच्चगत, शनि कुम्भ में, बुध मिथुन में, गुरु सिंह में व मंगल वृश्चिक में हो तो तीन लग्नों के भेद से तीन राजयोग होते हैं। अर्थात् उक्त छह ग्रहों की यथोक्त स्थिति रहने पर राजयोग होते हैं।

शनि व चन्द्रमा क्रमशः तुला व वृष में हों, तुला व वृष लग्न में ही जन्म हो, सूर्य व बुध कन्या में स्थित हों, तुला में शुक्र, मेष में मंगल व कर्क में गुरु हो, इतनी सब बातें एक साथ मिलें तो तुला लग्न में एक व वृष में द्वितीय ये दो राजयोग तथा पूर्वोक्त तीनों के साथ मिलकर कुल पाँच योग हैं।

प्रथमार्ध में प्रोक्त योगों में सूर्य को परमोच्चगत नहीं समझना चाहिए। यदि परमोच्च में सूर्य हो तो बुध मिथुन में रह नहीं सकता। अतः परमोच्चभ्रष्ट किन्तु मेषराशि में ही सूर्य लगभग अन्तिम अंश के प्रायः हो तो उक्त स्थिति सम्भव हो सकेगी। स्पष्ट है कि 15 मई (वृष प्रवेश) के आस पास जन्म होने से ये योग बन सकेंगे।

कुछ व्याख्याकारों ने इसी विसंगति से बचने के लिए तथा सूर्य को परमोच्च में मानने का विशेष आग्रह रखकर इन्हें छह योग मान लिया है। सूर्य चन्द्र उच्च में व शनि कुम्भ में रहने पर 1. 2. 11 लग्न भेद से तथा मिथुन में बुध, सिंह में गुरु तथा वृश्चिक में मंगल रहने पर क्रमशः 3. 5. 8 लग्न में जन्म रहने से तीन अन्य योग माने हैं। यह विभाग युक्तियुक्त नहीं है। आचार्य को परमोच्च में ही सूर्य की स्थिति अभीष्ट नहीं है। अपितु मेष में कहीं भी यथा सम्भव रहे, तब भी योग होता है।

द्वितीयार्ध 'षष्ठयवने का अर्थ षष्टराशि अर्थात् कला का ग्रहण है। षष्ठ भाव का ग्रहण कथयपि नहीं है। जब तब तुला में शुक्र की स्थिति स्पष्ट कही गई है तब सूर्य व बुध 'सवितृशशिजौ' कन्या में उपपन्न हो सकते हैं। यदि लग्न से षष्ठ राशि मानेंगे तो योग में व्याघात उपस्थित होगा। क्योंकि लग्न भेद से षष्ठ राशि बदलती रहेगी। इसीलिए भट्टोत्पल ने कहा है–

अत्र षष्ठभवने षष्ठराशौ लग्नात्केचिदिच्छन्ति। एतदयुक्तम्।।

सवितृशशिजौ षष्ठभवने कन्यायां च यदि भवतः। इति (विवरण टीका)

अन्य तीन राज योग–

कुजे तुङ्गेऽर्केन्द्वोर्धनुषि यमलग्ने च कुपतिः,
पतिर्भूमेश्चान्यः क्षिति सुतविलग्ने सशशिनि।
सचन्द्रे सौरेऽस्ते सुरपतिगुरौ चापधरगे
स्वतुङ्गस्थे भानावुदयमुपयाते क्षितिपतिः।। 5।।

मंगल मकर में, सूर्य चन्द्र धनु में, मकरस्थ शनि लग्न में हो तो यह एक राजयोग है। अथवा लग्न में स्वक्षेत्री शनि तथा मंगल उच्च में, सूर्य चन्द्र धनु में हो, यह वैकल्पिक अर्थ है।

मकर लग्न में मंगल व चन्द्रमा स्थित हो एवं धनु राशि में सूर्य हो। तब द्वितीय राजयोग है।

यदि शनि व चन्द्रमा सप्तम में, मेष राशि लग्न में व धनु में गुरु हो तो तृतीय राजयोग बनता है। इस तरह कुल 3 राजयोग यहाँ कहे हैं।

श्लोकस्थ 'यमलग्ने' शब्द का अर्थ शनि की राशि लग्न में हो या केवल मकर लग्न हो, ये दोनों ही अर्थ माने जाते हैं।

बादरायण के मत से मकर व कुम्भ लग्न का ग्रहण हो जाता है।

'लग्ने सौरस्तुङ्गे भौमश्चन्द्रादित्यौ चापं प्राप्तौ । इति

लेकिन माण्डव्य के नाम से उद्धृत श्लोक में स्पष्टतया मंगल व शनि को एकत्र मकर लग्न में ही माना गया है–

आदित्यश्च निशाकरश्च भवतो बाणासनार्धे यदा
सार्धं भास्करिणा स्ववीर्यसहितः प्राप्तोमृगं मंगलः ।

हमारे विचार से मकर लग्न वाला अर्थ ही मुख्य है। पुनश्च तुला लग्न का ग्रहण उच्चगत लग्नस्थ ग्रह से बनने वाले पूर्वोक्त योगों से हो जाता है। मेष लग्न में स्वयं श्रेष्ठ राजयोग बनता है। हम समझते हैं कि शत्रु गृह 8. 4. 5 राशियों को छोड़कर, इनमें भी विशेषतया 5.8 को छोड़कर लग्नस्थ बलवान् शनि तथा उक्त स्थिति में सूर्य चन्द्रादि के रहने पर राज योग कारक ही होगा। बलाबल के तारतम्य से उसमें न्यूनाधिक्य निश्चित किया जा सकता है। अतः आचार्य ने श्रृंगग्राहिका द्वारा लग्न गत बलवान् शनि से बनने वाले तारतमिक राजयोगों का भी निर्देश कर दिया है। कहा गया है–

चापार्धे भगवान् सहस्रकिरणस्तत्रैव ताराधिपो
लग्ने भानुसुतोऽथ वीर्यसहितः स्वोच्चे च भूनन्दनः ।

ध्यान देने की बात है कि माण्डव्य के वचन में भी धनु राशि के अर्ध की बात कही गई है और यहाँ भी चापार्ध कहा है। अतः धनु के पूर्वार्ध में सूर्य चन्द्रमा का होना भी यहाँ मुख्य है।

दो अन्य राजयोग–

वृषे सेन्दौ लग्ने सवितृ गुरुतीक्ष्णांशुतनयैः
सुहृज्जायाखस्थैर्भवति नियमान्मानवपतिः ।
मृगे मन्दे लग्ने सहजरिपुधर्मव्ययगतैः
शशांकाद्यैर्जातः पृथुगुणयशाः पुङ्लपतिः ।।6।।

वृष लग्न में चन्द्रमा, सिंह में सूर्य, वृश्चिक में गुरु, कुम्भ में शनि हो तो इस योग में निश्चय से राजा होता है। मकर लग्न में शनि हो तथा 3. 6. 9. 12 भावों में क्रमशः चन्द्रमा मीन में, मिथुन में मंगल, कन्या में बुध, धनु में बृहस्पति हो तो भी मनुष्य बहुत गुणवान् व यशस्वी राजा (पुङ्गलाः मनुष्यास्तेषांपतिर्मानवपतिः) होता है।

पहले सर्वत्र कुपतिः, क्षितिपतिः, नृपतिः नरपः इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया था। यहाँ मानवपतिः तथा पुंगलपतिः शब्द के प्रयोग से कुछ कम

प्रभावी राजयोग कहे हैं, ऐसा लगता है, अर्थात् इन योगों में व्यक्ति मानव समुदाय, वर्ग, समाज का पति अर्थात् आधुनिक सन्दर्भ में नेता होता है, ऐसा आशय है। कदाचित् इसी तारतम्य को बताने के लिए आचार्य ने यहाँ पदपरिवर्तन कर दिया है। 'नियमान्मानवपतिः' अर्थात् बहुत बली उक्त योगकर्ता हों तो राजा अन्यथा मानवपति तो होगा ही। यह नियमात् (निः सन्दिग्ध) घटित होता है।

तीन अन्य राजयोग–

हये सेन्दौ जीवे मृगमुखगते भूमितनये,
स्वतुङ्गस्थौ लग्ने भृगुजशशिजावत्र नृपती।
सुतस्थौ वक्रार्की गुरुशशिसिताश्चापि हिबुके,
बुधे कन्यां लग्ने भवति हि नृपोऽन्योऽपि गुणवान्।। 7।।

धनु में गुरु चन्द्र, मकर में मंगल, मीन में लग्नगत शुक्र यह एक योग है। कन्या में लग्नगत बुध तथा धनु में गुरुचन्द्र, मकर में मंगल यह दूसरा योग है। शुक्र व बुध की एक साथ उच्चस्थिति असम्भव होने से आचार्य ने क्रमशः शुक्रकृत व बुधकृत दो भेदों की संख्या 'नृपती' शब्द में द्विवचन से कह दी है।

अपि च कन्या लग्न में बुध, मकर में मंगल व शनि एकत्र हों तथा चन्द्र, शुक्र, गुरु तीनों धनुराशि में स्थित हों तो यह तीसरा राजयोग है।

तीन अन्य राजयोग–

झषे सेन्दौ लग्ने घटमृगमृगेन्द्रेषु सहितैः,
यमारार्कैर्योऽभूत् स खलु मनुजः शास्ति वसुधाम्।
अजे भूजे मूर्तौ शशिगृहगते चामरगुरौ,
सुरेड्ये वा लग्ने धरणिपतिरन्योऽपि गुणवान्।। 8।।

(शिखरिणी)

मीन लग्न में चन्द्रमा, कुम्भ में शनि, मकर में मंगल, सिंह में सूर्य हो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति भूमि पर शासन करता है।

मेष में मंगल लग्न में स्थित हो, कर्क में बृहस्पति हो यह दूसरा योग है, अथवा लग्न में कर्कस्थ गुरु व दशम में मेषस्थ मंगल हो, यह तीसरा योग है, इन योगों में भी मनुष्य पृथ्वीपति व गुणी होता है।

एक अन्य राजयोग–

कर्किणि लग्ने तत्स्थे जीवे चन्द्रसितज्ञैरायं प्राप्तैः ।
मेषगतेऽर्के जातं विद्याद् विक्रमयुक्तं पृथ्वीनाथम् ।। 9 ।।

(विद्युन्माला)

कर्क लग्न में बृहस्पति तथा एकादश भाव में वृष में चन्द्र, बुध व शुक्र हों तथा मेष राशि में सूर्य हो तो मनुष्य पराक्रमी, पृथ्वीपालक राजा होता है

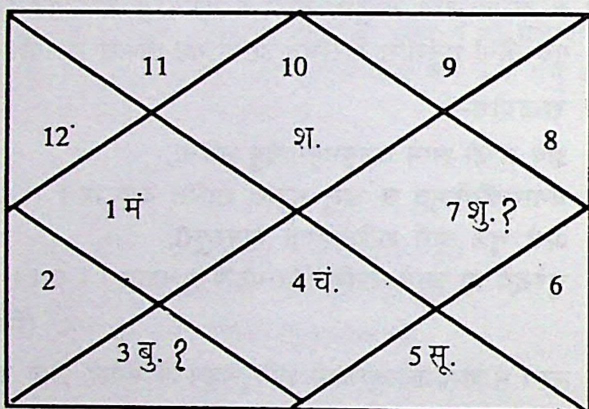
एक अन्य राजयोग–

मृगमुखेऽर्कतनये तनुसंस्थे, क्रियकुलीरहरयोधिपयुक्ताः ।
मिथुनतौलिसहितौ बुधशुक्रौ यदि ततः पृथुयशाः पृथिवीशः ।। 10 ।।

(स्वागता)

मकर लग्न में शनि, मेष में मंगल, कर्क में चन्द्रमा, सिंह में सूर्य हो तथा मिथुन में बुध शुक्र या तुला में बुध शुक्र भी हों तो मनुष्य प्रभूत यशस्वी पृथ्वी-पति अर्थात् राजा होता है ।

इस योग की कुण्डली प्रस्तुत है । उससे मूल बात को सुगमता से समझा जा सकता है–



भट्टोत्पल ने अपनी टीका में लिखा है कि **'बुधशुक्रौ ज्ञसितौ यथासंख्यं मिथुनतौलि सहितौ'** तथा ऐसा कहकर इस श्लोक में एक योग माना है । हमारा विचार है कि मिथुन व तुला में एक साथ बुध व शुक्र को माना जाए तो वे परस्पर 5. 9 राशियों में स्थित होते हैं । बुध शुक्र की परस्पर नवम पंचम स्थिति सम्भव नहीं है । पुनश्च तब दोनों ही ग्रह सूर्य से भी समान दूरी पर उसके आजू बाजू रहेंगे ।

जबकि बुध सूर्य से अधिकतम 28^0 आगे पीछे तथा शुक्र 47^0 अंश आगे पीछे रह सकता है। अतः उक्त योग असम्भव है। भट्टोत्पल व उन की टीका का अन्धानुकरण करने वाले लोगों ने भी इसे यथावत् एक ही योग कह दिया है। पीछे हम सूर्य से तृतीय राशि में भी बुध की स्थिति को दुर्लभ दिखा चुके हैं। अतः इस योग में वैकल्पिक व्यवस्था है। मिथुन में या तुला में बुध शुक्र एक साथ (सहितौ) हों तब इस श्लोकांश का अर्थ ऐसे कहना होगा–– **मिथुनस्थौ वा तौलिस्थौ बुधशुक्रौ, इति यावत्। सम्भाव्यं यथेष्टं मिथुने तुलायां वा उभयोरवस्थितिरेकत्रानुसन्धेया।**

मेष में मंगल, कर्क में चन्द्रमा, मकर लग्न में शनि, तथा तुला में बुध शुक्र या मिथुन में बुध शुक्र रहने पर द्विशाखा वाला एक राजयोग बनता है। 'बुधशुक्रौ' एक समास में रखकर भी उनके एकत्र अवस्थान को ही संकेतित किया गया है। 'षष्ठस्थः शुभकृत्कविः' के अवान्तर सिद्धान्त का मूल भी यहाँ स्पष्ट है।

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेषूरणाश्रिते।
सजीवेस्ते निशानाथे राजा मन्दारयोः सुते।।11।।

(अनु.)

कन्या लग्न में परमोच्च (15 अंश) पर बुध, मिथुन में दशमस्थ शुक्र मीन में सप्तमस्थ चन्द्रमा व बृहस्पति एकत्र हों एवं मंगल शनि पंचम में मकर राशि में हों तो मनुष्य राजा होता है। यह एक योग है।

वंशानुक्रम से राज्य व्यवस्था–

अपि खलकुल जाता मानवा राज्यभाजः,
किमुत ! नृपकुलोत्थाः प्रोक्तभूपालयोगैः।
नृपतिकुलसमुत्थाः पार्थिवा वक्ष्यमाणै–
र्भवति हि नृपतुल्यस्तेष्वभूपालपुत्रः।। 12।।

पूर्वोक्त (यहाँ तक कहे गए) राजयोगों में साधारण कुल में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति भी राज्य प्राप्त कर लेता है। तब राजकुल में पैदा होने वाले व्यक्ति को तो इन योगों में विशेष राजयोग कहना न्याय्य ही है। लेकिन अब यहाँ से आगे जो राजयोग बताए जा रहे हैं, उनमें उत्पन्न होने वाला राजपुत्र तो राजा हो जाता है, परन्तु अन्य कुलोत्पन्न व्यक्ति राजा के समान (धनी, विख्यात, मान्य) ही होता है।

अन्य राजयोग–

स्वोच्चत्रिकोणगैर्बलसंस्थै स्त्र्याद्यैर्भूपति वंशजा नरेन्द्राः ।
पंचादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपाः स्युः ।। 13 ।।

(औपच्छन्दसिक)

पूर्वोक्त स्थानदिक्काल चेष्टादि बलों से युक्त होकर यदि तीन या चार ग्रह अपने परमोच्च, उच्चराशि या मूलत्रिकोण में हों तो भूमिपवंशज अर्थात् राजकुलोत्पन्न व्यक्ति राजा होता है । यदि पाँच या छह ग्रह एक साथ उच्च या मूल त्रिकोणी हों तो साधारण वंश में उत्पन्न व्यक्ति भी राजा हो जाते हैं । यदि इनसे कम अर्थात् दो या एक ग्रह उच्च या मूल त्रिकोण में हों तो कोई भी राजा नहीं होता है, अपितु स्व कुलानुमान से धनी होते हैं ।

आशय यह है कि बलवान् न होकर भी (हीनैर्बलहीनैरिति) उच्चादिगत ग्रह चाहे पाँच भी क्यों न हों, व्यक्ति राजा न होकर केवल धनी होता है । इसी तरह एक-दो ग्रहों के स्वोच्चत्रिकोण में रहने से राजकुल के जातक तथा तीन ग्रहों के उच्चत्रिकोण में रहने पर साधारण कुल का व्यक्ति भी धनी होता है । यदि कुल मिलाकर उच्च व मूल त्रिकोणी ग्रह अर्थात् कुछ ग्रह उच्चगत व कुछ त्रिकोणी हों तथा उक्त संख्या की शर्त पूरी करें तो भी राजा या धनी होता है, यह समझना चाहिए । श्लोक का प्रथम चरण भट्टोत्पल ने **'उच्चस्वत्रिकोणगृहगैर्बलस्थैः'** तथा रुद्रभट्ट ने **'उच्चत्रिकोणगैर्बलसंस्थै'** कहा है । रुद्रभट्ट के पाठ में छन्दो भंग हैं तथा स्वशब्द का योग 'उच्च' पद के साथ अधिक उपयुक्त समझकर हमने पाठ निर्धारण किया है ।

लेखास्थेऽर्केऽजेन्दौ लग्ने भौमे स्वोच्चे कुम्भे मन्दे ।
चापे प्राप्ते जीवे राज्ञः पुत्रं विद्याद् भूमेर्नाथम् ।।14 ।।

(विद्युन्माला)

मेष राशि में चन्द्रमा लग्न में हो तथा सूर्योदय काल में जन्म हो, मंगल मकर में, शनि कुम्भ में, गुरु धनु में हो तो राजपुत्र राजा होता है तथा साधारण कुलोत्पन्न व्यक्ति धनी अर्थात् अधिक भूमि का पति होता है ।

लेखा शब्द से उदय लेखा अर्थात् रलयोरभेदत्वेन उदयरेखा उदयक्षितिज का तात्पर्य है । अतः सूर्योदय के समय जन्म हो अथवा 'सूर्य केन्द्र क्षितिज पर लगा हुआ हो अर्थात् सूर्य बिम्बार्धोदय काल अथवा शून्य घड़ी इष्ट काल हो, ऐसा समझें । हमारे विचार से 59. 50 से लेकर 00. 10

पल तक इष्ट रहे तब भी यह योग होगा। सूर्य की ऊपरी कोर के क्षितिज स्पर्श से लेकर अन्तिम कोर के क्षितिज त्याग करने में प्रायः 8-10 मिनट लगते हैं। अतः उस समय में सूर्य का बिम्ब किसी न किसी प्रकार से उदय लेखा पर ही रहता है। कहा गया है कि 'उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः।' इति। प्रचलित संस्करणों में 'विन्द्यात्' पाठ मिलता है। वह अशुद्ध है। विद्ज्ञाने धातु से लिङ् लकार में 'विद्यात्' रूप ही होता है। पुनश्च 'लेखा' शब्द के पाठान्तर 'लेय' से सिंह राशि लेकर भी कुछ लोगों ने अर्थ किया है। भट्टोत्पल ने इसे भी वैकल्पिक अर्थ मान लिया है। क्योंकि सिंह में सूर्य, मेष लग्नेस्थ चन्द्रमा, दशमस्थ मंगल, एकादशस्थ शनि से भी राजयोग बनता ही है। तब भी छन्दोभंग न होकर शुद्ध पाठ 'लेयस्थेऽर्कऽजेन्दौ लग्ने' इस तरह माना जाएगा। सारावली में सिंह लग्न में भी उक्त ग्रहस्थिति में राजयोग कहा है–

सिंहोदये दिनकरो मृगलांछनोऽजे कुम्भस्थितो रविसुतः स्वगृहे सुरेज्यः।
स्वोच्चेऽपि भूमितनयः पृथिवीश्वरस्य जन्मप्रदः सकललोकनमस्कृतस्य।।

(सारावली)

होरासार में केवल सिंह लग्न में सूर्य (शुक्र नवांश रहित) तथा कन्या (परमोच्च) में बुध रहने मात्र से ही राजयोग कहा है।

स्वर्क्षे शुक्रे पातालस्थे धर्मस्थानं प्राप्ते चन्द्रे।
दुश्चिक्यांगप्राप्तिप्राप्तैः शेषैर्जातः स्वामी भूमेः।।15।।

(विद्युन्माला)

यदि वृष या तुला में चतुर्थस्थ शुक्र हो, नवम में (मीन या तुला) चन्द्रमा हो तथा शेष ग्रह 3. 1. 11 में स्थित हों तो मनुष्य भूमिपति (राजा या जमींदार) होता है। अर्थात् राजकुलोत्पन्न राजा तथा अन्यवंशोद्भव धनी, सम्पत्तिमान् होता है।

सौम्ये वीर्ययुते तनुसंस्थे, वीर्याढ्ये च शुभे शुभयाते।
धर्मार्थोपचयेष्वथ शेषैर्धर्मात्मा नृपजः पृथिवीशः।। 16।।

(नवमालिका)

लग्नस्थ बुध दिक्कालचेष्टादि बली हो, नवम में भी बलवान् एक शुभ ग्रह हो तथा शेष ग्रह 2. 9. 3. 6. 10. 11 में स्थित हों तो व्यक्ति धर्मात्मा तथा राजकुलोत्पन्न होने पर राजा अन्यथा समृद्ध होता है।

वृषोदये मूर्तिधनारि लाभगैः शशांकजीवार्किसितैर्नृपोऽपरः ।
सुखे गुरौ खे शशितिग्मदीधिती यमोदये लाभगतैर्नृपोऽपरैः ।। 17 ।।

(वंशस्थ)

वृष लग्न में चन्द्रमा, द्वितीय में गुरु, षष्ठ में शनि, एकादश में शुक्र हो, यह एक राजयोग है ।

चतुर्थ में बृहस्पति, दशम में सूर्य व चन्द्रमा, शनि लग्न में व शेषग्रह एकादश में हों तो भी राजयोग होता है ।

श्लोक के द्वितीय चरण का पाठान्तर **'जीवार्कसुतापरैर्नृपः'** भी है । तब 1. 2. 6. 11 में क्रमशः चन्द्र, गुरु, शनि तथा शेष समस्तग्रह (सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र) लाभ में स्थित होने पर राजयोग माना जाएगा । दोनों ही पाठ प्रामाणिक हैं । एकादश में शुक्र मानने पर सूर्य बुध भी 10. 11. 12 में ही प्रायः रहेंगे । दशमस्थ सूर्य मंगल या एकादशस्थ सूर्य मंगल रहने पर या बुध 10. 11. 12 में यथेष्ट रहे तब भी राजयोग होगा ही ।

दो अन्य राजयोग–

मेषूरणायतनुगाः शशिमन्दजीवाः,
ज्ञारौ धने सितरवी हिबुके नरेन्द्रः ।
वक्रासितौ शशि सुरेड्य सितार्कसौम्याः,
होरासुखास्त शुभखाप्ति गताः प्रजेशः ।। 18 ।।

(वसन्ततिलका)

यदि 10. 11. 1 भावों में क्रमशः चन्द्रमा, शनि व गुरु स्थित हों, बुध मंगल द्वितीय में, शुक्र व सूर्य चतुर्थ में हों तो मनुष्य राजा होता है । मंगल व शनि लग्न में, चतुर्थ में चन्द्रमा, सप्तम में गुरु, नवम में शुक्र दशम में सूर्य व एकादश में बुध हों तो भी यह राजयोग होता है ।

राज्य लाभ का समय निर्धारण–

कर्मलग्नगतपाकदशायां राज्यलब्धिरथवा प्रबलस्य ।
शत्रुनीचगृहयातदशायां छिद्रसंश्रयदशा परिकल्प्या ।। 19 ।।

(स्वागता)

जन्म समय में दशमस्थ या लग्नस्थ ग्रह की अन्तर्दशा (कारक ग्रह की दशा) में राज्य लाभ बताना चाहिए । अथवा 1. 10 में कोई ग्रह न हो तो सर्वबली ग्रह की अन्तर्दशा में राज्य प्राप्ति अर्थात् राजयोगों का फल

बताना चाहिए । अथवा लग्नेश या दशमेश की अन्तर्दशा में फललाभ कहना चाहिए ।

यदि ग्रह शत्रुक्षेत्री या नीचगत हो (विशेषतया 1. 10 भावगत ग्रह) तो उसकी अन्तर्दशा में राज्यनाश होता है । अथवा बलवान् राजादि सहयोगी के द्वारा जैसे तैसे राज्य बचा रह सकता है ।

राजयोग कब फलीभूत होंगे, इस विषय में नियम बताया जा रहा है । पहले बताए गए आयुर्दाय (दशा) या विंशोत्तरी आदि से देखना है । दशमस्थ या लग्नस्थ जो ग्रह पूर्वोक्त प्रकार से राजयोग कारक सिद्ध होता है उसकी अन्तर्दशा जब-जब शुभ ग्रह या कारक ग्रह की दशा में आएगी, तब राज्य-लाभ होगा ।

यदि 1. 10 में उभयत्र ग्रह हों तो उनमें से बलवान् ग्रह की दशा में फल होगा । यदि 1. 10 में ग्रह न हों तो किसी भी भाव में स्थित लेकिन बलवान् ग्रह की अन्तर्दशा में अथवा लग्नेश कर्मेश की अन्तर्दशा या दशा में राज्य-लाभ होगा ।

सामान्यतः शत्रुक्षेत्री व विशेषतया नीचगत तथा परम नीच गत ग्रह राज्य हारी व दारिद्र्यकारी होता है, यह सामान्य नियम है ।

'तुलायां दशमे भागे स्थिते कमलबोधने ।
अपि राजकुले जातो भिक्षान्नेनोपजीवति ।'

यदि कोई ग्रह शत्रु नीचगत हो तो उसमें छिद्रसंश्रय की कल्पना करनी चाहिए । छिद्र शब्द का तात्पर्य शत्रुओं द्वारा प्रहार योग्य मर्म स्थान अथवा गुप्त, राज की बात, रहस्य है । **(छिद्रं छिद्रप्रहारिभिः शत्रुभिः अन्विष्यमाणमनर्थमूलं वस्तु वा रहस्यभूतं किमपि अवस्थान्तरम्)**

अतः शत्रुनीचगत ग्रह की दशान्तर्दशा में छिद्र का संश्रय अर्थात् प्राप्ति होती है अर्थात् राज्य नाश होता है ।

अथवा छिद्रदशा, आपत्तिदायिनी दशा तथा संश्रय दशा संशय, आश्रय, पराश्रय दूसरे बलवान् राजा की सहायता लेने की अवस्था । अतः शत्रु क्षेत्र नीचगत ग्रह की दशान्तर्दशा में अनर्थ की पूर्वाशंका पर अथवा संकट उपस्थित होने पर संश्रय अर्थात् दूसरे का आश्रय, सहायतादि यथा समय (परिकल्पना) सोच समझकर ग्रह के अत्यन्त हीन होने पर सर्वथा नाश तथा किसी प्रकार शुभ दृष्ट या साधारण बली होने पर दूसरों की सहायता से राज्य, पद, प्रतिष्ठा, या स्थिति की रक्षा करने का उद्योग करना चाहिए ।

इसी विधि से व्यापार, व्यवसाय, नौकरी, जीविकादि प्रश्न विचार में भी संगति बिठाकर फल कहना चाहिए ।

भोगी व तस्करपति होने का योग–

गुरुबुधसितलग्ने सप्तमस्थेऽर्कपुत्रे,
वियति दिवसनाथे भोगिनां जन्म विद्यात् ।
शुभबलयुतकेन्द्रैः क्रूरभस्थैश्च पापै-
र्व्रजति शबरदस्युस्वामितामर्थभाक् च ।।20।।

लग्न में गुरु या बुध, शुक्र तथा सप्तम में शनि हो, दशम में सूर्य हो तो इस योग में उत्पन्न व्यक्ति भोग भोगने वाला, समृद्ध, धनी, विलासी होता है। अर्थात् इस योग में राजतुल्य व्यक्ति का जन्म होता है।

यदि केन्द्र में शुभ राशिगत शुभ ग्रह तथा क्रूर राशियों में क्रूर ग्रह हों तो मनुष्य भीलों, वनचरों, बर्बर जातियों, डाकुओं या तस्करादि का स्वामी तथा धनी होता है।

गुरु बुध व शुक्र एक साथ लग्न में रहें तो सूर्य दशमस्थ कैसे होगा? भट्टोत्पल कहते हैं कि आचार्य ने पूर्वशास्त्र के अनुसार यह योग कहा है, जैसा कि आगे नाभस योगों में वज्रादि योगों के प्रसंग में कहेंगे। उन्होंने गार्गि का उद्धरण देकर इसे पुष्ट भी किया है।

जीवज्ञभार्गवे लग्ने सप्तमस्थेऽर्कनन्दने ।
दशमस्थे रवौ जातो भोगवान् पुरुषो भवेत् ।। (गार्गि)

यहाँ स्पष्ट ही गुरु या बुध या शुक्र या यथासम्भव एकाधिक शुभ ग्रह के लग्न में रहने पर भोग योग कहा है। अतः भट्टोत्पल के मत में गुरु या बुध या शुक्र लग्न में रहने पर उक्त योग बनेगा।

कुछ लोग कहते हैं कि 'गुरुबुधसितलग्ने' का अर्थ है कि बृहस्पति (9. 12) शुक्र (2. 7) या बुध (3. 6) की राशि लग्न में हो तथा सप्तमस्थ शनि, दशमस्थ सूर्य हो तो यह योग होता है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि **'गुरुबुधसितलग्ने'** में प्रथम कथन की सामर्थ्य से बृहस्पति की लग्न स्थिति मुख्य तथा बुध शुक्र की गौण है। उनके अनुसार **'गुरुबुधसितलग्ने सप्तमस्थेऽर्क पुत्रे'** यह एक प्रकार तथा **गुरुलग्ने वियति दिवसनाथे सप्तमस्थेऽर्कपुत्रे यह दूसरा प्रकार है**। प्रत्येक अवस्था में तीन ग्रहों को अवश्य दिग्बल प्राप्त होता है। यह निष्कर्ष है कि लग्न में बृहस्पति, बुध शुक्र हों, सप्तम में शनि हो तथा सूर्यादि शेष ग्रह यथेच्छ हों तो भोगी का जन्म होता है। अपि च लग्न में गुरु हो, दशम में सूर्य हो तथा सप्तम में शनि हो तो भी भोगिजन्म होता है। अतः आचार्य ने दिग्बल पर बल दिया है। यदि शुभाशुभ मिश्रित तीन ग्रह दिग्बली हों तो भोगवान् पुरुष

होता है। यदि अधिक दिग्बली हुए या दिग्बली के साथ अन्य प्रकार से भी बली हुए तो क्या कहना ? तब तो **अधिकस्याधिकं फलं** होगा।

यदि तीन से कम ग्रह भी दिग्बली हों या तीन ग्रह दिग्बल रहित अन्यथा बली हों अथवा सब ग्रह बली हों तो भी बलानुमान व कुलानुमान से व्यक्ति भोगी होता है।

'गुरौ बुधे सिते च लग्नस्थे सति मन्दे सप्तमस्थे च भोगिनां.....राजतुल्यानामित्यर्थः। अत्र गुरुबुधयोः शनेश्च त्रयाणां दिग्बल–सम्भवात् कीर्तिमन्तः सुखिनो जायन्त इत्यर्थः। तथा गुरुलग्ने सप्तमस्थे मन्दे, वियति दिवसनाथे च भोगिनाम्। अत्र बुधसितयोर्लग्नगतत्वं न विवक्षित–मसम्भवत्वात्। अतो दिग्बल युक्ता गुरुशनिसूर्या योगफलप्रदा इति द्रष्टव्यम्।

(विवरण टीका)

हमें विवरणकार वाला अर्थ अच्छा प्रतीत होता है। कुल मिलाकर आशय है कि लग्न में एक दो शुभ ग्रह हों तथा कम से कम तीन ग्रह दिग्बली या स्थानादि बली हों तो धनी सुखी व यशस्वी जातक होता है।

इसी तरह केन्द्र में शुभ ग्रह किसी भी राशि में हों तथा क्रूर ग्रह राशियों (1. 8. 5. 10. 11) में हों तो व्यक्ति मुखिया, अध्यक्ष, बॉस आदि होता है। शुभाशुभ अन्य प्रवृत्ति व स्वभाव द्योतक ग्रहों का विचार कर अधिकारित्व या दुष्टजनाधिपत्व का विवेक करना चाहिए।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां राजयोगाध्याय एकादशः।।

[12]

अथ नाभसयोगाध्यायः

नाभसयोगों की संख्या–

नवदिग्वसवस्त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता द्वित्रिचतुर्विकल्पजाः स्युः ।
यवनैस्त्रिगुणाहिषट्छती सा कथिता विस्तरतोऽत्र तत्समासः ।। 11 ।।

(औपच्छन्दसिक)

9. 10. 8 संख्या को क्रमशः 3 (त्रिक) 3 (अग्नि) 4 (वेदैः) से गुणा करने पर क्रमशः 27. 30. 32 संख्या मिली । क्रमशः दो तीन, चार विकल्पों से उत्पन्न ये भेद हुए । 20 आकृति योग + 7 संख्या योग इन दो के विकल्प से 27 भेद हुए । इनमें आश्रय योग संख्या तीन और जोड़ने पर 27+3 = 30 तथा दलयोगों को जोड़ने से 30+2 = 32 संख्यक नाभस योग होते हैं ।

नभः अर्थात् आकाश में स्थित ग्रहों की स्थिति विशेष से बनने वाले योगों को 'नाभस योग' कहा है । नाभस अर्थात् आकाश संस्थान से उत्पन्न योग । प्राचीन यवनाचार्यों ने इन योगों के कुल 1800 भेद कहे थे, जबकि वराह ने उन सब 1800 भेदों को 32 में ही समेट दिया है । वैसे स्फुजिध्वज (प्राचीन यवनाचार्य) ने आकृति योगों को अनन्त कहा है । आकृति अर्थात् आकार, आकाशीय ग्रहस्थिति को देखकर विभिन्न सांसारिक पदार्थों का आकार अनुमान होना, यह आशय है । ग्रहस्थिति से नाव जैसी आकृति दिखे तो नौ योग, छत्तरी की आकृति बनती दिखे तो छत्रयोग । तब स्फुजिध्वज का कहना है कि सांसारिक दृश्य मान वस्तुओं की संख्या अपरिमेय है । अतः आकृति योग भी अगण्य या अनन्त ही हो सकते हैं ।

संस्थानसादृश्यमनन्तकं स्याद् द्रव्याणि नाना प्रकृतीनि दृष्ट्वा ।

(स्फुजिध्वज)

पुनश्च आकृति योग, प्राचीन मत से 23 + संख्या योग 7 = 30 योग बने। यदि 23 में 7 का सम्मिश्रण क्रमशः माना जाए तो 127 भेद बनते हैं। भास्कराचार्य ने विकल्प संख्या को जानने का प्रकार पाटीगणित से बताया है। भेद कारक योग 7 हैं। अतः सात संख्या तक क्रम व्युत्क्रम से लिखकर भिन्न बनाई तथा पिछली संख्या से आगे गुणा करते गए तो–

$$\frac{7}{1} \quad \frac{6}{2} \quad \frac{5}{3} \quad \frac{4}{4} \quad \frac{3}{5} \quad \frac{2}{6} \quad \frac{1}{7}$$

$$7 \quad \frac{42}{2} \quad \frac{105}{3} \quad \frac{140}{4} \quad \frac{105}{5} \quad \frac{42}{6} \quad \frac{7}{7}$$

	या	या	या	या	या	या
	21	35	35	21	7	1

क्रमश21 + 35 + 35 + 21 + 7 + 1 = 127 विकल्प बनेंगे। इनमें 23 मूल आकृति योग जोड़े तो 127 + 23 = 150 योगभेद बनें। जब 1 राशि में 150 योग भेद तो 12 राशियों में 150 × 12 = 1800 भेद बनेंगे। प्राचीन यवनों ने मूल योगों को आकृति व संख्या नाम से ही कहा है। इस तरह मौलिक योग 32 ही हैं। इन्हीं 32 योगों का परस्पर संसृष्टि संकर होने से ही 1800 या अगणनीय भेद बन सकते हैं। वराहाचार्य ने **तत् तेषां यवनोक्तानामष्टादशशतसंख्यकानां नाभसयोगानां समासः संक्षेपः** ही कहा है। 23 आकृति योगों में से सत्याचार्य ने रज्जु, मुसल व नल को आश्रय योग तथा माला व सर्प को पराशर ने 'दल योग' ये पृथक् नाम दिए हैं। इसी बात को आगे बताया जा रहा है। योगों के नाम इस प्रकार हैं–

नौ, कूट, छत्र, चाप, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, वज्र, यव, कमल, वापी, गदा, शकट, विहग, हल, श्रृंगाटक,समुद्र, चक्र, अर्धचन्द्र, रज्जु, मुसल, नल, माला व सर्प।

संख्या योग गोल, युग, शूल, केदार, पाश, दामिनी व वीणा ये 7 हैं। वराहोक्त गदा योग को प्राचीन यवनों ने चार भागों में बाँटा हैः 1. 4 में सब ग्रह हों तो गदा, 4. 7 में हो तो शंख, 7. 10 में बभ्रु तथा 10. 1 में ध्वज भेद कहा था। जबकि वराह ने निकटवर्ती 2 केन्द्रों में सब ग्रहों के रहने से केवल 'गदा' योग ही कहा है। इसीलिए यवन मत में आकृति योग 23 तथा वराह मत में 20 रह जाते हैं।

आश्रय व दल योग–

रज्जुर्मुशलं नलं चराद्यैः सत्यश्चाश्रयजान् जगाद योगान्।
केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यौ स्रक्सर्पौ कथितौ पराशरेण।। 2।।

(औपच्छन्दसिक)

सभी ग्रह चर राशियों में हों तो रज्जु, स्थिर राशियों में सभी ग्रह हों तो मुशल योग तथा द्विस्वभाव राशियों में सभी ग्रह हों तो नल योग-- इन तीनों योगों को सत्याचार्य ने आश्रय योग कहा है।

तीन केन्द्रों में केवल शुभ ग्रह हों तो स्रक्‌योग या माला योग तथा इन तीन केन्द्रों में अशुभ ग्रह हों तो सर्प योग इन दो योगों को पराशर ने दिल योग नाम दिया है।

वास्तव में ये पाँचों वक्ष्यमाण लक्षणों से नाभस योगों में ही समाहित हो जाते हैं; किन्तु ये अवश्य अपना फल देते हैं, इसीलिए इनका अलग लक्षण कहा है।

पूर्वोक्त 1800 विकल्प बनाने में इन पाँचों का विचार नहीं होता। प्राचीन आचार्यो में से कुछ ने इन्हें कहा तथा कुछ आचार्यो ने नहीं कहा था। तथापि वराह ने यहाँ अपने होरा शास्त्र में इन्हें प्रधानता से संग्रहीत किया है।

रज्जु, मुसल व नल योगों में क्रमशः चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशियों में से किसी 1 या 2 या तीनों में समी ग्रह रहने पर उक्त योग माने जाएंगे। जैसे एक चर राशि में हो या 2-3, समी चर राशियों में सारे ग्रह हों, प्रत्येक परिस्थिति में रज्जु योग माना जाएगा।

सर्वे चरेषु यदा स्थिता योगमाह तं रज्जुम्।
अनयप्रियस्य सततं विदेशवासार्थयुक्तस्य।।
सर्वे स्थिरेषु राशिषु यदा मुशलमाह तं योगम्।
जन्मनिकर्मकराणां युक्तानामर्थमानाभ्याम्।।
द्विशरीरेषु नल इति योगो हीनातिरिक्त देहानाम्।
निपुणानां पुरुषाणां धनसंचयभोगिनां भवति।।

दल योग में चन्द्रमा रहे या न रहे कोई भेद नहीं है। अतः मंगल शनि व सूर्य ये तीन ग्रह पाप तथा बुध, गुरु, शुक्र ये तीन शुभ हैं। तीन केन्द्रों में ग्रह होना आवश्यक है। किन्हीं तीन में शुभ ग्रह (बुध गुरु शुक्र) हों तथा चारों केन्द्रों में कोई भी पाप न हों तो माला योग है। इसी तरह किन्हीं तीन केन्द्रों में मंगल शनि सूर्य हों तथा शुभ ग्रह कहीं भी केन्द्र में न हो तो 'सर्प योग' होता है।

केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम्।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यै योगाविभौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ।।

(बादरायण)

लेकिन ये तीन केन्द्र लगातार हों तथा उन तीनों में ग्रह हों तमी योग होगा। जैसे 1. 4. 7 या 4. 7. 10 या 7. 10. 1 या 10. 1. 4 में अवश्य उक्त ग्रह हों तब योग होगा। क्योंकि माला का एक चौथाई के लगमग हिस्सा गर्दन के पीछे रहने से केवल तीन चौथाई हिस्सा ही दृश्य होता है, ऐसा समझकर तीन केन्द्रों का ग्रहण किया है।

आश्रय व दल की व्यवस्था–

योगा व्रजन्त्याश्रयजाः समत्वं यवाब्ज वज्राण्डजगोलकाद्यैः।
केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलौ दलाख्यावित्याहुरन्ये न पृथक्फलौ तु।। 3।।

(उपजाति)

कुछ आचार्यों के मत से आश्रय व दल योग नहीं होते अथवा होते हुए भी आगे कहे जाने वाले विभिन्न आकृति योगों या संख्या योगों में ही सिमट जाने से अलग फल देने वाले नहीं होते हैं।

आश्रय योग रज्जु, मुसल व नल हैं। इनका लक्षण क्रमशः चर, स्थिर द्विस्वभाव में ही समस्त ग्रहों के रहने पर बनता है। अतः आश्रय योग या दल योग, यव, कमल, वज्र, पक्षी, गोल आदि योगों के समान ही हो जाते हैं, अतः अन्य लोगों ने इनकी पृथक् गणना नहीं की है।

इसी प्रकार केन्द्र में शुभ व पाप ग्रह रहने से जो माला व सर्प योग कहे हैं, उनका भी ग्रहण इस सामान्य नियम से ही हो जाता है कि केन्द्रों में पाप ग्रह अशुभ व शुभ ग्रह शुभ फलप्रद होते हैं। तब इनके अलग कथन की आवश्यकता न समझकर अन्य आचार्यों ने इन्हें नहीं माना। लेकिन वराहमिहिर इन्हें अलग फल देने वाला मानते हैं, इसी कारण आचार्य ने इनका कथन किया है, यह ध्यातव्य है।

विषय को और स्पष्ट किया जा रहा है। गदा योग, शकट या विहग या अन्य योगों का लक्षण, आश्रयादि योगों के लक्षण से मिलता है। जैसे 10. 4 भावों में समस्त ग्रहों के रहने से 'विहग योग' आगे बताया जा रहा है। यहाँ इसी स्थिति में दो राशियों में समस्त ग्रह रहने से एक ही समय में 'युग' नामक संख्या योग भी है। यदि चर लग्न हो तो 4. 10 में चर, स्थित लग्न हो तो 4. 10 में स्थिर एवं द्विस्वभाव लग्न होने पर 4. 10 में द्विस्वभाव राशियों के रहने से समस्त ग्रहों की स्थिति चर या स्थिर या द्विस्वभाव में रहने से एक ही समय में आश्रय योग भी उपस्थित हो जाएगा। अन्य आचार्यों ने दल योगों के विषय में भी यही कहा है। जब वराह मिहिर स्वयं कहते हैं–

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभा प्रशस्तास्तेष्वेव पापा न शुभप्रदाः स्युः ।

तब तीन केन्द्रों में सब शुभ ग्रह रहने पर शुभ फल वाला माला योग तथा समस्त पापों के रहने पर बनने वाला 'सर्प योग' स्वयं ही गतार्थ या निरर्थक हो जाता है। यह पूर्व पक्ष है।

वराहमिहिर ने उक्त योगों को अलग मानकर एक विशेष बात ध्वनित कर दी है। केन्द्र त्रिकोणादि में रहने से शुभाशुभ ग्रह अपना फल कब देंगे? स्पष्ट है कि अपनी दशान्तर्दशा में देंगे। लेकिन नाभस योग निश्चित रूप से सब दशाओं में फल देते हैं। अतः इन योगों को नाभस योगों में सम्मिलित कर आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि ये योग दशान्तर्दशा, गोचर, वेधादि के मोहताज न होकर सब दशाओं में सदैव फलद हैं।

नियतफलदाश्चिन्त्याह्येतेसमस्तदशास्वपि ।

(वराह)

इन नाभस योगों में से किसी न किसी योग की निर्मिति सब कुण्डलियों में सदैव रहती है। आकृति योग सदैव अपना फल देते हैं। आश्रय योग अकेले रहें, साथ में कोई अन्य आकृति योग न बने तो अपना फल देंगे, यदि आश्रय योगों के साथ कोई आकृति योग भी बन जाए तो आश्रय का फल न होकर आकृति का फल होगा। संख्या योग भी जब अकेले रहें तभी अपना फल देंगे।

अन्यथा आकृति योगों का ही फल मिलेगा। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आकृति योगों का अन्य योगों से बाध नहीं होता है जबकि आश्रय व संख्यादि का अन्य योगों से बाध हो जाता है। इसी को आगे श्लोक 12 में आचार्य ने कहा है।

गदा, शकट, विहग, श्रृंगाटक व हल योग–

आसन्नकेन्द्रभवनद्वयगैर्गदाख्य
स्तन्वस्तगैस्तु शकटं विहगः खबन्ध्वोः ।
श्रृंगाटकं नवमपंचमलग्नसंस्थैः
र्लग्नान्यगैर्हलमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।। 4 ।।

(वसन्ततिलका)

निकटवर्ती दो केन्द्रों, जैसे 1. 4 या 4. 7 या 7. 10 या 10. 1 में समस्त ग्रहों के रहने से 'गदा' योग होता है।

1. 7 में समस्त ग्रह रहने पर 'शकट योग' तथा 4. 10 में समस्त ग्रह रहने पर 'पक्षी या विहग योग' होता है।

सभी ग्रह 1.5.9 में हो तो 'श्रृगाटक' योग होता है। तथा (1.5.9) को छोड़कर किसी अन्य भाव में परस्पर त्रिकोणों में (2.6.10 या 3.7.11 या 4.8.12) समस्त ग्रहों के रहने से हल योग बनता है। ऐसा होराचार्यो ने कहा है। ये पाँच आकृति योग कहे हैं।

कुण्डली में इन योगों के बनने पर प्रायः कहे गए नाम के अनुसार आकृति का आभास होता है। जैसे 1.5.9 में समस्त ग्रहों के रहने से (V) यह आकृति बनेगी जो कि सींगों के जोड़े की प्रतीक है। इसी प्रकार 1-7 में समस्त ग्रह रहने से शकट अर्थात् गाड़ी या छोटे रथ का आकार दिखेगा। 2.6.10 आदि में ग्रहों के रहने से–– हल की आकृति स्पष्ट रहती है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। इससे यह बात भी स्पष्ट है कि योगों के लक्षण में से थोड़ी भी बात यदि कम रह जाए तो योग नहीं बनेगा। उदारहणार्थ 1.5 में ग्रह रहें तो सींग की आकृति न बनने से योग भी नहीं होगा।

वज्र–यव–कमल–वापी योग–

शकटाण्डजवच्छुभाशुभैर्वज्रं तद्विपरीतगैर्यवः।
कमलं तु विमिश्रसंस्थितैर्वापी तद् यदि केन्द्रबाह्यतः।।5।।

(वैतालीय)

यदि शकट की तरह 1.7 में सभी शुभ ग्रह हों तो तथा अण्डजवत् अर्थात् 4.10 में पाप ग्रह हों तो 'वज्र योग' होता है।

इसके विपरीत अर्थात् 1.7 में अशुभ व 4.10 में शुभ ग्रह हों तो 'यव योग' होता है।

यदि चारों केन्द्रों में मिले जुले होकर सभी ग्रह हों तो 'कमल योग' तथा केन्द्रों के बाहर लेकिन परस्पर केन्द्र में अर्थात् सभी पणफरों या सभी आपोक्लिमों में सभी ग्रह मिश्रित हों तो 'वापीयोग' होता है।

इन्द्र के वज्र की यह विशेषता है कि वह अग्र (नोक) व मूल अर्थात् हत्थे दोनों स्थानों पर समान मारक क्षमता रखता है। वज्र योग में सभी शुभ ग्रह 1.9 में रहने से पूर्व व पश्चिम सब शुभों के रहने से व्यक्ति को जीवन के पूर्व भाग व अन्त भाग में अच्छे फल मिलते हैं।

इसके विपरीत यव योग अर्थात् जौ की आकृति बनने से 4.10 में समस्त शुभ ग्रह रहने से मध्य केन्द्र में रहने के फलस्वरूप मध्यावस्था में शुभ व पुष्ट फल मिलते हैं। वैसे भी जौ का बीच वाला भाग मोटा व नोक पतली रहती है।

वज्रादि योगों में विसंगति–

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः ।
चतुर्थभवने सूर्याज्ज्ञसितौ भवतः कथम् ? ।। 6 ।।

(अनु.)

मुझ (वराह) से पूर्ववर्ती मय, यवन, मणित्थादि आचार्यों ने ये वज्रादि योग कहे हैं, उनके कथनानुसार ही मैंने यहाँ भी लक्षण कह दिया है। लेकिन सूर्य से चौथे भाव में बुध शुक्र की स्थिति असम्भव रहने से 1. 7 में शुभ तथा 4. 10 में अशुभ व इसी प्रकार अन्यत्र 7 में बुध शुक्र तब 4 या 10 में सूर्य (पाप) नहीं हो सकता । इस कारण ये वज्रादि (वज्र, यवादि) योग असम्भव ही हैं । इनका उदाहरण वास्तविक जीवन में मिल ही नहीं सकता है । यह सामान्य अर्थ कहा गया है । अब इसका विशेष विचार करते हैं ।

पापग्रह मंगल, शनि, सूर्य व पाप युत बुध, क्षीण चन्द्र ये हैं– 'क्षीणेन्द्वर्क महीसुतार्कतनयाः पापाः बुधस्तैर्युतः । शेष ग्रह पुष्ट चन्द्र, शुभ युत या अकेला बुध, गुरु, शुक्र शुभ हैं । बुध व शुक्र दोनों ग्रह प्रायः सूर्य से सदैव दो राशियों के भीतर ही अधिकतम रहते हैं, यह सिद्धान्त गणित की बात है । तब बुध शुक्र सूर्य से चतुर्थ भवन में आगे या पीछे नहीं रह सकते । तब सब पाप ग्रह 4. 10 में व सब शुभ ग्रह 1. 7 में हों तब वज्र योग होता है, यह कथन असम्भव होने के कारण ठीक नहीं है । यह पूर्व पक्ष है ।

यदि यह कथन विसंगत है तो फिर वराहमिहिर ने इसे क्यों ग्रहण करके लिख दिया है । यदि पूर्वाचार्यों ने किसी प्रकार असंगत बात कह भी दी थी तब वराह जैसे युग प्रवर्तक आचार्य को तो गवेषणा करके, सदसत् का निर्णय करने के उपरान्त ही कोई बात कहनी चाहिए थी । यह शंका है ।

इसके समाधानार्थ वराह ने कहा है कि पूर्व शास्त्रों को देखकर मैंने ये योग कह दिए हैं, तथापि इनमें विसंगति मुझे भी दिखती है ।

वराहमिहिर ज्योतिष को आगम शास्त्र अर्थात् सुविचारित निरन्तर सनातन विचार परम्परा व चिन्तन पद्धति का परिणाम मानते हैं । ज्योतिष प्रवर्तक मन्त्रद्रष्टा, दैवी शक्ति युक्त महा मानव थे । उन्होंने खूब विश्लेषण करके ज्योतिष शास्त्र के नियमों को स्थिर किया है । अतः मुझ जैसे आधुनिक को ज्योतिष में शंका होने पर भी एक दम उसका खण्डन नहीं करना चाहिए अपितु बहुमत द्वारा समर्थित मत को मानना चाहिए ।

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् ।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ।।

वराहमिहिर ने परम्परागत तथा मुनि प्रोक्त मतों का सर्वत्र आदर किया है। जैसे कि बृहत्संहिता में अयन प्रवृति के विषय में कहा है कि इस समय अयन कर्क व मकर प्रवेश में बदलता है, लेकिन पूर्व शास्त्र में कहा गया है कि आश्लेषार्ध व धनिष्ठादि में अयन बदलता है, तो ऐसा सचमुच ही होता होगा, जोकि समय परिवर्तन से ग्रह गति, कक्ष्या, चक्रादि में परिवर्तन हो जाने से अब अतीत की बात हो गई है। निष्कर्षतः सूर्य से चौथे घर में शुक्र व बुध रह सकते होंगे तथा आजकल कुछ परिवर्तन हो जाने से यह बात असम्भव लगती है। जिस प्रकार अयन चलन हो सकता है, उसी प्रकार ग्रहों की परिधि भी अन्तरित हो सकती है, यह कोई अनहोनी बात नहीं है। स्वयं श्लोकान्त में 'कथम्' शब्द का सप्रयोजन प्रयोग किया है। इसका अर्थ कटपयादि से 71 आता है। 71 दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। **'मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेक सप्ततिः।'** इस वचन से वराह मिहिर मानो स्वयं कल्पना कर रहे हैं कि अति प्राचीन काल (पिछले मन्वन्तर) में सूर्य से चौथे भाव में बुध शुक्र रह सकते थे। **'कथम्' अन्तेऽस्यनिर्देशादत्र कटपयादिन्यायेन 71 इति मन्वन्तर प्रमाणं सूचयित्वा कदाचित्पूर्वस्मिन्मन्वन्तरे बुधशुक्रयोस्तथा स्थितिः भवितुमर्हति –इति सूचितम्। न च पूर्वाचार्यममसत्यमपितु कालायत्तत्वाद् ग्रहगतिपरिधि प्रभृति विषयक परिवर्तनसद्भावदर्शन हेतुकमधुना न प्रतीतिविषयमिति किमत्रचित्रम्। अतएव पूर्वाचार्य मत निरासोऽत्र न कृत आचार्यणापितु तन्मतप्रदर्शनपुरस्सरमात्मीयोहापि प्रदर्शिता। इति पूर्वाचायार्न्प्रति विशिष्टा निजविनतिश्चापि दर्शिता।** इस प्रकार हमें समझना चाहिए।

वर्तमान में क्या गति हो ? इस विषय में निवेदन है कि सम्भव की ही कल्पना करनी चाहिए। इस विषय में ये विकल्प हो सकते हैं

(i) यदि शुभ ग्रह, बुध, गुरु, शुक्र का एक राशि में स्थित समझकर उससे चतुर्थ में पाप ग्रह (मंगल, शनि) को मान लें तो सूर्य शुभ ग्रहों के साथ या यथासम्भव आस पास रहेगा। यह प्रथम विकल्प है। अर्थात् पाप ग्रहों के वर्ग में सूर्य को न रखा जाए।

(ii) जिस प्रकार अनफा सुनफादि योगों में 'हित्वार्क' कहकर सूर्य के रहने या न रहने से योग का सद्भाव या अभाव नहीं मात्र था, उसी प्रकार इस प्रसंग में सूर्य को यथासम्भव पापग्रहों के वर्ग में न रखें।

(iii) जिस प्रकार दल योगों में पूर्वाचार्यो ने चन्द्रमा को शुभ वर्ग में नहीं माना था, यह दृष्टान्त है।

(iv) बलभद्रमिश्र ने कहा है कि 12 अंगुल पलभादेशों अर्थात् 60^0 अक्षांश देशों में ऐसा सम्भव है लेकिन हम इसे विशेष आदरणीय मत नहीं मानते।

(v) पं० सीताराम झा जी ने जो वैकल्पिक व्यवस्था मानकर समाधान का प्रयास किया है, वह केवल हठात् वराह का दोष प्रदर्शन करने के लिए ही है।

(vi) बुध शुक्र का सूर्य से परमान्तर इतना नहीं रह सकता, क्योंकि दोनों ही सूर्य के आस-पास रहते हैं। इसी कारण सूर्य सिद्धान्त में सूर्य, बुध व शुक्र के भगण समान बताए गए हैं। लेकिन यह स्थिति भू केन्द्रिक है। हमारे प्राचीन विद्वान् इस बात को भी जानते थे कि बुध शुक्र सूर्य से कितना आगे या पीछे रह सकते हैं इसका ज्ञान बुध शुक्र शीघ्र या शीघ्रोच्चों के बिना नहीं हो सकता है। शीघ्रोच्च भगण (सूर्य परिक्रमा काल) को पृथक् बतलाना ही हमारे पुराने ऋषियों के विशिष्ट ज्ञान को प्रकट करता है, तब वे ऐसे सूक्ष्मदर्शी होकर यह साधारण भूल नहीं करते। कभी न कभी यह स्थिति सम्भव थी, ऐसा समझकर तथा मत प्रदशनार्थ इसे प्रस्तुत किया है। यह हमारे ऋषियों या आचार्य वराह का प्रमाद नहीं है।

यूप–शर–शक्ति–दण्ड योग–

कण्टकादिप्रवृत्तैस्तु चतुर्गृहगतैर्ग्रहैः।
यूपेषु शक्तिदण्डाख्या होराद्यैः कण्टकैः क्रमात्।।7।।

लग्न से चतुर्थ तक चारों भवनों में सब ग्रह हों तो यूपयोग, चतुर्थ से सप्तम तक (4. 5. 6. 7) में होने से 'इषु' या शरयोग, 7. 8. 9. 10 में सब ग्रह रहने पर शक्ति योग तथा 10. 11. 12. 1 में सब ग्रह हों तो दण्डयोग होता है। लगातार चारों गृहों में ग्रह रहने आवश्यक हैं, अन्यथा योग भंग हो जाएगा।

नौ–कूट–छत्र–चाप व अर्धचन्द्रयोग–

नौकूटच्छत्रचापानि तद्वत् सप्तर्क्षसंस्थितैः।
अर्धचन्द्रस्तु नावाद्यैः प्रोक्तादन्यर्क्षसंस्थितैः।।8।।

इसी प्रकार लगातार सात राशियों में सब ग्रह लग्न से सप्तम तक हों तो नौ योग, चतुर्थ से दशम तक हों तो कूट योग, सप्तम से लग्न तक हों तो छत्रयोग तथा दशम से चतुर्थ तक हों तो 'चाप योग' होता है। बीच में कोई भी राशि ग्रहशून्य न हो।

केन्द्र भाव से अतिरिक्त किसी पणफर या आपोक्लिम से प्रारम्भ करके लगातार सात राशियों में होने पर 'अर्धचन्द्र योग होता है।

जैसे 2-8, 3-9, 5-11, 6-12, 8-2, 9-3, 11-5 या 12-6 भावों में स्थित राशियों में सब ग्रह रहने आवश्यक हैं, इसी प्रकार यह अर्ध चन्द्र योग आठ प्रकार वाला होता है।

समुद्र व चक्र योग–

एकान्तरगतैरर्थात् समुद्रः षड्गृहाश्रितैः।
विलग्नादिस्थितैश्चक्रमित्याकृतिजसंग्रहः।।9।।

यदि द्वितीय भाव से शुरू कर, एक एक भाव छोड़ते हुए कुल 6 राशियों में सभी सममावस्थ राशियों में अर्थात् 2. 4. 6. 8. 10. 12 में सब ग्रह लगातार रहें तो 'समुद्र योग' होता है।

इसी प्रकार लग्न से प्रारम्भ कर एकान्तर छह भावों (1. 3. 5. 7. 9. 11) में सब ग्रह लगातार हों तो 'चक्रयोग' होता है। इस प्रकार गदा से लेकर चक्र पर्यन्त 20 आकृति योगों का संग्रह किया गया है।

इन सब योगों में राशि चक्र में ग्रह स्थिति देखनी चाहिए। जहाँ कहीं हिन्दी टीका में 'भाव' कह दिया है, वहाँ इस प्रकरण में नियमतः उस भाव में स्थित राशि का ही ग्रहण है। भाव चलित बनाकर इन योगों का विचार न करके राशिचक्र या लग्न चक्र में ही करना है। पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि नामानुसार आकार, नभोमण्डल में ग्रह संस्थान के कारण दिखने से, इन्हें आकृतियोग कहा है। जैसे 2 से 8 तक सारे ग्रह लगातार रहेंगे तो अर्ध चन्द्र का आकार स्पष्ट बनता है। चक्र योग में भी दाँत या आरे का चक्रवत् गोलाकार बनेगा।

सात संख्या योग–

संख्यायोगाः सप्त सप्तर्क्ष संस्थैरेकापायाद्वल्लकी दामिनी च।
पाशः केदारश्च शूलो युगं च गोलं चान्यान्पूर्वमुक्तान् विहाय।।10।।

सात संख्या योग क्रमशः एक एक घटाते हुए सात राशियों में हों अर्थात् सात राशियों में सभी ग्रह हों तो वल्लकीः या वीणायोग, छह में हों तो दामिनी, पाँच में हों तो पाश, चार में हों तो केदार, तीन में हो तो शूल, दो में हों तो युग तथा एक ही राशि में सभी ग्रह हों तो गोल योग होता है, यदि पूर्वोक्त कोई योग न बनता हो। अर्थात् आश्रयाकृति योग न बनने की अवस्था में ही संख्या योगों का विचार करना चाहिए।

यदि आकृति योग या आश्रय योग बने तो संख्या योग नहीं माना जाएगा। उदाहरणार्थ लग्न से चतुर्थ तक लगातार सब ग्रह रहने से यूप नामक आकृति योग एवं चार राशियों में सब ग्रह रहने से साथ ही केदार

नामक संख्या योग भी बनता है। ऐसी स्थिति में यूप योग ही शेष रहेगा, संख्या योग का नाश हो जाएगा।

आश्रय व दल योगों का फल–

ईर्ष्युर्विदेशनिरतोऽध्वरुचिश्च रज्ज्वां,
मानी धनी च मुसले बहुकृत्यसक्तः।
व्यंग्यः स्थिरार्थ निपुणो नलजः स्रगुत्थः,
भोगान्वितो भुजगजः बहुदुःखभाक् स्यात्।।11।।

(वसन्ततिलका)

रज्जु योग में जन्म हो तो व्यक्ति ईर्ष्यालु स्वभाव वाला, जन्म स्थान से दूर देश या विदेश में रहने वाला, सदैव यात्रा करने में रुचि रखने वाला होता है।

मुसल योग में उत्पन्न व्यक्ति स्वाभिमानी, गर्वीला, धनवान् एवं अनेक अर्थात् कई कामों में लगा रहने वाला होता है।

नल योग में उत्पन्न व्यक्ति शरीर में कहीं पर विकलता से मुक्त अथवा (वि) विशेष सामान्येतर अंग हो जिसका, ऐसा अर्थ भी हो सकता है। स्थिर स्वभाव व विचारों वाला, धन सम्बन्धी विषयों में निपुण होता है।

माला योग में भोगी अर्थात् सांसारिक सुखों को पाने वाला एवं सर्प योग में उत्पन्न होने पर बहुत दुःखों को प्राप्त करता है।

आश्रयोक्तास्तु विफला भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिताः।
मिश्राः यैस्ते फलं दद्युरमिश्राः स्वफलप्रदाः।।12।।

उक्त आश्रय योगों के साथ यदि किसी अन्य योग (आकृति योग) का लक्षण प्राप्त हो तो आश्रय योग का फल न होकर आकृतियोग का फल होता है। यदि आश्रय योग अकेले हों (संख्या योग के साथ भी) तभी आश्रय योग अपना फल देते हैं।

आशय यह है कि संख्या योगों का विचार किसी भी आकृति या आश्रय या दल योग के न बनने पर ही करना होगा। जब कोई भी योग न बने तो संख्या योग तो होगा ही। इसी कारण सारावली में कह दिया है कि इन्हीं 32 नामस योगों में समस्त चराचर का जन्म होता है। आकृति योग सर्वदा अपना फल देते हैं। आश्रय योग अकेला रहने पर ही अपना फल देगा। संख्या योग कोई भी योग न रहने पर फलद होगा। दल योग भी सर्वदा अपना फल देता है। पीछे श्लोक 3 की व्याख्या भी देखें।

गदादि योगों का फल–

> **यज्वार्थभाक् सततमध्वरुचिर्गदाया,**
> **तद्वृत्तिभुक् शकटजः सरुजः कुदारः ।**
> **दूतोऽटनः कलहकृद् विहगे प्रदिष्टः,**
> **श्रृंगाटके चिरसुखी कृषिकृद् हलाख्ये ।। 13 ।।**

गदा योग में उत्पन्न व्यक्ति यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं में रुचि रखने वाला (यज्वा) धन प्राप्त करने वाला, सदैव यात्रा प्रसंगों में लीन होता है।

शकट योग में गाड़ी आदि वाहन चलाकर ही जीविका कमाने वाला, सदैव रोगी रहने वाला तथा कुत्सित (तन या मन या वृत्ति से निन्दित) भार्या वाला होता है।

पक्षी योग में दूत अर्थात् सन्देश कारक भ्रमण शील व कलह करने व करवाने में निपुण होता है।

श्रृंगाटक योग में दीर्घकाल तक सुख पाने वाला, एवं हल योग में कृषि सम्बन्धी जीविका वाला होता है।

वज्र आदि योगों का फल–

> **वज्रेऽन्त्यपूर्व सुखितः सुभगोऽतिशूरः,**
> **शौर्यान्वितोऽप्यथ यवे सुखितो वयोन्तः ।**
> **विख्यात कीर्त्यमिप्त सौख्यगुणश्च पद्मे,**
> **वाप्यां तनुस्थिरसुखो निधिकृन्न दाता ।। 14 ।।**

(वसन्ततिलका)

वज्र योग में जन्म लेने वाला व्यक्तिं अपनी आयु के पहले व अन्तिम खण्ड में सुखी और जवानी में दुःखी होता है। लेकिन सौभाग्यशाली, अति शूर सब लोगों का प्यारा (सुभग) होता है।

यव योग में पराक्रमी या शौर्यशाली तथा प्रौढावस्था के बाद सुख पाने वाला होता है।

पद्म योग में जातक विख्यात कीर्ति व पराक्रम वाला, अनन्त सुख पाने वाला तथा बहुत गुणों से युक्त होता है।

वापी योग में थोड़े सुख वाला लेकिन स्थायी सुख पाने वाला, धन को संग्रह करके जमाकर या गाड़कर रखने वाला तथा दानादि कर्म में अप्रवृत्त रहता है।

द्वितीय चरण में 'वयोऽन्त्ये' पाठ भी है। वह हमें उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। यव का मध्य भाग अधिक पुष्ट होने के कारण मध्यायु में विशेष सुखोपलब्धि उसी तर्क से सिद्ध है जिससे वज्र योग में पूर्व व अन्तिम तिहाई में सुख कहा गया है। यहाँ 'अन्तः' शब्द भीतर या अन्दर का वाचक होकर वयोमध्य भाग को लक्षित करता है। हेमचन्द्र कोष में अन्तः शब्द का अर्थ अवयव या अंग अतः आयु का अंग मध्यावस्था अर्थ किया गया है। अथवा मेदिनी मतानुसार 'निकट' अर्थ वाचक मानकर 'अन्त्ये' शब्द से अन्त के पास वाले समय का अर्थ हो सकता है। इसी कारण हमने ढलती उम्र में यव योग को सुखप्रद माना है। भट्टोत्पल ने 'अन्तः' शब्द को मध्यभाग का वाचक माना है, जो उपयुक्त ही है।

यूपादि योगों का फल–

> **त्यागात्मवान् क्रतुवरैर्यजते च यूपे,**
> **हिंस्रोऽथ गुप्त्यधिकृतः शरकृच्छराख्ये।**
> **नीचोऽलसः सुखधनैर्वियुतश्च शक्तौ,**
> **दण्डे प्रियैर्विरहितः पुरुषोऽन्त्यवृत्तिः।।** 15।।

यूप योग में त्यागी, मनस्वी, स्वाभिमानी तथा बड़े-बड़े यज्ञ करने वाला होता है।

शर योग में उग्र, हिंसक, जेल या गुप्तचर विभाग अर्थात् गूढ़ रहस्यों की संरक्षा में अधिकार पाने वाला, शस्त्र निर्माता या कुशल शस्त्रधारी होता है।

शक्ति योग में नीच, आलसी, मन्द आचरण करने वाला, सुख व धन से रहित होता है।

दण्ड योग में प्रिय व्यक्तियों से रहित तथा निम्न श्रेणी के कार्य से जीविका कमाने वाला होता है।

शक्ति भाले के सदृशय फेंक कर मारे जाने वाले एक अस्त्र का नाम है। दण्ड योग के फल में भट्टोत्पल ने 'अन्त्यवृत्तिः' इसका अर्थ 'शूद्रवृत्ति' अर्थात् साधारण या निन्दित वृत्ति वाला किया है।

रुद्रभट्ट 'अन्त्ये अन्त्य वयसि वृद्धावस्थायां वृत्तिर्जीविका यस्य' अर्थात् वृद्धावस्था में रोजगार पाने वाला, यह अर्थ करते हैं। कुछ लोगों ने अन्त्य शब्द का अर्थ 'अन्तिम निष्कर्ष' लेकर वेदों के निष्कर्षभूत उपनिषदों का विचार करने वाला भी माना है। रुद्रभट्ट 'पुरुष' शब्द को विशेष्य न मानकर फल वाचक विशेषण ही मानते हैं। तब 'पुरुषः' पौरुषयुक्तः' ऐसा अर्थ हो जाता है।

नौकादि योगों का फल–

कीर्त्यायुतश्चलसुखः कृपणश्च नौजः,
कूटेऽनृतः प्लवनबन्धनपश्च जातः ।
छत्रोद्भवः स्वजनसौख्यकरोऽन्त्यसौख्यः,
शूरस्तु कार्मुकभवः प्रथमान्त्यसौख्यः ।। 16 ।।

नौका योग में उत्पन्न व्यक्ति कीर्तिमान्, अस्थिर सुख वाला अर्थात् जीवन में सदैव सुख न पाकर कभी-कभी कंजूस होता है ।

कूट योग में झूठा, तैरने या पार जाने का साधनभूत पुल अर्थात् (चुंगी टोल टैक्स) आदि वसूलने का अधिकारी अथवा बन्धन (थाना, हवालात, जेल) आदि का अधिकारी होता है ।

छत्र योग में अपने लोगों को सदैव सुख देने वाला, उम्र के अन्त में विशेष सुख पाने वाला होता है ।

चाप या धनुष योग में बहादुर तथा युवावस्था व वृद्धावस्था में सुख पाने वाला होता है ।

अर्धचन्द्रादि योग फल–

अर्धेन्दुजः सुभगकान्तवपुः प्रधान-
स्तोयालये नरपतिप्रतिमस्तु भोगी ।
चक्रे नरेन्द्र मुकुट द्युतिरंजिताङ्घ्रि–
र्वीणोद्भवश्च निपुणः प्रियगीतनृत्तः ।। 17 ।।

अर्ध चन्द्र योग में जातक सब जनों का वल्लभ, कान्त, सुन्दर व्यक्तित्व वाला, प्रधानता पाने वाला होता है ।

समुद्र (तोयालये) योग में राजा के समान सुख भोगों को पाने वाला होता है ।

चक्र योग में अनेक राजाओं द्वारा वन्दनीयचरण अर्थात् अत्यधिक राजमान्य व सम्मानित होता है ।

वीणा योग में निपुण अर्थात् कार्य कुशल तथा गायन नृत्य में विशेष अभिरुचि रखने वाला होता है ।

संख्या योगों का फल–

दातान्यकार्यनिरतः पशुपश्चदाम्नि, पाशे धनार्जनविशीलसुभृत्य बन्धुः ।
केदारजः कृषिकरः सुबहुपभोज्यः, शूरः क्षतो वधरुचिर्विधनश्च शूले ।। 18 ।।

दाम योग में उत्पन्न व्यक्ति दान देने वाला, दूसरों के कामों में अधिक समय देने वाला, पशुधन का स्वामी होता है ।

पाश योग में धन कमाने में असन्मार्ग भी अपनाने वाला, अच्छे बन्धुओं व नौकरों वाला होता है।

केदार योग में खेती बाड़ी करने वाला तथा घर में खाने पीने की सामग्री की बहुतायत वाला होता है।

शूल योग में शूरवीर, मारने काटने में विशेष मन रखने वाला, धन रहित होता है।

धनविरहितः पाषण्डी वा युगे त्वथ गोलके,
विधनमलिनो ज्ञानापेतः कुशिल्प्यलसोठ्टनः।
इति निगदिता योगाः सार्धं फलैरिह नाभसाः,
नियतफलदाश्चिन्त्या ह्येते समस्तदशास्वपि।। 19।।

(हरिणी)

युग योग में धनहीन, पाखण्डी, गोल योग में धनहीन, मैला कुचैला रहने वाला अज्ञानी, कुशिल्पी, आलसी दिखने वाला अर्थात् उत्पादक जीविका दायक कार्य न करने वाला, व्यर्थ घूमने वाला होता है।

इस प्रकार फल सहित नाभस योग यहाँ कह दिए हैं। इनका विचार सदैव करना चाहिए। ये दशान्तर्दशा के विचार बिना ही सर्वदा निश्चित रूप से अपना फल देते हैं। अर्थात् दशाष्टकवर्गादि के फलों का नाश न कर उसमें तारतम्य करते हैं।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्य कृतेहोराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्र कृतायामभिनवाख्यटीकायां नाभसयोगाध्यायो द्वादशः।।

[13]

अथ चान्द्रयोगाध्यायः

अकेले चन्द्र से फल विचार–

अधम समवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादि संस्थे
शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि ।
अहनि निशिच चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा,
सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात् सुखी च ।। 1 ।। (मालिनी)

सूर्य से केन्द्रों में चन्द्र रहे तो विनय, धन, ज्ञान, बुद्धि व निपुणता निम्न श्रेणी की होती है। यदि सूर्य से पणफर में रहे तो मध्यम तथा सूर्य से आपोक्लिम में रहे तो उत्तम विनय, धन, ज्ञान, बुद्धि व निपुणता होती है।

यदि चन्द्रमा अपने या अपने अधिमित्र के नवांश में हो तथा दिन में गुरु से एवं रात में शुक्र से दृष्ट हो तो जातक धनी व सुखी होता है।

विनय अर्थात् सुशीलता, शिष्टाचार, वित्त अर्थात् धन धान्यादि सम्पत्ति, ज्ञान अर्थात् समयानुसार करणीय या अकरणीय का विवेक करने की शक्ति, धी अर्थात् बुद्धि निपुणता अर्थात् कार्यो में सूक्ष्म बुद्धि प्रयोग करना ये पाँच बातें हैं। कुछ लोग 'धीनैपुण' को एक ही पद मानकर इसका अर्थ बुद्धि कौशल' करते हैं। तब ये चार ही रह जाते हैं। हमने ऊपर भट्टोत्पल के मत को समुचित जानकर तदनुसार अर्थ किया है। यहाँ अब पक्षान्तर को भी उपस्थित किया जा रहा है।

विनय, वित्त, ज्ञान, धी निपुणता इनमें से एक-एक क्रमशः अधम, सम व श्रेष्ठ होती हैं। यदि चन्द्रमा, सूर्य से केन्द्रादि अर्थात् सूर्याधिष्ठित राशि से 1. 2. 3 में हो तो विनय की अधम, सम व श्रेष्ठ प्राप्ति होती है। इसी व्यवस्था से सूर्य से 4. 5. 6 में चन्द्र रहे तो धन की अधम सम वरिष्ठता, यदि 7. 8

9 में रहे तो ज्ञान की अधम सम वरिष्ठता तथा 10.11.12 में रहे तो धीनैपुण की अधम सम वरिष्ठता होती है। यह मत रुद्रभट्ट का है।

दोनों में अन्तर यह है कि एक जगह पर किसी भी केन्द्र, पणफर या आपोक्लिम में रहने पर चारों पांचों बातें क्रमशः अधम सम वरिष्ठ होती हैं, जबकि द्वितीय मत में प्रथमादि केन्द्र व तदनन्तर पणफरापोक्लिमों में एक-एक वस्तु की अधम सम वरिष्ठता मानी जाती हैं।

भट्टोत्पल का मत यवन मत से प्रमाणित है। यवनेश्वर ने सूर्य से केन्द्रों में चन्द्रमा रहने पर मूर्ख, दरिद्र, चपल व विशील लोगों का जन्म कहा है।

'मूर्खान् दरिद्रांश्चपलान् विशीलान्, चन्द्रः प्रसूतेऽर्कचतुष्टयस्थः।'

हमारे विचार से भट्टोत्पल का मत अधिक उपयुक्त है। पुनश्च केन्द्रों में भी 1. 7 को विशेष प्रभावशाली मानकर सूर्य के साथ या सम सप्तक में जन्म होने पर अर्थात् अमा या पूर्णिमा का जन्म होने पर उक्त बातों की विशेष निकृष्टता समझनी चाहिए। इसी बात को आधार मानकर तिथियों का फल माना जाता है। ऐसा भी सम्यक् प्रतीत होता है। वास्तव में यहाँ चान्द्रयोगों की अवतारणा करने से पूर्व चन्द्रमा की महत्ता को अन्यथा रेखांकित किया है। चन्द्रमा सब फलों का उपभोग करवाने वाला है। अतः चन्द्रबल सर्वत्र प्रधान है। यदि समस्त केन्द्रों में विशेषतया सूर्य से सप्तम में चन्द्रमा रहने पर (पूर्णिमा तिथि) धी धन विनयादि की निकृष्टता मानें तो यह बात अन्यथा परस्पर विरोधी हो जाती है। अतः साधारणतया चन्द्रमा के बलाबल का विचार कर फल कहना चाहिए, यह बात यहाँ बताई गई है। यह नियम सर्वत्र उपयोगी नहीं हो सकता है।

द्वितीयार्ध में बताई गई बात विशेष उपयोगी है। यदि दिन में चन्द्रमा गुरु दृष्ट हो तथा रात्रि में शुक्र दृष्ट हो तो व्यक्ति विशेष सुखी होता है। केसरी व गजकेसरी योग का आधार यहाँ बता दिया गया है। सामान्‍य नियम से चन्द्रमा पर गुरु या शुक्र की दृष्टि धन-सुखदायक मानी जाएगी, यह स्पष्ट है।

अधियोग विचार–

सौम्यैः स्मरारिनिधनेष्वधियोग इन्दोः
तस्मिंश्चमूपसचिवक्षितिपाल जन्म।
सम्पन्नसौख्यविभवा हतशत्रवश्च,
दीर्घायुषो विगतरोगभयाश्च जाताः।। 2।। (बसन्ततिलका)

चन्द्रमा से 6. 7. 8 भावों में समस्त शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) किसी भी प्रकार से अर्थात् एकत्र या अलग-अलग स्थित हों तो 'अधियोग' होता है। इस योग में बलाबलानुसार सेनाधिप, मन्त्री या राजा का जन्म होता है। इस स्थिति में उत्पन्न जातक सुख व वैभव से परिपूर्ण, शत्रुओं से रहित, दीर्घायु, रोग रहित व निर्भय होते हैं।

अधि अर्थात् श्रेष्ठ योग होने की ग्रहस्थिति कही गई है। इसी पद्धति से बाद के आचार्यों ने लग्न से 6. 7. 8 में तीनों शुभ ग्रहों के रहने पर 'लग्नाधियोग' भी माना है, जोकि उपयुक्त ही है। श्रुतकीर्ति ने अधियोग के 7 प्रकार माने हैं। तीनों ग्रह एक साथ होने से 6. 7. 8 भावभेद से तीन भेद हुए। तीनों ग्रह किसी भी तरह 6. 7. या 7. 8 या 6. 8 में होने पर पुनः तीन भेद तथा 6. 7. 8 में एक-एक ग्रह रहने से सात भेद हुए।

इसी विधि से चन्द्रमा से 6. 7. 8 में मंगल, शनि व सूर्य हों तो पापाधियोग होने से अनिष्ट फल होगा। फलतः इस स्थिति में उत्पन्न जातक, दुःखी, रोगी, भयभीत, अल्पायु होंगे यह स्पष्ट है। यदि 6. 7. 8 में मिश्रित ग्रह हों तो यह 'मिश्राधियोग' होगा। इसका फल स्वबुद्धि से शुभाशुभ मिश्रित कहना चाहिए।

यदि तीनों शुभ ग्रह उत्तम बली हों तो राजा, मध्यम बली हों तो मन्त्री तथा अधम बली हों तो सेनापति होता है। हमारे विचार से यह बात उपलक्षण अर्थात् संकेत करने के लिए है। यह केवल राजयोग ही नहीं है, अपितु भौतिक समृद्धि, प्रतिष्ठादि की उत्तममध्यमाधमता का योग है। आचार्य ने स्वयं भी इसे स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक परिस्थिति में चाहे जातक राजा, या मन्त्री या सेनापति हो, वह सुखी, दीर्घायु, धनी निर्भय अवश्य होगा। अतः 'सम्पन्नसौख्यविभवा' इत्यादि फल अनिवार्य है तथा 'चमूपसचिवक्षितिपाल जन्म' वाला फल अन्य योगों की भी अपेक्षा रखता है। यदि अन्य ग्रहों से भी राजयोग सिद्ध होता हो तभी वास्तव में राजादि फल कहना चाहिए, क्योंकि यह विशुद्ध राजयोग नहीं है। यदि ऐसा होता तो राजयोग के प्रसंग में ही आचार्य इसे कहते। सारावली में 6. 7. 8 में स्थित शुभ ग्रहों पर क्रूरदृष्टि का अभाव एवं सूर्य का असम्पर्क अर्थात् अस्त न होने पर उक्त राजयोग कहा है।

क्रूराणां यदि गोचरे न पतिताः सूर्यालयाद्दूरतः।

पुनश्च हमारे विचार में यहाँ राजा, सचिव सेनापति आदि का वाच्यार्थ न लेकर गम्यार्थ ही लेना चाहिए।

सुनफानफादि योग–

हित्वार्कं सुनफानफा दुरुधराः स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः

शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ ।

केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते,

केचित्केन्द्रनवांशकेषु च वदन्त्युक्ति प्रसिद्धा न ते ।। 3 ।।

सूर्य को छोड़कर अर्थात् उसके होने न होने का विचार न करते हुए, चन्द्रमा से द्वितीय में कोई मंगलादि ग्रह हो तो सुनफा योग, द्वादश में कोई ग्रह हो तो 'अनफा योग' तथा चन्द्रमा के दोनों ओर 2. 12 में ग्रह हों तो दुरुधरा योग होता है । इन तीनों योगों के अभाव में अर्थात् चन्द्रमा से 2. 12 में कोई ग्रह न रहने पर केमद्रुम योग होता है, यह बहुत से प्राचीन आचार्यों का मत है । किन्तु कुछ लोगों के मतानुसार चन्द्रमा या लग्न से केन्द्र में कोई ग्रह हो या चन्द्रमा ग्रह युक्त हो तो केमद्रुम योग नहीं होता है । कुछ आचार्यो ने इन सुनफानफादि योगों का विचार केन्द्र व नवांश के आधार पर भी किया है, लेकिन उनका मत प्रसिद्ध नहीं है ।

विषय को स्पष्ट करते हैं । सूर्य, राहु-केतु चन्द्र के साथ या 2. 12 में रहने पर उक्त योग कारक या योग नाशक नहीं हैं । वे हों, तो भी इन सुनफादि योगों का नाश नहीं करेंगे । इन योगों में मंगल से शनि तक के पाँच ताराग्रहों का ग्रहण है ।

सत्याचार्यादि प्राचीन आचार्यो ने निरपवाद केमद्रुम माना है । यदि चन्द्र से 2. 12 में कोई ग्रह न हो तो सदैव केमद्रुम योग होता है । अर्थात् सुनफा, अनफा व दुरुधरा योगों का अभाव ही 'केमद्रुम' है । वराहमिहिर भी ऐसा ही मानते हैं । स्वल्प जातक में आचार्य ने स्पष्टतया इसी बात को स्वीकार किया है ।

श्लोक के दूसरे चरण में स्थित 'अन्यैः' पद का 'नेष्यते' से सम्बन्ध है । अतः तृतीय चरण में प्रोक्त अपवाद वराहमिहिर को मान्य नहीं हैं । अन्य आचार्य इन परिस्थितियों में चन्द्रमा से 2. 12 स्थान खाली रहने पर भी केमद्रुम योग नहीं मानते हैं–

(i) **केन्द्रे ग्रहयुते** अर्थात् लग्न से केन्द्र में मंगलादि कोई ग्रह हो ।

(ii) **शीतकरे ग्रहयुते** अर्थात् चन्द्रमा के साथ कोई ग्रह हो ।

कश्चिदवा स्यान्न चन्द्रेण लग्नात्केन्द्रगतोऽथवा । (गार्गि)

केन्द्रेशीतकरे अर्थात् लग्न से केन्द्र में चन्द्रमा हो तो भी केमद्रुम योग का भंग माना जा सकता है, लेकिन ऐसा अर्थ अप्रामाणिक होगा । केन्द्र में चन्द्रमा या सूर्य रहने पर भी अन्य ग्रह से अयुक्त होने पर योगभंग नहीं होता ।

(iii) चन्द्रमा पर यदि किसी ग्रह की दृष्टि हो तो योग भंग हो जाएगा—

केमद्रुमोऽतिकष्टः शशिनि च सर्वग्रहादृष्टे। (कल्याण वर्मा)

(iv) चन्द्रमा से केन्द्र में कोई ग्रह हो, तो भी केमद्रुम नहीं होगा। यह बात चन्द्रमा पर ग्रह दृष्टि होने से स्वयं सिद्ध होती है।

गर्गाचार्य, कल्याण वर्मा, गुणाकर आदि ने इन अपवादों को माना है। वराह मिहिर ने इन्हें नहीं माना है। फिर भी वराह की शाब्दिक लड़खड़ाहट के कारण निश्चित मत प्रकट नहीं हो सका और वराह के विरुद्ध उक्त अपवाद आज भी प्रभावशाली माने जाते हैं।

चतुर्थ चरण में जीवशर्मा व श्रुतकीर्ति का मतान्तर है कि चन्द्रमा से 4. 10 भावों में ग्रह स्थिति से सुनफादि योग देखने चाहिएं।

अर्थात् चन्द्रमा से चतुर्थ में मंगलादि ग्रह के रहने से सुनफा, दशमस्थ, ग्रह होने से अनफा, दोनों में ग्रह रहने से दुरुधरा तथा इनमें कोई ग्रह न रहने से केमद्रुम होता है।

चन्द्राच्चतुर्थैः सुनफा दशमस्थितैः कीर्तितोऽनफा विहगैः।

उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः।। (श्रुतकीर्तिः)

अन्य लोगों ने जन्मकालीन चन्द्रमा की नवांश राशि से 2. 12 में ग्रह योग मानकर सुनफानफादि योग कहे हैं। लेकिन आचार्य ने कहा है कि यह मत बहुत से विद्वानों ने नहीं माना है। अतः अमान्य है।

यद्राशिसंज्ञे शीतांशुनवांशे जन्मनि स्थितः।

तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः।।

द्वादशैरनफाज्ञेयो ग्रहैर्द्विर्द्वादशस्थितैः

प्रोक्तो दुरुधरायोगोऽन्यथा केमद्रुमस्मृतः।। (जीव शर्मा)

इस प्रसंग में विस्तार से बृहत्पाराशर की अपनी व्याख्या में लिखेंगे।

जिस प्रकार चन्द्रमा से 2. 12 में ग्रह रहने से ये योग बनते हैं, उसी पद्धति से सूर्य से 2. 12 में चन्द्रमा रहित मंगलादि ग्रहों के रहने से भी वेशि, वासि, उभयचरी ये तीन योग बनते हें। यह बात भी स्वयं समझने योग्य है, क्योंकि आचार्य ने पृथक्तया इनका लक्षण नहीं कहा है। केवल 'दिनकर–युताद्भाद्द्वितीयं च वेशिः' ऐसा राशि प्रभेद श्लोक 20 में कहा है।

ये सुनफादि योग एक या दो या तीन या चार या पाँचों ग्रहों से हो सकते हैं। अतः इनके पाँच विकल्प होने से कुल कितने भेद होंगे, इसका विचार अगले श्लोक में किया जा रहा है।

सुनफादि योगों के भेद–

त्रिंशत्सरूपा सुनफानफाख्याः षष्टित्रये दौरुधराः प्रभेदाः ।

इच्छा विकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ।।4।।

सुनफा व अनफा योगों के कुल भेद क्रमशः 31. 31 होते हैं। त्रिंशत् अर्थात् 30 एवं सरूपा अर्थात् एक सहित कहा गया है। दुरुधरा योगों का प्रस्तार करने पर विभिन्न ग्रहों से बनने वाले विकल्पों के आधार पर इसके 180 भेद (60 × 3) होते हैं।

उत्तरार्ध में गणित विधि से भेद संख्या जानने की विधि कही गई है। यह पताका विधि है। इसका प्रदर्शन करने के लिए योग भेद कारक ग्रहों की संख्या को क्रमशः लिखकर क्रमशः निचली निचली पंक्तियों में उपरिलिखित अंकों को अगले-अगले अंक में जोड़कर लिख लेते हैं। अन्तिम अंक को नहीं जोड़ते तथा अन्तिम पंक्ति में एक अंक आने तक पंक्तियाँ बनाते हैं।

सुनफानफादि योगों में योगकारक मंगलादि ग्रहों की संख्या 5 है। अतः पताका इस प्रकार बनेगी–

1	2	3	4	**5**	(एक ग्रह से भेद)
1	3	6	**10**	–	(दो ग्रहों से भेद)
1	4	**10**	–		(तीन ग्रहों से भेद)
1	**5**	–			(चार ग्रहों से भेद)
1	–				पाँच ग्रहों से भेद)

अतः 5 + 10 + 10 + 5 + 1 = 31 भेद सिद्ध हो जाते हैं। दुरुधरा योगों में भी योगकारक पाँच ग्रह ही हैं। लेकिन एक द्वादश में शेष चार द्वितीय में रहने पर या 2. 12 में दो दो ग्रह या एक व तीन ग्रह या एक व दो या एक-एक ग्रह 2. 12 में रहने पर अलग-अलग भेद संख्या बनेगी।

दुरुधरा योग में एक साथ चन्द्रमा से 2. 12 में ग्रह रहने से विभिन्न विकल्प बनेंगे। एक स्थान में एक ग्रह तो अन्यत्र 1. 2. 3. 4 ग्रह रह सकते हैं। अतः इनकी पताका बनाने पर भेद 4 + 6 + 4 + 1 = 15 भेद बनते हैं। तब पाँच ग्रहों से विकल्प 15 × 5 = 75 बनते हैं। इतने ही भेद स्थान परिवर्तन करने पर, अर्थात् जहाँ एक ग्रह था, वहाँ चार मानकर तथा चार के स्थान पर एक मानने से भी बनने पर 75 + 75 = 150 भेद रहे।

एकत्र दो तथा अन्यत्र तीन रहने पर एवं दो दो ग्रह रहने पर कुल 30 भेद और हो जाते हैं। तब 150 + 30 = 180 भेद होना सिद्ध होता है। ग्रहों के अनुसार पृथक् विचार हमारे 'वृद्धयवन जातक' में देखें। भट्टोत्पली टीका में भी इनकी सूची दे दी गई है। पीछे दिखाई गई पताका विधि से ही उपपत्ति यहाँ भी सिद्ध होती है।

(i) एक-एक ग्रह द्विर्द्वादश (2. 12) में रहने पर 5+5 योग कुल भेद 10 भेद दिखाए गए हैं। तब (12. 2) में विपरीत क्रम से ग्रह रहने पर भी 10 भेद बनते हैं। अतः एक-एक ग्रह से भेद संख्या 20 रही।

(ii) एक ग्रह द्वादश में रहने से तथा द्वितीय में दो ग्रह रहने पर 30 भेद हैं। अतः विपरीत स्थिति में 30 × 2 = 60 भेद रहेंगे।

(iii) एक-तीन या तीन-एक ग्रह होने से 20-20 कुल 40 भेद बनेंगे।

(iv) एक-चार या चार-एक ग्रह रहने से 10 भेद बनते हैं।

(v) दो-दो ग्रहों से कुल 30 भेद तथा दो-तीन या तीन-दो ग्रह रहने से 20 भेद बनते हैं। तब 20 + 60 + 40 + 10 + 30 + 20 = 180 भेद उत्पन्न हो जाते हैं।

सुनफा–अनफा का फल–

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिवस्तत्समो वा,
भवति हि सुनफायां धीधनख्यातिमांश्च।
प्रभुरगदशरीरः शीलवान् ख्यातकीर्ति–
र्विषयसुखसुवेषो निर्वृतश्चानफायाम्।। 5।। (मालिनी)

सुनफा योग में उत्पन्न होने पर जातक स्वयं अपने परिश्रम से धन कमाने वाला और धनी तथा राजा या राजतुल्य होता है। साथ ही बुद्धि, धन एवं ख्याति से युक्त भी रहता है।

अनफा योग में उत्पन्न व्यक्ति समर्थ अर्थात् अधिकारयुक्त अर्थात् जिसकी आज्ञा को सब मानें, रोग रहित शरीर वाला, शीलवान् अर्थात् दया विनय, उदारता, उदात्त विचार व उदात्त आचरण से युक्त, विख्यात नाम वाला, भौतिक ऐन्द्रिय सुखों को पाने वाला, सुव्यवस्थित व सुन्दरता बढ़ाने वाले वस्त्राभूषणों से युक्त तथा सर्वत्र मानसिक शान्ति व संतुष्टि पाने वाला (निर्वृत) होता है।

दुरुधरा व केमद्रुम का फल–

उत्पन्नभोगसुखभुग्धनवाहनाढ्यस्त्यागान्वितो दुरुधराप्रभवः सुभृत्यः।
केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वःप्रेष्यःखलश्च नृपतेरपिवंशजातः।। 6।।

दुरुधरा योग में उत्पन्न होने पर यथा समय तथा जैसी आवश्यकता हो तदनुसार भोगों के सुख को भोगने वाला, धन व वाहनों से युक्त, त्याग भावना सहित, एवं सुयोग्य व अनुकूल भृत्यों को प्राप्त करता है।

केमद्रुम योग में उत्पन्न व्यक्ति मलिन, मैला कुचैला रहने वाला, स्नान से बचने वाला, दुःखों को भोगने वाला, अपने कुल-जाति से नीचे के स्तर का कार्य करने वाला, दरिद्र, सब के द्वारा आज्ञा देने योग्य अर्थात् अपने स्वामियों द्वारा यत्र तत्र दौड़ाया जाने वाला तथा दुष्ट स्वभाव वाला होता है, चाहे वह व्यक्ति राजा के घर में भी क्यों न उत्पन्न हुआ हो।

ग्रहवशात् पृथक् फल–

उत्साहशौर्यधनसाहसवान् महीजे, सौम्ये पटुः सुवचनो निपुणः कलासु।
जीवेऽर्थ धर्म सुखभाङ्नृपपूजितश्च कामी भृगौ बहुधनो विषयोपभोक्ता।।7।।

यदि मंगल के द्वारा सुनफादि योग बने तो जातक उत्साह, शूरता, धन व साहस, से युक्त होता है। बुध योग कारक हो तो कार्य कुशल, शालीन भाषा बोलने वाला, कलाओं में चतुर होता है।

बृहस्पति योग कारक हो तो धन, धर्म व सुख से युक्त, राजा द्वारा सम्मान प्राप्त करने वाला होता है। शुक्र योग कारक होने पर व्यक्ति कामुक, स्त्रियों के विषय में चंचल बुद्धि वाला, अधिक धनी तथा इन्द्रिय सुखों का उपभोग करने वाला होता है।

परविभवपरिच्छदोपभोक्ता रवितनयो बहुकार्यकृद् गणेशः।
अशुभकृदुडुपोऽह्निदृश्यमूर्तिर्गलिततनुश्चशुभोऽन्यथाऽन्यदूह्यम्।।8।।

(पुष्पिताग्रा)

शनि योग कारक हो तो मनुष्य दूसरों के द्वारा अर्जित धन,सम्पत्ति, वैभव, अन्न वस्त्रादि का उपभोग करने वाला अर्थात् स्वयं निजी परिश्रम से भौतिक सुख न कमाकर चतुरता आदि से दूसरों की कमाई पर आनन्द भोगने वाला, बहुत से कार्यो को करने वाला तथा गणों का स्वामी होता है। बहुत से आदमियों को अधीन रखकर, उनकी सहायता से कार्य करने का आशय है। असम्मत मार्ग से धनार्जन भी इस योग में यथावसर सम्भाव्य है।

इन सब चान्द्रयोगों में सामान्य पृथक् व ग्रहकृत योगों के फलों का परस्पर समन्वय करना चाहिए। इन योगों में चन्द्रमा की शुभाशुभता का विशेषतया विचार करना चाहिए। दिन में दृश्यार्धगत तथा रात्रि में अदृश्यार्ध गत चन्द्रमा अशुभ है। इसके विपरीत रात्रि में दृश्यार्धगत तथा दिन में अदृश्यार्धगत चन्द्रमा शुभ है। 'गलित तनुः' को पृथक् कहने से क्षीण या

क्षीयमाण चन्द्रमा की सर्वत्र अशुभता को बताया गया है। इसक विपरीत अर्थात् पूर्ण या वर्धमान चन्द्रमा शुभ है।

उडुपः (चन्द्रमा) अह्नि (दिवा) दृश्यमूर्तिः (दृश्यार्धगतः) गलित तनुः (क्षीयमाणवपुः) चेति समुच्चयार्थे, अशुभ कृद भवति। अन्यथा (पूर्वोक्ताद् अन्य प्रकारेण स्थितः) रात्रौ दृश्य मूर्तिः वर्धमान वपुश्चेति भावः। शुभः (शुभ फलदः) भवतीति शेषः। अन्यदूह्यम् अर्थात् उक्त प्रकारादन्यत् तर्क्यम् स्वयमेव कल्पनीयम्। इस प्रकार अन्वय होना चाहिए। अतः 'गलित तनुरदृश्यमूर्तिः शुभः' भट्टोत्पल का यह कथन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। अन्य प्रकार से कल्पना करने का तात्पर्य है कि चन्द्रमा का शरीर कलेवर अर्थात् पक्षबल कम होने पर पूर्वोक्त प्रकार से शुभ चन्द्रमा भी मध्यम शुभफलद होगा। अशुभ होने पर भी पूर्यमाण शरीर वाला चन्द्रमा मध्यम अशुभ होगा।

लग्न व चन्द्र से सामान्यतः धन विचार–

लग्नादतीव वसुमान् वसुमांछशांकात् सौम्यग्रहैरुपचयोपगतैःसमस्तैः।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमांश्च तदूनतायामन्येषु सत्स्वपिफलेष्विदमुत्कटेन।।9।।

(वसन्ततिलका)

लग्न से उपचय (3.6.10.11) में सब शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) स्थित हों तो मनुष्य अतीव धनवान् होता है। चन्द्रमा से उपचय में समस्त शुभ ग्रह हों तो भी वसुमान् अर्थात् धनवान् (अतीव धनवान् नहीं) होता है।

जिसके लग्न या चन्द्रमा से दो शुभ ग्रह उपचय में पड़ें तो वह सम अर्थात् न बहुत धनी न बहुत निर्धन होता है। यह मध्यम वसुमद्योग है।

इससे कम अर्थात् एक शुभ ग्रह उपचय में पड़े तो कम धनी योग होता है। अतः लग्न व चन्द्र से उपचय में कहीं भी शुभ ग्रह न हों तो व्यक्ति धनहीन होता है, यह बात अन्यथा सिद्ध है।

यह योग अन्य शुभ योगों, दशान्तर्दशा, गोचर, अष्टक वर्ग के शुभ रहने पर या अशुभ रहने पर भी अपना फल उत्कट रूप से देता है।

आशय यह है कि केमद्रुमादि योग या अन्य द्रारिद्र्यकर योगों के रहने पर भी लग्न या चन्द्र या दोनों से उपचयों में शुभ ग्रह हों तो भी इस योग के शुभ फल (धन लाभ) का नाश नहीं होता है।

'अन्येषु असत्स्वपि' यह पाठ रहने पर भी कोई हानि नहीं है। अर्थात् कोई शुभ फलदायी योग न रहने पर भी एकमात्र इस योग से उत्पन्न फल उत्कटता के साथ अवश्य मिलता है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशमिश्र कृतायामभि नवाख्यटीकायां चान्द्रयोगाध्याय स्त्रयोदशः।।

[14]

अथ द्विग्रहयोगाध्याय:

सूर्य के साथ अन्य ग्रह का फल–

तिग्मांशुर्जनयत्यथेन्दुसहितो यन्त्राश्मकारं नरं,
भौमेनाघरतं बुधेन निपुणं धीकीर्तिसौख्यान्वितम् ।
क्रूरंवाक्पतिनान्यकार्यनिरतंशुक्रेणरंगायुधै–
र्लब्धस्वं रविजेन धातुकुशलं भाण्डप्रकारेषु वा ।। 1 ।।

यदि जन्म समय में सूर्य के साथ चन्द्रमा हो तो मनुष्य यन्त्रकार अर्थात् मशीनरी, औजार आदि बनाने वाला एवं पत्थर की वस्तुओं के निर्माण में कुशल होता है । मंगल से युक्त हो तो मनुष्य पापकर्मो या दुष्कर्मो में संलग्न, बुध से युक्त हो तो कार्यकुशल, बुद्धि, कीर्ति व सुख से युक्त होता है । गुरु से युक्त रहने पर क्रूर अर्थात् कठोर स्वभाव वाला एवं दूसरों के अधीन कार्य करने में संलग्न रहता है । शुक्र के साथ सूर्य हो तो नाट्य कर्मादि में प्रयोज्य वस्तुओं के व्यापार से या शस्त्रों के व्यापार से जीविका कमाने वाला होता है । शनि के साथ रहने पर धातु निर्मित वस्तुओं के प्रयोग, निर्माण या व्यवसाय में कुशल अथवा बर्तन आदि (बर्तन, वस्त्र, पुस्तक बन्धन, जिल्दसाजी, या इनमें प्रयुक्त होने वाले पदार्थ) के कार्य में निपुण होता है ।

चन्द्र के साथ अन्य ग्रह का फल–

कूटस्त्र्यासवकुम्भपण्यमशिवं मातुः सवक्रः शशी,
सज्ञः प्रश्रितवाक्यमर्थनिपुणं सौभाग्यकीर्त्यन्वितम् ।

विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं वित्तेश्वरं सांगिरा,
वस्त्राणांससितः क्रयादि कुशलं सार्किः पुनर्भूसुतम् ।। 2 ।।

चन्द्रमा के साथ मंगल हो तो मनुष्य कूट अर्थात् कृत्रिम नकली पदार्थों, या स्त्री, शराब आदि के विक्रय से जीविका कमाने वाला, मिट्टी की वस्तुओं को बेचने वाला तथा माता के लिए अशुभ होता है।

बुध के साथ रहने पर सारगर्भित–सार्थक व विनीत वाक्य बोलने वाला, सूक्ष्म दृष्टि से गूढ़ार्थ को समझने वाला, सौभाग्य व कीर्ति से युक्त होता है। गुरु से युक्त रहने पर शत्रुओं को परास्त करने वाला, अपने कुल में प्रधान, स्थिर बुद्धि वाला अचंचल व धनाधिप होता है।

शुक्र से युक्त रहने पर वस्त्राभूषण, श्रृंगार सामग्री आदि के विक्रय में कुशल तथा शनि युक्त रहने पर अन्य पुरुष से उत्पन्न होता है।

प्रसृतवाक्यम् भट्टोत्पली का यह वचन संगत नहीं है। रुद्रभट्ट ने प्रश्रित' यह पाठ माना है। पं० सीता राम झा जी ने भी 'प्रश्रितवाक्य' इस पाठ को उपयुक्त माना है। 'प्रसृत' शब्द से छन्दोभंग भी होता है।

अस्थिरमतिम्– यहाँ अस्थिर शब्द का अर्थ 'अनुत्तम' आदि शब्दों की तरह नं समास से 'अति स्थिर' होता है।

अस्मात् स्थिरो नास्तीति तस्माद् अतिस्थिरमतिमिति भावः। यदि चंचलमतिरिति व्याख्यानं क्रियेत् तदा शास्त्रप्रसिद्धानां गजकेसरिप्रभृतीनां योगानां प्रत्यक्ष फलदातृत्वंसर्वत्रानुभूयमानमपितिरस्कृतं भेवत्। मनोरुपस्य चन्द्रस्य (मनस्तुहिनगुरिति वचनात्) ज्ञान-रूपेण गुरुणा सह योगः कथं मति–चांचल्यं जनयितुं प्रभवेदिति सुधीभिः ज्ञेयम् चन्द्रकेन्द्रे गुरौ सति 'अतिमतिरति विभवबलः सहस्रमासेषु जीवितं विद्यात्।' इत्यादि फलं सर्वथा पास्तमेव भवेदिति तु स्पष्टम्।

'कूट' शब्द का अर्थ 'अथौपनिषदिकमधर्मिष्ठेषु बलिष्ठेषु प्रयुंजीत' इत्यादि चाणक्य (कौटिल्य) सूत्रों में प्रतिपादित दण्डप्रयोगादि भी होना सम्भव है।

मंगल के साथ एक अन्य ग्रह योग–

मूलादिस्नेहकूटैर्व्यवहरति वणिग्बाहुयोद्धा ससौम्ये,
पुर्यध्यक्षः सजीवे भवति नरपतिप्राप्तवित्तो द्विजो वा।
गोपो मल्लोऽथ दक्षः परयुवतिरतो द्यूतकृत्सासुरेड्ये,
दुःखार्तोऽसत्यसन्धः ससवितृतनये भूमिजे निन्दितश्च ।। 3 ।।

(स्रग्धरा)

मंगल के साथ बुध हो तो मनुष्य व्यापारी (वणिक) होता है। वह मूलादि (पत्र, पुष्प, फल, काष्ठ, पंसारी का कार्य, जड़ी बूटी, वल्कल या तन्निर्मित पदार्थ) घी तेल आदि एवं कूट अर्थात् प्रतिकृति फोटो, कापी, प्रतिमूर्ति, नकल आदि या पूर्वोक्त प्रकार दण्ड योग्य लोगों को दण्ड देने के साधनभूत, डण्डा, लाठी, कोड़ा, रस्सी आदि बेचने का कार्य करता है। साथ ही वह बाहुबली अर्थात् योद्धा, पहलवान या शारीरिक शक्ति से युक्त भी होता है।

गुरु के साथ मंगल हो तो नगर ग्राम या पुरी का अध्यक्ष प्रधानादि, अथवा राजा से धन पाने वाला ब्राह्मणादि होता है। अथवा द्विज अर्थात् दो परिवारों में पलने वाला दत्तक पुत्रादि होता है।

मंगल के साथ शुक्र हो तो मनुष्य पशु पालन करने वाला, पहलवान, दक्ष अर्थात् चतुराई से शीघ्रतापूर्वक कार्यसिद्ध करने वाला, दूसरे की स्त्री में रत, जुआ आदि खेलने वाला होता है।

शनि के साथ हो तो दुःखों से पीड़ित, झूठे वायदे करने वाला तथा निन्दित होता है।

द्विज शब्द का अर्थ करते हुए रुद्रभट्ट लिखते हैं— एकस्यौरसः पुत्रोऽन्यस्य दत्तपुत्रः कृत्रिम पुत्रो वा भवति।'

बुध गुरु से एक ग्रह युति फल—

सौम्ये रंगचरो बृहस्पतियुते गीतप्रियो नृत्यविद्
वाग्मी भूगणपः सितेन मृदुना मायापटुर्लङ्घकः।
सद्विद्यो धनदारवान् बहुगुणः शुक्रेण युक्ते गुरौ,
ज्ञेयः श्मश्रुकरोऽसितेन घटकृज्जातोऽन्न कारोऽपि वा।। 4।।

बुध के साथ बृहस्पति हो तो मनुष्य रंगभूमि (नाट्यभूमि) में विचरण करने वाला अर्थात् नाटकादिप्रिय या तत्कुशल, गीतप्रिय एवं नृत्य निपुण होता है। शुक्र से युक्त बुध हो तो मनुष्य वाक्प्रयोग में चतुर, बहुत सी अचल सम्पत्ति का स्वामी अथवा भूपति, (दोनों की बलवत्ता में राजा) होता है। बुध यदि शनि से युक्त हो तो मायाचार, छल कपट में चतुर एवं असामाजिक अशास्त्रीय अमर्यादित व्यवहाराचरण करने वाला होता है।

यदि बृहस्पति, शुक्र से युक्त हो तो मनुष्य सत्य व सुन्दर या कल्याण—कारी विद्या में निपुण, अनेक गुणों से युक्त होता है।

यदि बृहस्पति के साथ शनि हो तो नाई के कार्य से जीविका कमाने वाला अथवा मिट्टी के बर्तन आदि बनाने वाला या अन्नकार भोजन

बनाने वाला रसोइया, रेस्टोरेंट, होटल आदि से जीविका कमाने वाला होता है।

शुक्र व शनि के योग का फल–

असितसितसमागमेऽल्पचक्षुर्युवतिसमाश्रयसम्प्रवृद्धवित्तः।
भवति च लिपिपुस्तचित्रवेत्ता कथितफलैः परतो विकल्पनीयाः।।5।।

(पुष्पिताग्रा)

शुक्र व शनि के समागम से जातक कमजोर आँखों वाला, स्त्री के संयोग या सहायता से खूब धन कमाने वाला, लिपिकार (क्लर्क, अनुवादक, सम्पादक, नकल नवीस) अथवा अनेक लिपियों को जानने वाला, पुस्तक व चित्र कर्म (फोटोग्राफी) में निपुण होता है।

इसी प्रकार से स्वयं कल्पना करके तीन ग्रहों की एक साथ स्थिति होने पर भी फल कहना चाहिए।

आशय यह है 4. 5. 6. 7 ग्रहों का फल अगले अध्याय में बताया ही जा रहा है। जब तीन ग्रहों की युति का फल जानना अभीष्ट हो तो उक्त द्विग्रह योगों के फलों को मिलाकर समझ लेना चाहिए। जैसे सूर्य, चन्द्र, मंगल एक साथ हों तो सूर्य चन्द्र की एवं चन्द्र मंगल की पूर्वोक्त युति के फल को जोड़कर कहना चाहिए। तब सूर्य चन्द्र योग से यन्त्राश्मकार तथा चन्द्र मंगल से 'कूटस्त्र्यासवकुम्भ–पण्यमशिवं मातुः' इस प्रकार प्रोक्त फलों को समन्वित कर तीन ग्रहों का फल समझें। दो ग्रहों की युति के 20 विकल्प तथा तीन ग्रहों की युति के 34 विकल्प बनते हैं।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशमिश्रकतायामभिनवाख्यटीकायां द्विग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः।।

[15]

अथ प्रव्रज्यायोगाध्यायः

चतुर्ग्रही का फल–

एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग्वीर्यगैः,
शाक्याजीवकभिक्षुवृद्धचरकानिर्ग्रन्थवन्याशनाः ।
माहेयज्ञगुरुक्षपाकरसितप्राभाकरीनैःक्रमात्
प्रव्रज्या बलिभिः समाः परजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिः ।। 1 ।।

जन्म लग्न में किसी भी एक राशि में बलवान् चार या पाँच या छह या सात ग्रह हों तो प्रव्रज्या अर्थात् सन्यास होने का योग सम्भव होता है ।

यदि केवल मंगल सर्व बली हो तो शाक्य अर्थात् बौद्ध, बुध से आजीवक अर्थात् दिगम्बर जैन सन्यासी, गुरु बली हो तो भिक्षु अर्थात् परमहंस योगी, चन्द्रमा बली हो तो वृद्ध अर्थात् शैव वैष्णवादि आगम सम्प्रदाय में कुशल तथा दूसरों को मन्त्रोपदेश देने वाले, शुक्र बली हो तो चरक अर्थात् हठयोग में कुशल, शनि बली हो तो निर्ग्रन्थ अवधूत, नग्न सन्यासी कापालिक या नागा सन्यासी, सूर्य बली हो तो कन्दमूल भक्षी तपस्वी होते हैं ।

प्रव्रज्या कारक के बलानुसार सन्यास का स्तर समझें । अर्थात् पूर्ण बली हो तो पूर्ण सन्यासी, मध्य बली से मध्य सन्यासी इत्यादि । यदि प्रव्रज्या कारक ग्रह अन्य ग्रह से पराजित हो तो व्यक्ति प्रव्रज्या ग्रहण करके बाद में उसे त्याग देता है ।

सन्यास हेतु एक राशि में कम से कम चार ग्रहों की बलवान् स्थिति अनिवार्य है। साधु सन्यासियों के अनेक भेद होने से किस प्रकार का सन्यासी होगा, एतदर्थ बलवान् प्रव्रज्या कारकों में से भी सर्वाधिक बली मंगलादि ग्रह पूर्वोक्त क्रम से अलग-अलग प्रकार के सन्यासी होने के योग बनाएँगे।

शाक्यः– भट्टोत्पल लाल कपड़े वाला सन्यासी तथा रुद्रभट्ट बौद्ध सन्यासी कहते हैं। बौद्ध सन्यासियों के भी चौबीस भेद बताए गए हैं। शाक्य वंशीय बुद्ध होने से बौद्ध सन्यासी वाला अर्थ अधिक उपादेय है। हालांकि वे भी लाल कपड़े ही पहनते हैं।

आजीवकः– भट्टोत्पल ने इसका अर्थ 'एकदण्डी' अर्थात् दण्डी सन्यासी किया है। लेकिन आजीवः वृत्तिः इस प्रकार से पेट पालन के लिए बने व्यवसायी सन्यासी अथवा आजीवका अर्थात् प्राण (जीव) को ही परम तत्त्व मानने वाले अनात्मवादी जैन सन्यासी अर्हत् मुनि आदि। अथवा आजीवन्तीत्याजीविकाः देह वृत्ति के लिए मीठे वचन बोलने वाले, स्वयं को आध्यात्मिक गुरु मानने या बताने वाले प्रचारक सन्यासी इत्यादि अर्थ भी ग्राह्यहैं।

भिक्षुः– सामान्यतः भिक्षावृत्ति से प्राणधारण करने वाला। अतः चतुर्थाश्रमी कोई भी सन्यासी हो सकता है। पुनश्च गुरु परमाध्यात्मिक ग्रह होने से सन्यास में पराकाष्ठा को छूने वाला परम हंस परिव्राजकाचार्य ऐसा अर्थ किया गया है। बौद्धभिक्षु वाला अर्थ मानने पर पुनरुक्ति होती है।

वृद्धः– अर्थात् ज्ञानतप में वृद्ध। विभिन्न सम्प्रदायों में से किसी एक के विशेष प्रखर प्रवक्ता, मान्य सन्यासी।

चरकः– योगाभ्यास में कुशल या चिकित्सा निपुण या पाखण्डी साधु। अथवा सर्वदा विचरण करने वाला सन्यासी।

निर्ग्रन्थः– अर्थात् वस्त्रहीन सन्यासी। अवधूत नागा साधु। शनि के स्वभावानुसार मलिनाचारी वामाचारी सन्यासी। श्रुति वेद विरोधी मतावलम्बी। ग्रन्थेभ्यः श्रुत्यादि नियमेभ्यो निर्गतः। अथवा राग-द्वेष क्रोधादि ग्रन्थियों कलुषों कषायों को जीतने वाला। इत्यादि

पुनश्च यथावसर स्वबुद्धि से देश–काल का विचार करके भी प्रव्रज्या-भेदों को समझना चाहिए। चतुर्थ चरण में ग्रह युद्ध में पराजित प्रव्रज्याकारक से सन्यास लेकर पुनः उसे छोड़ने का संकेत किया गया है। फिर भी दो या अधिक प्रव्रज्या कारक ग्रह पराजित हों तो सविशेष सन्यास त्याग कहना चाहिए। सारावली में इस विषय में अतिरिक्त बात भी कही गई है।

(i) प्रव्रज्या कारक ग्रह अस्त हो तो प्रव्रज्या के प्रति जातक की आसक्ति रहती है। वास्तव में प्रव्रज्या नहीं होती।

(ii) यदि कई ग्रह प्रव्रज्या कारक हों तो कई प्रकार की प्रव्रज्या होती है।

(iii) प्रव्रज्या कारक ग्रह अन्य कई ग्रहों से देखा जाता हो तो भी जातक सन्यास की केवल बातें ही करता है।

विशेष योगों के लिए इसका विस्तार सारावली के अध्याय 20 में देखें। अगले श्लोक में आचार्य भी इसी बात को बता रहे है।

प्रव्रज्या योगों का अपवाद–

रविलुप्तकरैरदीक्षिता बलिभिस्तद्गतभक्तयो नराः।
अभियाचितमात्रदीक्षिता निहतैरन्यनिरीक्षितैरपि।। 2।।

(वैतालीय)

यदि प्रव्रज्याकारक बली ग्रह रवि किरणों में लुप्त अर्थात् अस्त हो तो जातक परिव्राजक होकर भी विधिवत् दीक्षा ग्रहण नहीं करता है। अपितु ऐसे जातक की सन्यास के प्रति विशेष श्रद्धा अवश्य होती है। यदि बलवान् प्रव्रज्या कारक ग्रह अन्य ग्रह से ग्रह युद्ध में पराजित हो तो व्यक्ति सन्यास लेकर भी उसका त्याग कर देता है। यदि पराजित ग्रह अन्य ग्रहों से दृष्ट हो तो दीक्षा की प्रार्थना करने पर भी उसे दीक्षा नहीं मिल पाती है।

ग्रहों के उदयास्त के लिए कालांश देखने चाहिएं। सूर्य से 12. 17. 13. 11. 9. 15 अंशों के भीतर रहने पर क्रमशः चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि अस्त रहते हैं। केवल एक राशि में स्थित रहने मात्र से ही ग्रह अस्त नहीं होता। जिन दो ग्रहों के अंश कलादि समान हों, उनमें युद्ध समझा जाता है तथा जिस ग्रह का शार उत्तर दिशा में हो वह विजयी होता है। शुक्र दक्षिण दिग्स्थ होकर भी विजयी ही माना जाता है।

एक दो ग्रहों से प्रव्रज्या योग–

जन्मेशोऽन्यैर्यद्यदृष्टोऽर्कपुत्रं पश्यत्यार्किर्जन्मपं वा बलोनम्।
दीक्षां प्राप्नोत्यार्किदृक्काणसंस्थे भौमार्क्यंशे सौरदृष्टे च चन्द्रे।। 3।।

(शालिनी)

जन्म कालीन चन्द्रमा जिस राशि में हो, उसका स्वामी अर्थात् जन्म राशीश किसी भी ग्रह से दृष्ट न हो, लेकिन वह स्वयं शनि को देखता हो तो प्रव्रज्या होती है। अथवा निर्बल जन्म राशीश को बली शनि देखता हो अथवा निर्बल चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में स्थित हो तथा साथ ही शनि या

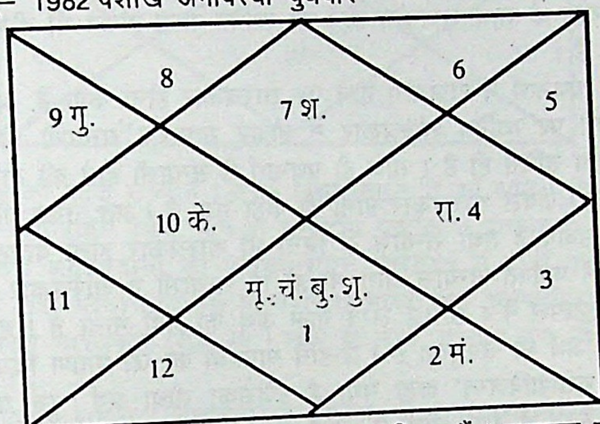
मंगल के नवांश में स्थित हो, अन्य ग्रहों से अदृष्ट लेकिन शनि से दृष्ट हो तो जातक को प्रव्रज्या योग होता है।

उपर्युक्त योग कारकों में से बलवान् ग्रहानुसार सन्यासी भेद समझना चाहिए। इन योगों में भी श्लोक–2 में बताए गए अपवाद लागू होने पर दीक्षा नहीं समझनी चाहिए। योगों की प्रामाणिकता समझने के लिए जैन मुनि श्री विद्यानन्द जी की कुण्डली प्रस्तुत है–

जन्म– 25 अप्रैल 1925 ई०

चन्द्रस्पष्ट–0. 2°.24′

सवंत्– 1982 वैशाख अमावस्या बुधवार



एक राशि में सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र एकत्र स्थित हैं। उच्चगत शनि से दृष्ट तथा सूर्य स्वयं उच्चस्थ है। सूर्य से वनवासी कन्दमूल भक्षी होना तथा शनि से निर्ग्रन्थ जैन सन्यासी होना सिद्ध होता है। सूर्य के साथ चन्द्रमा अस्त है। सूर्य 9 अंश पर शुक्र 9 अंश पर बुध 2 अंश पर हैं। अतः श्लोक 2 में कहा गया अपवाद भी पूर्ण घटित होता है। प्रव्रज्या में पूरी आस्था भी प्रकट होती है। चन्द्रमा निर्बल होकर मंगल के नवांश व द्रेष्काण में शनि से भी दृष्ट है, यह भी प्रबल दीक्षायोग बताता है।

प्रव्रज्या कब होगी ? इस विषय में योग कारक ग्रह के दशा काल में प्रव्रज्या बतानी चाहिए।

शास्त्रकार या राजर्षि योग–

सुरगुरुशशिहोरास्वार्किदृष्टासु धर्मे
गुरुरथ नृपतीनां योगजस्तीर्थकृत्स्यात्।

नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे
भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्र ।। 4 ।।

(मालिनी)

यदि गुरु, चन्द्रमा के लग्न (4. 9. 12) लग्न पर शनि की दृष्टि हो तथा बृहस्पति नवम स्थान में हो अथवा गुरु, चन्द्रमा व लग्न पर शनि की दृष्टि हो तथा गुरु नवम स्थान में हो तो पूर्वोक्त राजयोगों में से कोई योग रहने पर व्यक्ति सन्यासी होकर विशेष सम्प्रदाय का प्रवर्तक या शास्त्रकार होता है, राजा नहीं होता ।

अथवा नवम भाव में शनि हो तथा उसे कोई ग्रह न देखता हो तो इस योग के साथ राजयोग होने पर व्यक्ति राजा होकर भी दीक्षित सन्यासी होता है ।

प्रथमार्ध में राजयोग होने पर शास्त्रकार होना कहा है, अतः राजयोग न होने पर व्यक्ति शास्त्रकार न होकर साधारण सन्यासी होता है, ऐसा समझना उचित ही है । साथ ही प्रथमार्ध में सन्यासी होने की बात आवश्यक नहीं है । केवल शास्त्रकार होना ही कहा गया है । अतः उक्त योग राजयोग का अपवाद है तथा सन्यास के बिना भी शास्त्रकार होना बताता है । यदि साथ में पूर्वोक्त सन्यास योग भी हो तो सन्यासी व शास्त्रकार दोनों होता है । भट्टोत्पल ने 4. 9. 12 लग्न वाले अर्थ को नहीं माना है । हमारे विचार से वह अर्थ भी उपयुक्त है । उन्होंने माण्डव्य का जो प्रमाण दिया है, उसमें भी 'गुरुशशिविलग्ने' कहा गया है, जिसका सीधा अर्थ 'गुरु या शशि के किसी लग्न में' ऐसा होता है । अतः हम 4. 9. 12 लग्न वाले अर्थ को अधिक प्रामाणिक मानते हैं ।

पद प्रयोग से दोनों ही अर्थ लग सकते हैं, अतः हमने दूसरे अथ को वैकल्पिक रूप में मान लिया है । अवान्तर ग्रन्थों में भी इसी पकार व्याख्या सम्भव है ।

मन्देक्षितेषु शशिलग्नगुरुष्वथेज्ये धर्मे सुतीर्थकृदिलापतियोग जातः ।

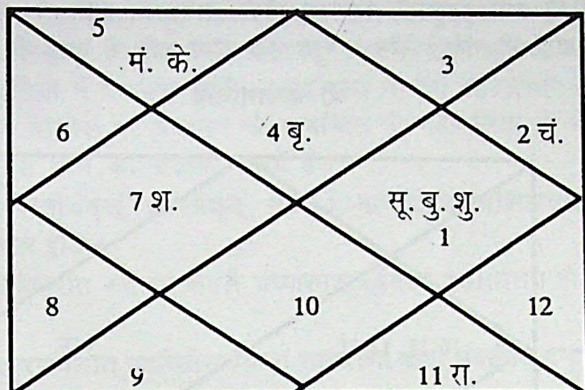
(गुणाकर)

शशिलग्नगुरुषु अर्थात् शशी च लग्नं च गुरुश्चेति द्वन्द्व समास करना योग्य है । यह बात गुणाकर के वचन में स्पष्ट है ।

'धर्मे गुरुः' कहकर आचार्य ने परम त्रिकोण नवम भाव का ग्रहण कर श्रृंगग्राहिका से शेष त्रिकोणों का भी ग्रहण किया है । अर्थात् 1. 5. 9 में

बलवान् बृहस्पति होने पर भी उक्त योग में शास्त्रकार होना सिद्ध है । कुछ उदाहरणों से अपनी बात को पुष्ट करते हैं–

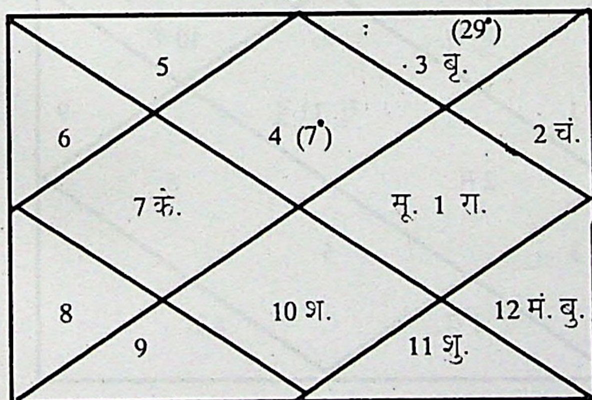
आदि शंकराचार्य



चन्द्रमा की राशि लग्न है । उसमें स्थित बृहस्पति को शनि पूर्ण दृष्टि से देखता है । राजयोग स्पष्ट होने से सम्प्रदाय प्रवर्तक व शास्त्रकार होना स्वयं सिद्ध है । अद्वैतवेदान्त की पताका समूचे भारतवर्ष में इन्हीं के द्वारा फहरायी गई तथा प्रस्थानत्रयी के विश्वप्रसिद्ध भाष्य तथा अनेकानेक ग्रन्थ स्तोत्रादि रचकर शास्त्रकार सिद्ध हुए । साथ ही लग्न, चन्द्र व गुरु भी शनि से दृष्ट ही हैं ।

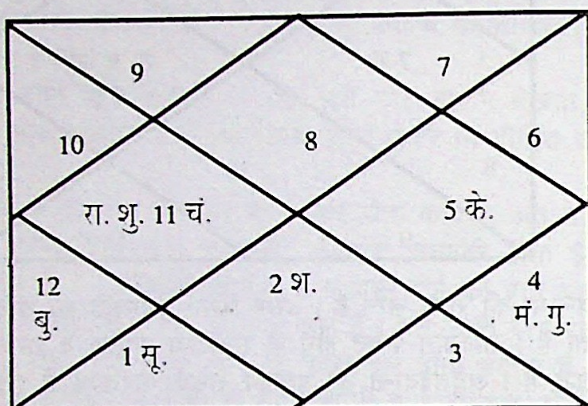
इसी प्रकार रामानुज सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य का भी जन्म कर्क लग्न में है । चलितगत्या बृहस्पति लग्न में ही है तथा सप्तमस्थ शनि से पूर्ण दृष्ट है ।

रामानुजाचार्य



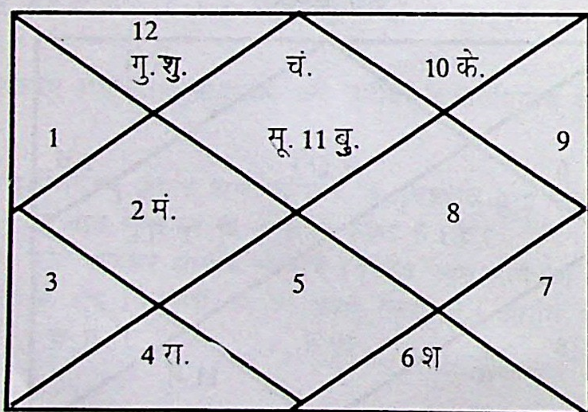
जातक पारिजात में एक स्थान पर 'जीवारमन्द लग्नेषु' कहकर उक्त योग में सन्यास कहा है। इसे भी मस्तिष्क में रखना चाहिए। बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री बल्लाभाचार्य जी का जन्म मंगल की राशि वृश्चिक लग्न में है तथा बृहस्पति नवमस्थ होकर सप्तमस्थ शनि से पूर्ण दृष्ट हैं। लेकिन यहाँ भी चन्द्र, लग्न व गुरु एक साथ शनि से दृष्ट भी हैं।

श्री वल्लभाचार्य



श्रीरामकृष्ण परमहंस का जन्म शनि के लग्न में है तथा शनि से गुरु पूर्ण दृष्ट होता हुआ भी त्रिकोण में नहीं है। अतः यति परमहंस योग ही हुआ, शास्त्रकार नहीं।

रामकृष्ण परमहंस



ध्यातव्य है कि श्री रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, चैतन्य महाप्रभु, अरविन्द घोष आदि की कुण्डली में भी बृहस्पति त्रिकोणों में बैठकर कथमपि बृहस्पति से दृष्ट है । अतः प्रव्रज्या योग न बनने पर भी विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न शास्त्रकार जैसे वराहमिहिर, आर्यभट्ट, न्यूटन आदि अथवा चाणक्य, बृहस्पति आदि आचार्य अथवा अपने क्षेत्र में विशेष शैली प्रतिपादन करने वाले व्यक्ति का जन्म उक्त परिस्थितियों में समझना चाहिए । भट्टोत्पल ने यहाँ शास्त्रकार होने का तात्पर्य केवल सन्यास या अध्यात्म से सम्बन्धित ही नहीं लिया है, वे किसी भी क्षेत्र में इस योग को सटीक मानते हैं–

'स पुरुषस्तीर्थकृत् शास्त्रकृद् भवेत्। कणादबुद्धपंचशिखवराहमिहिर ब्रह्मगुप्त प्रतिम इति ।

इसके विपरीत रुद्रभट्ट केवल अध्यात्मशास्त्रकार का आशय ही समझते हैं–

'अत्र प्रकरणवशात् प्रव्रजितैरध्येयानां शास्त्राणां कर्ता भवतीति द्रष्टव्यम् । ।

इति श्रीमन्महमितिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां प्रव्रज्यायोगाध्यायः पंचदशः । ।

[16]

अथ राशिशीलाध्यायः

चन्द्रमा की राशि का पृथक् फलः–

प्रस्तुत अध्याय में सब ग्रहों की विभिन्न राशियों में स्थिति से उत्पन्न फल का प्रतिपादन आचार्य ने किया है। सर्वप्रथम गणना क्रम से सूर्य का विभिन्न राशिगतत्वेन फल का प्रतिपादन योग्य था, तथापि सब फलों के अनुभावक तथा लग्न के तुल्य फलदायक होने से चन्द्रमा को विशेष श्रेणी प्राप्त है। इसी महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए आचार्य सर्वप्रथमतया चन्द्रमा की अधिष्ठित राशियों का फल बता रहे हैं। कहा जाता है कि ब्रह्मा जी ने सब ग्रहों को एक पलड़े में रखकर दूसरे पलड़े में चन्द्रमा को रखा तो चन्द्रमा वाला पलड़ा कुछ भारी ही रहा। यह ऐतिह्य इस प्रकार प्रसिद्ध है।

सृष्ट्वा ग्रहेन्द्रान् विदधे तुलायामेकत्र सर्वानपरत्र चन्द्रम्।
प्रजापतिः स्वैरमतोलयत्तान् विशिष्ट आसीद् हिमरश्मिभागः।।

अतः हमारे विचार से वक्ष्यमाण फल जन्म लग्न व चन्द्र से समान समझना चाहिए।

मेषस्थ चन्द्रमा का फल–

वृत्तताम्रदृगुष्णशाक लघुभुक् क्षिप्रप्रसादोऽटनः,
कामी दुर्बलजानुरस्थिरधनः शूरोऽङ्गनावल्लभः।
सेवाज्ञः कुनखी व्रणांकिताशिरा मानी सहोत्थाग्रजः,
शक्त्या पाणितलेऽङ्कितोऽतिचपलस्तोये च भीरुः क्रिये।। 1।।

जन्म समय में चन्द्रमा मेष राशि में स्थित हो तो जातक कुछ गोलाई लिए हुए तथा कुछ लालिमा या विशेष चमक लिए नेत्रों वाला, गर्म खाने वाला, शाक भोजी तथा कम खाने वाला, जल्दी ही प्रसन्न हो जाने वाला, भ्रमणशील, कामुक, कमजोर घुटनों वाला, चंचल धन वाला, शूर, स्त्रियों का प्रिय, सेवाकार्य को जानने वाला, नाखूनों में विकार युक्त, सिर में घाव का निशान पाने वाला, स्वाभिमानी, अपने भाइयों में सबसे बड़ा या अपने गुणों से अग्रणी, हथेली में भाले के आकार की रेखा से युक्त, अति चपल तथा जल से डरने वाला होता है ।

दुर्बलजानुः– अमांसल पादः जाँघ के सन्धि के स्थान पर कम मांस वाला ।

अस्थिरधनः– अस्थिर, दीर्घकाल तक न टिकने वाले धन वाला अथवा सदैव भिन्न रुचि वाला । भिन्न रुचित्वाद् अस्थिराणि धनानि यस्य इति ।

सेवाज्ञः– सेवा कार्य का जानकार अतएव सेवा चतुर, पराराधन कुशल ।

सहोत्थाग्रजः– सहोत्थेषु भ्रातृषु अग्रजः प्रथमः जन्मत्वाद्वा गुणाधिक्याद्वा ।

वृषस्थ चन्द्रमा का फल–

कान्तः खेलगतिः पृथूरुवदनः पृष्ठास्यपार्श्वेऽङ्कित-
स्त्यागी क्लेशसहः प्रभुः ककुदवान् कन्याप्रजः श्लेष्मलः ।
पूर्वैर्बन्धुभिरात्मजैर्विरहितः सौभाग्ययुक्तः क्षमी,
दीप्ताग्निः प्रमदाप्रियः स्थिरसुहृन्मध्यान्त्यसौख्यो गवि ।। 2 ।।

वृष राशि में चन्द्रमा रहने पर उत्पन्न व्यक्ति सुन्दर व दर्शनीय व्यक्तित्व वाला, विशिष्ट प्रभावोत्पादक गमन वाला, बड़े व भरे हुए मुखमंडल वाला, भारी जाँघों वाला, पीठ, मुख एवं पार्श्व (पेट का किनारा) में चिन्ह से युक्त, त्यागशील, क्लेश सहने की प्रवृत्ति, समर्थ, ऊँचे कन्धों वाला, कन्या सन्तति की अधिकता वाला, कफ प्रधान प्रकृति, बड़े भाई व पुत्रों से रहित, अर्थात् छोटे भाइयों वाला, सौभाग्यशाली, क्षमाभावना से युक्त, तीव्र भूख का अनुभव करने वाला, स्त्रियों से विशेष अनुराग रखने वाला या स्त्रियों का प्रिय, पक्की मित्रता रखने वाला, मध्यावस्था व वृद्धावस्था में विशेष सुख पाने वाला होता है ।

मिथुनस्थचन्द्रफल–

स्त्रीलोलः सुरतोपचारकुशलः श्यामेक्षणः शास्त्रविद्,
दूतः कुंचितमूर्धजः पटुमतिर्हास्येङ्गितद्यूतवित् ।
चार्वङ्गः प्रियवाक्प्रभक्षणरुचिर्गीतप्रियो नृत्तवित्,
क्लीबैर्याति रतिं समुन्नतनसश्चन्द्रे तृतीयर्क्षगे ।। 3 ।।

मिथुनस्थ चन्द्रमा से मनुष्य स्त्रियों के विषय में विशेष आकर्षण अनुभव करने वाला, शास्त्रोक्त विधि से सम्भोग करने वाला अर्थात् विभिन्न मुद्राओं, व विधियों से स्त्री को संतुष्ट व तत्पर करने में कुशल, काले नेत्रों वाला, शास्त्र तत्त्व को जानने वाला, दूतकर्म अर्थात् सन्देश वचन में निपुण, कुछ मुड़े बालों वाला, चतुर बुद्धि अर्थात् प्राज्ञ, हास्य एवं दूसरे के भावों को ताड़ लेने वाला, द्यूतक्रीड़ा के रहस्यों को समझने वाला, सुन्दर शरीर वाला, प्रिय वचन बोलने वाला, सदैव खाने के लिए तत्पर, गीतप्रिय, नृत्त अर्थात् नाटक व उसके अंगों को समझने वाला, गुणदोषज्ञ, नपुंसकों से प्रेम रखने वाला, एवं ऊँची नासिका वाला होता है।

भट्टोत्पली में **'ताम्रेक्षणः'** पाठ मिलता है। हमें रुद्रभट्टीय पाठ **'श्यामेक्षणः'** अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ है। नृत्त शब्द से नाट्य व उसके उपांगों का ग्रहण हो जाता है। दृश्य काव्य विधि के गुण-दोषों को समझने वाला अर्थात् समालोचक, आचार्य, नाट्यशास्त्र या नाट्य कला को पढ़ाने वाला इत्यादि। **'क्लीबैः'** शब्द हिजड़ों का वाचक होकर समाज के कमजोर, दलित या शारीरिक रूप से अशक्त व्यक्तियों का उपलक्षण समझना चाहिए।

कर्कस्थ चन्द्रमा का फल–

आवक्रद्रुतगः समुन्नतकटिः स्त्रीनिर्जितः सत्सुहृद्,
दैवज्ञः प्रचुरालयः क्षयधनैः संयुज्यते चन्द्रवत्।
ह्रस्वः पीनगलः समेति च वशं साम्ना सुहृद्वत्सल-
स्तोयोद्यानरतः स्ववेश्मसहिते जातः शशांके नरः।।4।।

यदि चन्द्रमा अपनी राशि में स्थित हो तो कुछ टेढ़ा होकर जल्दी चलने वाला, कमर के किनारों पर ऊँचे मांस वाला, स्त्रीजनों से विजित अर्थात् स्त्रियों से शीघ्र प्रभावित होने वाला, अच्छे मित्रों वाला, भाग्य को जानने वाला अर्थात् ज्योतिषी अथवा ज्योतिष में रुचि रखने वाला, प्रचुर अर्थात् खूब भवनों वाला, अथवा कई कमरों या मंजिलों के मकान में रहने वाला, चन्द्रमा के समान ही घटते बढ़ते हुए हानि लाभ वाला, छोटे कद वाला, मोटी गर्दन वाला, केवल शान्ति व प्रेम से वश में होने वाला, अपने मित्रों से विशेष स्नेह रखने वाला, जल व उद्यानों से विशेष प्रीति रखने वाला अर्थात् जलीय प्रदेशों व हरे भरे स्थानों में रुचि रखने वाला होता है।

सिंहस्थ चन्द्रमा का फल–

तीक्ष्णः स्थूलहनुर्विशालवदनः पिङ्गेक्षणोऽल्पात्मजः,
स्त्रीद्वेषी प्रियमांस काननगः कुप्यत्यकार्ये चिरम्।

क्षुत्तृष्णोदरदन्तमानसरुजा सम्पीडितस्त्यागवान्,

विक्रान्तः स्थिरधीः सुगर्वितमना मातुर्विधेयोऽर्कभे ।। 5 ।।

सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा से जातक तीखे स्वभाव वाला अर्थात् असहिष्णु, अर्थात् जल्दबाजी में काम करने वाला, मोटी हनु वाला, बड़े मुंह वाला, पिंगल अर्थात् काले व पीले मिश्रित नेत्रों वाला, कम पुत्रों वाला, स्त्रियों से द्वेष करने वाला, मांस-मदिरा के प्रति आकर्षण रखने वाला, वन व पर्वत प्रदेशों से विशेष स्नहे रखने वाला, बिना प्रसंग के निरर्थक क्रोध करने वाला, भूख, प्यास अधिक अनुभव करने वाला, पेट दाँत मन में विकार का अनुभव करने वाला, त्यागी, पराक्रमी, स्थिर बुद्धि, घमंडी तथा माता के वश में रहने वाला होता है ।

हनुः– सामान्यतः ठुड्डी को हनु समझ लिया जाता है । लेकिन आँखों के नीचे, गाल का ऊँचा उठा हुआ हिस्सा, जहाँ स्त्रियाँ नकली लाली लगाती हैं, गालों की वह ऊँची हड्डी हनु होती है ।

पिंगलेक्षणः– पिंगल वर्ण को समझने में प्रायः बड़ा भ्रम प्रचलित है । इसे सामान्यतः पीला वर्ण, हल्दी जैसा रंग समझ लिया जाता है । वास्तव में काला व पीला रंग मिलाने से बनने वाला रंग पिंगल है । पिंग, पिशंग या कपिल इसी रंग के पर्याय हैं । यह अमरकोष का मत है । कुछ विद्वान् नील-पीत मिश्रित को कपिल तथा गोरोचन या केसरी रंग को पिशंग कहते हैं । जलती हुई दीपक की लौ के रंग समान चमकीला, प्रभावशाली मिश्रित रंग पिंगल या पिशंग है, ऐसा हम समझते हैं । इसमें तेजस्विता व चमकीली आँखों का भाव है ।

पिङ्गः दीपशिखाभः स्यात् पिशङ्गः पद्मधूलिवत् । (भरत)

खिले कमल के समान तेजस्वी व चमकीली आँखों का भाव यहाँ स्पष्ट हो जाता है–

पद्मपत्राननः पिंगस्तेजसा प्रज्ज्वलन्निव । (महाभारत)

'कुप्यत्यकार्ये' के स्थान पर कहीं पर **'कुप्यत्यकाण्डे'** पाठ भी है । तब भी कोई हानि नहीं है । अकार्य अर्थात् निरर्थक एवं अकाण्डे अर्थात् अप्रसंग में ।

कन्यास्थ चन्द्रमा का फल–

व्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिः स्रस्तांसबाहुः सुखी,

श्लक्ष्णः सत्यरतः कलासु निपुणः शास्त्रार्थविद् धार्मिकः ।

मेधावी सुरतप्रियः परगृहैर्वित्तैश्च संयुज्यते,
कन्यायां परदेशगः प्रियवचाः कन्याप्रजोऽल्पात्मजः ।। 6 ।।

कन्या राशि में चन्द्रमा हो तो मनुष्य लज्जा व संकोच के कारण स्त्रियोचित हाव-भाव से युक्त दृष्टि व गति (चाल) वाला, झुके हुए कन्धों व लटके हुए हाथों (भुजाओं) वाला, सुखी, कोमल तन व मन वाला, सत्य का पक्षधर, कलाओं में निपुण, शास्त्रों के अर्थ को समझने वाला, धार्मिक, बुद्धिमान्, सम्भोगप्रिय, दूसरे के धन व मकान को पाने वाला, जन्मस्थान से अन्यत्र रहने वाला, प्रियभाषी, कन्या सन्तति वाला, कम पुत्रों वाला होता है ।

व्रीडामन्थरः– नीची शर्मीली आँखों का भाव है । स्त्रियों के स्वभाव वाला अर्थ मुख्य है । **व्रीडा लज्जा तथा मन्थरं सालसं चारु च वीक्षणं दृष्टिः गतिश्च यस्य, स्त्रीस्वभावयुक्त इत्यर्थः ।**

श्लक्ष्णः– कोमल । कोमल क्या ? वाणी की कोमलता व मनोहरता तो आगे **'प्रियवचाः'** कहकर स्वतः स्पष्ट ही है । तब तन की कोमलता तथा तज्जन्य स्वभाव की कोमलता का ग्रहण है ।

अल्पात्मजः– कम पुत्र वाला । कन्याप्रजः कहने से ही इसका बोध होने पर भी पृथक्तया कहने का प्रयोजन यही है कि प्रयत्न करने पर कम से कम एक पुत्र अवश्य हो जाता है । सामान्यतः कन्योत्पादक होने पर भी पुत्रोत्पादकत्व का सर्वथा निषेध नहीं है ।

तुलास्थ चन्द्रमा का फल–

देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः प्राज्ञः शुचिः स्त्रीजितः
प्रांशु सोन्नतनासिकः कृशचलद्गात्रोऽटनोऽर्थान्वितः ।
हीनांगः क्रय–विक्रयेषु कुशलो देवद्विनामा सरुग्,
बन्धूनामुपकारकृद् विरुषितस्त्यक्तश्च तैः सप्तमे ।। 7 ।।

तुला में चन्द्रमा रहने पर देवता, ब्राह्मणों व साधु सज्जनों का सत्कार करने वाला, बुद्धिमान्, पवित्र आचरण करने वाला अर्थात् दूसरे की स्त्री व धनादि का अलोलुप, सत्याचारणशील, स्त्री द्वारा वश में किया गया, ऊँचे कद वाला, ऊँची नाक वाला, कमजोर एवं अस्वस्थप्राय शरीर वाला, यात्रा प्रेमी, धनी, अंगहीन, क्रय-विक्रय में कुशल, देवता-वाचक किसी द्वितीय नाम

वाला अर्थात् सामान्यतः दो नामों वाला, रोगी, अपने बन्धु-बान्धवों का उपकार करने वाला, किन्तु अपने ही बन्धुओं से तिरस्कृत व त्यक्त होता है।

कृशचलद् गात्रः– कमजोर किन्तु चलता-फिरता शरीर। अर्थात् विशेष बल न होता हुआ, जैसे-तैसे जीवनचर्या चलाने वाला। **अथवा कृशानि चलन्ति स्तोकेनैव रोगभाजनानि भवन्ति गात्राणि यस्य।** अतः शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति की कमी वाला, ऐसा अर्थ भी युक्त है।

देवद्विनामाः– देवता वाचक किसी शब्द की उपाधि, नामांग, संज्ञा, तखल्लुस वाला अथवा 'देव' इस शब्द से युक्त नाम संज्ञा वाला जैसे वामदेव, सहदेव इत्यादि।

वृश्चिकस्थ चन्द्र का फल–

पृथुलनयनवक्षा वृत्तजङ्घोरुजानु–
र्जनकगुरुवियुक्तः शैशवे व्याधितश्च।
नरपतिकुलपूज्यः पिंगलः क्रूरचेष्टो,
झषकुलिशखगांकश्छन्नपापोऽलिजातः।।8।।

(मालिनी)

वृश्चिक राशि में चन्द्रमा हो तो मनुष्य बड़ी आँखों व छाती वाला, गोल पिण्डली, जाँघ व घुटनों वाला, पिता व गुरु से वियुक्त, बाल्यकाल में रोगी रहने वाला, राजकुल में सम्मान पाने वाला, पिंगल वर्ण, क्रूर चेष्टाओं वाला, हाथ या पैर में मछली, वज्र या पक्षी के चिन्हों से युक्त, गुप्त रूप से पापकर्म करने वाला होता है।

जनकगुरुवियुक्तः– माता पिता, गुरु अर्थात् अध्यापक या बड़े गौरवशाली लोगों द्वारा विशेष स्नेह न पाने वाला।

नरपतिकुलपूज्यः– राजकुल में सम्मानित अर्थात् बलाबलानुसार राजकीय सेवक, अधिकारी, राजमान्य या अतिविशिष्ट व्यक्ति समझें।

छन्नपापः– छिपकर, दूसरों को पता न लगे, ऐसी योजना करके दुर्व्यसन, वेश्यागमन, मदिरापान, द्यूत क्रीड़ा अथवा अन्य योग रहने पर विशेष अपराध करने वाला होता है।

धनुस्थ चन्द्रमा का फल–

व्यादीर्घास्य शिरोधरः पितृधनस्त्यागी कविवीर्यवान्,
वक्ता स्थूलरदश्रवोधरनसः कर्मोद्यतः शिल्पवित्।
कुब्जांसः कुनखी समांसलभुजः प्रागल्भ्यवान् धर्मवित्,
बन्धुद्विट् न बलात् समेति च वशं साम्नैकसाध्योऽश्विजः।।9।।

धनु-राशि में चन्द्रमा रहने पर बड़े मुख व लम्बी गर्दन वाला, पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करने वाला, त्यागी अर्थात् दानशील, काव्यादि को समझने वाला या कवि, पराक्रमी या अधिक वीर्य वाला, अच्छा वक्तव्य देने वाला, दाँत, कान, होंठ व नाक पर मोटाई लिए हुए, सदैव कर्मशील, शिल्प कला जानने वाला, आगे को झुके हुए कन्धों वाला तथा कन्धों के पीछे उठी हड्डी वाला, नाखूनों में विकार से युक्त, मांसल भुजाओं वाला, प्रगल्भतायुक्त अर्थात् प्रतिभाशाली, धर्मवेत्ता, अपने बन्धुओं से द्वेष करने वाला, हठ व शक्ति से वश में न होने वाला अर्थात् बल प्रयोग से अधिक असाध्य हो जाने वाला, प्रेम व कोमल व्यवहार मात्र से ही नियन्त्रित होने वाला होता है।

मकरस्थ चन्द्रमा का फल–

नित्यं लालयति स्वदारतनयान् धर्मध्वजोऽधः कृशः,
स्वक्षः क्षामकटिर्गृहीतवचनः सौभाग्ययुक्तोऽलसः।
शीतालुर्मनुजोऽटनश्च मकरे सत्त्वाधिकः काव्यविल्
लुब्धोऽगम्यजरांगनासु निरतः संत्यक्त लज्जोऽघृणः।। 10।।

मकर राशि में चन्द्रमा हो तो अपने परिवार (स्त्री व पुत्र) का विशेषतया पालन करने वाला, मन से अधार्मिक होता हुआ भी प्रयोजन विशेष से धार्मिक क्रिया करने वाला तथा धार्मिक चिन्ह धारण करने वाला, शरीर के निचले आधे हिस्से में अपेक्षाकृत पतलापन लिए हुए, सुन्दर आँखों वाला, पतली कमर वाला, सदैव कहना मानने वाला अथवा कही गई बात के रहस्य को अच्छी तरह समझ सकने वाला, सौभाग्यशाली, अलसाए तन मन वाला अथवा कार्य में अकुशल, शीत को सहन न करने वाला, भ्रमणशील, अधिक सत्त्व अर्थात् आत्म बल वाला, काव्यज्ञ, लोभ, नीची जाति की या अपने से बड़ी अवस्था वाली स्त्रियों के प्रति अनुरक्त, लज्जाहीन तथा दया रहित होता है।

कुम्भस्थ चन्द्रमा का फल–

करभगलः सिरालखररोमशदीर्घतनुः,
पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्य कटिर्जरठः।
परवनितार्थ पापनिरतः क्षयवृद्धियुतः,
प्रियकुसुमानुलेपन सुहृद् घटजोऽध्वसहः।।11।। (त्रोटक)

कुम्भ में चन्द्रमा रहने पर जातक लम्बी गर्दन वाला, दिखती नसों वाला, मोटे या कठोर रोमों वाला, लम्बे चौड़े शरीर वाला, बड़े पैर, बड़ी जाँघें, चौड़ी कमर, बड़ा मुँह व मोटी कटि (बेल्ट बाँधने की जगह) वाला

कठोर, दूसरे की स्त्री, दूसरे के धन को चाहने वाला, पापकार्यों में लगा रहने वाला, घटती बढ़ती अर्थात् अस्थिर या अनियमित आर्थिक स्थिति वाला, सजने-सँवरने का शौकीन, मित्रों को प्यार करने वाला तथा रास्ते की थकावट को सहन कर लेने वाला अर्थात् पैदल यात्राएँ करने में सक्षम होता है।

करभगलः– भट्टोत्पल ने ऊँट के समान गर्दन वाला तथा रुद्रभट्ट ने लम्बी गर्दन वाला कहा है। उभयत्र लम्बी व पतली गर्दन का आशय है। करभ का अर्थ उष्ट्रशिशु, हस्तिशिशु तथा हथेली का छोटी अँगुली की ओर वाला किनारा भी है। ऊँट की गर्दन लम्बी तथा हाथी की गर्दन छोटी व मोटी होती है। गुणाकर ने अपने होरामकन्द में **'उष्ट्रग्रीवः सुवितत शिरा'** कहकर निष्कर्ष स्पष्ट कर दिया है।

जरठः (बठरः)– भट्टोत्पली में 'जरठः' पाठ है। उसका अर्थ कठोर या परिपक्व होने से अवस्था से अधिक वृद्ध या जीर्ण दिखने का आशय समझना चाहिए। भट्टोत्पल ने 'मूर्ख' यह अर्थ किया है जो उचित नहीं है। मेदिनी कोष में कर्कश व कठिन, हेमचन्द्र के मत से पुराना, अनुभवी या वृद्ध, और विश्वकोष में परिपक्व अर्थ बताया है।

रुद्रभट्ट ने 'बठरः' पाठ माना है। वे कहते हैं–**बठरः निष्ठुरः (कठोरः)** बधिर इति वा बधिरो मूर्ख इति वा।'

कविकल्पद्रुम के मतानुसार बठ का अर्थ है–सामर्थ्य, **बठंराति गृह्णाति** इति बठरः समर्थो वा कठोरोवेति से भाव स्पष्ट हो जाता है। तब जरठ व बठर दोनों ही कठोरता वाचक होने से समानार्थक होकर तन व मन की कठोरता के द्योतक हो जाते हैं।

मीनस्थ चन्द्रमा का फल–

जलचरधनभोक्ता दारवासोऽनुरक्तः,
समरुचिरशरीरस्तुंगनासो बृहत्कः।
अभिभवति सपत्नां स्त्रीजितश्चारुदृष्टि-
र्द्युतिनिधि धनभोगी पण्डितश्चान्यराशौ।। 12।।

यदि मीन राशि में चन्द्रमा हो तो मनुष्य पानी से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के व्यापारादि से धन का भोग करने वाला, अपनी स्त्री व अपने पारिवारिक उपयोगार्थ प्रयोज्य वस्त्राभूषणादि के प्रति विशेष ध्यान देने वाला, समान व रुचिर शरीर वाला, उँची नाक वाला, बड़े सिर वाला, शत्रुओं का नाशक, स्त्री से वश में होने वाला, सुन्दर आँखों वाला, तेजस्वी, गड़े धन का भोगी एवं पण्डित अर्थात् विद्वान् होता है।

जलचर धनः– भट्टोत्पली में 'जलपरधन' पाठ मानकर जलीय पदार्थ या जलोत्पन्न वस्तुओं के साथ साथ पराये धन का भोग भी स्वीकार किया है। रुद्रभट्ट ने 'पर' के स्थान पर 'चर' पाठ माना है। जलचर धन से तात्पर्य मोती, मूँगा, सीपी, शंख आदि अथवा जलमार्ग से समुद्री यात्राएँ करके किया जाने वाला व्यापार, अथवा जलीय पदार्थ, कमल, जलीय शाक फलादि, मत्स्योद्योगादि द्वारा जातक धन कमाता है, ऐसा तात्पर्य स्पष्टतया आ जाता है। यदि 'पर' पाठ ही माना जाए तो पराये धन की कामना का निकृष्ट आशय न लेकर दूसरों के द्वारा दिए जाने वाले या दूसरे (माता पिता से अतिरिक्त) किसी व्यक्ति का उत्तराधिकार पाने वाली बात कुछ ठीक प्रतीत होगी।

अथवा 'पर' शब्द को 'परक' यथा धनपरक, जलपरक इत्यादिवत् मानकर जल सम्बन्धी धन का भोक्ता, यही अर्थ आता है।

अन्य ग्रहों के फल विवेक का नियम–

बलवति राशौ तदधिपतौ च स्वबलयुतः स्याद् यदि तुहिनांशुः।
कथितफलानामविकलदाता शशिवदतोऽन्येऽप्यनुपरिचिन्त्याः।।13।।

(भ्रमर विलसित)

जन्मसमय में चन्द्रमा जिस राशि में हो, वह राशि तथा चन्द्रमा की राशि का स्वामी यदि बलवान् हों तथा चन्द्रमा स्वयं भी पक्षादि बलों से युक्त हो तो पूर्वोक्त सब फल अविकल रूप से मिलते हैं। अर्थात् तीनों बातें मिलती हों तो पूरा फल मिलता है। दो के बलवान् रहने पर मध्यम फल, एक के बलवान् रहने पर साधारण फल तथा किसी के भी बली न रहने पर कुछ भी पूर्वोक्त फल नहीं मिलता अथवा अत्यन्त साधारण, नाममात्र फल ही मिलता है।

इसी पद्धति से अर्थात् राशि, राशीश व स्वयं विचारणीय ग्रह के बलाबल को देखकर चन्द्रमा की तरह ही अन्य ग्रहों का फल भी निश्चित करना चाहिए।

बलवति राशौ–– भाव व ग्रहफल विचार का मौलिक सिद्धान्त बताया गया है। अधिष्ठित राशि, राशीश तथा स्वयं विचारणीय ग्रह बलवान् हो तो उक्त तथा वक्ष्यमाण सारा फल मिलेगा, यह प्रारम्भिक बात हुई।

यदि राशि निर्बल हो तो यहाँ चन्द्रमा के फल में राशि सम्बन्धी जो फल कहा है, उसका अभाव होगा। जैसे मेष राशि में राशि स्वभाव से

सम्बन्धी फल है– शाक भोजी, कम खाना, अटनत्व, कामी, कुनखी, भीरु आदि फल, मेष राशि के कमजोर होने पर नहीं होगा या कम होगा।

राशि का बल कैसे जानेंगे ? स्थूलतया शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट अथवा स्वामी से युक्त या दृष्ट तथा अन्य ग्रहों से अदृष्ट अयुक्त राशि बली होगी, यह पूर्वोक्त नियम यहाँ अपनाया जाएगा।

यदि राशीश निर्बल हो तो मंगल से सम्बन्धित फल–– शूरता, सत्त्व, क्षिप्रप्रसादत्व, मानी, चपलता, वृत्त एवं आताम्र नेत्र आदि फलों में न्यूनता रहेगी।

यदि स्वयं चन्द्रमा निर्बल हो (या विचारणीय ग्रह निर्बल हो) तो दुर्बलजानु, अस्थिरधन, अंगना वल्लभत्वादि फल यथायोग्य न्यून रहेगा। इसी प्रकार सूर्यादि अन्य ग्रहों के विषय में भी स्वबुद्धि से समझना चाहिए। यदि तीनों बातें निर्बल हों तो मनुष्य को उक्त फल वास्तव में न मिलकर कल्पना, स्वप्न, इच्छा, आकांक्षागत फल समझने योग्य हैं।

अनुपरिचिन्त्याः– चन्द्रमा की तरह ही अन्य ग्रहों की राशि, राशीश व ग्रह के बलानुसार फल निश्चय करें। यहाँ 'अनु' शब्द का अर्थ इत्थंभूत अर्थात् यथावत् है। आशय है कि ठीक इसी प्रकार से सकल फल की परिकल्पना चाहिए।

लग्न के विषय में भी ध्यान रखिए कि चन्द्रमा का पूर्वोक्त राशि फल यथावत् लग्न राशि से भी समझना चाहिए। लेकिन लग्न की राशि एवं लग्न राशीश की बलवत्ता में सम्पूर्ण फल तथा एक की बलवत्ता में साधारण तारतमिक फल का विवेक कर लेना चाहिए। अथवा लग्न राशि पर गुरु बुध व लग्नेश की दृष्टि या योग हो तथा अन्य योग न हो तो पूर्ण फल, गुरु, बुध स्वामी में से दो का योग, दृष्टि आदि हो तो मध्यम फल तथा एक की बलवत्ता हो तो न्यूनतम फल समझें।

विशेष वक्तव्यः– सन्देह निवारणार्थ, केवल भट्टोत्पली पढ़ने वाले जिज्ञासुओं के लिए हमें यहाँ कहना है कि **राशि शीलाध्याय** नामक इस अध्याय में चन्द्रराशिशील तथा आगे वक्ष्यमाण सूर्यादि शेष ग्रहों की राशि स्थिति संयुक्त रूप से कही जानी योग्य है। स्वयं वराहमिहिर ने ग्रन्थ के अन्त में सब अध्यायों का नामोल्लेख करते हुए **'प्रव्रज्यातो राशिशीलानि दृष्टेः'** कहकर प्रव्रज्याध्याय, राशिशीलाध्याय, व तत्पश्चात् दृष्टि फलाध्याय यह क्रम कहा है। ऐसा मानने पर ही संगति बैठती है। भट्टोत्पल ने राशि–शीलाध्याय को चन्द्र राशि व राशिशील इन दो भागों में बाँट कर 'ऋक्षशीलाध्याय' नामक एक अतिरिक्त अध्याय 'बृहत्संहिता' से यहाँ रखकर अध्याय संख्या 27 तथा 28 वाँ उपसंहाराध्याय बना दिया है। वास्तव में बृहज्जातक में 25

ही अध्याय हैं। राशिशील व चन्द्र राशिफल को एक साथ एक अध्यायान्तर्गत रखने तथा ऋक्षशील नामक अतिरिक्त अध्याय को निकाल देने से 25 अध्याय सिद्ध हो जाते हैं। उपसंहार को अलग अध्याय मानना स्वैच्छिक है। वराह ने स्पष्ट कहा है–

अध्यायानां विंशतिः पंचयुक्ता जन्मन्येतद्..... ।

रुद्रभट्ट ने पच्चीस अध्यायों वाला विभाग ही माना है–

अतः हमने भी ऋक्षशीलाध्याय को ग्रन्थ बाह्य समझकर आचार्य के स्वयं बताए गए विभागानुसार अध्याय बाँट दिए हैं। पाठक सन्देह न करें।

सूर्य राशि शील विचार–

प्रथितश्चतुरोऽटनोऽल्पवित्तः
क्रियगे त्वायुधकृद् वितुंगभागे ।
गविवस्त्रसुगन्धपण्यजीवी
वनिताद्विट् कुशलश्च गेयवाद्ये ।। 14 ।।

(औपच्छन्दसिक)

अगले श्लोक में स्थित 'भानौ' पद से सम्बन्ध है। सूर्य परमोच्च को छोड़ कर मेष राशि में हो तो जातक प्रसिद्ध, चतुर, भ्रमणशील, कम संचित धन वाला, शस्त्र बनाने वाला अथवा 'भृत्' पाठ मानकर शस्त्र धारण करने वाला होता है।

वृष राशि में वस्त्र, सुगन्ध तथा अन्य समान प्राकृतिक वस्तुओं के व्यापार से जीविका चलाने वाला, स्त्रियों के प्रति विशेष आदर न रखने वाला अर्थात् स्त्री द्वेषी, गान व वाद्य में निपुण होता है।

'वितुंगभागे' अर्थात् तुंगभाग उच्चांश, परमोच्च को छोड़कर शेष अंशों में मेष गत सूर्य का उक्त फल है। पहले राजयोगादि में परमोच्चगत सूर्य को परम योगकारक कहा है। अतः मेष में परमोच्च में सूर्य हो तो व्यक्ति प्रसिद्ध, चतुर लेकिन बहुवित्त, तथा शस्त्रधारियों से घिरा हुआ होता है, ऐसा फल समझना चाहिए।

'आयुधभृत्' तथा आयुधकृत् दोनों ही पाठ मिलते हैं। हमारे विचार से परमोच्चगत सूर्य में 'आयुधभृत्' अर्थात् स्वयं शस्त्रधारी तथा अनेक सशस्त्र सैनिकों से युक्त होता है, जो कि राजयोग में युक्ति-युक्त ही है। परमोच्च के अतिरिक्त कहीं मेष राशि में रहने पर आयुधकृत् होता है। अर्थात् शस्त्र

निर्माता, शस्त्रादि का व्यवसायी आदि होता है। जो शस्त्र निर्माता हो वह स्वयं भी शस्त्र धारण कर ही सकता है।

मिथुन कर्क सिंह कन्यास्थ सूर्य का फलः–

विद्याज्यौतिषवित्तवान् मिथुनगे भानौ कुलीरे स्थिते,
तीक्ष्णोऽस्वः परकार्यकृच्छ्रमपथक्लेशैश्च संयुज्यते।
सिंहस्थे वनशैलगोकुलरतिर्वीर्यान्वितो ज्ञः पुमान्,
कन्यास्थे लिपिलेख्यकाव्यगणितज्ञानान्वितः स्त्रीवपुः।। 15।।

(शार्दूलविक्रीडित)

मिथुन में सूर्य हो तो मनुष्य विद्यावान् तथा विशेषतया ज्योतिष (भौतिकी-उपग्रहविज्ञान, साक्षात् सिद्धान्त ज्योतिष, गणित, आदि) में कुशल होता है।

कर्क में सूर्य हो तो मनुष्य तीखे स्वभाव वाला अथवा जल्दबाजी व जोश में आकर जल्दी कार्य करने वाला, अस्व अर्थात् धनहीन दरिद्र, दूसरों का कार्य करने वाला, यात्रा, भागदौड़, प्रैष्यत्व, नौकरी आदि के परिश्रम से पीड़ित रहने वाला होता है।

यदि सिंह में सूर्य स्थित हो तो वन, पर्वत, गायों का स्थान, डेरीफार्म, कृषि फार्म आदि से स्नेह रखने वाला, बलवान् पराक्रमी तथा (ज्ञः) बुद्धिमान् होता है।

कन्या में सूर्य स्थित हो तो मनुष्य लेखन, लिपि, सम्पादन, काव्य, गणितादि विषयों से सम्बन्धित ज्ञान युक्त तथा स्त्रियों के समान कोमल व भंगिमापूर्ण शरीर वाला होता है।

'परकार्यकृच्छ्रमः इत्यादि प्रसंग में विवरणकार ने 'पथ' के स्थान पर वध पाठ माना है। तब इसका अर्थ वध अर्थात् हिंसा तथा उससे उत्पन्न श्रम अर्थात् पश्चाताप या मानसिक क्लेश से युक्त, माना जाएगा। इस पाठ में भी दोष नहीं है।

'ज्ञः' यह पाठ भट्टोत्पली में नहीं माना गया है। वहाँ पर 'अज्ञः' पाठ है। अज्ञ अर्थात् मूर्ख अर्थात् 'ज्ञ' का विलोम। सिंह राशि सूर्य की मूलत्रिकोण राशि है। उसमें स्वक्षेत्री या मूलत्रिकोणी होकर सूर्य जातक को मूर्ख कैसे बना सकेगा? स्वक्षेत्री से मूलत्रिकोणी ग्रह अधिक बलवान् होता है। पुनश्च 'आत्मा' रूप सूर्य स्वक्षेत्री अर्थात् स्वस्थ होकर आत्मा के ही गुणों का कैसे नाश करेगा? अतः हमने विवरणकार का पाठ माना है।

'ज्ञः आत्मस्वरूपस्य सत्वगुणात्मकस्य सकलप्रकाशकस्य

भानोर्मूलत्रिकोणक्षेत्रभूते सिंहे स्थितस्य फलमज्ञत्वं न सम्भवेद्, अतोऽत्र ज्ञ इति पाठः ।'

'स्त्री वपुः' से तात्पर्य स्त्रियोचित कोमल, गदराया, स्निग्ध शरीर तथा कुछ स्त्रियोचित हाव भाव यथा आँखें अधिक झपकना, कुछ मटक कर चलना अथवा अधिक कटीली भौंह आदि होना समझना चाहिए ।

तुलादि चार राशियों में सूर्य का फल–

जातस्तौलिनि शौण्डिकोऽध्वनिरतो हैरण्यको नीचकृत्,
क्रूरः साहसिको विषार्जितधनः शास्त्रान्तगोऽलिस्थिते ।
सत्पूज्यो धनवान् धनुर्धरगते तीक्ष्णो भिषक् कारुको
नीचोऽज्ञः कुवणिङ् मृगेऽल्पधनवाँल्लुब्धोऽन्यभाग्ये रतः ।। 16 ।।

यदि सूर्य जन्म समय में तुला राशि में स्थित हो तो मनुष्य शराब बनाने या बेचने वाला, सदैव भ्रमणशील अर्थात् प्रयोजन या अप्रयोजन से सदैव चलता फिरता रहने वाला, अस्थिर चरण, धन लोलुप, धनार्थ नीच कार्य करने वाला होता है ।

वृश्चिकस्थ सूर्य में मनुष्य क्रूर स्वभाव वाला, साहसी अर्थात् परिणाम की परवाह न कर, आचरण करने वाला, विष अर्थात् जहरीले पदार्थो के प्रयोग, चिकित्सा या व्यवसाय से धन कमाने वाला, अपने विषय में पारंगत होता है ।

धनुःस्थ सूर्य से जातक सज्जनों द्वारा माननीय, धनवान्, तीखा, चिकित्सक, शिल्पकला जानने वाला अर्थात् लकड़ी आदि का कारीगर होता है ।

मकरस्थ सूर्य से मनुष्य नीच अर्थात् कुल मर्यादा के अनुसार कर्म न करने वाला, मूर्ख तथा अकुशल व्यापारी, कम धन वाला, लोभी किन्तु दूसरों की भाग्य वृद्धि से प्रसन्न होने वाला होता है ।

शौण्डिकः– 'शुण्डा करिकरेमद्ये' इत्यादि कोषवचन से शराब व हाथी की सूँड 'शुण्डा' कहलाती है । **शुण्डया निमित्तीभूतया जीवतीति शौण्डिकः** अर्थात् शराब के कारण जीने वाला, बेचने वाला इत्यादि रुद्रभट्ट ने यहाँ हस्ति शिक्षा का आशय भी लिया है, अर्थात् हाथियों को साधने वाला, हाथी से जीविका कमाने वाला इत्यादि । लेकिन हम इस अर्थ को विशेष उपयुक्त नहीं समझते । 'मद्य' या शराब से नशीले पदार्थों का तात्पर्य लेकर गूढ़ परीक्षण द्वारा, ग्रह दृष्टि, योग, द्रेष्काण, नवांश व द्वादशांश आदि में सूर्य का विचार करके पान, बीड़ी, तम्बाकू, अफीम, चरस या तात्कालिक प्रसिद्ध मादक पदार्थ का निर्णय करना चाहिए ।

अध्वनिरतः से तात्पर्य है सदैव चक्रवत् घूमने वाला, एक स्थान पर टिक कर न बैठने वाला अर्थात् घर में हो तो कार्य स्थान के लिए तथा कार्य स्थान पर हो तो घर के लिए अथवा सदैव अन्य स्थान पर जाने के लिए बेचैन रहे ।

हैरण्यकः– भट्टोत्पल ने इसका अर्थ 'सुनार' किया है । हमारे विचार से ऐसा व्यक्ति सुनार का कार्य भी करे तो बदनाम व सीमा से अधिक बेईमान हो । यह भट्टोत्पलीय अर्थ वैकल्पिक है । हमारे विचार से 'हिरण्य अर्थात् सोना, कुत्सार्थक निन्दाद्योतक 'कन्' प्रत्यय करने पर 'हैरण्यक' शब्द बनेगा । **अतः हिरण्य प्रयोजनो हैरण्यः +कन् अर्थात् कुत्सितो हैरण्यः हैरण्यकः** । तब इसका अर्थ है सोने या धन के लिए कुछ भी निन्दित कार्य करने के लिए उतारू और सदैव सोने के लिए मारा-मारा फिरने वाला, उत्कट धन कामी । जब इतनी बातें होंगीं तो व्यक्ति कीर्ति, सदुत्साह, सज्जनोचित गुणों, ईमानदारी आदि से हीन हो तो क्या आश्चर्य ? प्रायः तुलार्क में उत्पन्न बालक तन, धन, मन या सन्तान में कहीं न कहीं विशेष न्यून होता है । इसी कारण 'कार्तिक मासोत्पन्न' व्यक्ति की शान्ति आचार्यों ने कही है । तुलार्क में भी प्रारम्भिक तीन दिनों में तुला नवांश रहने पर तथा परम नीच तुलार्क 10^0 अंश तक परम अशुभ फल ततः उत्तरोत्तर कम अशुभ फल समझना चाहिए ।

उच्चस्थोऽपि तुलांशे वा स्थितः कमलबोधनः ।
सार्वभौमस्य पुत्रोऽपि नीचत्वमधिगच्छति ।।
तुलायां दशमे भागे स्थितः कमलबोधनः ।
सहस्रं राजयोगानां नाशयत्याशु जन्मनि ।।

(पृथुयशा)

अतः तुलार्क में उत्पन्न व्यक्ति स्वभाव, कर्म, वाणी, व्यक्तितत्त्व आदि में कहीं न कहीं अप्रशस्त होता है, यह निश्चित है । इसकी विधानपूर्वक शान्ति करानी चाहिए । इस विषय में विशेषतया 'बृहंत्पाराशर होराशास्त्र की व्याख्या में लिखेंगे ।

कुम्भमीनार्क फल तथा तिलादि विचार–

नीचो घटे तनयभाग्यपरिच्युतोऽस्व-
स्तोयोत्थपण्यविभवोवनिताहृतोऽन्त्ये ।
नक्षत्रमानवतनुप्रतिमे विभागे,
लक्ष्मादिशेत् तुहिनरश्मिदिनेशयुक्ते ।। 17 ।।

कुम्भस्थ सूर्य में जन्म होने पर मनुष्य नीच अर्थात् कुल जाति व स्तर के अनुरूप कार्य न करने वाला, पुत्रहीन तथा भाग्यहीन अथवा पुत्रों द्वारा तिरस्कृत, धनहीन (अस्व) होता है ।

मीनस्थ सूर्य में जन्म होने पर जल से उत्पन्न पदार्थों के व्यवसाय (मोती, मूँगा, कमल, मछली, समुद्रीखाद्य, सिंघाड़ा, धान, पान, केला आदि) से खूब धन कमाने वाला तथा स्त्रियों द्वारा विशेषतया सत्कृत व मान्य होता है ।

सूर्य व चन्द्रमा एक साथ जिस नवांश (विभाग) या राशि में हों, वह नक्षत्र मानव शरीर में या पूर्वोक्त **'कालांगानि वरांगमाननमुरः'** प्रभृति श्लोकोक्त राशि विभाग से जिस अंग में पड़े, उसी शरीरांग में तिल, या घाव या मस्सा लहसुन आदि होता है ।

इस प्रकार सूर्य व चन्द्रमा का राशि फल तथा सूर्य राशि के व्याज से जन्ममास फल भी यहाँ कह दिया है । लग्न, सूर्य व चन्द्र राशि के फल का समन्वय कर मनुष्य के व्यक्तित्त्व का निर्धारण विश्लेषणपूर्वक करना चाहिए ।

नक्षत्रमानवतनुप्रतिमे–

पहले काल पुरुष के शरीर में राशियों का न्यास बताया गया है । राशियों के अनुसार ही नक्षत्रों की तत्तत् अंगों में कल्पना करने से निर्मित या कल्पित मानव शरीर–– जैसे मेष राशि सिर में रहने से अश्विनी, भरणी व कृत्तिका का प्रथम चरण सिर में माना जाएगा । यह एक प्रकार है । भट्टोत्पल ने इसी प्रकार से व्याख्या की है ।

'नक्षत्र मानवको राशिपुरुषः कालांगानीत्यादिना प्रदर्शितः ।'

लेकिन वराह मिहिर ने स्वयं अपनी संहिता में 'नक्षत्र पुरुष' का स्वरूप बताया है । तदनुसार ही यहाँ अर्थ लेना अधिक उपयुक्त है ।

नक्षत्र पुरुष चक्र

अंग	नक्षत्र	अंग	नक्षत्र	अंग	नक्षत्र
पैर	मूल	**पेट**	रेवती	**कान**	श्रवण
पिंडली	रोहिणी	**छाती**	अनुराधा	**मुख**	पुष्य
घुटने	अश्विनी	**पीठ**	धनिष्ठा	**दाँत**	स्वाती

जांघ	पूर्वा/उत्तराषाढ़	**हाथ**	हस्त	**नेत्र**	मृगशिरा
गुप्तांग	पूर्वा/उत्तराफाल्गुनी	**अंगुलियाँ**	पुनर्वसु	**मस्तक**	चित्रा
कमर	कृतिका	**नख**	श्लेषा	**सिर**	भरणी
दोनों पार्श्व	**पूर्वोत्तरा भाद्रपद**	**ग्रीवा**	ज्येष्ठा	**बाल**	आर्द्रा

एक प्राचीन टीका में पाराशर होरा के नाम से नक्षत्र मानव का स्वरूप पृथक् प्रकार से दिया गया है। इसमें व्यक्ति का जन्म नक्षत्र सर्वप्रथम रखकर ततः क्रमशः 1. 1. 3. 1. 1. 4. 3. 5. 1. 4. 3 नक्षत्रों को मुख, बायीं आँख, मस्तक, दायाँ फेफड़ा, गले का दायाँ भाग, दाँया हाथ व दायाँ पैर, बायाँ फेफड़ा, बायाँ हाथ व बाएं पैर में स्थापित करके नक्षत्र मानव बनाना चाहिए।

उक्त नक्षत्र शरीर के जिस अंग के नक्षत्रों में बलवान् पापी ग्रह अशुभ होकर बैठे, उसी अंग में व्रण, चोट या निशान आदि होता है।

शशि चन्द्रानल हिमकर शशियुग गुणभूत चन्द्रवेद गुणाः।
मुखवामनेत्रमस्तकदक्षिणहृत्कण्ठहस्तपादेषु ।।
हृद्गल वामकरांघ्रिषु नरस्य रणकांक्षिणोऽंगानि ।।

(पराशर होरा)

हमारे विचार से बृहत्संहिता वाला नक्षत्र मानव यहाँ गृहीत है। तदनुसार सूर्य व चन्द्र जिस नवांश अर्थात् नक्षत्र चरण में पड़ें, चाहे एकत्र हों या पृथक, वहीं पर तिलादि बताना चाहिए।

मंगल का राशि फल

नरपतिसत्कृताटनचमूपवणिक् सधनान्,
क्षततनुचौरभूरिविषयांश्च कुजः स्वगृहे।
युवतिजितान् सुहृत्सुविषमान् परदाररतान्,
कुहुकसुवेषभीरुपरुषान् सितभे जनयेत् ।। 18 ।।

मेष या वृश्चिक में स्थित मंगल हो तो मनुष्य राज पक्ष से सत्कार पाने वाला, भ्रमणशील, सेनापति, व्यापारी व धनी होता है। साथ ही शरीर पर घाव पाने वाला, चौर्यवृत्ति से युक्त, अधिक विषय भोगों वाला अर्थात् अजितेन्द्रिय होता है।

वृष या तुला में स्थित मंगल स्त्रियों के वश में रहने वाला, मित्रों से रूखा व्यवहार करने वाला, परस्त्री लोभी, माया, छल-कपट में चतुर, सुन्दर व आकर्षक वेशभूषा वाला, डरपोक तथा कर्कश होता है।

यदि मंगल शुभयुक्त, शुभदृष्ट, मूलत्रिकोणी, उच्चारोही हो तो शुभफल तथा स्वक्षेत्रादि में होता हुआ भी अस्त, शत्रु दृष्ट युक्त हो तो पूर्वोक्त अशुभ फलों को समझना चाहिए । यह बात सब ग्रहों पर लागू होगी ।

बुध व चन्द्र की राशि में मंगल का फलः–

बौधे सह स्तनयवान् विसुहृत् कृतज्ञो,
गान्धर्वयुद्धकुशलः कृपणोऽभयोऽर्थी ।
चान्द्रेऽर्थवान्सलिलयानसमार्जितस्वः,
प्राज्ञश्च भूमितनये विकलः खलश्च ।। 19 ।। (वसन्ततिलका)

मिथुन व कन्या में स्थित मंगल हो तो मनुष्य बलवान् (सहः) अथवा तेजस्वी (असहः), पुत्रों से युक्त, मित्रों से रहित, किए गए उपकार को मानने वाला, गान नृत्यादि एवं युद्ध में कुशल, कंजूस, निर्भय तथा धनी होता है ।

कर्कस्थ (नीचगत) मंगल से मनुष्य धनवान्, जलयानों द्वारा खूब धन कमाने वाला, बुद्धिमान्, विकलांग तथा नीच या शठ होता है ।

सहः– **'सहसी बलरंहसी'** यह यादव कोष में कहा गया है । अतः 'सहः' अर्थात् बलयुक्त । यदि 'असहः' पाठ मानें तो असह्य तेजवाला अर्थात् दबंग, तेजस्वी अर्थ युक्त है । दोनों ही बातें अन्त में बलाधिक्य पर पर्यवसित हो जाती हैं ।

अर्थीः– भट्टोत्पल ने अर्थी का याचक अर्थ क्रिया है । लेकिन अन्य गुणों से मेल न खाने के कारण 'अर्थी अर्थात् अर्थवान् धनवान् यह अर्थ किया गया है ।

परम नीच में रहने पर मंगल सारे अशुभ फल तथा नीचभ्रष्ट होने पर क्रमशः परिपुष्ट होने वाले शुभ फल देता है, ऐसा तारतम्य समझना चाहिए ।

सूर्य गुरु शनि की राशि में मंगल का फलः–

निः स्वः क्लेशसहोऽभयो वनचरः सिंहे ऽल्पदारात्मजो,
जैवे नैकरिपुर्नरेन्द्रसचिवः ख्यातोऽभयोऽल्पात्मजः ।
दुःखार्तो विधनोऽटनोऽनृतरतिस्तीक्ष्णश्च कुम्भे स्थिते,
भौमे भूरिधनात्मजो मृगगते भूपोऽथवा तत्समः ।। 20 ।।

यदि जन्म समय में सिंह राशि में मंगल स्थित हो तो मनुष्य निर्धन, कष्ट सहन करने वाला, निडर, वन्य प्रदेशों में विशेषतया विहार करने वाला, कम पत्नी सुख वाला अथवा बहुविवाह प्रथा में कम पत्नियों वाला, कम पुत्रों वाला होता है ।

धनु मीन राशि में स्थित मंगल से जातक अनेक शत्रुओं वाला, राजा का सचिव, प्रसिद्ध, निडर तथा कम पुत्रों वाला होता है ।

कुम्भ में मंगल हो तो दुःखी, धनहीन, भ्रमणशील, झूठा व्यवहार करने वाला, तीक्ष्ण स्वभाव होता है ।

मकरस्थ मंगल से खूब धनवाला, राजा अथवा राजा के समकक्ष होता है ।

बुध का राशिगत फल

द्यूतर्णपानरतनास्तिकचौरनिःस्वः कुस्त्रीककूटकृदसत्यरतः कुजर्क्षे ।
आचार्यभूरिसुतदारधनार्जनेष्टः शौक्रे वदान्यगुरुभक्तिरतश्च सौम्ये ।। 21 ।।

जन्म कालीन बुध यदि मेष वृश्चिक राशि में हो तो मनुष्य जुआ खेलने वाला, कर्ज करने वाला, शराब आदि पीने वाला, नास्तिक, चौर वृत्ति तथा निर्धन होता है । ऐसा व्यक्ति कुत्सित स्त्रीवाला, छलकपट करने वाला, असत्य भाषण व व्यवहार में रत भी होता है ।

वृष या तुला में स्थित बुध हो तो मनुष्य आचार्य अर्थात् उपदेशक, प्रवक्ता आदि, खूब पुत्र, स्त्री व धन चाहने वाला, दानशील, गुरुभक्त होता है ।

मिथुन कर्कस्थ बुध फलः–

विकत्थनः शास्त्रकलाविदग्धः, प्रियंवदः सौख्यरतस्तृतीये ।
जलार्जितस्वः स्वजनस्य शत्रुः, शशांकजे शीतकरर्क्षयुक्ते ।। 22 ।।

(इन्द्रवज्रा)

मिथुन राशि में स्थित बुध से व्यक्ति बड़ बोला, आत्म प्रशंसक, शास्त्रों व कलाओं में विशेष रुचि रखने वाला व उनका पारखी, प्रियभाषी तथा सुख भोगों में रत रहने वाला होता है ।

कर्कस्थ बुध से व्यक्ति जलीय संसाधनों से विशेष लाभ कमाने वाला, अपने ही लोगों का शत्रु होता है ।

किसी प्रति में **'बलार्जितस्वः'** पाठ भी प्राप्त है । तब इसका अर्थ **'अपने बल से धन कमाने वाला'** होगा ।

सिंह कन्यास्थ बुध का फलः–

स्त्रीद्वेष्यो विधनसुखात्मजोऽटनोऽज्ञः,
स्त्रीलोलः सुपरिभवोऽर्कराशिगे ज्ञे ।

त्यागी ज्ञः प्रचुरगुणः सुखी क्षमावान्,
युक्ति ज्ञो विगतभयश्च षष्ठराशौ ।।22।।

(प्रहर्षिणी)

जन्म समय में सिंह राशि में बुध स्थित हो तो मनुष्य स्त्रियों से द्वेष भाव रखने वाला, धनहीन, पुत्रहीन, सुखहीन, भ्रमणशील व मूर्ख, स्त्रियों के विषय में चचंल विचारों वाला, खूब अपमान पाने वाला होता है।

कन्या राशि में बुध हो तो मनुष्य अनेक गुणों से युक्त, सुखी, क्षमाशील, तर्क व विचारों को समझने वाला, भयरहित होता है।

शेष राशियों में बुध का फल–

नृपसत्कृतपण्डिताप्तवाक्यो नवमेऽन्त्ये जितसेवकोऽन्त्यशिल्पः ।
परकर्मकृदस्वशिल्पबुद्धी ऋणवान् विष्टिकरो बुधेऽर्कजर्क्षे ।। 23 ।।

(औपच्छन्दसिक)

धनु राशि में बुध स्थित हो तो मनुष्य राजाओं से सम्मान पाने वाला, विद्वान्, प्रामाणिक व विश्वसनीय बात कहने वाला होता है।

मीन राशि में स्थित बुध से मनुष्य अपने सेवकों को जीतने वाला अर्थात् सहयोगियों, कर्मचारियों में अति प्रिय, अथवा सब सेवकों में उत्कृष्ट, हीन समझे जाने वाले शिल्पों में चतुर होता है।

मकर या कुम्भ में बुध स्थित हो तो मनुष्य दूसरों की नौकरी चाकरी, सेवा आदि करने वाला, दरिद्र, शिल्पों या कलाओं में बिल्कुल रुचि न रखने वाला, ऋणी एवं बोझ ढ़ोने वाला अथवा अत्यधिक विषम परिस्थितियों में दबाव में रहकर कार्य करने वाला होता है।

बृहस्पति का राशि गत फल

सेनानीर्बहुवित्तदारतनयो दाता सुभृत्यः क्षमी,
तेजोदारगुणान्वितः सुरगुरौ ख्यातः पुमान् कौजभे ।
कल्यांगः ससुखार्थमित्रतनयस्त्यागी प्रियः शौक्रभे,
बौधे भूरिपरिच्छदात्मज सुहृत्साचिव्ययुक्तः सुखी ।। 24 ।।

मेष या वृश्चिक राशि में बृहस्पति स्थित हो तो मनुष्य सेनानायक, बहुत धनी, स्त्री व पुत्रों से युक्त, दानशील, त्याग भावना से युक्त, अच्छे व अनुकूल सेवकों को प्राप्त करने वाला, क्षमावान्, तेजस्वी, अपराजेय, सौम्य, प्रसिद्ध होता है।

वृष या तुला में बृहस्पति स्थित हो तो स्वस्थ शरीर वाला, सुख, धन व मित्रों से युक्त, त्यागशील, प्रिय होता है।

मिथुन कन्या राशि में गुरु स्थित हो तो मनुष्य बहुत बड़े परिवार वाला, खूब वस्त्र, आभूषण व उपयोग की सामग्री से युक्त, खूब पुत्रों से युक्त, अनेक मित्रों वाला, सचिव कर्म अर्थात् मन्त्रणा, दूतत्व या सलाहकारी में निपुण, सुखी होता है।

दारगुणान्वितः– यहाँ 'दारगुण' अर्थात् स्त्रीगुण (सुख) से तात्पर्य मानने में पुनरुक्ति दोष होता है। अतः 'दारगुण' से तात्पर्य कोमल, सौम्य गुणों से युक्त अथवा 'अदार' शब्द मानने से अकोमल, असौम्य गुणों से युक्त अर्थ मानने पर अपराजेय अथवा मृदु व्यवहार वाला, अनुकरणीय अर्थ मानना अधिक उपयुक्त है।

'दारगुणेन सौम्यगुणेन अभिगम्यगुणेन च अन्वितः। दारगुणशब्देन अभिगम्य गुणा लक्ष्यन्ते, अतो न पौनरुक्त्यदोषः'। (विवरण)

चान्द्रे रत्नसुतस्वदारविभवः प्राज्ञः सुखैरन्वितः,
सिंहे स्याद् बलनायकः सुरगुरौ प्रोक्तं च यच्चान्द्रभे।
स्वर्क्षे माण्डलिको नरेन्द्रसचिवः सेनापतिर्वा धनी,
कुम्भे कर्कटवत् फलानि मकरे नीचोऽल्प वित्तोऽसुखी।। 26।।

जन्मसमय में कर्क राशि में बृहस्पति हो तो मनुष्य रत्न, पुत्र, धन, स्त्री, वैभव से युक्त, विद्वान्, सुखी होता है।

सिंहस्थ बृहस्पति से मनुष्य बलाधिप, नेतृत्व गुण से युक्त, तथा कर्कगत गुरु के समस्त फलों से युक्त होता है।

धनु या मीन में बृहस्पति हो तो मनुष्य मण्डलाधीश, जिलाधीश, सेनाधीश, राजमन्त्री या विशेष सचिव, धनी होता है।

कुम्भगत गुरु का फल कर्क राशि के समान है तथा मकर में बृहस्पति हो तो नीच, निर्धन व कम सुखी होता है।

भट्टोत्पल ने प्रथम चरण को एक समस्त पद मान कर टीका की है। उसमें भी दोष नहीं है। रुद्रभट्ट का पाठ यहाँ स्वीकार किया है।

मत्वर्थीय अच् प्रत्यय मानने से पाठ संगत होता है, यह रुद्रभट्ट का मत है। भट्टोत्पल के पाठ से बुद्धि से युक्त अर्थात् बुद्धिमान् तथा रुद्रभट्टानुसार 'प्राज्ञ अर्थात् विद्वान् होता है। यह भेद है।

असुखी शब्द में 'ईषदर्थ' में नं है। अतः असुखी अर्थात् थोड़ा सुखी (बिल्कुल दुःखी नहीं) होता है।

शुक्र का राशि गत फल

परयुवतिरतस्तदर्थवादैर्हृतविभवः कुलपांसनः कुजर्क्षे ।
सुबलमतिधनो नरेन्द्रपूज्यः स्वजनविभुः प्रथितोऽभयः सिते स्वे ।। 27 ।।

(पुष्पिताग्रा)

यदि शुक्र जन्म समय में मेष या वृश्चिक राशि में हो तो मनुष्य दूसरे की स्त्री से प्रेम करने वाला तथा उसी बदनामी के कारण धन-सम्पत्ति लुटाने वाला, अपने कुल की अपकीर्ति बढ़ाने वाला होता है ।

यदि शुक्र वृष या तुला में स्थित हो तो मनुष्य शुभ बल से युक्त, अति धनी, राजाओं द्वारा वन्दनीय, अपने लोगों का स्वामी (नेता) प्रसिद्ध व निर्भय होता है ।

हमारे विचार से वृश्चिकगत शुक्र विशेष काम वासना की अधिकता तथा दूषित काम सम्बन्धों को उत्पन्न करता है । मेष में लग्न भाव स्थित शुक्र को विशेषतया अश्विनी नक्षत्र में अर्थात् मेष लग्न में 13°.20′ से पूर्व का शुक्र राजयोग कारक बताया गया है ।

अश्विन्यामुदयस्थिते भृगुसुते सर्वग्रहैरीक्षिते
जातो राजकुलाग्रजो रिपुकुलध्वंसी बहुस्त्रीरतः ।। (जातक पारिजात)
अश्विन्यां लग्नगः शुक्रः सर्वग्रहनिरीक्षितः ।
करोति पृथिवीपालं निर्जितारातिमण्डलम् ।। (जातकादेश मार्ग)
अश्विन्यामुदयगतो भृगुर्ग्रहेन्द्रैः दृष्टश्चेज्जनयति भूपतिम् ।। (फलदीपिका)
कृत्तिका रेवती स्वाती पुष्यस्थायी भृगोः सुतः ।
करोति भूभुजां नाथमश्विन्यामपि संस्थितः ।। (सारावली)

अतः बृहज्जातक का उक्त फल दृष्टि व भाव निरपेक्ष रूप में केवल राशि मात्र से समझना चाहिए ।

नृपकृत्यकरोऽर्थवान्कलाविन् मिथुने षष्ठगतेऽस्वनीचकर्मा ।
रविजर्क्षगतेऽमरारिपूज्ये सुभगः स्त्रीविजितो रतः कुनार्याम् ।। 28 ।।

यदि जन्म समय में शुक्र मिथुन राशि में स्थित हो तो मनुष्य राजकार्य करने वाला (राजकीय अधिकारी आदि), धनवान्, कलाविद् होता है । कन्यागत शुक्र से मनुष्य अत्यन्त नीचकार्य करने वाला तथा धनहीन होता है ।

मकर कुम्भगत शुक्र से जातक सौभाग्ययुक्त, स्त्रियों के वश में रहने वाला तथा दुष्ट स्त्री से प्रेम करने वाला होता है ।

कर्कसिंहधनुर्मीनस्थशुक्रफलः–

> **द्विभार्योऽर्थीभीरुः प्रबलमदशोकश्च शशिभे,**
> **हरौ योषाप्तार्थः प्रवरयुवतिर्मन्दतनयः ।**
> **गुणैः पूज्यः सस्वस्तुरगसहिते दानवगुरौ,**
> **झषे विद्वान् आढ्यो नृपजनितपूजोऽतिसुभगः ।। 29 ।।**

जन्म समय में कर्क राशि में स्थित शुक्र हो तो मनुष्य दो पत्नी वाला, प्रायः याचक स्वभाव, डरपोक, प्रबल काम शक्ति वाला या बहुत घमंडी एवं प्रभूत शोकयुक्त होता है ।

सिंहस्थ शुक्र से मनुष्य स्त्री के सम्पर्क से धन पाने वाला, श्रेष्ठ स्त्री का पति, अल्पसुत या अज्ञानी पुत्र का पिता होता है ।

धनु राशिस्थ शुक्र से मनुष्य अपने गुणों से पूजनीय, धनवान् होता है तथा मीनस्थ शुक्र से मनुष्य विद्वान्, धनी, राजपक्ष से विशेष सम्मान पाने वाला एवं अत्यन्त सौभाग्यशाली होता है ।

शनि का विभिन्न राशियों में फल

> **मूर्खोऽटनः कपटवान् विसुहृद् यमेऽजे**
> **कीटे तु बन्धवधभाक् चपलोऽघृणश्च ।**
> **निर्ह्रीसुखार्थतनयः स्खलितश्च लेख्ये,**
> **रक्षापतिर्भवति मुख्यभृतश्च बौधे ।। 30 ।।**

यदि मेष राशि में शनि स्थित हो तो मनुष्य मूर्ख, चक्रवत् घूमने वाला, कपटी, मित्रों व सहायकों से रहित होता है ।

वृश्चिक राशि गत शनि से मनुष्य वध व बन्धनादि हिंसक कार्यों में रत रहने वाला अथवा स्वयं वध बन्धन प्राप्त करने वाला, चंचल व निर्दय होता है ।

मिथुन या कन्या में शनि हो तो लज्जाहीन, सुखहीन, धनहीन, पुत्रहीन, लेखन में निर्बल, रक्षक, पुलिस या जेल का अधिष्ठाता, बड़े लोगों का नौकर होता है ।

> **वर्ज्यस्त्रीष्टो न बहुविभवो भूरिभार्यो वृषस्थे,**
> **ख्यातः स्वोच्चे गणपुरबलग्रामपूज्योऽर्थवांश्च ।**
> **कर्किण्यस्वो विकलदशनो मातृहीनोऽसुतोऽज्ञः,**
> **सिंहेऽनार्यो विसुखतनयो विष्टिकृत् सूर्यपुत्रे ।। 31 ।।**

(मन्दाक्रान्ता)

यदि शनि वृष राशि में स्थित हो तो मनुष्य अगम्या स्त्रियों से प्रेम करने वाला, कम वैभव वाला, अनेक स्त्रियों वाला होता है।

यदि शनि तुला में स्थित हो तो प्रसिद्ध, मुखिया, गाँव या जिला या सेना का अधिपति या मान्य तथा धनी होता है।

कर्कस्थ शनि से धनहीन, खराब दाँतों वाला अथवा (पाठान्तर विरलदशन) दाँतों के बीच में अधिक स्थान वाला, मातृहीन, पुत्रहीन, एवं मूर्ख होता है।

सिंहस्थ शनि से व्यक्ति असज्जन, सुखहीन, पुत्रहीन, बोझा ढ़ोने वाला या अत्यधिक जिम्मेवारियों वाला होता है।

स्वन्तः प्रत्ययिता नरेन्द्रभवने सत्पुत्रजायाधनो,
जीवक्षेत्रगतेऽर्कजे पुरबलग्रामाग्रनेताथवा।
अन्यस्त्रीधनसंवृतः पुरबलग्रामाग्रणीर्मन्ददृक,
स्वक्षेत्रे मलिनः स्थिरार्थविभवो भोक्ता च जातः पुमान्।। 32।।

यदि जन्मकाल में शनि धनु या मीन राशि में स्थित हो तो मनुष्य शुभ मृत्यु पाने वाला अथवा जीवन के अन्तिम वर्षों में सुखी, राजा का विश्वासपात्र, राजमहल में आने जाने वाला, अच्छे पुत्रों व अच्छी पत्नी से युक्त, सत्कार्यों से धन कमाने वाला, शक्तिशाली, ग्राम, नगर या सेना का अधिपति या उनमें अग्रगण्य होता है।

मकर या कुम्भ में स्थित शनि से व्यक्ति दूसरों की स्त्री व दूसरों के धन को पाने वाला, पुर, जनपद या नगरादि में मान्य, मन्ददृष्टि, मलिन रहने वाला, स्थिर सम्पत्ति व वैभव वाला, भोगवान् होता है।

लग्न व चन्द्र की समानताः–

शिशिरकर समागमेक्षणानां सदृशफलं प्रवदन्ति लग्नजातम्।
फलमधिकमिदं यदत्र भावाद्भवनभनाथगुणैर्विचिन्तनीयम्।।33।।

(पुष्पिताग्रा)

पीछे चन्द्रमा का विभिन्न राशियों में जो फल बताया गया है तथा चन्द्रमा पर विभिन्न ग्रहों की दृष्टियों का जो फल बताया जाएगा, वह सब फल उस राशि के लग्न में भी समझना चाहिए। अर्थात् चन्द्रराशि फल ही लग्न राशि का भी फल है।

लेकिन लग्न से फल विचार में इतनी बात अधिक है कि लग्नादि भावों का फल विचार करने में भावेश एवं भाव में स्थित राशियों व नक्षत्रों

के फल का भी समन्वय कर लेना चाहिए। अर्थात् भाव, भावगत ग्रह व भावेश से भावों का फल बताना चाहिए।

भाव राशि व भावेश के बलवान् होने पर लग्नादि तन, धन, भ्रातृ, मातृसुतादि भावों की पूर्ण वृद्धि तथा एक के बली होने पर मध्यम पुष्टि कहनी चाहिए। दोनों के निर्बल रहने पर भाव की हानि कहनी चाहिए। 6. 8. 12 भावों के अधिपतियों व राशियों के विषय में विपरीत नियम लागू होगा, यह ध्यातव्य है। अर्थात् 6. 8. 12 भावों व भावेशों के निर्बल रहने से ही शुभ फल होगा। यह बात आगे भावाध्याय में **'विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु'** इत्यादि प्रकार से स्वयं आचार्य ने कही है।

'भवनभनाथ' शब्द में भवन अर्थात् भावगत राशि का नाथ तथा भावगत 'भ' अर्थात् नक्षत्र का नाथ इन दोनों का ग्रहण है। नक्षत्रों के स्वामियों का ज्ञान विंशोत्तरी दशा पद्धति के अनुसार करना चाहिए। कहा गया है–

शिखि शुक्रार्क चन्द्रार राहु जीवार्किचान्द्रयः।
अश्विन्याद्यृक्षनवकत्रितयी पतयः क्रमात्॥

केतु, शुक्र, सूर्य, चन्द्र मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध ये नौ ग्रह क्रमशः अश्विनी आदि नक्षत्रों की तीन आवृत्तियों के स्वामी होते हैं।

अतः जिस भाव में जो नक्षत्रेश विद्यमान हो, एतदर्थ लग्न स्पष्ट में 1-1 राशि जोड़कर भाव का नक्षत्र 'शतपद चक्र' से जानें। भाव नक्षत्र के स्वामी के पूर्वोक्त **'शिखिभूखपयोमरुद्‌गणानां'** इत्यादि पंच महाभूतगुणों, धातु जीव, मूलादि वस्तु विभाग, स्थान, प्रकृति, स्वरूपादि का समन्वय करके भावों का फल बताना चाहिए।

अथवा लग्नेश स्पष्ट + भाव कारक स्पष्ट या लग्नेश + भावेश करके जो राशि पिण्ड प्राप्त हो, वही भाव की जन्म राशि व तदनुसार नक्षत्र जानें। उस राशीश व नक्षत्रों के गुणों से फल कहें।

लग्नाधिपकारकयोर्लग्नाधिपभावनाथयोरथवा।
स्फुटयोगजनक्षत्रे भावानां जन्म निर्दिशेन्मतिमान्॥

(जातकादेशमार्ग)

इस विषय में हम विस्तार से अपनी **भाव मंजरी प्रणवाख्या टीका** में लिख चुके हैं।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां राशिशीलाध्यायः षोडशः॥

[17]

अथ दृष्टिफलाध्यायः

चन्द्रमा पर मंगलादि की दृष्टिः–

चन्द्रे भूपबुधौ नृपोपमगुणी स्तेनोऽधनश्चाजगे
निः स्वः स्तेननृमान्यभूपधनिनः प्रेष्यः कुजाद्यैर्गवि ।
नृस्थेऽयोव्यवहारिपार्थिवबुधाभीस्तन्तुवायोऽधनः ।
स्वर्क्षे यौधकविज्ञभूमिपतयोऽयोजीविदृग्रोगिणौ ।। 1 ।।

(शार्दूलविक्रीडित)

मेष राशिगत चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो तो राजा, बुध की दृष्टि से विद्वान्, गुरु की दृष्टि से राजा या राजसी गुणों से युक्त, शुक्र की दृष्टि से राजस गुणी, शनि की दृष्टि से चोर, सूर्य की दृष्टि से दरिद्र होता है।

वृषस्थ चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो तो धनहीन, बुध की दृष्टि से चोर, गुरु की दृष्टि से लोकमान्य, शुक्र की दृष्टि से राजा, शनि की दृष्टि से धनी तथा सूर्य की दृष्टि से प्रेष्य (चपरासी, हरकारा, सेवक, सन्देश वाहक आदि) होता है।

मीनस्थ चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि से शस्त्र या लोहे का व्यवसायी, बुध की दृष्टि से राजा, गुरु की दृष्टि से विद्वान्, शुक्र की दृष्टि से निर्भय, शनि की दृष्टि से जुलाहा, बुनकर या वस्त्रनिर्माता, सूर्य की दृष्टि से धनहीन होता है।

कर्कस्थ चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि से योद्धा, बुध की दृष्टि से कवि, गुरु की दृष्टि से विद्वान्, शुक्र की दृष्टि से राजा, शनि की दृष्टि से लोहे से जीविका कमाने वाला, सूर्य की दृष्टि से नेत्ररोगी होता है।

उक्त प्रकार से ही लग्नगत राशियों को तत्तत् ग्रह देखें तो भी यही फल समझना चाहिए।

ज्योतिर्ज्ञाढ्यनरेन्द्रनापितनृपक्ष्मेशो बुधाद्यैर्हरौ,
तद्वद्भूपचमूपनैपुणयुतः षष्ठेऽशुभैस्त्र्याश्रयः।
जूके भूपसुवर्णकारवणिजः शेषेक्षिते नैकृतिः,
कीटे युग्मपिता नतश्च रजको व्यंगोऽधनो भूपतिः ।।2।।

सिंह राशिगत चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि हो तो ज्योतिषी, गुरु दृष्टि से धनवान्, शुक्र दृष्टि से राजा, शनि की दृष्टि से नाई का काम करने वाला (हज्ज़ाम, ब्यूटीपार्लर चलाने वाला), सूर्य की दृष्टि से राजा, मंगल की दृष्टि से जमींदार होता है।

कन्या राशि में स्थित चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि से राजा, गुरु की दृष्टि से सेनापति, शुक्र की दृष्टि से निपुण, शनि, सूर्य व मंगल से दृष्ट रहने पर स्त्रीजनों के वशीभूत होता है।

तुला राशि में स्थित चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि हो तो राजा, गुरु की दृष्टि से सोने का व्यवसायी, शुक्र की दृष्टि से व्यापारी, शनि, सूर्य व मंगल की दृष्टि से निन्दित कार्य करने वाला होता है।

वृश्चिकस्थ चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि से दो पिता वाला, गुरु की दृष्टि से नम्र, शुक्र दृष्टि से कपड़े धोने का काम करने वाला, शनि की दृष्टि से विकलांग, सूर्य की दृष्टि से निर्धन, मंगल की दृष्टि से राजा होता है।

ज्ञात्युर्वीशजनाश्रयश्च तुरगे पापैः सदम्भः शठ,
श्चात्युर्वीशनरेन्द्रपण्डितधनी,द्रव्योनभूपोमृगे।
भूपो भूपसमोऽन्यदारनिरतः शेषैश्च कुम्भस्थिते,
हास्यज्ञो नृपतिर्बुधश्च झषगे पापश्च पापेक्षिते ।। 3 ।।

धनुराशिस्थ चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि हो तो मनुष्य अपने बन्धुजनों का पालक तथा आश्रय स्थान, गुरु दृष्ट होने से राजा का आश्रय पाने वाला या राजा, शुक्र से दृष्ट रहने पर लोगों का आश्रय स्थान होता है।

शनि, सूर्य, मंगल द्वारा दृष्ट होने पर मनुष्य दम्भी अर्थात् मिथ्या धार्मिक, कपट या उदरपूर्ति के लिए धार्मिक चिन्ह धारण करने वाला तथा स्वार्थसाधन में तत्पर (शठ) अर्थात् दूसरों की हानि की परवाह न करके भी अपने कार्य को सिद्ध करने वाला होता है।

मकरस्थ चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि हो तो राजाधिराज, गुरु से दृष्ट हो तो राजा, शुक्र से दृष्ट हो तो पण्डित (विद्वान्), शनि से दृष्ट हो तो धनी, सूर्य से दृष्ट हो तो धनरहित तथा मंगल से दृष्ट हो तो राजा होता है।

कुम्भस्थ चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि हो तो राजा, गुरु दृष्ट होने पर राजा के समान, शुक्र दृष्ट होने पर परस्त्रीरत तथा शनि से दृष्ट होने पर भी राजा, सूर्य दृष्ट होने से राजतुल्य, मंगल से दृष्ट होने से अन्य स्त्रीरत होता है।

मीनस्थ चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि हो तो परिहास कुशल, गुरु दृष्ट हो तो राजा, शुक्र दृष्ट हो तो विद्वान्, शनि, सूर्य या मंगल से दृष्ट हो तो मनुष्य पापी होता है।

ज्ञात्युर्वीशजनाश्रयः– भट्टोत्पल ने ज्ञातीश, उर्वीश एवं जनाश्रय यह विभाग कहा है। रुद्रभट्ट ने आश्रय शब्द का सम्बन्ध सर्वत्र मानकर ज्ञात्याश्रयः, उर्वीशाश्रयः, जनाश्रयश्च इति, इस प्रकार से विभाग कहा है। दोनों ही अर्थ सम्भव हैं। हमारे विचार से भट्टोत्पल वाला अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

शेषैश्च कुम्भस्थितेः– शेष अर्थात् शनि, सूर्य, मंगल से दृष्ट रहने पर भी मकरस्थ चन्द्रमा से मनुष्य परस्त्रीगामी होता है, यह भट्टोत्पल ने कहा है। हमारे विचार से रुद्रभट्ट का यह अर्थ अधिक उपयुक्त है। शनि, सूर्य व मंगल से भी 'भूपोभूपसमोऽन्यदारनिरतः' क्रमशः होता है। कुम्भस्थ चन्द्र पर शनि की दृष्टि से उत्कृष्ट फल का न होना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है।

चन्द्रमा के समान ही लग्न राशि पर ग्रह दृष्टि रहने से भी पूर्वोक्त फल ही होता है, यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है। लेकिन लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि का फल यहाँ नहीं बताया गया है। एतदर्थ प्रथमाध्याय में ही कहा जा चुका है कि 'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा' लग्नस्थ राशि का फल चन्द्र राशि के समान होगा तथा वह फल बुध, गुरु या लग्नेश से दृष्ट रहने पर तथा शेष ग्रहों की दृष्टि न रहने पर उत्कट रूप से फलित होगा। पुनश्च चन्द्रमा कर्क लग्न या वृष लग्न को छोड़ कर सब लग्नों में लग्न स्थिति या दृष्टि रहने से अशुभ ही है।

मुक्त्वा तु चन्द्रभवनं लग्नगतं शिशिरकिरणसंदृष्टम्।
अशुभफलं निर्दिष्टं पृच्छायां जन्मसमये वा।।

वृषगत चन्द्रमा उच्चस्थ रहने से शुभ है। पुनश्च प्रत्यक्ष राजयोग पहले राजयोगाध्याय में बताए जा चुके हैं। इन अध्यायों में ग्रह दृष्टिवशात् प्रोक्त

राजयोगों को कुल, देश, जाति व काल का समन्वय करके विचार पूर्वक राजा या राजतुल्य समझना चाहिए। कहा है–

नृपतिकुलसमुत्थाः पार्थिवा वक्ष्यमाणैः
भवति हि नृपतुल्यस्तेष्वभूपालपुत्रः।

चन्द्र पर दृष्टि में भी फल तारतम्यः–

होरेशर्क्षदलाश्रितैः शुभकरो दृष्टः शशीतद्गत–
स्त्र्यंशे तत्पतिभिः सुहृद्भवनगैर्वा वीक्षितः शस्यते।
यत्प्रोक्तं प्रतिराशिवीक्षणफलं तद्द्वादशांशे स्मृतं,
सूर्याद्यैरवलोकितेऽपि शशिनि ज्ञेयं नवांशेष्वपि।। 4।।

लग्न में जिस की होरा हो उस होरा (राश्यर्ध) में स्थित ग्रहों से दृष्ट होने पर चन्द्रमा विशेष शुभ फलप्रद है। यदि लग्नादि सूर्य या चन्द्र की होरा में स्थित ग्रहों की चन्द्रमा पर दृष्टि न हो तो ऐसा चन्द्रमा शुभफल नहीं देता। लग्न या लग्नेश की होरा में स्थित (तद्गतः) चन्द्र भी शुभ है।

इसी प्रकार चन्द्रमा जिस द्रेष्काण में हो, उस द्रेष्काणेश द्वारा अथवा मित्र क्षेत्री ग्रहों द्वारा देखा जाए तो भी शुभकर है। यही पद्धति नवांश द्वादशांश, त्रिंशांश में भी अपनानी चाहिए। अर्थात् चन्द्रमा जिस नवांशादि में हो उस के स्वामी से दृष्ट होने पर सदैव शुभ है। यही विधि लग्न के विषय में भी समझना चाहिए। अन्यथा होने पर विपरीत फल होगा।

प्रत्येक राशि में लग्न या चन्द्रमा पर ग्रह दृष्टि से जो फल कहे गए हैं, वे द्वादशांश में भी समझना चाहिए। इसी तरह नवांश में भी सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि का फल राशिवत् ही समझना चाहिए।

इन नियमों को क्रमशः स्पष्ट करते हैं। ये फलित के गूढ़ एवं सर्वत्रोपयोगी नियम हैं।

होरेशर्क्षदलाश्रितैः शुभकरः होरेशो लग्नेशः (न चन्द्रः) तस्य ऋक्षदलं राशेरर्धभागः सूर्यहोरा चन्द्रहोरा वा, तस्यां लग्नगतहोरायामाश्रितैः स्थितैः ग्रहैः दृष्टः चन्द्रमा शुभकर इति। इस प्रकार से व्याख्या करने पर यह अर्थ स्पष्ट होता है। (i) लग्न या लग्नेश सूर्य की होरा में हो तो सूर्य होरा में स्थित बलवान् स्व क्षेत्री आदि व शुभ ग्रहों से दृष्ट चन्द्रमा (या लग्न) शुभ है। इसी तरह लग्न में चन्द्र होरा हो तो चन्द्रहोरागत शुभ क्षेत्री, बली ग्रहों से दृष्ट चन्द्रमा (या लग्न) शुभ है। यदि सूर्य होरागत न होने से सूर्य होरा में स्थित कोई ग्रह चन्द्रमा या लग्न को न देखे तो अशुभ है। इसी तरह चन्द्र होरा में भी समझा जाएगा।

(ii) चन्द्रमा या लग्न जिस द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, या त्रिशांश में हो, उसका स्वामी यथाक्रम चन्द्रमा या लग्न को देखे तो शुभ है। स्वक्षेत्री, उच्चगत, मूलत्रिकोणगत, चन्द्रमा का राशीश, लग्न का राशीश शुभ ग्रह उन्हें देखे या चन्द्रराशीश के मित्रग्रहों की राशियों में जो ग्रह शुभाशुभ हों वे चन्द्रमा को देखें तो शुभ है।

उदाहरणार्थ चन्द्रमा मिथुन राशि, मकर नवांश, सिंह द्रेष्काण, तुला द्वादशांश, गुरु त्रिंशांश में है। मिथुन का स्वामी बुध या मकरेश शनि या सिंहेश सूर्य या तुलेश शुक्र या गुरु, इन ग्रहों से चन्द्रमा दृष्ट हो तो बहुत शुभ है। यह सामान्य नियम हुआ। यदि उक्त स्वामी ग्रह शुभ व बलवान् हुए तो विशेष शुभ तथा पापी हुए तो मध्यम शुभ फल होगा, यह विशेष है। अथवा इन स्वामियों के मित्र ग्रहों से दृष्ट होने पर भी चन्द्रमा शुभ है।

(iii) यदि उक्त ग्रहों में से किसी की भी दृष्टि न हो तो इन ग्रहों के अधिमित्र ग्रहों की सूची बनाइए। उन मित्र ग्रहों की राशियों में जो ग्रह लग्न कुण्डली में स्थित हों, उनको जान लें। उन सुहृद (मित्र) के भवन (घर) में (गैः) स्थित ग्रहों से चन्द्रमा दृष्ट हो तो भी शुभ है।

आचार्य ने लघुजातक में इस विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है–

क्षेत्राधिपसंदृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान्।
द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभः नान्यैः।।

राशीश, द्रेष्काणेश, नवांशेश, द्वादशांशेश, त्रिंशांशेश से चन्द्रमा दृष्ट हो तो मनुष्य राजा, इनके मित्रों द्वारा देखा जाए तो धनी होता है। इनमें से शुभ स्वामियों की दृष्टि हो तो विशेष शुभ तथा पाप दृष्ट हो तो साधारण शुभ होता है।

अतः उक्त ग्रहों में से किसी की भी दृष्टि न हो तो सामान्यतः निसर्ग सौम्य ग्रह या कारक ग्रह की दृष्टि से भी चन्द्रमा शुभ माना जाएगा।

उक्त कारकों में से जितने अधिक विधायक तत्त्व घटित हो जाएँ, उतना ही अधिक उत्कृष्ट फल समझना चाहिए। इसी विधि से लग्न को भी देखें।

यत्रोक्तं प्रतिराशि– मेषादि राशियों में स्थित लग्न चन्द्र पर अन्य ग्रहों की दृष्टि का जो फल बताया गया है, वह द्वादशांश व नवांश में भी समझना चाहिए। **'तद्द्वादशांशे स्मृतम्'** का तात्पर्य है–

(i) वही फल द्वादशांश की राशि में भी समझें। अर्थात् चन्द्रमा जिस राशि के द्वादशांश में हो, उस राशि पर ग्रहों की दृष्टि का पूर्वोक्त फल वही होगा, जो चन्द्रमा पर ग्रह दृष्टि का बताया गया है। यह दृष्टि लग्न चक्र में देखें जैसे मेष राशिस्थ चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो तो राजा होगा,

इसी तरह मेष राशि के द्वादशांश में चन्द्रमा को मंगल देखे तो भी राजा होगा ।

(ii) तद् अर्थात् वही पूर्वोक्त ग्रह दृष्टि फल द्वादशांशे अर्थात् द्वादशांश चक्र में भी समझना चाहिए । इसी तरह चन्द्र नवांश राशि पर या नवांश चक्र में भी ग्रह दृष्टि का (वक्ष्यमाण) फल कह कहना चाहिए ।

जो-जो दृष्टि फल राशि में कहा वह द्वादशांश चक्र में तथा नवांश फल नवांश कुण्डली में भी देखना चाहिए । अतः यहाँ से आगे बताया जाने वाला फल यद्यपि लग्न कुण्डली में ग्रह दृष्टि के अनुसार कहा जा रहा है, लेकिन वही फल (नवांशकेषु) नवांश चक्र में भी (ज्ञेयं) जानना चाहिए ।

नवांशानुसार चन्द्रमा पर दृष्टि फल

आरक्षिको वधरुचिः कुशलो नियुद्धे,
भूपोऽर्थवान् कलहकृत् क्षितिजांशसंस्थे ।
मूर्खोऽन्यदाररत काव्यविदः सितांशे,
सत्काव्यकृत् सुखपरोऽन्यकलत्रगश्च ।।5।।

(वसन्ततिलका)

मंगल के नवांश में स्थित चन्द्रमा को सूर्य देखे तो आरक्षिक (पुलिस, जेल, होम गार्ड आदि), मंगल देखे तो हिंसक व आक्रामक स्वभाव, बुध देखे तो द्वन्द्वयुद्ध कुशल, अर्थात् कुश्ती या मुकाबला करने में चतुर, गुरु देखे तो राजा, शुक्र देखे तो धनी तथा शनि देखे तो कलहकारी होता है ।

वृष तुला नवांश में स्थित चन्द्रमा को सूर्य देखे तो मूर्ख, मंगल देखे तो परस्त्रीरत, बुध देखे तो काव्य रसिक, गुरु देखे तो उत्तम कवि, शुक्र देखे तो सुखी, शनि देखे तो परस्त्री गामी होता है ।

बौधे हि रंगचर चौरकवीन्द्रमन्त्रि-
गेयज्ञशिल्पनिपुणः शशिनि स्थितेंऽशे ।
स्वांशेऽल्पगात्रधनलुब्धतपस्विमुख्य-
स्त्रीपोष्यकृत्यनिरतश्च निरीक्ष्यमाणे ।।6।।

मिथुन कन्या के नवांश में स्थित चन्द्रमा को सूर्य देखे तो मनुष्य पहलवान, मंगल देखे तो चोर, बुध देखे तो श्रेष्ठ कवि, गुरु देखे तो मन्त्री, शुक्र देखे तो गानविद्या का जानकार, शनि देखे तो शिल्प कलाओं में निपुण होता है ।

कर्कराशि के नवांश में स्थित चन्द्रमा को सूर्य देखे तो मनुष्य पतला दुबला, मंगल देखे तो बहुत लोभी, बुध देखे तो तपस्वी, गुरु देखे तो मुख्य

मुखिया या प्रधान पदासीन, शुक्र देखे तो स्त्री के द्वारा भरण पोषण किया जानेवाला, शनि देखे तो सदैव काम में लगा रहनेवाला परिश्रमी होता है।

रंगचरः– 'रंग' शब्द से संस्कृत में रणभूमि, नृत्य, अभिनय स्थान, कुश्ती का अखाड़ा आदि भी अभिप्रेत होता है। अतः अभिनयस्थान, नाट्य शाला, नृत्यशाला, आदि में घूमने वाला अर्थ लिया जाना भी योग्य है। पुनश्च स्पर्धा, मुकाबला आदि स्टंट दृश्य देने वाला, आदि यह मुख्य अर्थ है।

सक्रोधो नरपतिसम्मतो निधीशः सिंहांशे प्रभुरसुतोऽतिहिंस्र कर्मा।
जीवांशे प्रथितबलोरणोपदेष्टा, हास्यज्ञः सचिव विकाम वृद्धशीलः।। 7।।

(प्रहर्षिणी)

सिहं राशि के नवांश में स्थित चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो मनुष्य क्रोधी, मंगल दृष्ट हो तो राजमान्य, बुध दृष्ट हो तो कोषाध्यक्ष या धनपति, गुरु दृष्ट हो तो प्रभुत्व युक्त, शुक्र देखे तो पुत्रहीन, शनि देखे तो अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कार्य करने वाला होता है।

धनु मीन नवांश में स्थित चन्द्रमा को यदि सूर्य देखे तो प्रसिद्ध शक्तिशाली, मंगल देखे तो युद्धविद्या सिखाने वाला, बुध देखे तो परिहासकुशल, गुरु देखे तो सचिव या मन्त्री का कार्य करने वाला, शुक्र देखे तो काम वासना से रहित (पुरुषत्व हीन या काम क्रिया में विशेष रुचि न रखने वाला), शनि देखे तो बुजुर्ग की तरह आचरण करने वाला होता है।

अल्पापत्यो दुःखितः सत्यपि स्वे, मानासक्तः कर्मणि स्वेऽनुरक्तः।
दुष्टस्त्रीष्टः? कृपणश्चार्किभागे चन्द्रे भानौ तद्वदिन्द्वादिदृष्टे।। 8।।

(शालिनी)

मकर कुम्भ के नवांश में स्थित चन्द्रमा को सूर्य देखे तो कम सन्तान वाला, मंगल देखे तो धन होने पर भी दुःखी, बुध देखे तो गर्वीला, गुरु देखे तो अपने कुल प्रतिष्ठा स्तरानुसार कार्य करने वाला, शुक्र देखे तो दुष्ट स्त्री के चक्कर में फँसने वाला, शनि देखे तो कंजूस होता है।

यही फल नवांश में सूर्य पर चन्द्रादि ग्रहों की दृष्टि का भी होता है। अर्थात् चन्द्रमा के सन्दर्भ में प्रोक्त यह सूर्यादि फल, सूर्य के प्रसंग में चन्द्रादि फल समझ कर कहना चाहिए। अर्थात् मंगल नवांशस्थ चन्द्र को सूर्य देखे तो मनुष्य आरक्षिक होता है, इसी प्रकार मंगल नवांशस्थ सूर्य को चन्द्रमा देखे तो भी आरक्षिक ही समझना चाहिए।

सूर्य दृष्ट चन्द्रमा का फल ही चन्द्र दृष्ट सूर्य का भी होगा। शेष मंगलादि ताराग्रहों का दृष्टि फल लग्न, चन्द्र व सूर्य पर समान समझा जाएगा।

ताराग्रहाणां दृष्टि फलमुदयस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य च तुल्यमेवेति द्रष्टव्यम् ।

(रुद्रभट्ट)

'दुष्ट स्त्रीष्टः कृपणः' इस पाठ में छन्दोभंग है। पाँचवां अक्षर गुरु होना चाहिए। अतः कृपण के स्थान पर **'कीकटः'** पाठ मानने से छन्द ठीक हो जाता है।

नवांश फल में भी तारतम्य व्यवस्थाः—

वर्गोत्तमस्वपरगेषु शुभं यदुक्तं
तत्पुष्टमध्यलघुताशुभमुत्क्रमेण ।
वीर्यान्वितोऽंशकपतिर्निरुणद्धि पूर्वं
राशीक्षणस्य फलमंश फलं ददाति ।। 9 ।।

इस अध्याय में कथित चन्द्र नवांश फल में से शुभ फल वर्गोत्तम नवांश में पुष्ट, स्वनवांश में मध्यम तथा दूसरे के नवांश में कम होता है।

इसके विपरीत अशुभ फल वर्गोत्तम नवांश में साधारण (अल्प), स्वनवांश में मध्यम तथा परनवांश में अधिक अशुभ फल होता है।

यदि नवांशेश बलवान् हो तो वह पूर्वोक्त राशि दृष्टि के फल को रोक कर नवांश का फल ही देता है। यदि नवांशेश बलवान् न हो तो वह राशि दृष्टि व नवांशादि पूर्वोक्त सारे फल को प्रदान करेगा।

नवांशेश की बलवत्ता में प्रथम नवांश फल ही होगा, चाहे राशीश बलवान् भी क्यों न हो। नवांशेश केवल राशि दृष्टि 'चन्द्रे भूपबुधौ' इत्यादि फल को ही बाधित करता है। शेष फल यथावसर मिलेंगे ही। यदि नवांशेश बली नहीं है तब राशीश बली हो या निर्बल, तब सब यथोक्त फल मिलेंगे। यह तारतम्य है। **यहाँ राशि की अपेक्षा नवांश की सूक्ष्मता को रेखांकित किया है।**

'नान्यो ग्रहः सदृशमन्य फलं हिनस्ति' इत्यादि नियम यहाँ लागू नहीं होगा, इसलिए 'निरुणद्धि' (सर्व वारयति) शब्द का प्रयोग किया है।

पुनश्च **'बलयोगात् फलमंशकर्क्षयोः'** कहकर पहले ही इस बात को कह चुके थे, तब यहाँ पुनरुक्ति क्यों ? इसका समाधान है कि राशीश व नवांशेश समान बली भी हों तब भी नवांश का फल होगा, यह बात विशेष बतानी है और नवांशेश कमजोर होने पर राशीश बली हो या निर्बल, तब सारा फल यथायोग्य व यथावसर मिलेगा, अतः यह पुनरुक्ति नहीं है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां दृष्टिफलाध्यायः सप्तदशः ।।

[18]

अथ भावाध्यायः

सूर्य का भावगत फल–

शूरः स्तब्धो विकलनयनो निर्घृणोऽर्के तनुस्थे,
मेषे सस्वस्तिमिरनयनः सिंहसंस्थे निशान्धः ।।
नीचेऽन्धोऽस्वः शशिगृहगते बुद्बुदाक्षः पतङ्गे,
भूरिद्रव्यो नृपहृतधनो वक्त्ररोगी द्वितीये ।। 1 ।।

(मन्दाक्रान्ता)

यदि जन्म समय में सूर्य लग्न में स्थित हो तो मनुष्य निडर, शूरवीर या रण में निर्भय रहने वाला, दृढ़ स्वभाव वाला, नेत्रविकार से युक्त, निर्दय होता है। लग्नगत रवि का सामान्य फल कहकर विशेष फल कहते हैं। यदि मेष लग्न में सूर्य हो तो मनुष्य धनवान्, चक्षुरोगी या रात्रि में कम देख पाने वाला, अथवा नेत्र में काले दाग वाला होता है। यदि सिंह लग्न में सूर्य हो तो रात्रि में अन्धता होती है। यदि तुलालग्न में सूर्य हो तो अन्धत्व युक्त अथवा अधिक निर्बल दृष्टि वाला, धन होता है। यदि कर्क लग्न में सूर्य हो तो बुद्बुद नेत्रों वाला अर्थात् बहुत पलक झपकाने वाला तथा चपटी सी आँखों वाला होता है।

द्वितीय भाव में किसी भी राशि में सूर्य हो तो सामान्यतः व्यक्ति धनवान होता है, लेकिन राजपक्ष (सरकार) द्वारा उसका धन ले लिया जाता है। साथ ही वह मुख में किसी प्रकार के रोग से युक्त भी होता है।

इस अध्याय में प्रोक्त फल दशम साधन द्वारा साधित पद्धति ग्रन्थों में प्रोक्त भाव स्पष्टानुसार न समझकर सामान्यतः लग्नादि भावों में स्थित राशियों से समझना चाहिए। रुद्रभट्ट कहते हैं–द्वितीये लग्नाद् द्वितीयराशिस्थे पतंग इत्यर्थः।

मतिविक्रमवांस्तृतीयगेऽर्के विसुखः पीडित मानसश्चतुर्थे।

असुतो धनवर्जितस्त्रिकोणे बलवान् शत्रुजितश्च शत्रुयाते।। 2।।

(औपछन्दसिक)

लग्न से तृतीय राशि में स्थित सूर्य से मनुष्य, बुद्धिमान्, पराक्रमी, परिश्रमी होता है। चतुर्थ गत सूर्य से मानव सुख से रहित तथा मानसिक पीड़ा व उद्वेग पाने वाला, पंचमस्थ सूर्य से पुत्र रहित तथा धन रहित होता है।

षष्ठस्थ सूर्य से मनुष्य बलवान् तथा शत्रुओं को नष्ट करने वाला होता है।

असुतः– सुतरहितः अर्थात् पुत्र उत्पन्न न हो अथवा उत्पन्न होकर नष्ट हो जाएँ । **सुताभावयुक्तः उत्पद्य नश्यतीत्यर्थः' इति रुद्रभट्टः।**

शत्रुजितः– भट्टोत्पल के अनुसार शत्रुओं द्वारा जीता गया अर्थात् पराजित। शत्रुभिररिभि जितः इति। किन्तु रुद्रभट्ट के मत से जिताः **शत्रवो येन इति आहिताग्निवत् समासः** अर्थात् जीत लिए हैं शत्रु जिसने। बलवान् होते हुए भी शत्रु से पराजित होना परस्पर विरुद्ध है। अतः रुद्रभट्ट का मत अधिक उपयुक्त है। पुनश्च आचार्य ने इस प्रकार समास करके विशेष बात यह बताई है कि सूर्य षष्ठस्थ होता हुआ निर्बल हो तो शत्रुओं से पराजित होता है। **'अर्को बलहीनश्चेत् शत्रुभिः परिभूयते इति द्योत्यते। (रुद्रभट्टः)**

सत्याचार्य के अनुसार भी षष्ठस्थ सूर्य रिपु व रोगों का नाशक होता है। **षष्ठे रिपुरोगशोकघ्नः। (सत्याचार्य)**

स्त्रीभिर्गतः परिभवं मदगे पतंगे,

स्वल्पात्मजो निधनगे विकलेक्षणश्च।

धर्मे सुतार्थसुखभाक् श्रुतशौर्यभाक् खे,

लाभे प्रभूतधनवान् पतितस्तु रिःफे।। 3।।

(बसन्ततिलका)

सप्तमस्थ सूर्य से मनुष्य स्त्रियों द्वारा परिभव अर्थात् वेदना, अपमान या हानि पाने वाला होता है। अष्टमस्थ सूर्य से कम पुत्रों वाला तथा नेत्रविकार से युक्त होता है।

नवमस्थ सूर्य से पुत्रयुक्त, सुखी, धनी होता है। दशमस्थ सूर्य से शास्त्रों को जानने वाला, शूर तथा एकादश में होने पर खूब कमाने वाला होता है। द्वादश भाव में सूर्य हो तो मनुष्य कर्मभ्रष्ट पतित अपने कुलाचार जाति, मर्यादा से निम्न स्तर का कार्य करने वाला होता है।

चन्द्रमा का लग्नादि भाव फल–

मूकोन्मत्तजडान्धनीचबधिरप्रेष्य शशांकोदय,
स्वर्क्षाजोच्चगते धनी बहुसुतः सस्वः कुटुम्बी धने
हिंस्रो भ्रातृगते सुखे सतनये तत्प्रोक्तभावान्वितो,
नैकारिर्मृदुकायवह्निमदनस्तीक्ष्णोऽलसश्चारिगे ।।4।।

जन्म समय में लग्नस्थ चन्द्रमा से व्यक्ति मूक, उन्मत्त अर्थात् कुछ असम्बद्ध क्रियाएँ करने वाला, जड़ अर्थात् गुमसुम सा, प्रतिक्रिया न कर पाने वाला, अन्धा, बहिरा, नीच कर्म वाला तथा चाकरी करने वाला होता है। उक्त फलों में से यथासम्भव कुछ या अधिक या सभी फल होते हैं।

उक्त प्रकार से सामान्य फल कहकर राशि विशेषानुसार फल कहते हैं। कर्क, मेष या वृष लग्न में चन्द्रमा होने से मनुष्य धनवान् होता है। अर्थात् 1. 2. 4 लग्नों में लग्नगत चन्द्रमा शुभ है।

द्वितीय स्थान में चन्द्रमा रहने से अनेक पुत्रों वाला, धनी एवं बड़े परिवार वाला होता है।

तृतीय चन्द्रमा हिंसक स्वभाव वाला, चतुर्थ व पंचम भाव में रहने से उन भावों से सम्बन्धित अर्थात् सम्पत्ति, सुख, वाहन तथा पुत्र, विद्या, बुद्धि से युक्त होता है।

षष्ठस्थ चन्द्रमा से अनेक शत्रुओं वाला, कोमल शरीर वाला, मन्दाग्नि वाला, मन्द काम शक्ति वाला, तीखे स्वभाव वाला तथा आलसी होता है।

द्वितीय चरण में भट्टोत्पल ने 4. 1.2 राशियों में क्रमशः धनी, बहुपुत्र तथा धनी यह फल कहा है। जबकि रुद्रभट्ट ने **'स्वर्क्षाजोच्चगते धनी'** इस प्रकार सम्बन्ध मानकर तीनों राशि लग्नों में धनी होना कहा है। हमें रुद्रभट्ट वाला मत अभीष्ट है। **'शशिनि कर्क वृषे धनाढ्यः'** कहकर गुणा करने भी ऐसा ही माना है।

दाक्षिण्यरूपधनभोग गुणैः प्रधानः
चन्द्रेकुलीर वृष भाजगते विलग्ने। (सारावली)
गोमेषकर्कटेलग्ने चन्द्रस्थे रूपवानधनी।
जडताव्याधिदारिद्र्यं शेषर्क्षे कुरुते शशी।। (गर्ग)

अतः अपूर्ण चन्द्रमा इन राशियों में भी हो ता भी विशेष शुभ नहीं होगा।

ईर्ष्युस्तीव्रमदो मदे बहुमतिर्व्याध्यर्दितश्चाष्टमे,
सौभाग्यात्मजमित्रबन्धुधनभाग् धर्मस्थिते शीतगौ।
निष्पत्तिं समुपैति धर्मधनधीशौर्यैर्युतः कर्मगे,
ख्यातो भावगुणान्वितो भवगते क्षुद्रोऽङ्गहीनो व्यये।। 5।।

यदि चन्द्रमा सप्तम भाव में हो तो दूसरों की बढ़ोतरी को देखकर जलने वाला व तीव्र कामशक्ति वाला होता है। अष्टम स्थान में स्थित चन्द्रमा से मनुष्य बहुत बुद्धिमान्, व्याधियों से पीड़ित होता है।

यदि चन्द्रमा नवम भाव में हो तो मनुष्य सौभाग्यशाली, पुत्रों से युक्त, मित्रों, बन्धुओं व धन से युक्त होता है।

यदि चन्द्रमा दशम भाव में हो तो मनुष्य सब कामों में सफलता पाने वाला, धर्मयुक्त, धनयुक्त, बुद्धिमान्, शूरवीर होता है।

एकादश स्थान में स्थित चन्द्रमा से मनुष्य प्रसिद्ध तथा ग्यारहवें भाव के गुणों (लाभ व प्राप्ति) से युक्त होता है।

द्वादश भाव में स्थित होने से मनुष्य निकृष्ट एवं अंग-विकार (नेत्रादि विकार) से युक्त होता है।

मंगल व बुध का भाव फल

लग्ने कुजे क्षततनुर्धनगे कदन्नो,
धर्मेऽघवान् दिनकरप्रतिमोऽन्यसंस्थ।
विद्वान् धनी प्रबलपण्डितमन्त्र्यशत्रु-
धर्मज्ञ विश्रुतगुणः परतोऽर्कवज्ज्ञे।। 6।।

(वसन्ततिलका)

यदि लग्न में मंगल हो तो मनुष्य शरीर पर चोट खाने वाला, धन भाव में हो तो घटिया (मोटा) अन्न खाने वाला, नवम भाव में हो तो पापी होता है। उक्त स्थानों के अतिरिक्त 3. 4. 5. 6. 7. 8. 10.11. 12 भावों में मंगल का फल सूर्य की तरह ही होता है। अर्थात् तृतीय में बुद्धि, विक्रम, धन युक्त, चतुर्थ में सुखरहित, पंचम में पुत्र व धनहीन, षष्ठ में बली शत्रुहन्ता, सप्तम में स्त्री से पराजित, अष्टम में कम पुत्रों वाला, दशम में सुखी, एकादश में धनी, द्वादश में पतित होता है।

लग्नगत बुध से मनुष्य विद्वान्, द्वितीय में धनी, तृतीय में बलवान् या बहुत दुष्ट (पाठान्तर प्रखल) चतुर्थ में पण्डित, पंचम में मंत्री, षष्ठ में शत्रु

रहित, सप्तम में धर्म वेत्ता या रति क्रिया व स्त्रियों को वश में करने में कुशल (पाठान्तर नर्मज्ञ), अष्टम में प्रसिद्ध गुणों वाला एवं नवम, दशम, एकादश, द्वादश में सूर्य के अनुसार क्रमशः धर्म, पुत्रादि से युक्त, सुखी, धनी व पतित होता है।

बृहस्पति का द्वादश भाव फल

विद्वान् सुवाक्यः कृपण, सुखी च
धीमानशत्रुः पितृतोऽधिकश्च ।
नीचस्तपस्वी सधनः सलाभः,
खलश्च जीवे क्रमशो विलग्नात् ।। 7 ।।

(इन्द्रवज्रा)

गुरु लग्न में हो तो विद्वान्, द्वितीय में हो तो बोलने में चतुर, तृतीय में हो तो कृपण, चतुर्थ में सुखी, पंचम में हो तो बुद्धिमान्, षष्ठ में हो तो शत्रुहीन, सप्तम में हो तो पिता के स्तर से अधिक, अष्टम में हो तो तपस्वी, नवम में हो तो तपस्वी, दशम में हो तो धनवान्, एकादश में हो तो लाभ युक्त, द्वादश में हो तो दुष्ट होता है।

शुक्र का भाव फलः–

स्मरनिपुणः सुखवांश्च विलग्ने, प्रियकलहोऽस्तगते सुरतेप्सुः ।
तनयगते सुखितो भृगुपुत्रे गुरुवदतोऽन्यगृहे सधनोऽन्त्ये ।। 8 ।।

(चित्र)

शुक्र लग्न में हो तो मनुष्य काम क्रिया में निपुण तथा सुखी, सप्तम भाव में हो तो कलहप्रिय तथा सदैव सम्भोग की कामना करने वाला, पंचम में हो तो सुखी होता है। शेष स्थानों में (2. 3. 4. 6. 8. 9. 10. 11) शुक्र का फल गुरु के अनुसार होता है। द्वादश भाव में शुक्र से मनुष्य धनवान् होता है। अथवा मीन राशि में किसी भी भाव में हो तो धनी होता है।

'अन्त्य' शब्द से भट्टोत्पल ने अन्तिम राशि मीन का ग्रहण किया है। रुद्रभट्ट द्वादश भाव का आशय लेते हैं। हमारे विचार से द्वादश भाव वाला अर्थ यहाँ गृहीत है। यहाँ भावफल का प्रसंग है तथा सारावली में कहा है– **'त्रिदशगुरुशुक्रचन्द्रा व्ययभवने वित्तपोषणं कुर्युः'**। वृद्धयवन भी द्वादश भाव में शुक्र को वृद्धि कारक मानते हैं। पुनश्च द्वादश भाव में उच्चस्थ शुक्र भी उत्तम फल दायक होगा, यह बात स्पष्ट ही है।

शनि का विभिन्न भावों में फल

अदृष्टार्थो रोगी मदनवशगोऽत्यन्तमलिनः
शिशुत्वे पीडार्तः सवितृसुत लग्नेऽत्यलसवाक् ।
गुरुः स्वर्क्षोच्चस्थे नृपतिसदृशो ग्रामपुरपः,
सुविद्वांश्चार्वङ्गो दिनकरसमोऽन्यत्र कथितः ।। 9 ।।

(शिखरिणी)

शनि यदि लग्न में हो तो मनुष्य कभी भी धनयुक्त न रहने वाला, रोगी, कामुक, बहुत मलिन रहने वाला, बचपन में पीड़ा पाने वाला तथा धीमे बोलने वाला होता है ।

यदि लग्न में शनि गुरु की राशियों (9. 12) में या अपनी राशियों (10.11) में या स्वोच्च में हो तो मनुष्य राजा के समान, ग्रामादि का प्रधान या स्वामी, सुन्दर शरीर वाला तथा विद्वान् होता है । शेष भावों में सूर्य के समान ही फल समझना चाहिए ।

स्वराशि, स्वोच्च राशि व गुरु की राशि के अतिरिक्त लग्नों में शनि हो तो पूर्वोक्त अशुभ फल होंगे । पुनश्च नीचक्षेत्र, शत्रुक्षेत्र में रहने पर विशेष उत्कट अशुभ फल होगा । अन्यथा निर्बल रहने पर स्वादि राशियों में मध्यम अशुभ फल होगा । स्वोच्च मित्रादि राशियों में स्थित रहने से सभी ग्रहों के शुभाशुभ फलों में न्यूनाधिक्य होता है ।

भावगत ग्रहफल में तारतम्य–

सुहृदरिपरकीयस्वर्क्षतुंगस्थितानां
फलमनुपरिचिन्त्यं लग्नदेहादिभावैः ।
समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु सत्यः,
कथयति विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु ।। 10 ।। (मालिनी)

लग्नादि भावों में स्थित ग्रहों की मित्र क्षेत्र, शत्रु क्षेत्र, समक्षेत्र, स्वक्षेत्र, उच्च में स्थिति देखकर भी भावफल का विशेष निर्णय करना चाहिए । अर्थात् जिस भाव में स्व, स्वोच्च, मूलत्रिकोण, मित्रक्षेत्री ग्रह हों, उसकी वृद्धि होती है । इसके विपरीत नीच, शत्रु, अस्तंगतत्व से भावहानि तथा समग्रह की राशि में रहने से शुभाशुभ फल मध्यम होता है । यह आचार्य का मत है । यह भावादि विचार लग्न से द्वादश भावों में करना चाहिए । अथवा विचारणीय भाव को लग्न समझकर फलादेश करना चाहिए ।

सत्याचार्य के मत से राशि या क्षेत्र का विचार विशेषतया करके केवल सौम्य ग्रह भाव वृद्धि कारक तथा पाप ग्रह भाव हानिकारक होते हैं । लेकिन

6.8.12 भावों के विषय में शुभ ग्रह व्यय, रोग व मृत्यु की हानि कारक तथा पापग्रह व्ययरोग मृत्यु के वर्धक होने से ग्राह्य नहीं हैं। अतः इन त्रिक्भावों के संदर्भ में विपरीत विधि अपनानी चाहिए। अर्थात् वहाँ शुभ ग्रह काम्य तथा पापग्रह वर्जित हैं। यह सत्याचार्य का मत आचार्य ने प्रस्तुत किया है।

जहाँ कहीं विशेष फल नियम कहे हैं, वहाँ पूर्वोक्त सामान्य नियमों का विचार न कर विशेष नियमों का पालन करना चाहिए। उदाहरणार्थ उपचय भावों में सभी ग्रहों को भाव वृद्धि कारक कहा है। यहाँ षष्ठ स्थान में पाप ग्रहों को नेष्ट तथा सौम्य को इष्ट माना है। अतः इस श्लोक का नियम विशेष होने से पूर्वोक्त सामान्य नियम की अपेक्षा अधिक बली है।

आचार्य की यह परिपाटी है कि जिस विषय में अधिकांश आचार्य सहमत हों, उसे स्वीकार करते हैं। जिस संदर्भ में बराबर संख्या वाले मुख्य आचार्य पक्ष विपक्ष में हों तो वे दोनों ही मतों को वैकल्पिक रूप से स्वीकार करते हैं।

लग्नादिभावैः भट्टोत्पल ने इस की व्याख्या करते हुए लिखा है कि सूर्य, चन्द्र व लग्न को समान महत्त्व देकर भाव विचार में विशेषतया यहाँ लग्नादि भाव विचार का विशेष नियम कहा है। लेकिन हमारे विचार से आचार्य ने यहाँ भाव विचार की पद्धति का निर्देश किया है।

जिस भाव का विचार करना हो, उसे ही लग्न मानें। उससे आगे के भावों को क्रमशः तन, धन, भ्रातृ आदि मानकर फल विशेष का निर्देश करें। जैसे धन भाव का विचार करना हो तो धनभाव से (द्वितीय भाव) धन का तन अर्थात् स्वरूप, मात्रा, आकार आदि देखें। ततः द्वितीय से द्वितीय (तृतीय) भाव को धन का धन भाव समझकर धन रक्षक, धनागम सहायक का, लग्न से चतुर्थ भाव से उसे धन का पराक्रम भाव समझकर धनागम के प्रयत्नों का विचार, लग्न से पंचम भाव मानकर धन से उत्पन्न सुख, यश लोकप्रियता का, षष्ठ से धनागम के मार्ग में विद्या, बुद्धि आदि तथा धन सन्तान अर्थात् धन वृद्धि का विचार, लग्नात्सप्तम भाव को धन का शत्रु समझकर धन के मार्ग के विरोधी आदि का विचार, ततः अष्टम भाव को धन का पत्नी स्थान मान कर धनभोग का विचार, नवम को धन मृत्यु भाव मानकर धन की स्थिरास्थिरता, दशम भाव को धन भाग्यभाव समझकर धनवृद्धि एवं तज्जन्य धर्माधिकारता का विचार, एकादश भाव से धन कर्म स्थान मानकर धनागम से उत्पन्न अधिकार, आज्ञा, प्रतिष्ठा का, द्वादश भाव को धन का आय स्थान मानकर धनागम के मार्ग तथा धन प्रयोग, धन लाभ, पूंजी निवेशादि का तथा लग्न से (धन का द्वादश स्थान) धन का व्यय, भोग, नाश का विचार देखना चाहिए।

जिस भाव से तन, धन, भ्रातृ, सुख, पुत्रादि स्थानों 'सुहृदरिपरकीयस्वक्ष–'तुंग' स्थित ग्रह हों, उस भाव से सम्बन्धित भाव की वृद्धि होगी । संक्षेप में जिस भाव से 1. 4. 5. 7. 8. 9. 10. 12 में शुभ, बलवान्, क्षेत्रबली, शुभ दृष्ट युक्तादिग्रह होंगे तथा उसी भाव से 1. 6. 8. 12 में पापग्रह नहीं होंगे, उस भाव से सम्बन्धित बातों की बढ़ोतरी होगी । विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारी **भाव मंजरी प्रणवाख्या** देखें ।

स्वोच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैः ।

शुभं सम्पूर्ण पादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ।। 11 ।।

पहले जहाँ कहीं भी जिस ग्रह का शुभ फल कहा है, वह शुभ फल ग्रह के उच्च में रहने से पूरा, मूलत्रिकोण में रहने से तीन चौथाई या 75% स्वक्षेत्र में आधा 50% मित्र क्षेत्र में चौथाई 25 %, शत्रु क्षेत्र में बहुत थोड़ा तथा नीच व अस्तंगत होने पर शून्य फल होता है ।

अशुभ फल के संदर्भ में उक्त नियम को विपरीत क्रम से लागू करना चाहिए । अर्थात् नीच क्षेत्री ग्रह का पूर्ण अशुभ, शत्रुक्षेत्री ग्रह का उक्त अशुभ फल काफी, मित्र क्षेत्री का अशुभ फल पौना या 75 % स्वक्षेत्री का अशुभ फल आधा या 50 % मूलत्रिकोणी का अशुभ फल 25 %, स्वोच्चस्थ ग्रह का अशुभ फल शून्य होता है ।

भावफल के विषय में लग्न स्पष्ट में 1-1 राशि जोड़कर क्रमशः द्वितीय, तृतीयादि भावों के भावमध्य आ जाएँगे तथा उस भावमध्य से 15^0-15^0 आगे पीछे सन्धियाँ रहेंगीं । इस भाव स्पष्ट के तुल्य ग्रह भाव का पूर्णफल तथा आगे पीछे अनुपात से कम या अधिक समझा जाएगा ।

'भावाश्च द्वादशसु राशिषु जननकालोदीयमानांशक संख्या समान संख्येऽशके वर्तन्ते । तस्मात् पूर्वं पंचदशे भागे भावारम्भः । तस्योपरितन पंचदशे भागे भाव विरामः । एवं सति राशिमध्यादन्यत्र भावा राशि द्वय सम्बन्धिनो वर्तेरन् ।'(रुद्रभट्टः)

भाव स्पष्ट के विषय में हम **'उलझे प्रश्न सुलझे उत्तर'** पुस्तक में तर्क सहित लिख चुके हैं, इत्यलमिह विस्तरेण ।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकतायामभिनवाख्यटीकायां भावफलाध्यायोऽष्टादशः ।।

[19]

अथाश्रयफलाध्यायः

स्वक्षेत्री आदि ग्रहों का फलः–

कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनिसुखिभोगिनृपाः स्वभैकवृद्ध्या ।
परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु ।। 1 ।।

(पुष्पिताग्रा)

जन्म समय में एक ग्रह स्वक्षेत्री हो तो मनुष्य कुलसम अर्थात् परिवार के स्तरानुसार आर्थिक सामाजिक प्रतिष्ठा पाता है। दो स्वगृही ग्रहों से मनुष्य अपने कुल में मुखिया (कुलमुख्य) अर्थात् पारिवारिक सदस्यों की अपेक्षा अधिक समृद्ध होता है। यदि तीन ग्रह स्वगृही हों तो अपनी बिरादरी में माननीय एवं अधिक समृद्ध होता है। चार स्वगृही होने से धनी, पाँच से सुखी, छह ग्रहों से भोगों को भोगने वाला राजतुल्य तथा सात स्वगृही ग्रहों से राजा होता है।

यदि मित्र क्षेत्री एक ग्रह हो तो मनुष्य दूसरों के वैभव समृद्धि से पलने बढ़ने वाला अर्थात् स्वयं की प्राप्ति से रहित, दो मित्रक्षेत्री ग्रहों से मित्रों सहायकों या साथियों की सहायता से सफलता पाने वाला, तीन ग्रहों से अपने बन्धुओं, द्वारा विशेष समर्थन से सफलता पाने वाला, चार मित्र क्षेत्री ग्रहों से अपनी बिरादरी द्वारा, पाँच मित्र क्षेत्री ग्रहों से गणपति अर्थात् मुखिया प्रधान, सरदार, अग्रगण्य, छह मित्रर्क्ष गत ग्रहों से सेनापति अथवा बहुत बलवान् दण्डनिग्रहादि में समर्थ, सात मित्र क्षेत्रियों से राजा होता है।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि एक भी ग्रह यदि राशि बली हो तो भी मनुष्य प्रायः योग क्षेम (गुजरबसर) करने में समर्थ होता है।

उच्च नीचादिगत ग्रह फलः–

जनयति नृपमेकोऽप्युच्चगो मित्रदृष्टः,
प्रचुरधनसमेतं मित्रयोगाच्च सिद्धम् ।
विधनविसुखमूढव्याधितो बन्धतप्तो
वधदुरितसमेतः शत्रुनिम्नर्क्षगेषु ।। 2 ।।

(मालिनी)

यदि एक भी ग्रह जन्म समय में परमोच्चगत होकर मित्र ग्रहों से दृष्ट हो तो राजा होने का योग है। 'अपि' शब्द का सम्भावना में प्रयोग है।

एक परमोच्चगत ग्रह यदि मित्रग्रह से युक्त हो तो मनुष्य खूब धन-धान्य से समृद्ध होता है। यह बहुत से आचार्यों ने प्रत्यक्ष सिद्ध माना है। परमोच्चगत से तारतम्यवशात् समस्त उच्च राशि का ग्रहण है।

एक ग्रह यदि शत्रु नीच राशि में हो तो मनुष्य धन रहित, दो से सुख रहित, तीन से किंकर्त्तव्य विमूढ़, चार से रोगी, पाँच से बन्धन के कारण सन्तप्त, छह शत्रु नीचगत ग्रहों से सदैव ताड़ना, अपमान, डाँट डपट आदि पाने वाला हेय, सात शत्रुनीचफत ग्रहों से महापातकी महापापी, अत्यन्त निकृष्ट होता है। अथवा छह या सात ग्रहों से यथासम्भव पापकर्म व ताड़ना से युक्त होता है।

पहले राजयोगों का कथन हो चुका है। यहाँ उच्चगत ग्रह पर मित्र ग्रहों की दृष्टि से राजा होने का सम्भावित योग लग्न राशि के विचार के बिना ही बताया गया है। अधिक मित्र ग्रह देखें तथा ग्रह परमोच्च के जितना पास हो, उतना ही उत्कट फल होगा।

सातों ग्रह एक साथ नीच में नहीं रह सकते हैं। लेकिन सातग्रह शत्रुक्षेत्री हो सकते हैं। अथवा सातों ग्रह मिल-जुलकर नीचगत व शत्रुक्षेत्री हों तब उक्त फल होता है।

भट्टोत्पल ने 'बन्धतप्तः' पाठ मानकर बन्ध अर्थात् बन्धन तथा संताप ये दो अलग फल माने हैं। हमारे विचार से 'बन्धन तप्त' यह एक ही फल है।

कुम्भ लग्न का विशेष विचारः–

न कुम्भलग्नं शुभमाहसत्यो न भागभेदाद् यवना वदन्ति ।
कस्यांशभेदो न तथास्तिराशेरतिप्रसंगस्त्विति विष्णुगुप्तः ।। 3 ।।

(उपजाति)

सत्याचार्य का मत है कि कुम्भ लग्न में जन्म होना शुभ नहीं होता है। लेकिन यवनाचार्यों ने कुम्भ राशि के द्वादशांश को किसी भी लग्न में शुभ नहीं माना है। विष्णुगुप्त (चाणक्य) का मत है कि किस लग्न में कुम्भ का द्वादशांश नहीं होता, अर्थात् सब राशियों में कुम्भ का द्वादशांश होता है। अतः यवन मत अतिप्रसंग अर्थात् व्यर्थ है। और सत्याचार्य का मत ही श्रेष्ठ है।

कुम्भ राशि का स्वरूप रिक्त घट का होने से खाली घड़ा धारण करने वाले पुरुष के समान दिखता है। यह अशुभ है तथा दुःख, रिक्तता, खालीपन, अभाव या अभाव का भ्रम पैदा करने वाला है। पुनश्च मृत्युकारक शनि की प्रिय मूलत्रिकोण राशि होने से भी जन्म में अशुभ है। अथवा कल्पादि में सभी ग्रह मीन राशि के अन्तिम भाग में स्थित होने से कुम्भ राशि को अत्यन्त अल्प रेखा अष्टकवर्ग शोधन में मिलने से कुम्भ लग्न अशुभ है। यह सत्याचार्य का मत है।

होरा च भवेदिष्टा द्विपदेष्विह कुम्भवर्ज्यं हि।
कुम्भ विलग्ने जातो भवति नरो दुःखशोकसन्तप्तः।।

(सत्याचार्य)

लेकिन विष्णुगुप्त का मत है कि सभी राशियों में ही कुम्भ का द्वादशांश होता है। अतः यवनों का यह कहना समुचित नहीं है कि कुम्भ का द्वादशांश ही अशुभ है, सम्पूर्ण कुम्भ लग्न नहीं। अपितु सत्याचार्य का कथन ही उपयुक्त है। वराह मिहिर भी सत्याचार्य के अनुसार सम्पूर्ण कुम्भ लग्न को ही अशुभ मानने के पक्षधर हैं। ऐसा प्रतीत होता है।

कुम्भद्वादशभागो लग्नगतो न प्रशस्यते यवनैः।
यद्येवं सर्वेषां लग्नगतानामनिष्टफलता स्यात्।।
घटयोगाद् राशीनां न मतं तत्सर्वशास्त्रकारणाम्।
तस्मात्कुम्भं विलग्नो जन्मन्यशुभो न तद्भागः।।

(चाणक्य)

'भाग' शब्द का अर्थ यहाँ द्वादशांश ही क्यों लिया गया, नवांशादि क्यों नहीं ? यह स्पष्ट नहीं है। सम्पूर्ण कुम्भ लग्न को अशुभ कहा तब कुम्भ में कुम्भ का ही द्वादशांश हो तो विशेष अशुभता होगी ही, यह स्वयं स्पष्ट है। तब भी शंका यह रहेगी ही कि कुम्भ द्वादशांश रहते हुए नवांश राशि तब तुला होगी। यह कुम्भेश शनि की उच्च राशि तथा परम मित्र

शुक्र की राशि है। तब अशुभ क्यों ? इस प्रकार बहुत-सी विसंगतियाँ प्राप्त होंगीं। इसी कारण सत्यमतानुसार सम्पूर्ण कुम्भ लग्न ही सामान्यतः अशुभ है। देखा भी गया है कि कुम्भोत्पन्न व्यक्ति प्रायः संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन हमारा अनुभव है कि वे अन्ततोगत्वा अच्छी सफलता प्राप्त करते हैं। कुम्भ लग्न में अन्य भी अनिष्ट व निर्बल योग हों तो जीवन विशेष दुःखमय होगा तथा पूर्वोक्त सामान्य नियमों से मूलत्रिकोणोच्चगतादि ग्रह हों तो सफलता सुनिश्चित ही है। अतः **'कुम्भ लग्न अशुभ है'** यह एक सामान्य नियम है तथा इसका योगायोगों के तारतम्य से अशुभत्व सविशेष निश्चित होगा।

होरा कुण्डली का फलः–

यातेष्वसत्स्वसमभेषु दिनेशहोरां
ख्यातो महोद्यमबलार्थयुतोऽतितेजाः।
चान्द्रीं शुभेषु युजि मार्दव कान्तिसौख्य-
सौभाग्यधीमधुरवाक्ययुतः प्रजातः।। 4।।

जन्म समय में सभी अशुभ ग्रह विषम राशियों में स्थित होकर सूर्य की होरा में हों तो मनुष्य प्रसिद्ध, बहुत परिश्रमी, बलवान्, धनवान् एवं बहुत तेजस्वी होता है।

इसी प्रकार शुभग्रह समराशि व चन्द्रहोरा में स्थित हों तो मनुष्य कोमल स्वभाव, कान्तिमान्, सुखी, सौभाग्यशाली, बुद्धिमान्, मधुरभाषी होता है।

यदि पापग्रह विषम राशि व सूर्य होरा में तथा शुभ ग्रह सम राशि व चन्द्र होरा में एक साथ हों तो उक्त दोनों प्रकार के गुणों से युक्त होगा, यह स्वयं समझना चाहिए।

तास्वेवहोरास्वपरर्क्षगासु ज्ञेया नराः पूर्वगुणेषु मध्याः।
व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेषु, मर्त्याभवन्त्युक्तगुणैर्विहीनाः।। 5।।

(इन्द्रवज्रा)

यदि पापग्रह समराशि में बैठकर सूर्य होरा में तथा शुभ ग्रह विषम राशि में चन्द्रहोरा में हो तो श्लोक चार में बताए गए गुण मनुष्य में मध्यम मात्रा में होते हैं।

यदि पापग्रह समराशि व चन्द्र होरा में तथा शुभ ग्रह विषम राशि व सूर्य होरा में हों तो पूर्वोक्त महोद्यम बलार्थ तेज आदि तथा मार्दव कान्ति आदि गुण बिल्कुल कम होते हैं।

चन्द्र द्रेष्काण से विशेष फलः–

कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद् दृकाणे चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाथगुणं करोति ।
व्यालोद्यतायुध चतुश्चरणाण्डजेषु तीक्ष्णोऽतिहिंस्र गुरुतल्परतोऽटनश्च ।। 6 ।।

(वसन्ततिलका)

यदि द्रेष्काण कुण्डली में चन्द्रमा अपने द्रेष्काण में या अपने मित्र ग्रह के द्रेष्काण में स्थित हो तो मनुष्य कल्याण रूप व गुण वाला अर्थात् प्रशंसनीय सुन्दर रूप व गुणों वाला होता है ।

यदि चन्द्रमा अपने या अपने मित्र के द्रेष्काण में न हो अर्थात् शत्रु या सम के द्रेष्काण में स्थित हो तो मनुष्य अपने अधिष्ठित द्रेष्काण स्वामी के गुणों के समान गुणों वाला होता है ।

यदि वह द्रेष्काण, उद्यतायुध द्रेष्काण, पशु द्रेष्काण एवं पक्षी द्रेष्काण में स्थित हो तो मनुष्य क्रमशः तीक्ष्ण स्वभाव वाला, अत्यन्त हिंसक, गुरु पत्नी से रति करने वाला, एवं भ्रमणशील होता है ।

आशय यह है कि चन्द्रमा जिस ग्रह के द्रेष्काण में हो, उससे व्यक्ति के रूप–गुणों का विशेष निर्णय होता है । अपने व अपने मित्र या अधिमित्र के द्रेष्काण में स्थित चन्द्र से मनुष्य प्रशस्त रूप–गुणी तथा अन्य ग्रह के द्रेष्काण में रहने से उसी ग्रह के स्वरूपगुणानुसार होगा । माना किसी व्यक्ति का चन्द्रमा मिथुन राशि के 11^{0} अंश पर है । वह तुला अर्थात् शुक्र के द्रेष्काण में हुआ । शुक्र के गुण काम शक्ति, स्त्रियोचित कोमलता व भावुकता, मध्यम विप्राचरण, सामनीति, रजोगुण की अधिकता, कफवायु की अधिकता, मुड़े हुए बाल हैं । स्वरूप में श्याम वर्ण, सुन्दर शरीर, लम्बे हाथ, ऊँची छाती, अधिक वीर्य, कान्तिमत्व, थोड़ी स्थूलता आदि हैं ।

यदि शुक्र चन्द्रमा का तात्कालिक शत्रु हो तो ये गुण साधारण मात्रा में तथा सम हो तो मध्यम मात्रा में होंगे ।

कर्क में दूसरा व तीसरा, वृश्चिक का पहला व दूसरा तथा मीन का अन्तिम द्रेष्काण ये पाँच **'सर्पद्रेष्काण'** हैं । इनमें उत्पन्न व्यक्ति तीखे व आक्रामक स्वभाव का होता है ।

मिथुन व तुला का, मध्य द्रेष्काण, कुम्भ व सिंह का प्रथम द्रेष्काण ये चार **'पक्षीद्रेष्काण'** हैं । इनमें उत्पन्न व्यक्ति भ्रमणशील होता है ।

मेष धनु का 1.3, मिथुन का द्वितीय व तृतीय, मकर तुला का तृतीय, कन्या का द्वितीय, सिंह का 2.3, ये ग्यारह द्रेष्काण **'उद्यतायुध संज्ञक'** हैं । इनमें उत्पन्न व्यक्ति अति हिंसक होता है ।

मेष का द्वितीय, वृष का 2. 3 , कर्क धनु का प्रथम, सिंह के आदि, मध्य अन्त्य, तुला वृश्चिक का अन्तिम ये '**चतुष्पादद्रेष्काण**' हैं। इनमें उत्पन्न व्यक्ति गुरु पत्नी से सम्पर्क करने वाला या पर स्त्री गामी होता है।

इन द्रेष्काणों की संज्ञा का आधार बृहज्जातक का **द्रेष्काणाध्याय है**। लग्न व चन्द्रमा की समानता के कारण लग्नगत द्रेष्काण से भी उक्त फल समझना चाहिए, ऐसा रुद्रभट्ट का मत है–

पूर्वोक्तातिदेशेनलग्नद्रेष्काणफलमपिएवमितिद्रष्टव्यम्।।(रुद्रभट्ट)

जिस द्रेष्काण में दो संज्ञाएँ एक साथ मिलें, वहाँ दोनों प्रकार के द्रेष्काणों का फल मिश्रित रूप से समझना चाहिए। भट्टोत्पल ने मकर का प्रथम द्रेष्काण भी चतुष्पद सज्ञंक माना है, लेकिन उसके विषय में सब की सहमति नहीं है।

चन्द्र नवांश का फलः–

स्तेनो भोक्ता पण्डिताढ्यौ नरेन्द्रः,

क्लीबः शूरो विष्टिकृद् दासवृत्तिः।

पापो हिंस्रोऽभीश्च वर्गोत्तमांशे

ष्वेषामीशा राशिवद् द्वादशांशे।।7।।

(शालिनी)

यदि लग्न या चन्द्रमा मेष नवांश में हो तो मनुष्य चोर, वृष नवांश से भोगी, मिथुन नवांश से पण्डित, कर्क नवांश से धनी, सिंह के नवांश से राजा, कन्या नवांश से नपुंसक, तुला नवांश से शूरवीर, वृश्चिक नवांश से भारवाहक, धनु नवांश से दास स्वभाव, मकर नवांश से पापी, कुम्भ नवांश से हिंसक, मीन नवांश से निडर होता है।

यदि उक्त नवांश वर्गोत्तम हों तो पूर्वोक्त वर्गों का अधिपति होता है। अर्थात् वर्गोत्तम मेष नवांश से चोरों का राजा या मुखिया, वृष वर्गोत्तम हो तो भोगियों का ईश्वर, मिथुन वर्गोत्तम हो तो पण्डितों में पण्डित, कर्क वर्गोत्तम हो तो धनी लोगों में भी धनी, सिंह वर्गोत्तम में हो तो राजाओं का राजा, कन्या वर्गोत्तम हो तो हिजड़ों का राजा, तुला वर्गोत्तम हो तो शूरों में शूर, वृश्चिक वर्गोत्तम हो तो भारवाहकों का मुखिया, धनु वर्गोत्तम हो तो दासों का स्वामी, मकर वर्गोत्तम हो तो पापियों का मुखिया, कुम्भ वर्गोत्तम हो तो हिंसकों में हिंसक, मीन वर्गोत्तम हो तो निडरों में निडर होता है।

चन्द्रमा की द्वादशांश राशि का फल पूर्वोक्त चन्द्र राशिफल के समान ही समझना चाहिए। अर्थात् जो फल मेषादि राशि के चन्द्रमा का है, वही फल मेषादि द्वादशांशगत चन्द्रमा से भी समझा जाएगा।

भट्टोत्पल ने उक्त नवांश फल लग्नगत नवांश से कहा है लेकिन रुद्रभट्ट इसे चन्द्र नवांश का फल मानते हैं।

'मेषादिनवांशस्थिते चन्द्रे स्तेनादयो भवन्ति।' (विवरण)

मंगल व शनि के त्रिशांशों का फलः–

जायान्वितो बलविभूषणसत्त्वयुक्त-
स्तेजोतिसाहसयुतश्च कुजः स्वभागे।
रोगी मृतस्वयुवतिर्विषयोऽन्यदारो,
दुःखी परिच्छदयुतो मलिनोऽर्कपुत्रे।। 8।।

यदि मंगल त्रिंशांश कुण्डली में अपनी राशि में हो तो मनुष्य स्त्री सुख से युक्त, बल, आभूषण, सत्त्व, तेज, अति साहस से युक्त होता है।

यदि शनि अपने त्रिंशांश में हो तो मनुष्य रोगी, मृत स्त्री वाला, विषम अर्थात् कुटिल स्वभाव वाला, अन्य स्त्री पाने वाला, दुःखी, सब सुख सुविधाओं से युक्त होता है।

यहाँ 'भाग' शब्द का अर्थ त्रिंशांश' श्लोक संख्या 10 के कारण लिया गया है।

गुरु व बुध का त्रिंशांश फलः–

स्वांशे गुरौ धनयशः सुखबुद्धियुक्तस्तेजस्विपूज्य निरुगुद्यमभोगवांश्च।
मेधाकलाकपटकाव्यविवादशिल्पशास्त्रार्थसाहसयुतः शशिजे ऽतिमान्यः।।

यदि बृहस्पति स्वत्रिंशांश में स्थित हो तो मनुष्य धन, यश, बुद्धि, सुख से युक्त, तेजस्वी, पूजनीय, नीरोग, परिश्रमी, भोगी होता है।

यदि बुध अपने त्रिंशांश में स्थित हो तो मनुष्य बुद्धियुक्त, कलाकुशल, कपटी, काव्य कुशल, विवाद में कुशल, शास्त्रों के अर्थ को जानने वाला, साहसी एवं अति माननीय होता है।

शुक्र का त्रिंशांश फलः–

स्व त्रिंशांशे बहुसुतसुखारोग्यभार्यार्थयुक्तः,
शुक्रे तीक्ष्णः सुललितवपुर्विप्रकीर्णेन्द्रियश्च।

शूरः स्तब्धौ विषमवधकौ सद्‌गुणाढ्यौ सुखिज्ञो,
चार्वगेष्टौ रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु ।। 10 ।।

(मन्दाक्रान्ता)

यदि शुक्र अपने त्रिंशांश में स्थित हो तो मनुष्य बहुत से पुत्र, बहुत आरोग्य, पत्नी, धन से युक्त होता है तथा तीखे स्वभाव वाला, सुन्दर शरीर वाला, अति चंचल इन्द्रियों वाला भी होता है ।

यदि सूर्य मंगल के त्रिंशांश में हो तो शूरवीर. चन्द्रमा हो तो स्तब्ध अर्थात् धीरे कार्य करने वाला होता है ।

यदि सूर्य शनि के त्रिंशांश में हो तो विषम अर्थात् रूखा व कठोर, चन्द्रमा हो तो हिंसक स्वभाव वाला होता है ।

यदि गुरु के त्रिंशांश में सूर्य हो तो सद्‌गुणी, चन्द्रमा हो तो धनी होता है । यदि बुध के त्रिंशांश में सूर्य हो तो सुखी, चन्द्रमा हो तो बुद्धिमान् व ज्ञानी होता है ।

यदि शुक्र के त्रिंशांश में सूर्य हो तो सुन्दर शरीर वाला, चन्द्र हो तो मनुष्य लोकप्रिय होता है ।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये

पं० सुरेशचन्द्रमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायामाश्रयफलाध्याय एकोनविंशः ।।

[20]

अथ प्रकीर्णाध्यायः

कारक ग्रहों का निरूपणः–

स्वर्क्षतुंगमूलत्रिकोणगाः कण्टकेषु यावन्त आश्रिताः ।
सर्व एव तेऽन्योन्यकारकाः कर्मगस्तु तेषां विशेषतः ।। 1 ।।

(वैतालीय)

जन्म समय जो ग्रह केन्द्र स्थानों में स्वक्षेत्री, मूलत्रिकोणी या स्वोच्च में स्थित हों तो वे परस्पर केन्द्र में स्थित ग्रह कारक संज्ञक होते हैं । उनमें भी दशमस्थ ग्रह विशेषतया कारक होता है ।

परस्पर कारक कहने का तात्पर्य है कि वे ग्रह परस्पर एक दूसरे के फलों को पुष्ट करते हैं । दशमस्थ ग्रह का तात्पर्य केवल लग्न से दशमस्थ ही नहीं, अपितु विचारणीय ग्रह से दशमस्थ होना भी विशेष है । इस बात को स्पष्ट करने के लिए आगे उदाहरण दे रहे हैं । कारक अर्थात् फल का योग (सम्बन्ध) कराने वाले ग्रह, ऐसा अर्थ है ।

कर्कटोदयगते यथोडुपे स्वोच्चगाः कुजयमार्कसूरयः ।
कारका निगदिताः परस्परं लग्नगस्य सकलोऽम्बराम्बुगः ।। 2 ।।

(रथोद्धता)

जैसे कर्क लग्न में चन्द्रमा लग्नस्थ बृहस्पति के साथ, उच्चस्थ मंगल मकर में सप्तमस्थ, शनि चतुर्थ में उच्चस्थ, सूर्य दशम में उच्चगत होकर स्थित हों, तो ये सब ग्रह परस्पर कारक अर्थात् फल योगकारक होंगे । इस उदाहरण में शनि से दशमस्थ गुरुचन्द्र, मंगल से दशम शनि, सूर्य से दशम मंगल तथा लग्न से दशमस्थ सूर्य विशेषतया कारक हुए ।

चतुर्थ चरण में स्वर्क्षतुंग मूल त्रिकोण के बिना भी कारकत्व कहा गया है। अर्थात् लग्न से चतुर्थ दशम में जो भी ग्रह हो, चाहे वह स्वक्षेत्री, मूल त्रिकोणी या स्वोच्चगत न भी हो, तब भी लग्न के प्रति विशेष कारक हो जाता है।

कारक शब्द से क्या तात्पर्य है? कारक अर्थात् फल योग कारक या उपकारक, एक दूसरे के फल को पुष्ट करने वाले ग्रह। **'स्वांस्वां दशा मुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः'** इस प्रोक्त नियम का यह अपवाद है। यद्यपि सभी ग्रह अपनी-अपनी दशा में फल देते हैं, लेकिन परस्पर कारक ग्रह एक-दूसरे का फल भी अपनी दशा में देंगे। जैसे सूर्य इस उदाहरण में गुरु व चन्द्र के प्रति कारक है, अतः सूर्य दशा में भी गुरु आदि परस्पर कारक ग्रहों का फल विशेषतया पुष्ट होगा।

चतुर्थ चरण में स्वर्क्ष त्रिकोणोच्च के बिना कारकत्व का कथन करके आचार्य ने राशि निरपेक्ष दशमस्थ ग्रह की कारकता कही है। अर्थात् जिससे दशम में कोई ग्रह स्थित हो, वह भी कारक होकर अपनी दशा में दूसरे कारक के फलों को पुष्ट करेगा। जिससे ग्रह दशमस्थ होगा तो दशमस्थ ग्रह से विचारणीय ग्रह चतुर्थस्थ रहेगा। अतः विचारणीय भाव से 4. 10 में स्थित ग्रह तो कारक हैं ही, साथ ही 4. 10 में स्थित ग्रह भी परस्पर कारक होंगे। कर्क लग्न का उक्त उदाहरण आदर्शभूत उपलक्षण उदाहरण है। अन्यथा मेष, मकर, तुला लग्नों में भी यही स्थिति रहती है। निष्कर्ष यह है कि स्वराशि या स्वोच्च या मूलत्रिकोण में होना तथा लग्न से केन्द्र में होना ये दो कारकत्व के हेतु हैं। यह लग्न का कारकत्व है। लग्न केन्द्र के अतिरिक्त भावों में भी परस्पर केन्द्रगतत्व हो तो भी कारकत्व होता है, इसका निरूपण आगे किया जा रहा है।

अतः सभी परस्पर केन्द्रगत ग्रह (जैसे द्वितीय, पंचम, अष्टम, एकादश आदि भी कारक हैं। यदि वे स्वोच्चादिगत हों तो सविशेष कारक हैं। उच्च से मूलत्रिकोण व उससे स्वक्षेत्र, ततः मित्रक्षेत्र ततः समक्षेत्र में रहना क्रमशः उत्तरोत्तर कमजोर है, यह बात अन्यथा सिद्ध है।

लग्न से चतुर्थ दशम में स्थित ग्रह यद्यपि परस्पर कारक नहीं होते लेकिन वे लग्न के प्रति विशेष कारक होते हैं। भट्टोत्पल के अनुसार 4. 10 में स्थित ग्रहों की भी स्वर्क्षादि स्थिति अनिवार्य है। हमारा विचार रुद्रभट्ट के मत का अनुसरण करता है, अर्थात् 4. 10 में किसी भी राशि में स्थित ग्रह लग्न के प्रति कारक ही है।

'लग्नगतस्य ग्रहस्य दशमस्थानगतश्चतुर्थस्थानगतश्च ग्रहः स्वर्क्षादिगतत्व रहितोऽपि कारको भवति।' (रुद्रभट्ट)

इसी बात का निर्देश आचार्य ने 'लग्नगस्य' शब्द का प्रयोग करके किया है। बलवान् रहने पर कारक विशेष रूप से तथा साधारण बली होने पर साधारण नाम मात्र फल देगा। इससे फल की मात्रा में न्यूनाधिक्य होता है, लेकिन कारकत्व की हानि नहीं होती।

स्वत्रिकोणोच्चगोहेतुरन्योन्यं यदि कर्मगः।
सुहृत्तद्गुणसम्पन्नः कारकश्चापि स स्मृतः।। 3।।

स्वक्षेत्र, स्वोच्च व मूलत्रिकोण में होना कारकत्व का सामान्य हेतु है। केन्द्र में होना आवश्यक नहीं है। अतः अन्य भावों में भी यदि परस्पर 4. 10 में स्थित ग्रह स्वर्क्षादिगत होकर चतुर्थस्थ ग्रह का कारक होगा, यदि वह उसका अधिमित्र हो। यह कारकत्व किसी भी ग्रह से दशमस्थ ग्रह से निर्णीत होता है। अर्थात् जिस ग्रह से दशम में ग्रह हो तो दशमस्थ ग्रह उसका कारक हुआ।

उदाहरणार्थ पंचम में वृश्चिक में मंगल तथा द्वितीयस्थ सिंह में गुरु हो तो मंगल के प्रति गुरु कारक है, गुरु के प्रति मंगल नहीं। इसी तरह वृश्चिक में मंगल तथा कुम्भ में शुक्र हो तो शुक्र के प्रति मंगल कारक है। यह कारकत्व केन्द्र भावों से बाहर भी होता है। लेकिन अधिमित्रता रहने पर विशेष बलवान् होता है। जैसे मंगल व गुरु में अधिमित्रता होने से यह विशेष बली हुआ। मंगल की कारकता शुक्र के प्रति मित्रता रहने से अपेक्षाकृत कम बली रहेगा।

अन्य शुभ योगः–

शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्ग्रहे।
अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्य ग्रहेषु च।।4।। (अनुष्टुप)

वर्गोत्तम लग्न या वर्गोत्तम ग्रहों के रहने पर जन्म होना शुभ है। सूर्य से द्वितीय भाव में शुभ ग्रह रहने से भी जन्म शुभ होता है। केन्द्र स्थानों में ग्रह हों तो भी जन्म शुभ है। अथवा पूर्वोक्त प्रकार से कारक संज्ञक ग्रह हों तो भी जन्म शुभ होता है।

'वर्गोत्तम जन्म' की टीका करते हुए भट्टोत्पल ने इसका सम्बन्ध केवल लग्न या चन्द्रमा से माना है। अर्थात् लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तमी हो तो शुभ है। इसके विपरीत रुद्रभट्ट कहते हैं–

ग्रहाणां लग्नस्य चांशकेषु वर्गोत्तमेषु सत्सु जन्म शुभम्।

अर्थात् वर्गोत्तम लग्न होने से तथा अन्य ग्रहों के वर्गोत्तम होने से भी शुभ जन्म है। हमारे विचार से लग्न, चन्द्र व अन्य ग्रहों में से जितने अधिक यथासम्भव वर्गोत्तम हों तो श्रेष्ठ है।

वेशि स्थान को रुद्रभट्ट वासि व उभयचरी का उपलक्षण मानते हैं। अर्थात् आचार्य ने सूर्य से द्वितीय में शुभ ग्रह रहने से जन्म शुभ कहा है, लेकिन सूर्य से द्वादश में भी शुभ ग्रह रहे या दोनों ओर शुभ ग्रह रहें तो भी जन्म शुभ है–

'अत्र वेसिग्रहणं वास्युभयचर्योरप्युपलक्षणम्।' (विवरण टीका)

सब केन्द्रों में ग्रह होना अधिक शुभ तथा क्रमशः 3 या 2 या एक केन्द्र में ग्रह रहने पर भी जन्म शुभ है। शुभ ग्रह रहने पर और विशेष शुभ कहना चाहिए, यह भट्टोत्पल ने कहा है। एक केन्द्र में भी ग्रह रहने पर शुभता का स्पष्टीकरण वराह ने स्वयं किया है–

एकस्मिन्नपि केन्द्रे यदि सौम्यो न ग्रहोऽस्ति यात्रायाम्।
जन्मन्यथवा कर्मणि न तच्छुभं प्राहुराचार्याः।। (यात्रा)

पूर्वोक्त लक्षणों में से कारकाख्य योग होना प्रथम श्रेणी का शुभ है तथा शेष क्रमशः कम बली हैं। उक्त बातों में से जितनी अधिक बातें मिलें, उतना ही अधिक शुभ फल होगा।

केन्द्रस्थ ग्रहों का विशेष नियमः–

मध्ये वयसः सुखप्रदाः केन्द्रस्था गुरुजन्मलग्नपाः।
पृष्ठोभयकोदयर्क्षगाः स्वान्त्यान्तः प्रथमेषु पाकदाः।। 5।।

(वैतालीय)

बृहस्पति, जन्मराशीश व लग्नेश यदि केन्द्र में हों तो व्यक्ति को मध्यावस्था में सुख मिलता है।

पृष्ठोदयराशि में स्थित ग्रह अपनी दशा के अन्तिम त्रिभाग में, शीर्षोदय गत ग्रह दशा के पहले त्रिभाग में तथा उभयोदय राशि में स्थित ग्रह दशा के मध्य में फल देते हैं।

गुरु, जन्म राशीश व जन्म लग्नेश यदि तीनों या दो या कोई एक भी केन्द्र (1. 4. 7. 10) में हो तो यौवन में सफलता व सुख देते हैं। अतः ये तीनों यदि केन्द्र, पणफर व आपोक्लिम में हों तो सर्वकाल सुखद रहेंगे।

श्लोक के उत्तरार्ध में दशाफल परिपाक के विशेष नियम का निर्देश है। समस्त ग्रह दशा के वर्षों को समान तीन बराबर भागों में बाँट लें। शीर्षोदयस्थ ग्रह पहली तिहाई में, पृष्ठोदयस्थ ग्रह अन्तिम तिहाई में तथा उभयोदयस्थ ग्रह मध्य की तिहाई में अपना शुभ या अशुभ फल देंगे। लेकिन यह पृष्ठोदयादि स्थिति कब देखें ? रुद्रभट्ट का मत है कि जन्म समय व दशा प्रवेश समय दोनों जगहों पर देखनी चाहिए। भट्टोत्पल इसे केवल दशा प्रवेश

समय पर ही देखना योग्य समझते हैं। हमारे विचार से यह समन्वय दोनों स्थानों पर करना चाहिए। कारण यह है कि '**उदयरविशशांकप्राणिकेन्द्रादि संस्थाः**' इत्यादि प्रकार से दशाक्रम का पहले उल्लेख किया है। उसी सामान्य नियम का यह विशेष नियम है। पुनश्च गर्ग व यवनों के मत से चारवशात् दशा प्रवेश समय में भी विचार करना योग्य है। आचार्य स्वयं दशारम्भ समय के चन्द्रमा से दशा के शुभाशुभफल में तारतम्य मानते हैं, अतः दशाप्रवेश समय में भी देखें।

गोचर में फलदान का नियम–

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ।
रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ शशितनयः फलदस्तु सार्वकालम्।।6।।

(पुष्पिताग्रा)

सूर्य व मंगल राशि प्रवेश के समय फल देते हैं। गुरु व शुक्र राशि के मध्य में जाकर तथा शनि चन्द्रमा राशि के अन्त में पहुँचकर अपना फल देते हैं। बुध सदैव अपना फल देता है।

प्रवेश काल से तात्पर्य राशि का प्रथम द्रेष्काण अर्थात् 10^0 अंशों तक, द्वितीय द्रेष्काण 11^0-20^0 अंशों तक राशि मध्य तथा 21^0-30^0 अंशों तक राशि का उत्तम द्रेष्काण राश्यन्त समझना चाहिए।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां प्रकीर्णाध्यायो विंशः।।

[21]

अथानिष्टयोगाध्यायः

स्त्रीपुत्रहीन योगः—

लग्नात्पुत्रकलत्रभे शुभपतिप्राप्तेऽथवालोकिते,
चन्द्राद् वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथा सम्भवः ।
पाथोनोदयगे रवौ रविसुतो मीनस्थितो दारहा,
पुत्रस्थानगतश्च पुत्रमरणं पुत्रोऽवनेर्यच्छति ।। 1 ।।

(शार्दूलवि.)

यदि लग्न से पंचम या सप्तम स्थान में स्थित राशि में शुभ ग्रह या इनके स्वामि ग्रह स्थित हों या इन भाव राशियों को देखते हों।

अथवा चन्द्र कुण्डली में 5. 7 भावगत राशियों को इनके स्वामी या शुभ ग्रह देखें या वहीं पर स्थित हों तो इन दोनों भावों से सम्बद्ध विषय (पुत्र व स्त्री) की प्राप्ति सम्भव होती है।

यदि लग्न या चन्द्र से 5.7 भावों में शुभ या इनके स्वामी ग्रहों की दृष्टि या योग न हो पापयोग हो तो मनुष्य पुत्रहीन व स्त्रीहीन होता है।

यदि कन्या लग्न में सूर्य स्थित हो तथा सप्तम भाव में मीनस्थ शनि स्थित हो तो स्त्री नाशक योग है।

इसी तरह कन्या में सूर्य लग्नगत हो तथा पंचम में मकरस्थ मंगल हो तो पुत्र का नाश होता है।

पहले ही प्रतिपादित किया जा चुका है कि जिस भाव पर भावेश शुभ ग्रहों का योग या दृष्टि हो तथा पापग्रहों या शत्रुग्रहों का दृग्योग न हो,उस भाव की वृद्धि होती है। यह एक मूलभूत फलित नियम है। इसके बिना एक पग चलना भी मुश्किल है।

इसी प्रकार चन्द्रमा व लग्न की समानता भी पहले ही बहुत्र सम्पादित है, तब यहाँ स्पष्टतया पुनरुक्ति ही प्रतीत होती है। इस विषय में ध्यान रखना चाहिए कि इस अध्याय में विशेष अवश्यम्भावी समझे जाने वाले योगों का निरूपण किया जा रहा है। अतः यथावसर सामान्य नियमों का उपयोग तो यहाँ होगा ही, तदुपरि प्रोक्त विशेष नियमों का लक्षण मिलने पर अनिवार्यतया फल भोग बताना चाहिए। इसके अतिरिक्त सथूणाभिखनन न्याय से अर्थात् दृढ़ीकरण के लिए विशेष व्युत्पत्त्यर्थ ये योग बताए जा रहे हैं। स्तम्भ को जमीन में गाड़कर उसे स्थिर रखने के लिए उसके आस पास ठोस ईंट पत्थर आदि ठोक कर उसे मजबूती देने का नाम स्थूणाभिखनन है।

'भावस्थानालोकयोगवशेन यथोक्तानां फलानां संकीर्णत्वात् सम्भवासम्भवयोः सन्देहे सति अवश्यवक्तव्यानां पुत्र कलत्रादि फल विशेषाणामसम्भव प्रदर्शकान्यनिष्ट योग लक्षणानि अत्र प्रदर्श्यन्ते।'

(विवरणकारः)

'सम्पत्' शब्द के द्वारा मूल में बहुत्व निर्देश दिया है। अर्थात् सन्तान होना एवं सन्तान का सुख ये दोनों अलग बातें हैं। सन्तान व स्त्री का विचार गुरु शुक्रादि से भी तथा उनका अस्तित्व अन्य कारणों से भी जाना जा सकता है, लेकिन इस श्लोकोक्त स्थिति में उनका खूब होना व अनुकूल होना तथा चिरकाल तक साथ निभाना आदि बातें सम्पत् शब्द से निर्दिष्ट हैं।

'पुत्रमरणं' शब्द द्वारा पुत्रों का होना तथा होकर मर जाना बताया है। इसी पद्धति से अन्य भावों का भी फल विचार किया जा सकता है। फिर भी प्रायः सभी साधक व बाधक अर्थात् पक्ष-विपक्ष के नियमों का तुलनात्मक विवचेन करके निष्कर्ष निकालना चाहिए।

मीन में शनि व कन्या में सूर्य दोनों ही नीचाभिलाषी होते हैं। अतः ज्यों-ज्यों ये तुला व मेष की ओर अधिक बढ़े होंगे तो फल भी उतना ही उत्कट होगा। कदाचित् नीच स्थिति की अपेक्षा नीचाभिलाषी रहने को अधिक अशुभ माना है। ठीक उसी तरह जैसे पहले शनि व मंगल की

सहस्थिति की अपेक्षा उनकी दृष्टि को विशेषतया नाशकरी कहा है। विभिन्न भाव योगों के विषय में अपने **बृहत्पाराशर व्याख्यान में** लिखेंगे।

फिर भी स्त्रीनाश विचार में सप्तमेश, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा व बुध का और गुरु तथा शुक्र सहित सप्तमेश का विचार अवश्य करना चाहिए।

श्लोक के उत्तरार्ध में जो योग कहे हैं, रुद्रभट्ट उनको दिशा निर्देशार्थ दिए गए उदाहरण मानते हैं।

अत्रोदाहरणमाह--पाथोनोदयगे रवौ......... इत्यादि।(रुद्रभट्टः)

स्त्रीनाश के तीन योगः-

उग्रग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितैर्मध्यस्थिते भृगुतनयेऽथवोग्रयोः।
सौम्यग्रहैरसहितसंनिरीक्षिते, जायावधो दहननिपातपाशजः।। 2।।

(प्रहर्षिणी)

यदि शुक्र से 4. 8 (चतुरस्र) भावों में कई उग्र पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) स्थित हों तो मनुष्य की पत्नी अग्नि के संयोग से मृत्यु को प्राप्त होती है।

अथवा दो उग्र ग्रहों के बीच में शुक्र स्थित हो तो ऊँचे स्थान से गिरकर या गर्भपात के कारण मृत्यु को प्राप्त होती है।

यदि शुक्र पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग न हो तो मनुष्य की पत्नी की मृत्यु फाँसी आदि से होती है।

अथवा उक्त तीनों योगों में ही अग्नि या निपात या पाश से यथा सम्भव मृत्यु हो सकती है।

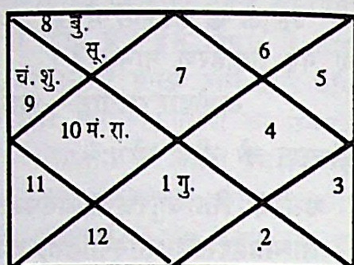
शुक्र का स्त्रीकारकत्व, विशेषतया स्त्रीसुख कारकत्व रेखांकित किया गया है। भट्टोत्पल ने क्रमशः तीनों में एक-एक क्रमशः प्रोक्त कारण से मृत्यु कही है तथा 'गार्गि' का प्रमाण दिया है। अतः हमने उसे मुख्य अर्थ के रूप में माना है। रुद्रभट्ट ने योगों में यथासम्भव आग, फाँसी या निपात से मृत्यु कही है। हमें वह अर्थ भी सर्वथा उपेक्षणीय नहीं लगता। कारण दहननिपात पाशजः' जायावधः कहा। तब श्लोक के पहले तीन चरण जोड़ लें तो योग सम्बन्ध व पदान्वय स्पष्ट हो जाता है तथा योग दो ही रहते हैं। तब पापमध्यगत शुक्र पर शुभ योग दृष्टि न हो तो जायावध 'दहननिपात पाशजः' होता है, यह एक ही योग माना जाता है। भट्टोत्पल ने यद्यपि इस अर्थ को अयुक्त कहा है, तथापि हम इसे विचारणीय अवश्य समझते हैं। मृत्यु के कारण अनेक हैं। संसार में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब मृत्यु के कारण यथावसर हो सकते हैं। सामान्यतः प्रसिद्ध व मुख्य मृत्युकारण का आचार्य

ने निर्देश किया है जो अस्वाभाविक मृत्यु को ही द्योतित करता है। मरण की अस्वाभाविकता तो स्वयं 'जायावध' शब्द से ही द्योतित हो रही है।

(क)



(ख)



दोनों ही कुण्डलियों में शुक्र पापग्रह मध्य में है। एक में तो शुक्र सन्निरीक्षित भी है। दोनों ही व्यक्तियों की पत्नी की अस्वाभाविक मृत्यु हुई। (ख) कुण्डली में पत्नी ऊँचे स्थान से गिरी थी। (क) में रोगवशात् मृत्यु हुई थी। अतः मृत्यु कारण की क्रमिकता पर दृढ़ रहना विशेष व्यवहार्य नहीं है।

'निपात' शब्द से गर्भपात भी स्वीकार्य है। 'उग्रग्रहैः' में बहुवचन प्रयोग है, अतः सभी पापग्रह (राहु केतु सहित) यहाँ स्वीकार्य हैं।

विकलांग या कानी पत्नी के योग–

लग्नाद्व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्म्योः
पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्म।
द्यूनस्थयोर्नवमपंचमसंस्थयोर्वा
शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम्।। 3।। **(वसन्ततिलका)**

लग्न से द्वादश स्थान में चन्द्रमा व षष्ठ स्थान में सूर्य हो तो मनुष्य काना होता है तथा विवाह काल में उसे पत्नी भी कानी ही मिलती है।

यदि सप्तम स्थान में अथवा 5 या 9 में एक साथ सूर्य शुक्र हों तो पत्नी के शरीर में विकलता होती है।

द्वादशस्थ चन्द्रमा बांयी आँख का नाशक होता है तथा सूर्य दाँयी आँख का नाशक है। इस नियम से सामान्य जातक विधि के अनुसार किसी एक की कुण्डली में द्वादशस्थ सूर्य चन्द्रादि हों तो उसी की नेत्र हानि कही जाएगी। द्वादश स्थान अपनी आँख का एवं षष्ठ स्थान (सप्तम से द्वादश) पत्नी की आँख का है।

स्त्रीपुत्रहीन योगः–

कोणोदये भृगुतनयोऽस्तचक्रसन्धौ,
वन्ध्यापतिर्यदि न सुतर्क्षमिष्टयुक्तम्
पापग्रहैर्व्ययमदलग्नराशिसंस्थैः
क्षीणे शशिन्यसुतकलत्रजन्मधीस्थे ।। 4 ।।

यदि लग्न में शनि (कोण) हो तथा शुक्र कर्क, वृश्चिक, मीन राशि के अन्तिम नवांश में सप्तम भाव में हो और पंचम भाव में कोई शुभ ग्रह या पंचमेश न हो तो मनुष्य की स्त्री बाँझ होती है। अर्थात् पंचम भाव शुभ स्वामियुक्त हो तो बाँझ नहीं होती।

यदि पंचम भाव में क्षीण चन्द्रमा, 1. 7. 12 भावगत राशियों में पापग्रह हों तो मनुष्य स्त्री व पुत्र से हीन होता है।

प्रथमार्ध में कहा गया योग मकर, वृष व कन्या लग्न में जन्म होने पर ही सम्भव होगा, अर्थात् शनि लग्न में इन राशियों में अन्तिम अशों में हो तभी, सप्तम में शुक्र राशि सन्धि में पड़ सकेगा। साथ ही पंचम भाव में भी इन्हीं तीन राशियों में से कोई एक राशि रहेगी।

द्वितीय योग में स्त्री व पुत्र से हीन कहा है। जब स्त्री से हीन हुआ तो पुत्र कहाँ से होगा ? यह स्वाभाविक शंका है, क्योंकि स्त्री हीन कहने से ही प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। लेकिन पुत्रों के प्राचीन काल में अनेक प्रकार बताए गए हैं। जैसे अन्य स्त्री में उत्पन्न, दत्तक, खरीदा गया (क्रीत), कृत्रिम पुत्र अर्थात् जिसे पुत्र की तरह माना जाए इत्यादि। अतः योग में सब प्रकार के पुत्र सुख का निषेध किया गया है। पापग्रह 1. 7. 12 में होने का तात्पर्य है कि किसी एक दो भावों में या तीनों में ही सूर्य, मंगल, शनि किसी प्रकार से स्थित हों।

स्त्री विषयक अन्य अनिष्ट योग–

असितकुजयोर्वर्गेऽस्तस्थे सिते तदवेक्षिते,
परयुवतिगस्तौ चेत् सेन्दू स्त्रिया सह पुंश्चलः।
भृगुजशशिनोरस्तेऽभार्यो नरो विसुतोऽपि वा,
परिणततनू नृस्त्र्योर्दृष्टौ शुभैः प्रमदापती ।। 5 ।।

(हरिणी)

शनि या मंगल के वर्ग (नवांशादि) में स्थित शुक्र सप्तम भाव में गया हो तथा शनि व मंगल, उस शुक्र को देखते हों तो मनुष्य परस्त्रीगामी होता है।

यदि उक्त प्रकार से स्थित शुक्र को देखने वाले शनि व मंगल के साथ चन्द्रमा भी हो तो मनुष्य तो परस्त्रीगामी होता ही है, उसकी पत्नी भी परपुरुषगामिनी होती है।

यदि एकत्र स्थित शुक्र व चन्द्रमा से सप्तम राशि में, मंगल व शनि दोनों ही हों तो मनुष्य पत्नी रहित होता है। अथवा पुत्र से भी रहित होता है।

यदि किसी एक राशि में एक स्त्री संज्ञक (चन्द्र, शुक्र, शनि प्रभृति) तथा एक पुरुष संज्ञक ग्रह हो, उनसे सप्तम में मंगल व शनि रहते हुए भी कोई शुभ ग्रह उन सप्तमस्थ पापग्रहों को देखता हो तो मनुष्य को प्रौढ़ावस्था में या वृद्धावस्था में पकी उम्र वाली स्त्री ही मिलती है।

इस शलोक के नियमों को विशेषतया स्पष्ट करने की आवश्यकता है। पहले योग में सप्तम में शुक्र हो, वह शुक्र मंगल या शनि के वर्ग में हो तथा शनि मंगल से ही देखा जाए, तब योग पूरा होगा। वर्ग से तात्पर्य षड्वर्ग से है। अतः किसी वर्ग में मंगल की राशि में तथा अन्यवर्ग में शनि की राशि में भी एक साथ शुक्र हो सकता है। जैसे कुम्भ के 6 अंश पर शुक्र कुंभ के द्रेष्काण तथा वृश्चिक के नवांश तथा पुनः शनि के त्रिंशांश में हो सकता है। प्रत्येक अवस्था में एकत्र स्थित शनि मंगल की पूर्ण दृष्टि शुक्र पर आवश्यक है। विशेषतया सप्तम दृष्टि, अर्थात् शनि मंगल लग्न में हों तथा सप्तम में इन्हीं के वर्ग में शुक्र हो तो मनुष्य परस्त्रीगामी होगा।

तौ चेत् सेन्दू– इस अंश की व्याख्या में भट्टोत्पल ने माना है कि तौ अर्थात् वे दोनों शनि व मंगल, सेन्दू अर्थात् चन्द्रमा से युक्त हों और सप्तम भाव में हों। शनि मंगल के वर्ग में स्थित शुक्र लग्न में जाकर इन दोनों को देखे तो पति पत्नी दोनों ही व्यभिचारी होते हैं।

लेकिन रुद्रभट्ट ने कहा है कि (तौ) शनि व मंगल, लग्न में ही हों तथा साथ में चन्द्रमा भी हो, शेष शुक्र की स्थिति आदि बातें पूर्ववत् हों तो दोनों परगामी होते हैं।

भट्टोत्पल ने प्रथम योग को उलटकर द्वितीय योग माना है, जबकि उसका विशेष औचित्य नहीं दिखता। हमने रुद्रभट्ट वाला अर्थ अधिक उचित जानकर ऊपर दे दिया है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर भी हमें रुद्रभट्ट वाला अर्थ उपयुक्त जान पड़ता है। क्योंकि शनि, मंगल व शुक्र के स्थान परिवर्तन वाली बात कहीं भी शलोक में नहीं प्रकट होती। पुनश्च सप्तम में पापवर्गगत शुक्र यदि पापग्रहों से दृष्ट भी होगा तो उत्कट चंचलता लोलुपता प्रदान करेगा, जबकि सप्तमस्थ शनि मंगल व चन्द्रमा अर्थात् पाप ग्रह सप्तम में होंगे तो स्त्री सुख या इन्द्रिय सुख में बाधक ही होंगे।

तीसरे योग में **'नरोविसुतोऽपि वा'** कहकर भार्यारहित होना निश्चित कहा है तथा पुत्रहीन भी हो, यह नियमतः नहीं होगा। 'वा' शब्द विकल्पार्थक है। अतः विवाह या स्त्री का सुख न मिलने पर भी किसी प्रकार के पुत्र का सुख सम्भव है, आचार्य उसकी सम्भावनाओं का सम्पूर्ण निषेध नहीं करते।

अन्य अनिष्ट योगः–

वंशोच्छेत्ताखमदसुखगैश्चन्द्रदैत्येऽयपापैः
शिल्पी त्र्यंशे शशिसुतयुते केन्द्रसंस्थार्किदृष्टे।
दास्यां जातो दितिसुतगुरौ रिःफगे सौरिभागे,
नीचोऽर्केन्द्वोर्मदनगतयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन ।।6।।

(मन्दाकान्ता)

दशम स्थान में चन्द्रमा, सप्तमस्थ शुक्र एवं चतुर्थ स्थान में कई पापग्रह हों तो मनुष्य अपने कुल का नाश करने वाला होता है। अर्थात् उसके कारण वंश का समूल नाश हो जाता है।

जन्म समय में बुध जिस द्रेष्काण में हो, वह द्रेष्काण राशि यदि लग्न से केन्द्र में स्थित शनि से दृष्ट हो तो मनुष्य कलाकार होता है। अर्थात् सब कुछ लुटाकर अपने हुनर से ही जीता है।

यदि शुक्र द्वादशस्थ होकर शनि के नवांश में हो तो मनुष्य दासी से उत्पन्न होता है। अर्थात् उसकी माता दासी (परपुरुषगता) होती है।

यदि सूर्य व चन्द्रमा सप्तम स्थान में शनि से पूर्ण दृष्ट हों तो मनुष्य नीच अर्थात् अनुचित कर्म करने वाला होता है।

वंशोच्छेत्ता– स्वयं अपने वंश का नाश करने वाला। अपने अनुचित कृत्यों से पुत्र को नष्ट करने वाला या दुर्योधनादि की तरह अपने कार्य से सम्पूर्ण वंश को नष्ट भ्रष्ट करने वाला, ऐसा यथावसर समझना चाहिए।

शिल्पी– अर्थात् दस्तकार, हाथ से किए जाने वाले कार्यों में कुशल हो। यह बात कोई अनिष्ट कारक न होने से यह स्वयं अनुमेय है कि ऐसा व्यक्ति अपनी बुरी आदतों आदि से अपना सब-कुछ नष्ट कर देता है तथा बाद में अपनी कलाकारी से ही जीवित रहता है।

दास्यां जातः 'दास्याः पुत्र' यह संस्कृत भाषा की गाली है। ऐसा व्यक्ति जिसके पिता का पता न हो, अज्ञात पितृक, लावारिस।

पापालोकितयोः सितावनिजयोरस्तस्थयोर्वातरुक्,
चन्द्रेकर्कटवृश्चिकांशकगते पापैर्युते गुह्यरुक्।

श्वित्रीरिःफधनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्तेरवौ,

चन्द्रे खेऽवनिजेऽस्तगे च विकलो यद्यर्कजो वेसिगः ।। 7 ।।

यदि सप्तम स्थान में शुक्र व मंगल, पापग्रहों से दृष्ट होकर स्थित हों तो मनुष्य वातरोग अर्थात् वायु रोग से पीडित होता है ।

यदि चन्द्रमा कर्क या वृश्चिक के नवांश में स्थित होकर, पाप ग्रहों से युक्त हो तो मनुष्य गुप्त रोगी होता है ।

यदि 2.12 भावों में एक साथ पाप ग्रह हों, चन्द्रमा लग्न में तथा सप्तम में सूर्य हो तो मनुष्य सफेद शरीर वाला अर्थात् कुष्ठभेदवशात् सफेद दाग युक्त शरीर व रोम वाला होता है ।

यदि चन्द्रमा दशम में, सप्तम में मंगल व शनि सूर्य से द्वितीय स्थान (वेसि) में हो तो मनुष्य विकलांग होता है ।

प्रथम चरण में वातरुक् के स्थान पर बाध्यरुक् पाठ भी है । आचार्य का आशय दृश्यमान अर्थात् स्पष्ट दिखने वाले रोग से है । इसी तरह गुप्तरोगी अर्थात् गुप्तांगों का रोगी अथवा ऐसा रोग जो भीतरी हो, स्पष्ट न दिख सके । रुद्रभट्ट कहते हैं–

'गुह्यरुक् भवति ।अदृश्यरोगःरक्तदोषसम्भवोविद्रधिभगन्दरादिः ।

(विवरण)

इस योग में असाध्य रक्तकैंसर आदि की सम्भावना होती है । भट्टोत्पल ने कहा है– गुह्यरुक् परुष व्याधिः अर्थात् कठिन असाध्य रोग ।

श्वित्र सफेद कोढ को कहते हैं । इसमें सारा शरीर सफेद हो जाता है । रोम व पलक भी भूरे हो जाते हैं । सफेद दागों की व्यापकता से आशय है ।

कैंसर (विद्रधि) आदि बड़े रोगों के योगः–

अन्तः शशिन्यशुभयोर्मदगे पतंगे

श्वासक्षयाप्लिहकविद्रधिगुल्मभाजः ।

शोषी परस्पर गृहांशगयो रवीन्द्वोः

क्षेत्रेऽथवा युगपदेव तयोः कृशो वा ।।8 ।।

(वसन्ततिलका)

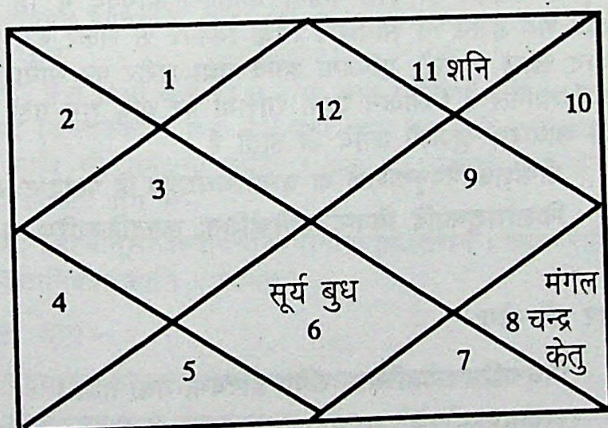
यदि चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में हो तथा सूर्य लग्न से सप्तम में स्थित हो तब मनुष्य श्वास, क्षय, प्लीहा, भीतरी बड़ा घाव (विद्रधि) गुल्म (भीतरी फोड़ा) आदि रोगों से पीड़ित होता है । अथवा पाठान्तर से सूर्य

मकर में हो (मृगगे) तथा चन्द्रमा पूर्ववत् पापमध्य में गया हो तो भी उक्त फल होता है।

यदि चन्द्रमा किसी भी राशि में सूर्य के नवांश में तथा सूर्य कर्क के नवांश में हो अथवा सिंह में चन्द्रमा तथा कर्क में सूर्य हो तो मनुष्य सूखा रोग (क्षय) से पीड़ित होता है। अथवा दोनों एक साथ कर्क या सिंह में हों तो भी मनुष्य क्षयी अर्थात् निरन्तर शक्ति घटाने वाले टी० बी० आदि रोग से युक्त होता है। अथवा ऐसा व्यक्ति दुर्बल होता है।

प्रथम योग में चन्द्रमा की अधिष्ठित राशि व नवांशादि के अनुसार रोग विशेष का निर्देश करना चाहिए। जैसे चन्द्रमा शनि क्षेत्रादि में हो तो श्वास सम्बन्धी रोग, गुरु के क्षेत्र में क्षय, बुध के क्षेत्र में प्लीहा अर्थात् जिगर तिल्ली, मंगल क्षेत्र में हो तो भीतरी घाव फोड़ा (कैंसर) आदि तथा शुक्र के क्षेत्र में हो तो गुल्म अर्थात् पेट का दर्द विशेष जैसे अपेन्डिक्स, आंत्रशोथ आदि के कारण उठने वाला उदर शूल इस प्रकार से तथा पूर्वोक्त ग्रहों के पंच महाभूतादि तथा प्रवृति आदि की गवेषणा करके विशेष निर्देश करना चाहिए। अथवा सामान्य सम्भव कोई भी उक्त रोग हो सकता है।

'मदगे पतंगे' के स्थान पर **'मृगगे पतंगे'** भी पाठ है। दोनों ही पाठ उपयुक्त हैं। सारावली में सप्तम सूर्य से उक्त योग बताया है तथा अन्यत्र गुणाकरादि ने मकरस्थ सूर्य से उक्त योग माना है। बहुत प्राचीन काल से ही दोनों वैकल्पिक पाठ प्रचलित हैं। अनुभव से दोनों ही घटित होते प्रतीत होते हैं।



उक्त कुण्डली में चन्द्रमा अनुराधा के चतुर्थ चरण में मंगल व केतु के बीच के अंशों में है तथा सूर्य सप्तमस्थ है। यह एक दमा, ब्रांकाइटिस व

एलर्जी के मरीज की कुण्डली है। पिछले श्लोकानुसार 'चन्द्रे कर्कटवृश्चिकां –शक-गतं पापैर्युते गुह्यरुक्' वाली बात घट रही है। मंगलांश में स्थित चन्द्रमा भी पूर्वोक्त प्रकार किसी भीतरी बड़े रोग की सूचना दे रहा है। वर्तमान में भीषण दमा ही है।

त्वचा रोग के योगः–

चन्द्रेऽशिवमध्यझषकर्किमृगाजभागे,
कुष्ठी समन्दरुधिरे तदवेक्षिते वा।
यातैस्त्रिकोणमलिकर्किवृषैर्मृगे च,
कुष्ठी च पापसहितैरवलोकितैर्वा ।।9।।

(वसन्ततिलका)

यदि चन्द्रमा धनु राशि के मध्य में स्थित हो अथवा किसी भी राशि में मीन, कर्क, मकर, मेष के नवांश में हो तथा वह शनि मंगल से युक्त हो या उनसे दृष्ट हो तो मनुष्य किसी प्रकार के कुष्ठ अर्थात् त्वचाविकार से युक्त होता है।

यदि वृश्चिक, कर्क, वृष, मकर ये राशियाँ 1.5.9 भावों में पड़ती हों और इनमें पापग्रह स्थित हों या पापग्रह इन्हें देखते हों तो मनुष्य को त्वचा विकार होता है।

कुष्ठ रोग से तात्पर्य साक्षात् कोढ़ से नहीं लेना चाहिए। विशेष ग्रहयोग दृष्टि देखकर ही ऐसा कहना चाहिए। आयुर्वेद में 18 प्रकार के कुष्ठ बताये गये हैं जिनमें साधारण त्वचा विकार से लेकर बड़े कुष्ठ तक जिसमें दाद खाज खुजली, एग्जिमा आदि तथा शरीर पर साधारण एलर्जी भी उसी में शामिल है। लेकिन उक्त राशियों पर यदि शुभ ग्रहों की दृष्टि भी हो तो साधारण खुजली आदि ही होती है।

मीनांशके मेषमृगांशके वा चन्द्रस्थितोऽत्रैव हि पापदृष्टः।
किलासकुष्ठादि विनष्टदेहमिष्टेक्षितः कण्डुविकारिणं च।।

(यवन)

नेत्रविकार के योगः–

निधनारिधनव्ययस्थिता रविचन्द्रारयमा यथा तथा।
बलवद्ग्रहदोषकारणान्मनुजानां जनयत्यनेत्रताम्।। 10।।

(वैतालीय)

यदि सूर्य, चन्द्र, मंगल व शनि किसी भी प्रकार से 2. 12. 6. 8 भावों में हों तथा इन चारों में जो सर्वबली ग्रह हो, उसी के दोष के कारण मनुष्य को आँखों में हानि होती है। अथवा आँख नष्ट होती है।

उक्त चारों ग्रहों में से कुछ कम ग्रह इन भावों में स्थित हों तो आनुपातिक रूप से नेत्र नाश योग का प्रभाव बताना चाहिए। चन्द्रमा अधिक वात व कफ वाला, शनि कफ–वात प्रधान है। जो अधिक बलवान् हो उसी दोष से नेत्रनाश होगा। कफाधिक्य से भी नेत्र हानि होती है–

'चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।। (वाहट)

सूर्य व मंगल पित्ताधिक्य वाले अग्नि रूप ग्रह हैं। अतः अन्दरूनी पित्त बढ़ने से या बाहरी अग्नि संयोग से नेत्र नाश योग होते हैं।

पूर्वोक्त काणादि योगों का भी विचार करना चाहिए। यदि 6. 12 में हों तो बांयी आँख तथा 2. 8 में हों तो विशेषतया दांयी आँख की हानि बतानी चाहिए।

कान व दाँत के विकारः–

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभाः निरीक्षिताः।
नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे।। 11।।

(वैतालीय)

यदि अशुभ ग्रह 5. 9. 3. 11 भावों में स्थित हों तथा कोई भी शुभ ग्रह उन्हें न देखता हो तो मनुष्य को निश्चय से कर्ण हानि होती है।

यदि पापग्रह सप्तम में शुभ ग्रहों से दृष्ट न हों तो दाँतों में विकार उत्पन्न करते हैं।

पूर्ववत् 3. 9 से दायाँ व 5. 11 से बायाँ कान समझना चाहिए। सप्तमस्थ पापग्रह से रद (दन्तविकार) कहा है। यहाँ 'दन्त' शब्द से दन्तच्छद (होठ) तालु, जीभ आदि भी समझना चाहिए। अतः यह सम्पूर्ण मुख के भीतरी दोषों का परिचायक योग है–

रदशब्दः जिह्वामूलजिह्वादन्तच्छदानामप्युपलक्षणम्। सप्तमराशिवशेन मुखगतान्यनिष्टानिवक्तव्यानि।(रुद्रभट्टः)

अन्य अनिष्ट योगः–

उदयत्युडुपेऽसुरास्यगे सपिशाचोऽशुभयोस्त्रिकोणयोः।
सोपप्लवमण्डले रवावुदयस्थे नयनापवर्जितः।। 12।।

(वैतालीय)

यदि चन्द्रमा राहु के मुख में स्थित हो अर्थात् चन्द्र ग्रहण के दिन जन्म हो तथा 5.9 में दोनों मुख्य पाप ग्रह (मंगल शनि), हों तो मनुष्य सपिशाच अर्थात् उन्मत, असमंजस में रहने वाला, खोया खोया सा अर्धविक्षिप्त होता है। अथवा भूतप्रेतों से पीड़ित होता है।

इसी प्रकार सूर्य ग्रहण के दिन सूर्य लग्न में स्थित हो तथा 5.9 में पापग्रह हों तो मनुष्य नेत्रहीन होता है।

यहाँ ग्रहणकाल की अपेक्षा ग्रहणपूर्व काल का भी बोध होता है। अतः ग्रहणवाली पूर्णिमा या अमावस्या के कुछ पहले लगभग 2-3 दिनों में भी जन्म हो तब भी उक्त फल होगा।

दूसरे योग में रुद्रभट्ट ने केवल ग्रहणकालीन सूर्य के लग्नस्थ होने पर नेत्र नाश कहा है, जबकि भट्टोत्पल ने **'सोपप्लवगे रवौ'** का सम्बन्ध पूर्ववत् **'अशुभयोस्त्रिकोणयो'** से स्थापित करके अर्थ किया है। हमारे विचार से त्रिकोण में पाप ग्रहों का होना नेत्रनाश योग में आवश्यक नहीं है। इसके स्थान पर यदि वैसा सूर्य मंगल शनि से दृष्ट हो तो अवश्यमेव सर्वथा नेत्रनाश में सहायता करेगा। अतः हमें रुद्रभट्ट वाला अर्थ अधिक प्रिय है। इस कारण प्रथम योग के 'अशुभयोस्त्रिकोणयो': का अनुवर्तन द्वितीय योग में नहीं करना चाहिए।

अन्य अनिष्ट योगः–

संस्पृष्टः पवनेन मन्दगयुते द्यूने विलग्ने गुरौ,
सोन्मादोऽवनिसूनुनास्तभवने जीवे विलग्नाश्रिते।
तद्वत् सूर्यसुतोदयेऽवनिसुते धर्मात्मजद्यूनगे।
जातो वा ससहस्ररश्मितनये क्षीणे व्यये शीतगौ।।13।।

(शार्दूलवि)

यदि लग्न में बृहस्पति व सप्तम में शनि हो तो मनुष्य वातरोग (गठिया आदि वात रोग) से पीड़ित होता है।

यदि लग्न में गुरु स्थित हो तथा सप्तम में मंगल हो तो मनुष्य उन्माद युक्त विक्षिप्त होता है।

इसी तरह लग्न में शनि व 5. 9. 7. में मंगल हो तो अथवा शनि व क्षीण चन्द्रमा द्वादश में हों तब भी मनुष्य उन्माद रोगी होता है।

यहाँ **'जीवे विलग्नाश्रिते'** एवं **'विलग्ने गुरौ'** में पुनरुक्ति रूप शिथिलता दिखती है। यदि दूसरी पंक्ति में **'जीवे तथैवाश्रिते'** यह कहते तो दोष नहीं होता। इत्यलं महतां दोष दर्शनेन।

दास (गुलाम) योगः–

राश्यंशपोष्णकरशीतकरामरेज्यैर्नीचाधिपांशकगतैररिभागगैर्वा ।
एभ्योऽल्पमध्यबहुभिः क्रमशः प्रसूता ज्ञेयाः स्युरभ्युपगम क्रयगर्भदासाः ।। 14 ।।

(वसन्ततिलका)

राशिपति (जन्म राशीश) अंशपति (चन्द्रमा जिस नवांश में हो, उसका पति), उष्णकर (सूर्य) शीतकर (चन्द्रमा), अमरेज्य (बृहस्पति) ये पाँच यदि जन्म समय में अपने शत्रु के नवांश में या अपनी नीच राशि के स्वामी के नवांश में (नीचाधिपांशक) गए हों तो मनुष्य दास होता है। यदि इनमें से एक दो (अल्प) इस प्रकार से स्थित हों तो मनुष्य **अभ्युपगमदास** अर्थात् दासवृत्ति, नौकरी चाकरी, सेवा को स्वयं इच्छा से स्वीकार करने वाला, यदि (मध्य) इनमें से तीन या चार इस तरह से हों तो **क्रयदास** अर्थात् पैसे देकर खरीदा गया, बन्धक, बन्धुआ, गुलाम, जरखरीद होता है।

यदि चारों पाँचों तत्त्व उस प्रकार से नीचाधिपांश या शत्रु अंश में गए हों तो मनुष्य गर्मदास अर्थात् जन्म से ही दास होता है। अर्थात् दासों के कुल में ही जन्म लेता है।

भट्टोत्पल ने राश्यंशक को एक ही माना है। यह युक्त नहीं है। राशि व अंश दोनों के स्वामियों का यहाँ ग्रहण है।

राशिनाथश्च अंशनाथश्च शीतकरश्च उष्णकरश्च अमेरज्यश्चैतैः पंचभिः ।।

(रुद्रभट्टः)

दन्त रोग व अन्य रोग योगः–

विकृतदशनः पापैर्दृष्टे वृषाजहयोदये,
खलतिरशुभक्षेत्रे लग्ने हये वृषभेऽपि वा ।
नवमसुतगे पापैर्दृष्टे रवावदृढ़ेक्षणो,
दिनकरसुते नैकव्याधिः कुजे विकले पुमान् ।। 15 ।।

(हरिणी)

यदि मेष, वृष या धनु लग्न में जन्म हो तथा लग्न को अनेक पापग्रह देखते हों तो मनुष्य दन्त विकार युक्त होता है।

यदि पापग्रह के लग्नों (मेष, वृश्चिक, मकर, कुम्भ, सिंह) में या वृष, धनु में जन्म हो तथा लग्न को पापग्रह देखते हों तो मनुष्य गंजा होता है।

यदि सूर्य 9. 5 में पापग्रहों से दृष्ट हो तो मनुष्य की दृष्टि निर्बल होती है।

यदि पंचम नवम में शनि पापग्रहों से युक्त हो तो मनुष्य अनेक रोगों से युक्त होता है।

इसी तरह 9.5 में मंगल पापदृष्ट हो तो मनुष्य विकलांग होता है।

'खलति' शब्द का अर्थ बिल्कुल गंजा न होकर मस्तक के अग्रभाग पर बाल न होना है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति के बाल कम होते हैं, तथा कालान्तर में बिल्कुल समाप्त भी होने की सम्भावना होती है।

उक्त सभी योगों में पाप योग के स्थान पर पापदृष्टि को कहा गया है। वास्तव में पापयोग की अपेक्षा पापदृष्टि अधिक विनाशक होती है, ऐसा समझना चाहिए। द्वितीय पंक्ति में वृष व धनु लग्न की पुनरुक्ति की गई है। इससे स्पष्ट है कि 2.9. लग्न यदि पापदृष्ट हों तो मनुष्य दन्त विकार वाला व गंजा भी होता है।

जबकि 1.5.8.10.11 में पापदृष्टि रहने से केवल केशाल्पता ही होती है। यदि पाप योग हो तो विलम्ब से बाल गिरते हैं।

यदि पापफल कारक ग्रह 9.5 में स्वक्षेत्री आदि होकर या शुभ भावेश होकर स्थित हों या शुभ ग्रह (गुरु, बुध, शुक्र) से दृष्ट युत हों तो अशुभ फल नहीं होता, केवल चोट आदि लगती है। गंजापन होने का फल देर से घटित होता है।

श्लोक में प्रोक्त 'नवमसुत' शब्द त्रिकोण वाचक होने से तीनों त्रिकोणों 1. 5. 9 का बोधक समझना चाहिए।

बन्धन (कारागार) योगः–

> **व्ययधनसुतधर्मगैरसौम्यैर्भवनसमाननिबन्धनं विकल्प्यम्।**
> **भुजगनिगडपाशभृद्दृकाणैर्बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत्।।16।।**

(पुष्पिताग्रा)

लग्न से 2.12.5.9 में यदि पापग्रह स्थित हों तो मनुष्य को लग्न में पड़ने वाली राशि के समान बन्धन की कल्पना करके बताना चाहिए।

यदि लग्न में सर्प या निगड द्रेष्काण हो तथा उसे बली पापग्रह देखते हों तो भी राशि द्रेष्काण स्वभावानुसार बन्धन होता है।

यद्यपि अन्य टीकाकारों ने यह बात स्पष्ट नहीं की है, तथापि हमारे विचार से 2.12 या 9.5 में एक साथ पापग्रह होने से ही बन्धन होता है,

ऐसा अनुभव में आया है। यदि इन चारों भावों में मंगल, शनि, राहु, केतु सूर्य हों तो क्या कहना ? तब शत प्रतिशत दीर्घकालीन बन्धन होता है।

बन्धन की विधि के विषय में निर्देश दिया गया है कि लग्न में जो राशि है, वहं राशि जिस प्रकार से लोक में बाँधी जाए, उसी प्रकार से मनुष्य का बन्धन होता है। जैसे मेष व वृष राशि भेड़ व बैल रूप होने से रस्सी से बाँधी जाती हैं, अतः इन लग्नों में जन्म लेने वाला व्यक्ति यदि बन्धन योग से युक्त हो तो उसे रस्सी, निगड़, जंजीर, हथकड़ी आदि से बाँधा जाएगा। धनु राशि भी अश्व रूप तथा धनुर्धारी होने से घोड़े या वीर पुरुष को जैसे बाँधा जाए अर्थात् जंजीर से पैर में डालने वाली बेड़ी आदि से बन्धन होता है। मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ में पुरुषाकार होने से हथकड़ी आदि से बाँधा जाएगा। कर्क, सिंह व मीन शरीर में बन्धन नहीं होकर किसी किले, गुप्त स्थान, भूमिगत स्थानादि में बन्धन होता है। ऐसा समझना चाहिए। वृश्चिक राशि बिच्छू के समान होने से बिल में जाल आदि में अथवा अत्यन्त गुप्तस्थान में बन्धन होता है। मकर राशि में जल स्थान के निकट, नौका आदि में, किसी दुर्गादि में बन्धन होता है।

रुद्रभट्ट ने कुछ और विशेष बातें भी बताई हैं। यदि द्वादश में निर्बल पापग्रह हो तो स्त्री सम्पर्क के कारण अथवा कर्जदारी, व्यय की अधिकता के कारण, बन्धन होता है। यदि धन भाव में निर्बल पापग्रह हो तो धन सम्बन्धी अनियमितताओं से, टैक्स, राजकोप से। पंचम में निर्बल पापी हो तो पुत्र के कारण, प्रबन्ध की अयोग्यता, मन्त्र अर्थात् गुप्त बातों को प्रकट करने के कारण, विद्या के दुष्प्रयोग, अभिचार आदि के कारण तथा नवम में निर्बल पापी हो तो गुरुजनों, धर्म, तप, पिता, साला, साली, पोते आदि के कारण बन्धन होता है। विशेष बातों के लिए **'उत्तरकालामृत'** का कारक खण्ड देखना चाहिए।

यदि स्थिर राशि में बन्धन कारक ग्रह हों तो लम्बे समय तक, चर में हो तो अस्थायी बन्धन, अल्पकालीन, यदि द्विस्वभाव में हो तो मध्यम अवधि का बन्धन या पूर्वार्ध में स्थिर तथा उत्तरार्ध में चर बन्धन होता है। सर्प द्रेष्काण (कर्क का दूसरा तीसरा, वृश्चिक का पहला व दूसरा तथा मीन का तीसरा) लग्न में हो अथवा निगडद्रेष्काण (मकराद्य) को पाप ग्रह बलवान् होकर देखें तो मनुष्य का पूर्वोक्त प्रकार से राशि के अनुसार बन्धन कहा है।

'भुजगनिगडपाशभृद्' यहाँ कुछ लोग भुजग द्रेष्काण, निगडद्रेष्काण एवं पाश द्रेष्काण ये तीन बातें मानते हैं।

बलवद्भिः, पापग्रहैः भुजगभृच्च, निगडभृच्च पाशभृच्च द्रेष्काणाः ।

(रुद्रभट्ट)

वृश्चिक का मध्यद्रेष्काण 'पाश' संज्ञक माना जाता है । लेकिन इसका ग्रहण सर्प द्रेष्काण में पहले ही हो चुका है । अतः भट्टोत्पल ने इस व्याख्या को नहीं माना है । 'पाश' शब्द यहाँ द्रेष्काण वाचक न होकर सामान्य बन्धन का ही वाचक है ।

मिर्गी व क्षय आदि के योगः–

परुषवचनोऽपस्मारार्तः क्षयी च निशापतौ
सरवितनये वक्रालोकं गते परिवेषगे ।
रवियमकुजैः सौम्यादृष्टैर्नभः स्थलमाश्रितै–
र्भृतकमनुजः पूर्वोद्दिष्टैर्वराधममध्यमाः ।।17।।

यदि चन्द्रमा शनि से युक्त हो या मंगल से दृष्ट हो या चन्द्रमा परिवेष युक्त हो तो मनुष्य कठोरभाषी, मिर्गी का रोगी तथा सदैव शारीरिक शक्ति घटाते रहने वाले किसी बड़े रोग से पीड़ित होता है ।

सूर्य, मंगल शनि इनमें से कोई भी दशम भाव में स्थित हो तथा किसी भी शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो मनुष्य क्रमशः उत्तम, मध्यम व अधम श्रेणी का नौकर, वेतन लेकर कार्य करने वाला होता है ।

यहाँ श्लोक के पूर्वार्ध में चन्द्रमा के तीन दोष बताए गए हैं । प्रथम शनि से युक्त हो तो मनुष्य कठोरभाषी, यदि शनि युक्त चन्द्रमा मंगल से दृष्ट हो तो अपस्मार (मिर्गी) उन्माद, तीव्र भावावेग तथा उससे उत्पन्न होने वाले अन्य कष्टों से युक्त तथा शनि युक्त व मंगल दृष्ट तथा परिवेष से युक्त हो तो मनुष्य सभी तीनों दोषों से युक्त होता है । परिवेष युक्त से क्या तात्पर्य है ? भट्टोत्पल कहते हैं–– जन्म समय में चन्द्रमा प्रत्यक्ष रूप से परिवेष अर्थात् मण्डल से युक्त हो । चन्द्रमा के चारों ओर गोलाकार वलय सा बादलों के कारण बन जाता है, उसे सामान्य भाषा में मण्डल या परिवेष कहते हैं । रुद्रभट्ट कहते हैं कि धूम, व्यतिपात, इन्द्रधनु आदि उपग्रहों में पठित 'परिवेष' नामक उपग्रह से युक्त चन्द्रमा हो ।

तात्कालिक सूर्य + 4. 13°. 20′ = धूमस्पष्ट
12 राशि – धूम = व्यतिपात स्पष्ट
स्पष्ट व्यतिपात + 6 राशि = परिवेष स्पष्ट

धूमो वेदै गृहै स्त्रयोदशभिरप्यंशैः समेते रवौ,
स्यात् तस्मिन् व्यतिपातको विगलिते चक्रादथास्मिन् युते ।
षड्भिर्भैः परिवेष' इति ।

तीनों सूर्य, मंगल, शनि, वृत्ति या जीविका कारक होने से शुभ दृष्ट न होकर दशम में हों तो प्रायः अत्यन्त साधारण नौकरी करने वाला होता है। यदि दो हों तो मध्यम तथा एक हो तो उच्च श्रेणी की नौकरी करता है। यदि एक ग्रह हो तो सूर्य से उत्तम राजकीय नौकरी (राजानौ रविशीतगू), मंगल से मध्यम श्रेणी की नौकरी अर्थात् पुलिस, सेना, प्रशासन विभाग में, यदि शनि हो तो हीन समझे जाने वाले विभाग में साधारण श्रेणी की नौकरी करने वाला होता है।

लेकिन दशम स्थान से यथाप्रोक्त चन्द्रमा से भी दशम राशि का विचार करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अन्य संकेत यह है कि सूर्य, मंगल व शनि में से जितने अधिक ग्रह शुभदृष्ट या युक्त होंगे, उतना ही स्वरोजगार की सम्भावनाएँ बढ़ जाएंगीं।

यहाँ पूर्वोक्त कर्माजीवाध्याय के योगों का भी प्रयोग करना चाहिए।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटींकायामनिष्टयोगाध्याः एकविंशः ।।

[22]

अथ स्त्रीजातकाध्यायः

पुरुष व स्त्री जातक में साम्य :–

यद्यत्फलंनरभवेक्षममङ्गनानां
तत्तद्वदेत् पतिषु वा सकलं विधेयम् ।
तासां तु भृर्तमरणं निधने वपुस्तु
लग्नेन्दुगं सुभगतास्तमये पतिश्च ।।1।।

(वसन्ततिलका)

पुरुषों के सम्बन्ध में पहले इसी ग्रन्थ में जो शुभाशुभ योग बताए गए हैं, उनमें से जो स्त्रियों में सम्भव हो, वह सब स्त्रियों की कुण्डली में भी बताना चाहिए। जो स्त्रियों में सम्भव न हो, वह उनके पतियों के सम्बन्ध में कहना चाहिए। जो फल (आयु आरोग्य, ऐश्वर्य, सन्तानादि) दोनों में सम्भव हों, वे दोनों के विषय में बताने चाहिएं।

स्त्रियों के अष्टम भाव से पति का मरण अर्थात् वैधव्य, चन्द्रमा व लग्न से उनका शरीर तथा सप्तम भाव से उनका सौभाग्य (पति, प्रेम व अनुकूलता) आदि कहना चाहिए।

'पतिषु' वा सकलं विधेयम्, कहकर आचार्य ने शुभयोगोत्पन्न स्त्री के साथ विवाह करने पर पति की भाग्य सम्बन्धी निर्बलता का भी प्रतिकार बताया है। 'वा' अर्थात् विकल्प से राजयोगादि फल स्त्री के पति के विषय में कहना चाहिए। आचार्य ने स्वयं बृहत्संहिता में कहा है–

तामुद्वहेद् यदि भुवोऽधिपतित्वमिच्छेत् ।

अर्थात् शारीरकि शुभ लक्षणों से युक्त कन्या से राजत्व चाहने वाला पुरुष अविलम्ब विवाह कर ले ।

स्त्री के शरीर सौन्दर्य का ज्ञान :–

युग्मेषु लग्नशशिनोः प्रकृतिस्थिता स्त्री,
सच्छीलभूषणयुता शुभदृष्टयोश्च ।
ओजस्थयोश्च मनुजाकृतिशीलयुक्ता,
पापा च पापयुतवीक्षतयोर्गुणोना ।। 12 ।।

यदि लग्न व चन्द्रमा दोनों ही सम राशियों में हों तो स्त्री प्रकृति अर्थात् स्त्रियोचित, लज्जा, कोमलता, भावुकता एवं कोमल प्रिय वाणी आदि गुणों से युक्त होती है ।

यदि समराशि में स्थित लग्न व चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री सच्चरित्र, मनोहर व आकर्षक स्वाभाव वाली, अलंकारयुक्त होती है ।

यदि दोनों (लग्न व चन्द्र) विषम राशियों में हों तो स्त्री पुरुषवत् अर्थात् लम्बी चौड़ी, मर्दानी, कठोर वाणी वाली, निडर, कम लज्जा वाली होती है ।

यदि विषम राशिगत लग्न व चन्द्रमा पर पापयोग या दृष्टि भी हो तो स्त्री कम गुणों वाली व पापाचरण करने वाली होती है ।

यदि लग्न या चन्द्र सम विषम राशि में हो तो मिश्रित व्यक्त्वि वाली होगी, ऐसा अनुक्त भी समझना चाहिए ।

राशि व त्रिंशांश से विशेष विचारः–

कन्यैव दुष्टा व्रजतीह दास्यं साध्वी समाया कुचरित्रयुक्ता ।
भूम्यात्मजर्क्षे क्रमशोऽंशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्ग वाणाम् ।। 3 ।।

यदि मेष या वृश्चिक राशि में लग्न या चन्द्रमा हो तथा उसमें मंगल का ही त्रिंशांश हो तो कन्यावस्था में ही वह दोषयुक्ता अर्थात् पर पुरुष संगमादि दोषों से दूषित होती है । यदि इन राशि लग्नों में शनि का त्रिंशांश हो तो दासी, गुरु का त्रिंशांश हो तो साध्वी अर्थात् पतिव्रता, बुध का त्रिंशांश हो तो स्त्री मायाविनी कपटाचरण करने वाली शुक्र का त्रिंशांश हो तो कुचरित्र वाली होती है । इस प्रकार लग्न व चन्द्र के त्रिंशांश से विशेष स्वभाव गुण सर्वत्र समझने योग्य हैं ।

दुष्टा पुनर्भूः सुगुणा कलाज्ञा,
ख्याता गुणैश्चासुरपूजितर्क्षे ।

स्यात्कापटी क्लीबसमासती च,

बौधे गुणाढ्या प्रविकीर्णकामा ।।4।। (इन्द्रवज्रा)

वृष या तुला में लग्न चन्द्र हो तथा उसमें मंगल का त्रिंशांश हो तो स्त्री चरित्र में शिथिलता वाली, शनि का त्रिंशांश हो तो पुनर्विवाह करने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो सद्गुणों से युक्त, बुध का त्रिंशांश हो तो कला, शिल्प (नृत्य, गानादि) में कुशल, यदि शुक्र का त्रिंशांश हो तो प्रसिद्ध अर्थात् अपने शील स्वभाव से सर्वत्र मान्य होती है।

यदि मिथुन कन्या में लग्न चन्द्र हो तथा उसमें मंगल का त्रिंशांश हो तो स्त्री कपटाचरण करने वाली, शनि का त्रिंशांश हो तो नपुंसकवत् दिखने वाली, गुरु का त्रिशांश हो तो सतीसाध्वी, बुध का त्रिंशांश हो तो गुणों से युक्त तथा शुक्र का त्रिंशांश हो तो अत्यधिक कामातुर, पर पुरुष को चाहने वाली, काम सम्बन्धों में स्वच्छन्द आदि यथासम्भव होती है।

स्वच्छन्दा पतिघातिनी बहुगुणा शिल्पिन्यसाध्वीन्दुभे,

न्राचारा कुलटार्कभे नृपवधूः पुंश्चेष्टितागम्यगा।

जैवे नैकगुणाल्परत्यतिगुणा विज्ञानयुक्तासती,

दासी नीचरतार्किभे पतिरता दुष्टाप्रजा चांशकैः ।।5।।

यदि कर्क लग्न या राशि में मंगल का त्रिंशांश हो स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विचारों वाली, दबाव या बन्धन न मानने वाली होती है।

यदि शनि का त्रिंशांश हो तो पति का घात करने वाली तथा गुरु का त्रिंशांश हो तो बहुत से गुणों से युक्त, बुध का त्रिंशांश हो तो कला शिल्प आदि में निपुण तथा शुक्र का त्रिंशांश हो तो असाध्वी अर्थात् अपतिव्रता, पति के अतिरिक्त पुरुषों से सम्बन्ध बनाने या वैसा करने की चाह वाली होती है।

यदि सिंह लग्न या राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो पुरुष की तरह आचरण करने वाली अर्थात् दबंग, प्रभाव जमाने वाली, आक्रामक व अभिमानिनी होती है। यदि शनि का त्रिंशांश हो तो कुलटा अर्थात् असाध्वी, गुरु का त्रिंशांश हो तो राजा की पत्नी, बुध का त्रिंशांश हो तो पुरुषोचित स्वभाव वाली एवं शुक्र त्रिंशांश हो तो हीनपुरुषों से व्यभिचार करनेवाली होती है।

यदि धनु या मीन राशि लग्न में मंगल का त्रिंशांश हो तो बहुत गुणों वाली, शनि का त्रिंशांश हो तो कम काम वासना वाली, गुरु का त्रिशांश हो तो अति गुणवती, बुध का त्रिंशांश हो तो विशिष्ट ज्ञान से युक्त एंव शुक्र का त्रिशांश हो तो चरित्रवती होती है।

यदि मकर कुम्भ राशि या लग्न में मंगल का त्रिंशांश हो तो दासी या नौकरानी की तरह आचरण करने वाली, शनि के त्रिंशांश में नीच पुरुष से प्रेम करने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो पति से प्रेम करने वाली, बुध का त्रिंशांश हो तो दुष्ट स्वभाव वाली तथा शुक्र का त्रिंशांश हो तो सन्तान हीन होती है ।

शशिलग्नसमायुक्तैः फलं त्रिंशांशकैरिदम् ।
बलाबलविकल्पेन तयोरुक्तं विचिन्तयेत् ।। 6 ।।

उक्त फल लग्न या चन्द्रमा में से जो बलवान् हो, उसी के त्रिंशांशों के अनुसार समझना चाहिए । यदि लग्न बली हो तो लग्न के, चन्द्र बली हो तो चन्द्रमा के त्रिंशांश से फल समझें । यदि दोनों एक ही राशि में अलग त्रिंशांशो में पड़ें तो भी बलाबल के अनुसार फल कहें । यदि दोनों तुल्यप्राय बली हों तो दोनों से समन्वयपूर्वक फल कहना चाहिए ।

समलैंगिक योगः–

दृक्संस्थावसितसितौ परस्परांशे, शौक्रे वा यदि घटराशिसम्भवोऽशः ।
स्त्रीभिः स्त्री मदनविषानलं प्रदीप्तं संशान्तिं नयति नराकृतिस्थिताभि ।।
(प्रहर्षिणी)

यदि शनि व शुक्र परस्पर एक दूसरे के नवांश में गए हों तथा एक दूसरे को परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखें, यह एक योग है ।

वृष या तुला राशि में कुम्भ का नवांश हो, यह द्वितीय योग है । इन योगों में उत्पन्न स्त्री अत्यन्त कामातुरा होने के कारण तथा बहुत कामान्ध होकर नराचरण करने वाली स्त्री को पुरुषवत् समझकर कृत्रिम साधनों से अपने कामानल को शान्त करती है ।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि इस योग का बलाबल देखकर तारतम्य कहना चाहिए तथा ये दोनों योग पुरुषों की कुण्डली में भी विचारणीय हैं ।

एतद् योगद्वयं पुरुषजातकेऽपि चिन्तनीयम् । शुभाशुभयोग निरीक्षणाभ्यां असितसितयोर्बलाबलवशेन च तारतम्यं द्रष्टव्यम् ।

सप्तम स्थान से पति का विचारः–

शून्ये कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सौम्यग्रहावीक्षिते,
क्लीबोऽस्ते बुधमन्दयोश्चरगृहे नित्यं प्रवासान्वितः ।

उत्सृष्टा तरणौ कुजे तु विधवा बाल्येऽस्तराशौ स्थिते,

कन्यैवाशुभवीक्षितेऽर्कतनये द्यूने जरां गच्छति ।। 8 ।।

यदि लग्न या चन्द्र से सप्तम भाव में कोई ग्रह न हो व सप्तम भाव को कोई शुभग्रह न देखे, अर्थात् सप्तम भाव स्वयं निर्बल हो, अथवा शुभ ग्रह से युक्त न हो तो स्त्री का पति कापुरुष अर्थात् निन्दनीय, अप्रशस्त होता है।

यदि सप्तम राशि में बुध व शनि हों तो पति क्लीब अर्थात् पुरुषाकार स्वरूप से हीन होता है।

यदि सप्तम में चर राशि हो तो सदा घर से बाहर रहनेवाला होता है।

यदि सप्तम में सूर्य हो तो पति द्वारा परित्यक्त या उपेक्षित, मंगल हो तो विवाह के बाद शीघ्र ही विधवा होने वाली होती है।

यदि सप्तम में शनि हो तथा उसे पापग्रह देखे तो वह कुंवारी ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाती है।

इस अध्याय के प्रथम श्लोक में **'अस्तमये पतिश्च'** कहा था। अर्थात् सप्तम भावराशि से पति का विचार करना चाहिए, उसी का यहाँ विस्तार है।

कापुरुष अर्थात् कुत्सित पुरुष, जो गुणों में हीन, सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय अथवा स्वरूप में निन्दनीय हो, यह आशय है। सप्तम राशि ग्रह रहित व निर्बल हो तो उक्त फल होगा। अर्थात् सप्तम में ग्रह न हो और साथ ही सप्तम राशि स्वयं निर्बल हो। राशि की निर्बलता का क्या मानदण्ड होगा ? जो राशि अपने स्वामी से या शुभ ग्रह गुरु बुध से दृष्ट न हो, वह सामान्यतः निर्बल है। लेकिन कारक ग्रह, लग्नेश, शुभ भावेश, उच्चादिगत ग्रह भी न देखे तब भी निर्बल है, यह विशेष है।

इसके विपरीत सप्तम राशि बली हो तो पति प्रशंसनीय, प्रतिष्ठित सुन्दर होता है। यह इस नियम का अपवाद है।

सप्तम में चर राशि हो तो पति संचरणशील अर्थात् घर में न टिकने वाला या परदेश में रहने वाला होता है। यहाँ स्थिर व द्विस्वभाव का भी स्वरूपानुसार संकेत है। यदि सप्तम में स्थिर राशि हो तो पति सदैव निकट रहने वाला और द्विस्वभाव राशि हो तो मिश्रित फल होता है।

सप्तम में बुध व शनि दोनों हों, यह मानना योग्य है। भट्टोत्पल अकेले बुध या शनि के रहने से पति को नपुंसक कहते हैं। जबकि अकेला बुध शुभ होने से सप्तम भाव को बल प्रदान करेगा तथा अशुभ फल कारक नहीं होगा। नपुसंक से क्या तात्पर्य ? स्वरूप से नपुंसक या कर्म से नपुसंक। साक्षात् नपुंसक अर्थात् पुरुषत्वहीन हो अथवा बलाबल विचार से कम पुरुषत्व

शक्ति वाला या पुरुष की तरह, मर्दाना न दिखने वाला, ऐसा आशय लिया जाएगा।

सप्तम में मंगल से बाल विधवा हो। अर्थात् जल्दी विधवा हो। विवाह संस्कार होने से पूर्व व सगाई के बाद ही अथवा विवाह के बाद प्रारम्भिक वर्षों में ही विधवा हो, क्योंकि बाल विवाह अब प्रचलित नहीं है। लेकिन सप्तमेश होकर या मकर राशि में मंगल सप्तम में हो तो उक्त फल नहीं होगा, यह बात सामान्य नियमों से सिद्ध है। यदि सप्तमस्थ मंगल सविशेष सूर्य-शनि से दृष्ट या युक्त हो तो अधिक उत्कट फल होगा। यहाँ प्रचलित मंगली दोष का आंशिक संकेत है।

सप्तमस्थ शनि यदि पापदृष्ट युक्त हो तो विवाह की प्रतीक्षा में ही कन्या बूढ़ी हो जाए। यदि अकेला शनि हो तब अधिक विलम्ब से तथा शुभ दृष्ट युक्त हो तो उम्र से अधिक वर मिलता है। अथवा शनि सूर्य से युक्त दृष्ट हो परित्यक्त एवं मंगल से युत दृष्ट हो तो विधवा होती है।

आग्नेयैर्विधवास्तराशिसहितैर्मिश्रैर्पुनर्भूर्भवेत्,
क्रूरे हीनबलेऽस्तगे स्वपतिना सौम्येक्षिते प्रोज्झिता।
अन्योन्यांशगयोः सितावनिजयोरन्यप्रसक्तांगना,
द्यूने वा यदि शीतरश्मिसहितौभर्तुस्तदानुज्ञया।।9।।

यदि सप्तम स्थान में आग्नेय ग्रहों (सूर्य, मंगल, केतु व इनसे युक्त बुध) में से तीन या सब स्थित हों तो स्त्री विधवा होती है।

यदि इनके साथ शुभ ग्रह भी कोई हो तो पुनर्विवाह होता है। यदि सप्तम में कोई भी पापग्रह निर्बल होकर स्थित हो तथा उसे शुभ ग्रह देखे तो विधवा न होकर परित्यक्ता होती है। अर्थात् शुभ दृष्टि से रहित पापग्रह सप्तम में हो तो विधवा होगी, यह बात पूर्वोक्त नियमों से सिद्ध है।

शुक्र व मंगल एक दूसरे के नवांश में स्थित हों तो स्त्री पर पुरुष से संगम करने वाली होती है।

यदि सप्तम में शुक्र, मंगल व चन्द्रमा साथ हों तो स्त्री अपने पति के द्वारा प्रेरित या मजबूर होकर परपुरुषरति करती है।

एक-एक पापग्रह की सप्तम स्थिति का फल पहले कहा था। यहाँ कई पापग्रहों की सप्तम स्थिति से फल कहा गया है। आग्नेय ग्रह अर्थात् अग्नि स्वरूप ग्रह। सूर्य व मंगल प्रत्यक्ष अग्नि रूप हैं। इन के योग से बुध भी वैसा ही हो जाएगा। संज्ञाध्याय में 'शिखीतिकेतुः' कहकर वचन चातुर्य

से शिखी अर्थात् अग्नि रूप केतु कहा है। अतः रुद्रभट्ट आग्नेय ग्रह का आशय सूर्य, मंगल, केतु, ऐसा कहते हैं। भट्टोत्पल क्रूर ग्रहों को आग्नेय कहते हैं।

'पुनर्भू' से क्या तात्पर्य है ? पहले विधवा योग कहे हैं। लेकिन पुनर्भू योग में पति को स्वेच्छा से छोड़कर (तलाक आदि) अन्य के साथ रहने वाली, या अन्य से विवाह करने वाली स्त्री 'पुनर्भू' होती है।

व्यभिचार योगः–

सौरारर्क्षे लग्नगे सेन्दुशुक्रे, मात्रासार्धं बन्धकी पापदृष्टा।
कौजेऽस्तांशे सौरिणा व्याधियोनिश्चारु श्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांशे।।10।।
(शालिनी)

मेष, वृश्चिक, मकर, कुम्भ लग्न में शुक्र व चन्द्रमा एक साथ स्थित हों तथा उन्हें पाप ग्रह देखें तो स्त्री स्वयं तो व्यभिचारिणी होती है, साथ में उसकी माता भी परपुरुषगामिनी होती है।

सप्तम राशि में मंगल का नवांश हो तथा उस पर शनि का योग या दृष्टि हो तो स्त्री को योनि व गर्भाशय सम्बन्धी रोग होते हैं।

सप्तम में शुभग्रह का नवांश हो विशेषतया शुभ युक्त दृष्ट भी हो तो स्त्री का योनिनितम्बभागादि सुन्दर व आकर्षक होता है तथा वह अपने पति की प्रिया भी होती है।

वृद्धो मूर्खः सूर्यजर्क्षेंऽशके वा
स्त्रीलोलः स्यात् क्रोधनश्चावनेये।
शौक्रे कान्तोऽतीवसौभाग्ययुक्तो
विद्वान् भर्ता नैपुणज्ञश्च बौधे।। 11 ।। (शलिनी)

जिस स्त्री के जन्म लग्न से सप्तम में शनि की राशि या नवांश पड़े तो उसका पति अवस्था में अधिक (वृद्ध) तथा मूर्ख होता है।

मंगल की राशि या नवांश में स्त्री वर्ग के प्रति विशेष चपल व लोलुप तथा क्रोधी स्वभाव वाला होता है।

यदि सप्तम में शुक्र की राशि या नवांश हो तो पति अत्यन्त सुन्दर, रमणीय व्यक्तित्व वाला तथा सौभाग्यशाली होता है।

यदि सप्तम में बुध की राशि या नवांश पड़े तो विद्वान् व विशेषतया कार्य कुशल या गूढ़ दृष्टि वाला होता है।

मदनवशगतो मृदुश्च चान्द्रे
त्रिदशगुरोर्गुणवान्जितेन्द्रियश्च।

अतिमृदुरतिकर्मकृच्चसिंहे,

भवति गृहेऽस्तमये स्थितेंऽशके वा ।।12।। (पुष्पिताग्रा)

जिस स्त्री के सप्तम भाव में चन्द्रमा की राशि या नवांश हो तो उसका पति कामातुर एवं कोमल स्वभाव वाला, गुरु का नवांश या राशि हो तो गुणी एवं जितेन्द्रिय होता है।

यदि सप्तम में सिंह राशि या नवांश पड़े तो कठोर व दृढ़ स्वभाव वाला और अनेक कार्य करने वाला, परिश्रमी होता है।

इस प्रकार सप्तम में स्थित राशि व नवांश से कहना चाहिए।

'अति मृदुः' शब्द का अर्थ 'मृदुमति क्रान्तः' होने से कोमलता को पार कर चुकने वाला अर्थात् कठोर स्वभाव वाला किया गया है। यही अर्थ राशि स्वभावानुसार योग्य है। सप्तम में यदि राशि व नवांश अलग ग्रहों का पड़े तो बलाबल की विवेचना करके राशि बली हो तो राशि से और नवांश बली हो तो नवांश से फल कहना चाहिए।

स्त्रियों के लग्न से विशेष विचारः-

ईर्ष्यान्विता सुखपरा च सितेन्दु लग्ने

ज्ञेन्द्वोः कलासु निपुणा सुखिता गुणाढ्या।

शुक्रज्ञयोस्तु सुभगा रुचिरा कलाज्ञा,

त्रिष्वप्यनेकवसुसौख्यगुणा शुभेषु ।।13।।

(वसन्ततिलका)

जिस स्त्री के लग्न में शुक्र व चन्द्रमा साथ हों तो वह सुखों की चाह रखने वाली और ईर्ष्यालु स्वभाव की होती है।

बुध चन्द्र स्थित हों तो कलाकुशल, सुखी व गुणों से युक्त होती है। शुक्र बुध साथ हों तो सौभाग्यवती, रमणीय व्यक्तित्त्व वाली तथा कला कुशल होती है।

यदि शुक्र, बुध व चन्द्र ये तीनों ही लग्न में हों तो बहुत धनी तथा सुखों व गुणों से युक्त होती है।

यहाँ दो दो ग्रहों से फल कहे हैं। अतः अकेला शुक्र हो तो ईर्ष्यालु, चन्द्र हो तो सुखी, बुध हो तो कलाकार व गुणी होती है। इस प्रकार स्वबुद्धि से समझना चाहिए। चतुर्थ चरण में 'अपि' शब्द के द्वारा बुध, गुरु, शुक्र का भी ग्रहण है। अर्थात् तीन या अधिक शुभ ग्रह लग्न में हों तो भी बहुत धनी, बहुत सुखी व बहुत गुणी होती है, ऐसा अर्थ करना योग्य है।

स्त्रियों के अष्टम भाव का विचारः–

क्रूरेऽष्टमेविधवतानिधनेश्वरोंऽशे,
यस्य स्थितो वयसि तस्य समे प्रदिष्टा ।
सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः,
कन्यालिगोहरिषु चाल्पसुतत्वमिन्दोः । ।14 । ।

यदि जन्म लग्न से अष्टम में क्रूर ग्रह स्थित हो तो स्त्री विधवा होती है । वैधव्य काल के निश्चयार्थ अष्टमेश जिस ग्रह के नवांश में हो, उस ग्रह की आयु में वैधव्य होता है ।

यदि अष्टम में क्रूरग्रह तथा द्वितीय में शुभ ग्रह हो तो स्त्री का मरण पति से पहले हो जाता है ।

जिस की जन्म चन्द्र राशि 2. 5. 6. 8 हो तो उस स्त्री के कम पुत्र उत्पन्न होते हैं ।

पहले **'भर्तृमरणं निधने'** कहकर उसी का विवरण आचार्य ने यहाँ प्रस्तुत किया है । अष्टम स्थान में पाप ग्रह स्थित होने पर पति की मृत्यु होती है, यह सामान्य नियम कहा है । अष्टमस्थ क्रूर ग्रह के बलाबल, पापदृग्योग आदि से इसमें तारतम्य होगा । सप्तम में आग्नेय ग्रहों की स्थिति से पहले ही विधवता बता चुके हैं । अतः वैधव्य विचार में 7.8 भाव सविशेष विचारणीय हैं, यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है । अधिक पापग्रह होने से तीव्र फल तथा उन पर शुभ ग्रहों का योग या दृष्टि होगी तो अशुभ फल कम होगा ।

वैधव्य कब होगा ? एतदर्थ आचार्य ने कहा कि अष्टमेश जिस ग्रह के नवांश में हो, उसी ग्रह की अवस्था में, उम्र में, वयः में होगा । अवस्था का निश्चय करने में कुछ आचार्यो का मत है कि दशान्तर्दशा में पतिमरण होगा । कुछ लोग कहते हैं कि निसर्गायु प्रकरण में **'एकं द्वौ नव विंशतिः'** इत्यादि क्रम से ग्रहों की निसर्ग आयु तुल्य वर्षो में निधन होगा । भट्टोत्पल दशार्न्दशा में ऐसा होना मानते हैं । यदि निसर्गायु क्रम से समय जानना हो तो विवाह के बाद से वर्ष गिनें । पुनश्च बहुमत दशान्तर्दशा के पक्ष में हैं ।

क्रूरे मृत्युगते भवेद् विधवता यस्यांशके मृत्युपः ।
पाके तस्य.......... । (होरामकरन्द)
तस्य दशायां मरणं वाच्यं तस्याः ...... । (सारावली)
रन्ध्रस्थ तन्नाथतदंशपानां दशापहारे मृतिमाहुरार्याः ।

(जातकपारिजात)

आचार्य का मन्तव्य ग्रहों के आयुर्दाय से होने के कारण दशान्तर्दशा में ही निधन मानना योग्य है। फिर भी चन्द्रमा, मंगल व बुध कम आयु के होने के कारण शीघ्र वैधव्यप्रद रहते हैं, शुक्र युवावस्था में, गुरु मध्यायु में, सूर्य प्रौढ़तरावस्था में एवं शनि वृद्धावस्था में फलप्रद होगा, ऐसा स्थूलानुमान रखना सहायक होगा।

'चन्द्रारेन्दुजानां बाल्ये शुक्रस्य यौवने गुरोर्मध्यवयसि, सूर्यस्यवार्धके मन्दस्यातिवार्धके इत्यर्थः।

(विवरणटीका)

'निधनेश्वरोंऽशे' यह वैधव्य काल निर्णय का एक सर्वमान्य नियम है। इसका प्रयोग किसी भी प्रकार से वैधव्य योग प्राप्त होने पर समय निर्णयार्थ करना चाहिए। अन्तिम चरण में सन्तान चिन्ता का निदर्शन किया है। इसके अतिरिक्त भाव भावेश, कारकादि नियमों का प्रयोग भी करना चाहिए। **'अल्पसुतत्वं'** में सुत व सुता दोनों का ग्रहण है। सामान्यतः 'सुत' शब्द का प्रयोग सन्तानार्थक है। अतः 2. 6. 8. 5 राशियों में चन्द्रमा रहने पर कम सन्तान होती है। ऐसा कहना चाहिए।

ब्रह्मवादिनीयोगः–

सौरे मध्यबले बलेनरहितैः शीतांशुशुक्रेन्दुजैः,
शेषैर्वीर्यसमन्वितैः पुरुषिणी यद्योजराश्युद्गमे।
जीवारास्फुजिदैन्दवेषु बलिषु प्राग्लग्नराशौ समे
विख्याता भुवि नैकशास्त्रकुशलास्त्रीब्रह्मवादिन्यपि।। 15।।

जिस स्त्री के जन्म समय में शनि मध्यबली तथा चन्द्रमा, शुक्र व बुध बलरहित हों एवं शेष पुरुष ग्रह बलवान् हों और विषम राशि लग्न में जन्म हो, यह एक सम्पूर्ण योग है। इसमें उत्पन्न स्त्री पुरुषिणी अर्थात् पुरुषत्व युक्त, मर्दानी, बहुत से पुरुषों को अधिकार, वैभव या कौशल से वश में रखने वाली होती है।

यदि सम राशि लग्न हो तथा गुरु, मंगल, शुक्र, बुध बलवान् हों तो स्त्री बहुत विख्यात, अनेक शास्त्रों में कुशल तथा दर्शन शास्त्र में भी कुशल होती है।

सन्यास योगः–

पापैऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां प्रव्रज्यां युवतिरुपैत्यसंशयेन।
उद्वाहे वरणविधौ प्रदानकाले चिन्तायामपि सकलं विधेयमेतत्।। 16।।

(प्रहर्षिणी)

जिस स्त्री के सप्तम स्थान में पापग्रह तथा नवम स्थान में भी कोई ग्रह हो तो वह स्त्री नवम स्थान में स्थित ग्रह के अनुसार पहले प्रव्रज्याध्याय में बताए गए विभागानुसार (मंगल से शाक्य, आजीविक आदि) स्त्री सन्यासिनी हो जाती है।

इस स्त्री जातकाध्याय में बताए गए सारे नियम विवाह में, कन्या वरण (वधूनिश्चय) में, कन्यादान के समय, प्रश्न में, मुहूर्त में भी उपयोग में लाने चाहिएं।

रुद्रभट्ट का कथन है कि यहाँ तक जातक विषय में जितना भी विषय कहा गया है, वह सब बुद्धि व युक्ति से विवाह, मुहूर्त, प्रश्न, कन्यादानादि में भी उपयोगी है, यह आचार्य का अभिमत है। भट्टोत्पल कहते हैं कि केवल स्त्रीजातकाध्याय योगों के विषय में ही यह बात कही गई है। हमें भट्टोत्पल का मत प्राथमिक दृष्टि से उपयुक्त दिखता है। लेकिन रुद्रभट्ट का कथन भी निःसार नहीं है। राशि, ग्रह, वियोनि इन तीन अध्यायों को छोड़कर शेष 19 अध्याय यहाँ तक हुए। इन सब अध्यायों में समस्त जातक फल विषय कहा गया है, अतः उसका उपयोग बुद्धि प्रयोग पूर्वक सर्वत्र करना चाहिए। इस प्रकार आचार्य ने जन्म, प्रश्न, मुहूर्त्त, विवाह आदि लग्नों में ग्रहस्थिति जन्म फल का निर्णय जातक शास्त्र के नियमों से करना बताया है, जो समुचित ही है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां स्त्रीजातकाध्यायो द्वाविंशः।।

अअ इति स्थिति खण्डः।।

[23]

(प्रलय खण्डः)

अथ निर्याणाध्यायः

मृत्यु का कारण व स्थानः–

मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेन बलिभिस्तद्धातुकोपोद्भव-
स्तत्संयुक्तभगात्रजो बहुभवो वीर्यान्वितो भूरिभिः ।
अग्न्यम्ब्वायुधजो ज्वरामयकृतस्तृट्क्षुत्कृतश्चाष्टमे,
सूर्याद्यैर्निधने चरादिषु परस्वाध्वप्रदेशेष्विति ।। 1 ।।

मृत्युभाव अर्थात् अष्टम भाव पर दृष्टि रखने वाले ग्रह से मृत्यु होती है। अष्टम भाव पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों में से जो बलवान् हो, उसी की धातु के विकार से मृत्यु होती है। अर्थात् पहले संज्ञाध्याय में वात, पित्त, कफ आदि जो धातुएँ ग्रहों के सन्दर्भ में कही हैं, उनके विकार से मृत्यु का कारण निश्चय करना चाहिए।

उक्त विकार अष्टमद्रष्टा ग्रह अधिष्ठित राशि से द्योतित अंग में उत्पन्न होता है।

यदि कई ग्रह बलवान् होकर अष्टम स्थान को देखें तो अनेक धातुविकारों से मृत्यु होती है।

अष्टम स्थान में स्थित सूर्यादि ग्रहों से भी क्रमशः आग, जल, शस्त्र, ज्वर, अज्ञात रोग, प्यास, भूख से मृत्यु होती है। अष्टम में चर राशि हो तो परदेश में, स्थिर राशि हो तो स्वगृह में, द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मृत्यु होती है। इस प्रकार मृत्यु के कारण व स्थान का निर्णय विधि बताई गई है।

'मृत्युग्रहेक्षणेन मृत्युः' यह अन्वय है। मृत्युग्रह पर दृष्टि से मृत्यु का निर्णय होता है। भट्टोत्पल कहते हैं कि अष्टम स्थान यदि ग्रह रहित हो तभी उक्त प्रकार से दृष्टि रखने वाले ग्रह से मृत्यु विचार होगा। वास्तव में अष्टम में ग्रह हो या न हो, दोनों ही परिस्थितियों में अष्टम पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों का विचार करें। उन्हें बलानुसार क्रम दें। सर्वबली या बलीग्रह की दशान्तर्दशा में मृत्यु होगी, यह स्पष्ट है।

पुनः स्पष्ट किया जाता है। मृत्यु की अवस्था, कारण दशादि का निर्णय अष्टमद्रष्टा ग्रह से होगा। उस सर्वबली ग्रह की व्याधि मारक होगी।

रन्ध्रं येन निरीक्षितं बलवता तद्धातुकोपान्मृतिः। (वैद्यनाथः)

यो बलयुक्तो निधनं पश्यति तद्धातुकोपजो मृत्युः। (कल्याणवर्मा)

वीर्यान्वितः पश्यति मृत्युभं यस्तद्धातुकोपान्मृतिमामनन्ति। (गुणाकर)

मृत्यु का कारण निर्णय करते समय प्रत्येक परिस्थिति में रन्ध्रस्थान पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों में से बलवान् ग्रह को छाँटकर अलग कर लें, तथा उसकी धातु से मृत्यु कहें।

सूर्य से पित्त विकार, चन्द्र से वात व कफ से, मंगल से पित्त से, बुध से वात-पित-कफ से, गुरु से कफ से, शुक्र से कफ वात से, शनि से वातादि से मृत्यु होगी।

उक्त विकार किस अंग में होगा ? अष्टम पर दृष्टि रखने वाला सर्वबली ग्रह जिस राशि में स्थित हो, वह राशि शरीर में जिस अंग का प्रतिनिधित्व करे, उसी अंग में सम्बन्धित धातु रोग होगा।

श्लोक में तत् संयुक्त भगात्रजः में तत् शब्द से प्रसंगागत अष्टम द्रष्टाग्रह का ग्रहण है, न कि अष्टमस्थ राशि का। अतः भट्टोत्पल यहाँ तत् शब्द से अष्टम स्थान का ग्रहण करते हैं, जो योग्य नहीं है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि **'मृत्युगृहेक्षकग्रहेण संयुक्ते वरांगादिगात्रे कुपितेन पित्तादिना जनितः।'**

यदि अष्टमद्रष्टा बहुत हों तो सर्वबली से निर्णय होगा, यदि कई ग्रह साधारण तारतम्य से बली प्रतीत हों तो संयुक्त धातु विकार या कई रोगों से, जटिल रोग से मृत्यु होगी।

इस प्रकार सामान्यतः मृत्यु के कारण का निर्णय बताकर अष्टमस्थ ग्रह व राशि से उस कारण की विशेषता बताते हैं ।

यदि अष्टम में सूर्य हो तो अग्नि से मृत्यु होगी । अग्नि बाह्य अग्नि, साक्षात् अग्नि अथवा भीतरी अग्नि, जठराग्नि, भीतरी दाह, ज्वलनशील दाहक पदार्थ खाने से, पेट की गर्मी या तेजाब से इत्यादि प्रकारक विश्लेषण करना चाहिए ।

चन्द्रमा हो तो जल से अर्थात् बाहरी जल, बाढ़, डूब जाना, पानी के कारण कोई आघात लग्ना, पानी में बिजली का करेंट आ जाना, पानी से रोग हो जाना । अथवा भीतरी जल पेट में, मस्तिष्क में, फेफड़ों में, अण्डकोष में इत्यादि प्रकार से पानी आ जाना ।

मंगल से शस्त्र के कारण मृत्यु होती है । वध, हिंसा, आपरेशन, कील आदि लगने से टैटनेस होना अर्थात् किसी प्रहारक, छेदक, भेदक, विस्फोटक पदार्थ से मृत्यु होना । शल्प क्रिया में शस्त्र प्रयोग के कारण कोई विकार पैदा होने से मृत्यु हो ।

बुध हो तो ज्वर से मृत्यु हो । ज्वर के सैकड़ों प्रकार हैं । ज्वर भय जन्य भी होता है । आवेश से भी ज्वर होता है ।

गुरु से किसी अज्ञात रोग से मृत्यु होती है । अर्थात् बड़ा रोग जो आसानी से या शीघ्रता से ज्ञात न हो सके, भीतर ही भीतर पनपता रहे । अथवा मरने तक पता ही न चले ।

शुक्र से प्यास के कारण मृत्यु हो । तृषा अर्थात् प्यास, जल पीने के लिए न मिले । अतिसार आदि के कारण भीतरी जल घट जाए । सूखारोग हो, पानी या खून की कमी रहे । मेह रोग जैसे प्रमेह मधुमेह के कारण जल की कमी हो ।

शनि से भूख के कारण । साक्षात् भूख, खाना न मिले । अथवा अधिक उपवास के कारण मृत्यु हो । इत्यादि प्रकार से युक्ति व बुद्धि से बताना चाहिए ।

श्लोक के अन्त में प्रयुक्त 'इति' शब्द का अर्थ प्रकार है । **'इति हेतु प्रकरण प्रकारादि समाप्तिषु'** (यादव कोष) । अतः इत्यादि प्रकार से स्वबुद्धि से और कारणों की भी खोज कर सकते हैं । इति शब्द से विषय की समाप्ति न करके नए सामयिक कारणों के समावेश का मार्ग आचार्य ने खुला रखा है । यदि बहुत से ग्रह हों तो सबका समन्वय करके फल कहना चाहिए । मृत्यु के कारण के सन्दर्भ में जैमिनीय सूत्रों के भाष्य में लिख चुके हैं । विशेष विस्तार से **'बृहत्पाराशर होराशास्त्र'** में लिखेंगे ।

मृत्यु के विशेष कारण (आकस्मिक दुर्घटना):–

शैलाग्राभिहतस्य सूर्यकुजयोर्मृत्युः खबन्धुस्थयोः
कूपे मन्दशशांकभूमितनयैर्बन्ध्वस्तकर्मस्थितैः ।
कन्यायां स्वजनाद्धिमोष्णकरयोः पापग्रहैर्दृष्टयोः
स्यातां यद्युभयोदयेऽर्कशशिनौ तोये तदा मज्जतः ।। 2 ।।

यदि दशम में सूर्य व चतुर्थ में मंगल स्थित हो तो पत्थर की चोट से मृत्यु होती है।

चतुर्थ में शनि, सप्तम में चन्द्रमा व दशम में मंगल हो तो कुएँ में गिरने से मृत्यु होती है।

सूर्य व चन्द्रमा एक साथ कन्या राशि में स्थिति हों तथा उन्हें कई पापग्रह देखें तो अपने ही लोगों के द्वारा मनुष्य की मृत्यु होती है।

यदि मीन, धनु, कन्या लग्न में जन्म हो और सूर्य चन्द्रमा साथ-साथ लग्न में हों तो जल में डूबने से मृत्यु होती है।

मृत्युकारण के संदर्भ में विशेष योगों का विवरण आचार्य प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रथम योग में सूर्य व मंगल एक साथ चतुर्थ या दशम में हों, ऐसा अर्थ भट्टोत्पल करते हैं। जबकि दूसरे योग में वे **'बन्ध्वस्तकर्मास्थितैः'** में क्रमशः ग्रह स्थिति मानते हैं। कोई निर्णायक कारण न होने से **'खबन्धुस्थयोः'** के लिए दूसरी विधि व **'बन्ध्वस्तकर्मस्थितैः'** में दूसरी विधि अपनाने का क्या आधार है ? इसके विपरीत रुद्रभट्ट स्पष्ट कहते हैं **'दशमे सूर्य चतुर्थ कुजे च सति'** हमने रुद्रभट्ट वाला अर्थ ही योग्य समझा है। यदि सूर्य मंगल एक साथ दशम में हों तो वे श्रेष्ठ योगकारक तथा दिग्बली होते हैं। पुनश्च पाप योग के अलावा परस्पर पाप दृष्टि सम्बन्ध अधिक अशुभ है। इसीलिए 4. 10 में पृथक्-पृथक् उक्त क्रम से स्थिति ही यहाँ काम्य है। सारावली में भी इसी क्रम से कहा गया है।

चतुर्थ चरण में प्रोक्त 'उभयोदये' शब्द का अर्थ भट्टोत्पल ने द्विस्वभाव राशि किया है जबकि उभयोदय को एक शब्द समझकर उभयोदयी राशि केवल मीन का अर्थ लेना भी युक्ति संगत है।

लग्ने सूर्यशशांकयोस्तिमियुगे तोये सदा मज्जतः । (सारावली)

सारावली के उक्त प्रमाण में स्पष्टतया 'तिमियुग' अर्थात् मीनराशि का कथन है। लेकिन **होरासार, जातक पारिजातादि** में इस संदर्भ में स्पष्टतया द्विस्वभाव लग्न का भी उल्लेख है। अतः उक्त योग को मीन लग्न में विशेष बलवान् मानने के साथ धनु, कन्या, लग्नों में भी विचारणीय समझा जा सकता है। हमारे विचार से केवल मीन लग्न वाला अर्थ सर्वाधिक उपयुक्त है।

अन्य दुर्मरण योगः–

मन्दे कर्कटगे जलोदरकृतो मृत्युर्मृगांके मृगे,
शस्त्राग्निप्रभवः शशिन्यशुभयोर्मध्ये कुजर्क्षस्थिते ।
कन्यायां रुधिरोत्थशोषजनितस्तद्वत्स्थिते शीतगौ,
सौरर्क्षे यदि तद्वदेव हिमगौ रज्ज्वग्निपातैर्वधः ।। 3 ।।

यदि जन्मसमय में कर्क राशि में शनि एवं मकर राशि में चन्द्रमा हो तो मनुष्य की मृत्यु जलोदर नामक रोग से होती है ।

यदि चन्द्रमा मेष या वृश्चिक राशि में हो तथा उसके दोनों ओर पापग्रह स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु शस्त्र या आग्नि के कारण से होती है ।

यदि कन्याराशि में चन्द्रमा पूर्ववत् दो पापग्रहों के बीच में स्थित हो तो खून की कमी से मृत्यु होती है ।

यदि चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के बीच में मकर या कुम्भ में स्थित हो तो रस्सी या अग्नि में गिरने से मृत्यु होती है ।

दोनों ओर पापग्रह स्थित रहने में कई विकल्प सम्भावित हैं । चन्द्रमा से द्वितीय में वक्री पापग्रह तथा द्वादश में मार्गी पापग्रह हो । अथवा चन्द्रमा के साथ उसी राशि में चन्द्रमा के अंशों से आगे पीछे के अंशों में पापग्रह स्थित हों । अथवा चन्द्रमा के दोनों ओर वक्रमार्ग गति विचार के बिना पाप ग्रह स्थित हों ।

'रुधिरोत्थशोष' का तात्पर्य है कि खून से उत्पन्न शोष अर्थात् सूखा या अल्पता होना । यहाँ खून के विकार अथवा सूखा रोग ये दो कारण नहीं हैं । दुर्घटना, आपरेशन, आदि में अधिक खून बह जाए अथवा खून में कोई ऐसा विकार उत्पन्न हो जाए, जिससे खून कम ही रहे तथा घातक स्थिति आ जाए ।

'रज्ज्वग्निपात' ये दो कारण हैं । रस्सी से मृत्यु कैसे हो, फाँसी लगाने या लगने से, रस्सी से बाँधा जाकर दण्डित करने से अथवा रस्सी में फँसकर गिर जाने से इत्यादि प्रकार से निर्णय करना चाहिए ।

'अग्निपात' से तात्पर्य स्वयं अग्नि में कूद जाना, या आग लगा लेना अथवा किसी अन्य कारण से अग्नि सम्पर्क से मृत्यु कहें ।

बन्धन या स्त्री के कारण मृत्युः–

लग्नाद्धीनवमस्थयोरशुभयोः सौम्यग्रहादृष्टयो-
र्द्रेष्काणैश्चसपाशसर्पनिगडैश्छिद्रस्थितैर्बन्धनात् ।
कन्यायामशुभान्वितेऽस्तमयगे चन्द्रे सिते मेषगे,
सूर्ये लग्नगते च विद्धि मरणं स्त्रीहेतुकं मन्दिरे ।। 4 ।।

लग्न से पंचम व नवम में पापग्रह स्थित हों तथा उन पर किसी भी शुभग्रह की दृष्टि न हो तथा अष्टम स्थान में पाश, सर्प, निगड द्रेष्काण पड़े हों, यह एक योग है। इसमें बन्धन से मृत्यु होती है।

यदि चन्द्रमा पापयुक्त होकर कन्या राशि में सप्तम भाव में हो तथा शुक्र पापयुक्त होकर मेष राशि में हो, अर्थात् मीन लग्न में सपाप चन्द्र सप्तम में एवं सपाप शुक्र द्वितीय भाव में हो तथा साथ में लग्न में सूर्य स्थित हो तो पुरुष की मृत्यु अपने ही घर में स्त्री के कारण होती है।

श्लोक के पूर्वार्ध में प्रोक्त योग को बहुत से टीकाकारों ने दो भागों में बाँट दिया है। भट्टोत्पली में 'लग्नात्' के स्थान पर 'बन्धात्' पाठ है। ऐसी स्थिति में अशुभ ग्रह शुभ दृष्ट न होकर 9.5 में हों, यह एक योग है तथा अष्टम भाव में सर्प, पाश, निगड द्रेष्काण हो यह दूसरा योग है। इनमें बन्धन से मृत्यु होती है। लेकिन रुद्रभट्ट ने इसे एक ही योग माना है।

'अशुभयोर्लग्नाद्धीनवमस्थयोः सौम्यग्रहादृष्टयोः सतोः जातस्य छिद्रस्थितैः....... द्रेष्काणैश्च निमित्तभूतैः ....' (रुद्रः)

अलग दो योग मानने में भी कोई विशेष हानि नहीं है। जातक पारिजात में कहा गया है कि चन्द्र लग्न से 5.9 में पापग्रह शुभ दृष्टि से रहित हों और चन्द्रमा से अष्टम में सर्पादि उक्त द्रेष्काण पड़े तो बन्धन से मृत्यु होती है। अतः साधारण भेद से अवान्तर काल में इन्हें स्वीकार किया गया है। होरासार में पृथुयशा ने उक्त योगों को लग्न व चन्द्रमा से समानतया विचारणीय कहा है। लेकिन वे कहते हैं कि अष्टमेश यदि राहु या सर्प द्रेष्काण से युक्त हो तब यह योग बनता है।

शूल आदि से मृत्यु योगः–

शूलोद्भिन्नतनुः सुखेऽवनिसुते सूर्येऽपि वा खे यमे,
सप्रक्षीणहिमांशुभिश्च युगपत् पापैस्त्रिकोणाद्यगैः।
बन्धुस्थैश्च रवौ वियत्यवनिजे क्षीणेन्दु संवीक्षिते,
काष्ठेनाभिहतः प्रयाति मरणं सूर्यात्मजेनेक्षिते।। 5।।

यदि चतुर्थस्थान में सूर्य या मंगल तथा दशम में शनि हो तो मनुष्य की मृत्यु शूली पर चढ़ाने से होती है। अथवा कई पाप ग्रह 1.5.9 में क्षीण चन्द्रमा से युक्त होकर स्थित हों तो भी शूल से मृत्यु होती है।

चतुर्थ भाव में सूर्य एवं दशम में मंगल हो और क्षीण चन्द्रमा की मंगल पर दृष्टि हो तो भी मनुष्य की मृत्यु शूल से होती है।

यदि चतुर्थस्थ सूर्य व दशमस्थ मंगल हो और शनि द्वारा दशमस्थ मंगल दृष्ट हो तो लाठी आदि लकड़ी की चोट से मृत्यु होती है।

शूली से तात्पर्य कष्टदायक मरण तथा राजाज्ञा से मरण समझना चाहिए। अथवा भाले, तीर, आदि नुकीले अस्त्रों से मृत्यु होती है। 'शूलोद्भिन्न तनुः' में स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण शरीर नुकीले उपकरणों से बिंधा हुआ हो, इसका समन्वय यथाकाल करना चाहिए, आजकल शूली पर चढ़ाने की सजा नहीं दी जाती है।

'प्रक्षीण हिमांशु' शब्द से विशेष क्षीण अर्थात् चतुर्दशी अमावस्या प्रतिपदा के चन्द्र का ग्रहण है।

बाद के दो चरणों में दो योग कहे हैं। मूलरूप से चतुर्थ में सूर्य व दशम में मंगल हो। दशमस्थ मंगल को चन्द्रमा देखे अर्थात् पूर्ण दृष्टि से देखे। **'संवीक्षिते'** में सम् उपसर्ग द्वारा सम्यक् भली भाँति अर्थात् पूर्ण दृष्टि का संकेत है। शनि देखे तो लाठी से, चन्द्र देखे तो शूल से मृत्यु है। दोनों योगों में दशमस्थ मंगल पर दृष्टि हो, न कि दोनों पर । कई ग्रन्थों में शनि व चन्द्र की दृष्टि व योग दोनों में ही उक्त फल माना गया है। इसका निश्चय वास्तविक अनुभव में लक्ष्य संगमन द्वारा (वास्तविक उदाहरणों में परीक्षा करके) करना चाहिए।

अन्य दुर्मरण योगः–

रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्लकुटाहताङ्गः
प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्कसुतार्कयुक्तैः।
तैरेव कर्मनवमोदय पुत्रसंस्थै-
र्धूमाग्निबन्धनशरीरनिकुट्टनान्तः।।6।।

(वसन्ततिलका)

अष्टम भाव में क्षीण चन्द्रमा, दशम में मंगल, लग्न में शनि, चतुर्थ में सूर्य हों तो मनुष्य डंडों द्वारा पीटे जाने से मरण को प्राप्त होता है।

यदि इसी क्रम से दशम में क्षीण चन्द्रमा, नवम में मंगल, लग्न में शनि व पंचम में सूर्य हो तो धुएँ, अग्नि, बन्धन से अथवा शरीर को लाठी पत्थर आदि से घातक चोट पहुँचने से मृत्यु होती है।

शस्त्र-अग्नि-राजकोपादि से मृत्युः–

बन्ध्वस्तकर्मसहितैः कुजसूर्यमन्दैर्निर्याणमायुधशिखिक्षितिपालकोपात्।
सौरेन्दुभूमितनयैः स्वसुखास्पदस्थैः ज्ञेयः क्षतकृमिकृतश्च शरीरपातः।।7।।

चतुर्थ में मंगल, सप्तम में सूर्य, दशम में शनि हो तो उस व्यक्ति की मृत्यु शस्त्राघात, अग्नि या राजा के कोप के कारण होती है।

यदि द्वितीय भाव में शनि, चतुर्थ में चन्द्रमा, दशम में मंगल हो तो उस व्यक्ति के शरीर में किसी घाव या फोड़े आदि में कीटों का संक्रमण होने से मृत्यु होती है ।

वाहन-दुर्घटना योगः–

खस्थेऽर्केऽवनिजे रसातलगते यानप्रपाताद्वधो,

यन्त्रोत्पीडनजः कुजेऽस्तमयगे सारेन्द्विनाभ्युद्गमे ।

विण्मध्ये रुधिरार्किशीतकरणैर्जूकाजसौरर्क्षगै-

र्यातैर्वा गलितेन्दुसूर्यरुधिरैर्व्योमास्तबन्ध्वाह्वयान् । । 8 । ।

दशम में सूर्य, चतुर्थ में मंगल हो तो मनुष्य की मृत्यु वाहन से गिरने के कारण होती है ।

यदि सप्तम में मंगल तथा लग्न में शनि, सूर्य व चन्द्रमा हों तो मनुष्य की मृत्यु किसी मशीन आदि में फँसने से होती है ।

यदि तुला में मंगल, मेष में शनि, मकर या कुम्भ में चन्द्रमा हो अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य व मंगल क्रमशः 10. 7. 4 भावों में स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु मलयुक्त स्थान (गंदा, स्थान, शौचालय गटर आदि) में होती है ।

'शैलाग्राभिहतस्य सूर्यकुजयोः' इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक में 10. 4 में सूर्य मंगल रहने से पत्थर से मृत्यु कही थी । यहाँ पर इसी स्थिति में यान-दुर्घटना से मृत्यु कही है । इसका आशय यह है कि उक्त एवं आगे कहे जाने वाले सभी अपघात, दुर्घटनादि योगों में सूक्ष्मविचार करने पर बलाबल से, राशि नवांशादि स्थिति से मृत्यु के कारण में भेद सम्भव है ।

'गलितेन्दु' शब्द से केवल पक्षबल में हीन चन्द्रमा का ही ग्रहण नहीं है, अपितु विशेषतया षड्बल से रहित चन्द्रमा का आशय है ।

गुप्तरोग से मृत्यु योगः–

वीर्यान्वितवक्रवीक्षिते क्षीणेन्दौ निधनस्थितेऽर्कजे ।

गुह्योद्भवरोगपीडया मृत्युः स्यात्कृमिशस्त्रदाहजः । । 9 । ।

यदि बलवान् मंगल से दृष्ट होता हुआ क्षीण चन्द्रमा कहीं भी स्थित हो तथा अष्टम भाव में शनि स्थित हो तो गुप्तांग सम्बन्धी रोग (बवासीर, भगन्दर, प्रमेह, धातुक्षय, गनौरिथा, हरपीज)आदि की पीड़ा से बचने के लिए किए जाने वाली शल्य क्रिया अथवा गुप्तांगों में कृमि होने से अथवा इन्हीं रोगों के दाह, जलन से मृत्यु होती है ।

प्राचीन काल में बवासीर भगन्दर आदि रोगों की पीड़ा बढ़ जाने पर गर्म चाकू आदि से उन्हें काटा जाता था । तत्कालीन शल्यक्रिया विशेष

विकसित न होने के कारण सिंगी (फश्त) आदि से इलाज करने वाले जर्राह के दोष से भी संक्रामण व उसके कारण मृत्यु सम्भव थी। भगन्दर प्रायः असाध्य होता था।

वातमूत्रपुरीषाणि शुक्रश्च कृमयस्तथा।
भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम्।। (भाव प्रकाश)

'भगन्दर से वायु, मूत्र, मल, कीट, कृमि आदि लगातार बहते रहते हैं तथा रोगी को नष्ट कर देते हैं।'

चरक ने भी पाटन अर्थात् आपरेशन, छेदन (चीरा) आदि से इसकी चिकित्सा कही है–

विरेचनन्चैषणपाटनं च छिन्नस्य चास्यव्रणवच्चिकित्सा।

(चरक)

अतः गुप्तांगों के किसी भी असाध्य रोग की पीड़ा की छटपटाहट से मृत्यु होती है अथवा इन रोगों की चिकित्सा के दौरान किसी चिकित्सकीय उपद्रव से मृत्यु होती है, ऐसा समझना चाहिए। अथवा यथासम्भव विचार करके दो योग भी माने जा सकते हैं। तब भगन्दरादि से अथवा शस्त्र कृमि विकरादि से मृत्यु होती है। ऐसा अर्थ भी विचारणीय है।

फिसलने या बिजली गिरने से मृत्युः–

अस्ते रवौ सरुधिरे निधनेऽर्कपुत्रे
क्षीणे रसातलगते हिमगौ खगान्तः।
लग्नात्मजाष्टमतपः स्विनभौममन्द
चन्द्रैस्तुशैलशिखराशनिकुड्यपातैः।। 10।।

(वसन्ततिलका)

यदि सूर्य सप्तम स्थान में मंगल के साथ हो तथा अष्टम में शनि हो, चतुर्थ में क्षीण चन्द्रमा हो तो मनुष्य की मृत्यु पक्षियों के कारण होती है।

यदि 1.5.8.9 भावों में सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्रमा हों तो उसकी मृत्यु पर्वत या ऊँचे स्थान से गिरकर, उल्कापात, वज्रपात (बिजली गिरना) करेंट लगना अथवा किसी दीवार आदि के गिरने से होती है।

पक्षियों से मृत्यु होती है। इस विषय में भट्टोत्पल कहते हैं कि ऐसे योग में व्यक्ति के शव का दाहसंस्कार नहीं होता, अपितु उसे पक्षी खा जाते हैं, वास्तव में यह शव परिणाम अर्थात् देहान्त के बाद शव की क्या

गति होगी, इस प्रसंग का योग न होकर मृत्यु कारण योग है । अतः पक्षियों के कारण से या पक्षियों के द्वारा खाए जाने से मृत्यु कहनी चाहिए ।

'खगान्तः खगैरन्तो भवति पक्षिभिर्भक्ष्यमाणस्य मरणं भवति–इत्यर्थः ।

(रुद्रभट्ट)

घने रेगिस्तानों में, भूख से व्याकुल होकर चील गिद्ध आदि किसी भी प्राणी पर आक्रमण कर देते हैं तथा उसे चट कर जाते हैं । ऐसे स्थानों पर व्यक्ति फँस जाए । उसके वाहन से कोई बड़ा पक्षी टकरा जाए तथा दुर्घट्ना हो जाए अथवा किसी पक्षी के द्वारा चोंच मार देने पर कोई घातक संक्रमण हो जाए, इत्यादि प्रकार से कल्पना हो सकती है । हमारे विचार से खगान्त शब्द में खगनिमित्तक मृत्यु' समझना योग्य है ।

उक्त योगों के अभाव में मृत्यु विचारः–

द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः ।
तस्याधिपतिर्भपो(वो)ऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति ।। 11 ।।

(वैतालीय)

लग्न से बाईसवाँ द्रेष्काण, विद्वानों ने मृत्यु का कारण कहा है । यदि पूर्वोक्त योगों से मृत्यु प्रकार का निश्चय न हो सके तो बाईसवें द्रेष्काण का स्वामी अथवा अष्टमेश अपने गुणों व प्रकृति के अनुसार मृत्यु देता है ।

बाईसवाँ द्रेष्काण खर द्रेष्काण कहलाता है । यदि अष्टम द्रष्टा ग्रह कोई न हो, अष्टम में भी कोई ग्रह न हो अर्थात् **'मृत्युः मृत्युग्रहे क्षणेन'** इत्यादि श्लोक में प्रोक्त विधि से मरण प्रकार का निश्चय न हो और पूर्वोक्त दुर्मरण योगों में से भी कोई योग न बनता हो तब बाईसवें द्रेष्काण का विचार करना है । लग्न स्पष्ट में यदि पहला द्रेष्काण हो तो अष्टम राशि का पहला द्रेष्काण, यदि लग्न में दूसरा द्रेष्काण हो तो अष्टमराशि का दूसरा द्रेष्काण, यदि लग्न में तीसरा द्रेष्काण हो तो अष्टम राशि का तीसरा द्रेष्काण बाईसवाँ होगा । अष्टमभाव स्पष्ट से विचार न करके सीधे ही लग्न से आठवीं राशि के वर्तमान द्रेष्काण का विचार अभिप्रेत है ।

अथवा भप अर्थात् राशीश अर्थात् अष्टम राशीश, अष्टमेश का विचार करना चाहिए । इन दोनों ग्रहों (द्वाविंशद्रेष्काणेश व अष्टमेश) जो अधिक बलवान् हो वही अपनी प्रकृति, वात, पित्त, कफादि धातु, अग्नि, भूमि खण्डादि तत्त्व, राशि से द्योतित अंग में विकरादि पैदा करके मृत्यु देता है ।

भट्टोत्पली में 'भपोऽपि वा' पाठ के स्थान पर **'भवोऽपि वा'** पाठ भी उपलब्ध है । स्पष्टता की दृष्टि से भ (राशि) प (स्वामी) अर्थात् 'भप' शब्द

अधिक उपयुक्त है। जबकि 'भव' शब्द का अर्थ है स्वामी। तब अष्टम राशि का स्वामी, ऐसा अर्थ प्रसंगानुसार कल्पनीय होता है।

मरणस्थान के विषय में विशेषः–

होरानवांशकपयुक्तसमानभूमौ,
योगेक्षणादिभिरतः परिकल्प्यमेतत्।
मोहस्तु मृत्युसमयेऽनुदितांशतुल्यः,
स्वेशेक्षिते द्विगुणितस्त्रिगुणः शुभैस्तु।। 12।।

(वसन्ततिलका)

जन्म समय में लग्न में जो नवांश हो, उस नवांश का स्वामी अर्थात् लग्न नवांशेश, जिस राशि में स्थित हो, उस राशि के समान स्थल पर (राशि प्रकरणोक्त) मृत्यु कहनी चाहिए। पुनश्च उस ग्रह के साथ स्थित व उस पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों की भी गवेषणा करके स्वबुद्धि से कल्पना करनी चाहिए।

मृत्यु समय में इन्द्रियशिथिलताजन्य मोह अर्थात् ज्ञान शून्यता की अवधि के निर्धारणार्थ जन्म लग्न में भोग्य अंशों के बराबर समय तक मोह समझना चाहिए। यदि लग्न, लग्नेश द्वारा दृष्ट हो तो उसका दुगुना, यदि लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो तिगुना समय समझना चाहिए।

नवांशेश की राशि का स्थल निर्णय कैसे होगा ? पहले राशि प्रकरण में **'स्वचराश्च सर्वे'** कहकर मेष वृष की भूमि क्षेत्र बाड़ा गृह आदि, मिथुन की बस्ती, गाँव आदि सिंह की अरण्य भूमि, पर्वत शिखर आदि इत्यादि प्रकार से निर्णय करना है। अथवा नवांशेश की अधिष्ठित राशि के स्वामी ग्रह से **देवाम्ब्वग्नि विहार** आदि ग्रहशीलाध्याय में प्रोक्त स्थानों से निर्णय करें। जैसे सूर्य का देवालय, चन्द्रमा का जलस्थान, मंगल का अग्निस्थानादि समझना चाहिए। यह गौण मार्ग है। राशि से निर्णय करना प्रथम पक्ष है। इस प्रकार समन्वयपूर्वक निर्णय करना चाहिए।

मोहकाल का निर्णय करने की विधि भी स्वयं ऊह्य है। सम्पूर्ण राशि का उदयमान जितना घड़ी पल घंटा-मिनट हो, उससे अनुपात करके भोग्य अंशों का समय जानकर तत्तुल्य मोहकाल कहें। ऐसा भट्टोत्पलादि का मत है।

अथवा आयुर्दाय साधन करके आयुः समाप्ति के समय पर अन्तिम साँस का समय जानना योग्य है। लग्नेश ग्रह से जो **'अयनक्षणवासरर्तवो**

मासोर्ध्व च समाश्च भास्करात्' विधि से जितने नवांश भोगने बाकी हों, उतने ही अयन, क्षण, दिन आदि का मोह काल समझना चाहिए।

अथवा **प्रश्न मार्ग** व जातक **पारिजातादि** में निरूपित निर्याण कालीन शनि, चन्द्र, गुरु, सूर्य आदि के गोचर का समन्वय करके मरण समय जानना चाहिए।

यदि लग्नेश लग्न को देखे तो लग्न का शेष भोग्य काल दुगुना समझें। यदि शुभग्रह भी देखें या केवल कई शुभग्रह देखें अर्थात् लग्न बलवान् हो तो तीनगुना समय समझना चाहिए।

भट्टोत्पल ने पहले दुगुना तथा फिर उसका तिगुना काल कहकर कुल छह गुना काल कह दिया है, जो समुचित नहीं है।

शव की गति (परिणाम) का विचारः—

दहन जल विमिश्रैर्भस्मसंक्लेदशोषैः
निधनभवनसंस्थैर्व्यालवर्गैर्विडन्तः।
इति शवपरिणामश्चिन्तनीयो यथोक्तः,
पृथुविरचितशास्त्राद्गत्यनूकादिचिन्त्यम्।। 13।।

(मालिनी)

अष्टम स्थान में स्थित ग्रहों व द्रेष्काण से शवगति का विचार करना है। अष्टम में पापग्रहों का द्रेष्काण हो या अग्निग्रह (सूर्य, मंगल, केतु) स्थित हों तो शव का दाह किया जाता है।

यदि वहाँ जलद्रेष्काण (शुभ ग्रह का द्रेष्काण) हो या जल ग्रह (चन्द्र, शुक्र) स्थित हो या जलधर द्रेष्काण (कर्क मीन का प्रथम, कन्या मीन का मध्य, वृष मिथुन का अन्तिम) हो तो शव का जल प्रवाह किया जाता है।

यदि वहाँ मिश्र द्रेष्काण हो अर्थात् पापद्रेष्काण शुभयुक्त या शुभद्रेष्काण पापयुक्त हो अथवा मिश्र ग्रंह गुरु, बुध, शनि हों तो शव दाह या प्रवाह कुछ भी नहीं होता। वह धूप व हवा आदि से यूँ ही सूख जाता है।

यदि अष्टम भाव में सर्पादि हिंसक या शूकरमुख (कर्क का प्रथम) द्रेष्काण हो तो शव को कीड़े मकोड़े, चील कौए आदि खा जाते हैं।

इस प्रकार बुद्धिपूर्वक शव का परिणाम जानना चाहिए। यवनादिकों द्वारा प्रोक्त विस्तृत शास्त्रों से गत्यनूक अर्थात् किस लोक से आया था व किस लोक में जाएगा इत्यादि विचार करना चाहिए।

इस विषय में लोकाचार आदि का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। शव का जल प्रवाह व दाहन होने के अतिरिक्त जो शेष बताया है, वह दफनाए

जाने की ओर संकेत करता है। अर्थात् जलाना, बहाना या गाड़ना ये तीनों सम्मानित गतियाँ हैं। इसके विपरीत 'व्यालवर्गैर्विडन्तः से सर्प वर्ग अर्थात् हिंसक द्रेष्काण सर्प, पक्षी, उद्यतायुध, चतुष्पाद, शूकर मुख आदि द्रेष्काणों के रहने से अनुचित गति अर्थात् कीट पशुपक्षियों द्वारा खाया जाना बताना चाहिए। देशकाल व सम्प्रदायानुसार भी विचार करना है, यही **'चिन्तनीयः'** शब्द से ध्वनित है।

गति अर्थात् उत्तरावस्था, मृत्यु के पश्चात् गम्यलोक एवं अनूक अर्थात् पूर्वजन्म का लोकादि अभीष्ट है। इसका विचार पृथु अर्थात् विस्तार से रचित अन्य ग्रन्थों से समझ लेना चाहिए। यहाँ आगे आचार्य केवल संक्षिप्त विचार का सूत्रपात मात्र कर रहे हैं।

गत्यनूक का ज्ञानः–

गुरुरुडुपति शुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाथात्
प्रवरसमनिकृष्टास्तुंगभागादनूके।।14।। (मालिनी)

जन्म समय में सूर्य व चन्द्रमा में से जो अधिक बलवान् हो, उसे देखें कि वह किस द्रेष्काण में है। बलवान् सूर्य या चन्द्रमा के अधिष्ठित द्रेष्काण का स्वामी यदि गुरु हो तो देवलोक से, यदि चन्द्रमा शुक्र हो तो पितृलोक से, सूर्य मंगल हो तो पशु-पक्षिलोक से एवं बुध शनि हों तो नारकीय हीन सत्त्व लोकों अर्थात् योनियों से आया है।

इस प्रकार पूर्व योनि या लोक का निश्चय करने के उपरान्त उन योनियों में भी श्रेष्ठ, मध्यम व अधम स्थिति जानने के लिए विचार सरणि बताई जा रही है। उक्त द्रेष्काणेश गुरु, चन्द्र शुक्र आदि जिस राशि में हैं, वह राशि ग्रह के परमोच्च से दो राशियों के भीतर है तो उन लोकों में श्रेष्ठ स्थिति, यदि परमोच्च से तीसरी चौथी राशि है, तो मध्यम स्थिति तथा पाँचवीं छठी अर्थात् परमनीच के निकट है तो निकृष्ट स्थिति होती है। इस प्रकार पूर्वयोनि का विचार कहा।

यहाँ किन्हीं टीकाओं में **'तुंगहानात्'** पाठ भी है। तब भी तुंग अर्थात् उच्च स्थान से हान अर्थात् हीनता, न्यूनता, घटाव अर्थ आने से वही बात है।

पूर्वलोक का यह विचार जन्मकालीन लग्न व ग्रहस्थिति से करना है। इसका विश्वास कैसे होगा ? मनुष्य के स्वभाव, प्रकृति, शरीर लक्षण हाव भाव, विचार, मनोवृत्ति आदि से ये बातें स्वयं प्रस्फुटित हो जाएँगी।

शरीर लक्षणादि के विषय में भी कमी क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

गतिमपिरिपुरन्ध्रत्र्यंशपोऽस्तस्थितो वा,

गुरुरथरिपुकेन्द्रच्छिद्रगःस्वोच्चसंस्थः ।

उदयति भवनान्ते सौम्यभागे च मोक्षो,

यदि भवति बलेन प्रोज्झितास्तत्र शेषाः ।।5।। (मालिनी)

जन्म समय में 6.7.8 भाव में जो ग्रह हो, कई ग्रह हों तो सर्वबलीग्रह, पिछले श्लोक में बताए गए लोक या योनि को मृत्यु के बाद प्राप्त कराता है। अर्थात् 6.7.8 में बली गुरु हो तो देवलोक को, चन्द्र शुक्र हों तो पितृलोक को इत्यादि प्रकार से समझें। यदि 6.7.8 भावों में कोई ग्रह न हो तो 6.7.8 भावों के द्रेष्काणाधिपों में से बलवान् द्रेष्काणेश के लोक में मनुष्य जाता है।

यदि उच्चगत गुरु 1.4.7.10.6.8 भावों में हो अथवा मीन लग्न में शुभ ग्रह का नवांश हो तथा बृहस्पति के अतिरिक्त शेष ग्रह बलवान् न हों तो इन योगों में जातक की मुक्ति हो जाती है, अर्थात् बारम्बार होने वाले जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाता है।

अथवा 'भवनान्त' किसी भी राशि के अन्तिम नवांश में जन्म हो, अर्थात् किसी भी लग्न में 3.6.9.12 राशि का नवांश हो, गुरु उच्चगत हो तो गुरु 1.4.7.10.6.8 में हो व शेष ग्रह निर्बल हों तो मोक्ष हो जाता है।

उक्त भावी गति का विचार जन्म लग्न व मृत्यु लग्न दोनों में करना चाहिए। 'अथ' शब्द से प्रसंग परिवर्तन अर्थात् मोक्ष विचार का सूत्रपात निर्दिष्ट है। गुरु 'शब्द' का चातुरीभरा प्रयोग दोनों प्रसंगों में अर्थ बताता है। 6.7.8 में ग्रह हों तो उन्हीं से व ग्रह न हों तो 6.8 के द्रेष्काण अर्थात् 16 वें व 22 वें द्रेष्काण से मुख्यतः गति विचार करना है। **'अस्तस्थितो वा'** कहकर सप्तमस्थ द्रेष्काण का विचार भी कदाचित् भ्रमनिवारणार्थ कर सकते हैं, यह सूचित किया है।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां निर्याणाध्यायस्त्रयोविंशः ।।

[24]

अथ नष्टजातकाध्याय:

जन्मकालीन अयन का ज्ञान:–

आधानजन्मापरिबोधकाले, सम्पृच्छतां जन्मवदेद्विलग्नात् ।
पूर्वापरार्द्धे भवनस्य विद्याद् भानावुदग्दक्षिणगे प्रसूतिम् ।।1।।

(इन्द्रवज्रा)

जिस व्यक्ति का आधान काल या जन्मकाल ज्ञात न हो तो पूछे जाने पर उसका जातकफल बताने के लिए विलग्न अर्थात् प्रश्नकालीन लग्न से जन्म समयादि कहें ।

यदि प्रश्न लग्न में राशि का पूर्वार्ध उदित हो अर्थात् 15^0 के भीतर लग्न हो तो उत्तरायण में अन्यथा दक्षिणायन में जन्म समझना चाहिए ।

'सम्पृच्छतां' अर्थात् सम्यक्तया विश्वास पूर्वक पूछने वाले व्यक्ति का नष्ट जातक निकालना चाहिए । **'विलग्नात्'** अर्थात् **विशिष्टलग्नं विज्ञाय'** विशिष्ट लग्न जानकर उसके आधारपर जन्म का ज्ञान करें । 'वि' शब्द से अभिप्रेत विशिष्ट तत्कालीन कालकला अर्थात् उदय, आरूढ़, सूक्ष्मादि लग्न से भी विचार करें । 'वि' शब्द की व्याख्या पीछे **'होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके'** की व्याख्या में भी देखें । इसी तरह जिसका आधान लग्न ज्ञात न हो तो जन्म व प्रश्न लग्न से उसका आधान भी जाना जा सकता है, ऐसा आशय रुद्रभट्ट का है । सम्पूर्ण नष्ट जातक में सूर्य, गुरु व चन्द्रमा या लग्न ये चार बातें जाननी अभीष्ट हैं । शेष बातें इनसे स्वयमेव स्फुट हो जाती हैं ।

जन्मकालीन गुरु का ज्ञानः-

> लग्नत्रिकोणेषु गुरुं त्रिभागैर्विकल्प्य वर्षाणि वयोऽनुमानात् ।
> ग्रीष्मोऽर्कलग्ने कथितास्तुशेषैरन्यायनर्तावृतुरर्कचारात् ।।2।।
>
> (इन्द्रवज्रा)

यदि प्रश्न लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो तो प्रश्न लग्न की राशि में, यदि द्वितीय द्रेष्काण हो तो प्रश्न लग्न से पंचम राशि में, यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो प्रश्न लग्न से नवम राशि में जन्मसमय में बृहस्पति की स्थिति समझनी चाहिए। बृहस्पति की उस ज्ञात राशि से पृच्छक की उम्र का अनुमान पूछकर वर्ष की संगति कर लेनी चाहिए।

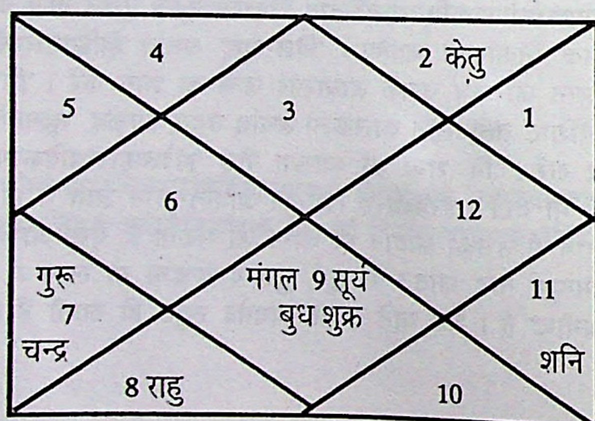
अथवा प्रश्न लग्न में उदित द्रेष्काण की राशि से गिनने पर जितना आगे गुरु हो, उतने ही वर्षो या वर्ष के गुणकों में जन्म समझना चाहिए।

यदि प्रश्न लग्न में सूर्य हो या सूर्य का द्रेष्काण हो तो ग्रीष्म ऋतु तथा अन्य ग्रह हों तो शनि से शिशिर, शुक्र से वसन्त, मंगल से ग्रीष्म, चन्द्र से वर्षा, बुध से शरत्, गुरु से हेमन्त ऋतु समझनी चाहिए। यह बात पहले ग्रहाध्याय में कह चुके हैं।

इस प्रकार ज्ञात ऋतु व पूर्वागत अयन का संगमन करके देखना चाहिए। ऋतुएँ सदैव सौरमान से ग्राह्य होंगीं। यदि ऋतु व अयन में विरोध उपस्थित हो तो सूर्य के गोचर से ऋतु में परिवर्तन करना चाहिए। अयन वही पूर्वागत ही रहेगा।

उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति 7.1.94 को सायं 4.35 पर प्रश्न करता है। उस समय मिथुन लग्न के पूर्वार्ध में प्रथम द्रेष्काणान्त का उदय हो रहा है।

लग्न 2.9°.51'



लग्न में पूर्वार्ध होने से उत्तरायण व प्रथम द्वितीय द्रेष्काण सन्धि होने से लग्न राशि मिथुन या तुला जन्मकालीन गुरु होना चाहिए ।

लग्न में कोई ग्रह नहीं है । अतः लग्नगत द्रेष्काणेश बुध की ऋतु शरद में जन्म होना चाहिए । शरद् में जन्म आने पर कन्या तुला मास में जन्म स्वतः सम्भावित है, लेकिन उत्तरायण संगत सिद्ध नहीं है ।

ऋतु परिवर्तन प्रकारः–

चन्द्रज्ञजीवाः परिवर्तनीयाः शुक्रारमन्दैरयने विलोमे ।

द्रेष्काणभागे प्रथमेतु पूर्वो, मासोऽनुपातच्च तिथिर्विकल्प्या ।। 3 ।।

यदि पूर्वागत अयन व ऋतु में भेद दिखे तो चन्द्र, बुध, गुरु को शुक्र, मंगल, शनि से अदल बदल लेना चाहिए । अर्थात् वर्षा वसन्त, शरद ग्रीष्म, हेमन्त शिशिर, इन ऋतुयुगलों में से अयन के अनुकूल ऋतु छाँट लेनी चाहिए ।

उदित द्रेष्काण के बराबर दो भाग करने से पूर्वार्ध में ऋतु का पहला मास व उत्तरार्ध में दूसरा मास समझना चाहिए । तब गतांश व द्रेष्काणार्ध के अनुपात से तिथि का अनुमान करना चाहिए ।

एक वर्ष में दो अयन व छह ऋतुएँ हैं । वर्षा, शरद, हेमन्त दक्षिणायन की व शिशिर वसन्त ग्रीष्म उत्तरायण की ऋतुएँ हैं । यदि ऋतु व अयन में भेद दिखे तो अदल-बदल कर अयन के साथ उसकी अनुकूल ऋतु जान लेनी चाहिए ।

एक द्रेष्काण 10^0 अंश के बराबर है तथा एक ऋतु में दो सौर मास या 60 दिन या दो राशि सूर्य गोचर होता है । अतः द्रेष्काण का आधा 5^0 एक मास के बराबर है ।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में द्रेष्काण का द्वितीयांश ही उदित है, अतः शरद् ऋतु का दूसरा मास यानि तुला के सूर्य में जन्म है । आगे और अनुपात भी कर सकते हैं । 5 अंश या 300 कला से 30 दिन तो 10 कला से 1 दिन प्राप्त होता है । इस विधि से तुला के अन्त में संक्रान्ति के आस पास जन्म सिद्ध होता है । इसी विधि से सर्वत्र तिथि ज्ञान करना चाहिए ।

तिथि ज्ञान का विकल्पः–

अत्रापि होरापटवो द्विजेन्द्राः सूर्यांशतुल्यां तिथिमुद्दिशन्ति ।

रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म भागैश्च वेला क्रमशो विकल्प्याः ।। 4 ।।

इस प्रसंग में बहुत से होराशास्त्रज्ञ विद्वानों का मत है कि प्रश्न समय में सूर्य के जितने अंश गए हों, उतनी ही आगे शुक्ल प्रतिपदा से गिनने

पर जन्म तिथि होती है। तब सूर्य व तिथि से गणित द्वारा जन्म चन्द्र का ज्ञान भी सम्भव होगा।

यदि प्रश्न समय में रात्रि बली लग्न हो तो दिन में, व दिनबली लग्न हो तो रात में जन्म समझना चाहिए। लग्न के गतांशों से अनुपात द्वारा दिन या रात्रि का गत भाग जानकर इष्टकाल भी जाना जा सकेगा। अर्थात् जितने अंश गए हों उतनी ही घड़ियाँ प्रायः रात या दिन की व्यतीत होती हैं। कला विकला से वर्तमान घड़ी के पल विपल जानकर इष्टकाल जानना चाहिए।

इसी तरह पूर्व प्राप्त सूर्य की राशि व जन्म घड़ी ज्ञात हो जाने पर जन्म लग्न जानना भी सुगम है।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में वृश्चिकादि में जन्म आया था। प्रश्नकालीन सूर्य गतांश 22 हैं। अतः तत्कालीन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा में 22 दिन जोड़ने से मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी तिथि में प्रायः जन्म आता है। दिनबली राशि में प्रश्न होने से रात में जन्म है तथा लगभग 10 अंश व्यतीत होने से रात की 10 घड़ी बीत चुकी थी।

इतने उपकरण ज्ञात होने पर सर्वप्रथम गुरु के भगण काल से पृच्छक की दृश्य अनुमानित आयु का समन्वय करके वर्ष, मास, अयन, ऋतु, दिन, रात, इष्ट एवं उससे आधारित समस्त बातें जानी जा सकती हैं।

चान्द्रमास जानने की विधिः–

केचिच्छशांकाध्युषितान्नवांशाच्छुक्लान्तसंज्ञं कथयन्तिमासम्।
लग्नत्रिकोणोत्तमवीर्ययुक्तं भं प्रोच्यतेऽंगालभनादिभिर्वा ।।5।।

(इन्द्रवज्रा)

कुछ आचार्यो का मत है कि प्रश्न समय में चन्द्रमा जिस नवांश राशि में हो, उस नवांश से द्योतित नक्षत्र से संकेतित मास ही जन्म समय का चान्द्रमास होता है। प्रश्न समय में 1.5.9 में जो राशियाँ पड़ी हों, उनमें से जो राशि सर्वाधिक बली हो, वही जन्मराशि अर्थात् उसी राशि में जन्म कालीन चन्द्रमा होता है। यदि संशय हो तो पृच्छक द्वारा स्पर्श किए अंग या आरूढ़ लग्नादि से द्योतित अथवा जिस राशि से सम्बन्धित अक्षर का प्रथम उच्चारण करे, वही जन्म राशि समझनी चाहिए।

यहाँ मतान्तर से जन्म कालीन मास का ज्ञान बताना अभीष्ट है। प्रश्न समय में स्पष्ट चन्द्रमा से उसका नवांश एवं नक्षत्र चरण जान लें। वह नक्षत्र जिस मास की पूर्णिमा को पड़े, वही मास जन्म मास समझें।

;

कार्तिक मासादि की पूर्णिमा को कृत्तिकादि 2-2 नक्षत्र रहने सम्भव है। जैसे कार्तिक पूर्णिमा को कृत्तिका व रोहिणी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा को मृगशिरा आर्द्रा इत्यादि।

चित्रादि तारकाद्वन्द्व यदा पूर्णेन्दुसंयुतम्।
तदा चैत्रादयो मासास्त्रिभिः षष्ठान्त्यसप्तमाः।। (बोधायन)

इसका प्रदर्शन चक्र में स्पष्टतया समझिए। प्रत्येक मास की पूर्णिमा को रहने वाले नक्षत्रों की सूची दी गई है।

पूर्णिमा नक्षत्र चक्र

मास		नक्षत्र
चैत्र	चित्रा	स्वाती
वैशाखा	विशाख	अनुराधा
ज्येष्ठ	ज्येष्ठा	मूल
आषाढ़	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढ़ा
श्रावण	श्रवण	धनिष्ठा
भाद्रपद	शतभिषा	पू. उ. भाद्रपद
आश्विन	रेवती	अश्विनी, भरणी
कार्तिक	कृत्तिका	रोहिणी
मार्गशीर्ष	मृगशिरा	आर्द्रा
पौष	पुनर्वसु	पुष्य
माघ	आश्लेषा	मघा
फाल्गुन	पू. फाल्गुनी	उ. फाल्गुनी, हस्त

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा तुला राशि के 25 अंश पर है। अतः विशाखा के द्वितीय चरण में स्थित चन्द्रमा से वैशाख मास द्योतित हुआ। यही जन्म मास समझा जाएगा।

प्रश्न समय में 1. 5. 9 में भावों में से नवम भाव स्वामियुक्त व गुरु से दृष्ट है, अतः वही अधिक बलवान् होने से उस भावगत राशि कुम्भ में जन्म समय में चन्द्रमा माना जाएगा।

अथवा पृच्छक जिस अंग को छूकर प्रश्न करे, उस अंग से द्योतित राशि, जो पहले अध्याय में **'कालांगानिवरांगमाननमुरः'** प्रभृति श्लोक में बताई गई है, वही जन्म राशि होगी। जैसे सिर को छुए तो मेष, कन्धों को छुए तो मिथुन, घुटनों को छूकर प्रश्न करे तो धनु इत्यादि प्रकार से समझना चाहिए।

'आदि' शब्द से आरूढ़ लग्न, प्रश्न का प्रथमाक्षर विधान, शकुन, चेष्टादि द्वारा भी सहायता प्राप्त करने का संकेत है। शकुनादि की बात अगले श्लोक में आचार्य स्वयं बता रहे हैं।

यावद्गतः शीतकरो विलग्नाच्चन्द्रान्द्र वदेत् तावति जन्मराशिम्।
मीनोदये मीनयुगं प्रदिष्टं भक्ष्याहृताकाररुतैश्च चिन्त्यम्।। 6।।

अथवा प्रश्न समय में चन्द्रमा लग्न से जितनी राशि आगे हो, चन्द्रमा से उतनी ही राशि आगे पड़ने वाली राशि को जन्म राशि समझना चाहिए। लेकिन मीन लग्न में प्रश्न हो तो जन्म राशि भी मीन राशि ही समझी जाएगी, यह उक्त नियम का अपवाद है।

अथवा प्रश्नकर्ता जिस चीज को हाथ में लेकर आए, जैसा स्वर प्रश्न समय में कानों में पड़े, जिस राशि से द्योतित जीव का खाद्यपदार्थ देखने में आए अथवा राशि प्रकरणोक्त राशि स्वरूप में पठित राशि सम्बन्धी पदार्थ दिखे, वही जन्म राशि माननी चाहिए।

हमारे प्रश्न लग्न में लग्न से पंचम में चन्द्रमा है, अतः चन्द्रमा से पंचम भाव में स्थित 'कुम्भ' में जन्म कालीन चन्द्रमा था, यह भी एक विकल्प है। चन्द्रमा स्पष्ट का प्रकार भी आचार्य ने यहाँ बता दिया है। प्रश्न चन्द्र स्पष्ट में लग्न स्पष्ट को घटाएं। शेष को चन्द्र स्पष्ट में जोड़ दें। प्राप्त फल जन्मकालीन स्पष्ट चन्द्रमा होगा। अथवा चन्द्र स्पष्ट को 2 से गुणा कर उसमें से लग्न को घटा दें, तब भी उक्त फल ही आएगा।

भक्ष्य अर्थात् राशि में प्रतीकित जीव का खाद्य पदार्थ, आहृत् अर्थात् पृच्छक द्वारा या प्रश्न काल में किसी अन्य द्वारा लाया गया पदार्थ, अथवा आकार यानि स्वरूप और रुत अर्थात् आवाज जिस राशि से सम्बन्धित हो, वही जन्म राशि है।

उदाहरणार्थ कोमल घास, पत्ते, आक आदि मेष के भक्ष्य हैं, इनके दिखने से मेष राशि जानें। पुआल आदि से वृष। पान, बिस्तर, वीणा, नर-नारी आदि से मिथुन। मिट्टी, जल, सूखे पत्ते आदि से कर्क, मांसादि से

सिंह । अनाज, अग्नि, नौकादि से कन्या । विक्रेय पदार्थ, तुला, बाट आदि से तुला । दवा, रसायन, विषादि से वृश्चिक । हथियार, घोड़ा, सवारी का साधन या युद्ध साधन दिखने से धनु । चमड़ा, जल, हिरण, गीली घास, छिपकली, गोह, से मकर । घड़ा, पुरुष, जलपात्रादि से कुम्भ तथा मछली, जाल, काँटा आदि से मीन राशि समझें । अथवा राशि से सम्बन्धी जीव का चित्र या वास्तव रूप दिखे अथवा इनकी आवाज सुनाई पड़े । इत्यादि विधि से सन्देह होने पर निर्णय करें । अथवा प्रश्नकाल में स्वेच्छा से उच्चरित राशि सम्बन्धी शब्द से राशि का निर्णय करें ।

जन्म लग्न का ज्ञानः-

होरानवांशप्रतिमं विलग्नं लग्नाद् रविर्यावति वा दृकाणे ।
तस्माद् वदेत् तावति वा विलग्नं प्रष्टुः प्रसूताविति शास्त्रमाह ।। 7 ।।

प्रश्न समय में लग्न में जिस राशि का नवांश स्थित हो, वही राशि जन्म लग्न में रहती है । अथवा लग्न द्रेष्काण से गिनकर सूर्य जितने द्रेष्काण में हो, वही संख्या प्रश्न लग्न राशि में जोड़ने से प्राप्त राशि, लग्न में रहती है । यह बात शास्त्रों में कही है ।

पहले भी इष्टकाल, दिनगत, रात्रिगत आदि द्वारा जन्म लग्न व तिथि आदि का विचार बताया है । यहाँ एक अन्य पद्धति बताते हैं । प्रश्न लग्न में जो नवांश राशि पड़े, वही राशि जन्म समय में लग्न में रहती है । जैसे प्रश्न समय में मेष नवांश हो तो मेष लग्न, वृष नवांश हो तो वृष लग्न समझें ।

दूसरी विधि यह है कि लग्न में स्थित द्रेष्काण से गिनकर सूर्य जितने द्रेष्काण में स्थित हो, लग्न में उतनी ही राशि जोड़ने से जन्म लग्न प्राप्त हो जाता है । भट्टोत्पल व रुद्रभट्ट दोनों ही ने उक्त द्रेष्काण संख्या को लग्न में जोड़ने की बात कही है-

लग्नद्रेष्काणादारभ्य गण्यमाने यावत्संख्ये द्रेष्काणे रविः स्थितः लग्नात् तावत्संख्यं राशि प्रष्टुः प्रसूतिलग्नं वदेत् ।

(विवरण)

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि लग्न से सूर्य द्रेष्काण तक की द्रेष्काण संख्या को लग्न के स्थान पर सूर्य की राशि में जोड़ना चाहिए ।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में लग्न में मिथुन राशि का प्रथम द्रेष्काण स्थित है तथा सूर्य धनु राशि के तृतीय द्रेष्काण में है । अतः मिथुन राशि के 2 तथा वृश्चिक तक 15 द्रेष्काण एवं धनु के तीन द्रेष्काण जोड़ने पर 20 द्रेष्काण संख्या मिली । प्रश्न लग्न राशि संख्या 3 + 20 = 23 ÷ 12 तो शेष 11

राशि अर्थात् कुम्भ में जन्म प्रतीत होता है। अथवा प्रश्न लग्न में मिथुन राशि में मकर का द्रेष्काण स्थित है, तदनुसार मकर लग्न प्रतीत होता है।

लग्न ज्ञान का दूसरा प्रकारः–

जन्मादिशेल्लग्नगवीर्यगे वा छायांगुलघ्नेऽर्कहतेऽवशिष्टम्।

आसीन सुप्तोत्थिततिष्ठताभं जायासुखाज्ञोदयगं प्रदिष्टम्।।8।।

तत्कालीन प्रश्न लग्न में स्थित ग्रहों में से लग्नगत या सर्व बली ग्रह को तात्कालिक स्पष्ट करें। उस तात्कालिक ग्रह स्पष्ट को तात्कालिक द्वादशांगुल शंकु की छाया से गुणा करें। 12 से उस संख्या को भाग दें। जो शेष बचे वही मेषादि राशि जन्म लग्न में रहती है।

अथवा प्रश्नकर्ता बैठकर प्रश्न करे तो प्रश्न लग्न से सप्तमराशि, यदि लेटकर प्रश्न करे तो प्रश्न लग्न से चतुर्थ राशि तथा खड़े-खड़े प्रश्न करे तो दसवीं राशि और खड़ा होते हुए प्रश्न करे तो प्रश्न लग्न ही जन्म लग्न भी होता है।

द्वादशांगुल छाया से इष्टकाल साधन करना पुरानी परिपाटी थी। आजकल भी यदि इस उपाय को अंगीकार करना हो तो द्वादश अंगुल लम्बी डंडी को समतल स्थान पर गाड़कर छाया को अंगुलों में नाप लेना चाहिए तथा उससे उक्त क्रिया करनी चाहिए। अथवा हमारे द्वारा **'प्रश्नविद्या'** में बताई गई विधि से छाया साधन करना चाहिए। अथवा ग्रह लाघव के **'नवतिगुणितमिष्टं'** इत्यादि श्लोक में कहे गए प्रकार से इष्टकाल से छाया साधन करना चाहिए।

भट्टोत्पल कहते हैं कि लग्न में कोई ग्रह स्थित हो तो उसी ग्रह से तथा लग्न में कई ग्रह हों तो उन लग्नगत ग्रहों में से सर्व बली ग्रह स्पष्ट को यहां लेना। रुद्रभट्ट कहते हैं कि लग्नगे अर्थात् लग्नगत ग्रह या ग्रहों से और लग्न में कोई ग्रह न हो तो किसी भी भाव में स्थित सर्वबली ग्रह से उक्त क्रिया करनी चाहिए।

'लग्नस्थितो ग्रहोऽस्ति चेत् तस्य तत्कालस्फुटं ग्राह्यं, तदभावे वीर्याधिकस्य तत्कालस्फुटं ग्राह्यम्।'

(रुद्रभट्ट)

ग्रह स्पष्ट से क्रिया करने से पूर्व सम्पूर्ण ग्रह को राशि सहित कला बनाकर अथवा राशि रहित अंशादि को कला बनाकर अथवा केवल कला-विकलाओं से ही उक्त क्रिया करके परिणाम प्राप्त करने चाहिएं। ऐसा भी रुद्रभट्ट ने कहा है।

अन्य प्रकार से नष्ट जातक ज्ञानः–

गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले कन्याभृगौ च क्रमात्,
संवर्ग्या दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसंख्यागुणाः ।
जीवारास्फुजिदैन्दवाः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यवद्,
राशीनां नियतो विधिर्ग्रहयुते कार्या च तद्वर्गणा ।।9।।

प्रश्न लग्न में स्थित राशि से गुणक जानने का प्रकार बताया गया है। वृष सिंह के 10, मिथुन व वृश्चिक का 8, मेष व तुला का 7, कन्या व मकर का 5, कर्क का 4, धनु का 9, कुम्भ का 11 तथा मीन का 12 गुणक अर्थात् गुणा करने की संख्या है। ये राशि के गुणक हैं।

ग्रहों में गुरु का 10, मंगल का 8, शुक्र का 7, बुध का 5, गुणक है तथा शेष सूर्य, चन्द्र, शनि के गुणक 5 हैं।

इस प्रकार राशि के गुणक से तत्कालीन प्रश्न लग्न की कलाएँ बनाकर गुणा करें। राशि से गुणा करना सदैव अनिवार्य है। यदि लग्न में ग्रह हो तो ग्रह के गुणक से तथा कई ग्रह हों तो सब ग्रहों के गुणकों से भी गुणा करनी चाहिए।

हमारा प्रश्न लग्न स्पष्ट 2. $9^0 51'$ है। इसकी कलाएँ 4191 हैं। प्रश्न लग्न ग्रह रहित होने से लग्न राशि मिथुन के गुणक 8 से इसे गुणा किंया तो 33528 संख्या मिली।

उक्त विधि में जन्म नक्षत्र ज्ञानः–

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृक्षं, दत्त्वाथवा नव विशोध्य नवाथवास्मात्।
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः प्रष्टुर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम् ।।10।।
(वस. तिल.)

पूर्व प्राप्त संख्या को 7 से गुणा कर 27 (3^3) से भाग देना चाहिए। जो शेष बचे वही अश्विनी आदि जन्म नक्षत्र होता है। यदि उक्त संख्या का नक्षत्र असम्भव दिखे तो 9 घटा या बढ़ा कर प्राप्त संख्या से जन्म नक्षत्र समझें।

अथवा प्रश्न लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो 9 जोड़कर, मध्य द्रेष्काण हो तो यथावत् तथा तृतीय द्रेष्काण हो तो 9 घटाकर तब 27 का भाग देना चाहिए।

इसी विधि से 7. 3. 5. 6 भावगत स्पष्ट से भी पिण्ड प्राप्त कर गुणकों से गुणा करके क्रमशः स्त्री, भाई, पुत्र व शत्रु के नक्षत्र भी जानकर

समन्वय बिठा सकते हैं। पृच्छक का जन्म नक्षत्र सदैव प्रश्न लग्न से ही बताना है।

हमारे उदाहरण में 33528 × 7 = 234696 ÷ 27 = 8692 शेष 12 है। अतः अश्विनी से गिनकर 12 वाँ नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी जन्म नक्षत्र है। अथवा 12−9 = 3 कृत्तिका या 12 + 9 = 21 उत्तराषाढ नक्षत्र में जन्म है।

अथवा लग्न में प्रथम द्रेष्काण है। अतः सप्तगुणित पिण्ड में 9 जोड़कर 234705 ÷ 27 तो शेष 21 वाँ उ. षा. जन्म नक्षत्र है।

लग्न स्पष्ट 2. 9. 51 + 2.00 = 4. 9°. 51′ तृतीय भाव है।

11391 भ्रातृ पिण्ड है। इसे 7 से गुणाकर 27 से भाग दिया तो शेष 6 से आर्द्रा नक्षत्र में भाई का जन्म होना चाहिए।

वर्ष ऋतु आदि का ज्ञानः–

वर्षर्तुमासतिथयो द्युनिशं ह्युडूनि,
वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पनाद्याः।
भूयो दशादिगुणिते स्वविकल्पभक्ते,
वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम्।। 11।।

(वसन्ततिलका)

पूर्व प्राप्त पिण्ड अर्थात् लग्न की कलाओं को राशि व ग्रह के गुणकों से गुणा कर प्राप्त राशि को पुनः 10. 8. 7. 5 से गुणा करके अलग-अलग लिख लेना चाहिए।

अपने-अपने विकल्प अर्थात् आयु वर्ष के लिए 120, ऋतु के लिए 6, मास के लिए 12, तिथि के लिए 30 आदि से भाग देकर शेष को वर्ष, ऋतु, मास, तिथि, दिन रात्रिगत काल, नक्षत्र, जन्म लग्न, नवांश आदि का ज्ञान करना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो 9 धन ऋण करके भी परिणाम करने चाहिएं।

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च।
अष्टकेष्वपि मासार्धास्तिथयश्च तथा स्मृताः।। 11 (क)।।

दस से पुनः गुणित पिण्ड से वर्ष, ऋतु व मास जाने जाएँगे। आठ से गुणित पिण्ड से पक्ष व तिथियाँ जानना योग्य है।

यहाँ से तीन अनुष्टुप् छन्द रुद्रभट्ट की टीका में नहीं हैं। वास्तव में श्लोक 11 में प्रोक्त विषय का ही स्पष्टीकरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरण में पिण्ड 234696 है। इसे पुनः 10. 8. 7. 5 से गुणा किया तो 2346960 भूप. दशगुणित, 1877568 पुनः अष्टगुणित पिण्ड, 1642872 पुनः सप्तगुणित, 1137480 पुनः पंचगुणित पिण्ड है।

सर्वप्रथम दशगुणित पिण्ड 2346960 ÷ 120 तो शेष 0 है। इसमें आवश्यक होने से 9 वर्ष धन ऋण (±) किए तो लगभग 9 वर्ष पृच्छक की आयु हुई। अथवा 18, 27, 36, 45 आदि वर्ष अनुमान व शरीर विकास देखकर आयु कही जाएगी।

पुनः पिण्ड 2346960 ÷ 6 तो 0 शेष है। अतः शिशिरादि ऋतुओं में से आखिरी ऋतु हेमन्त जन्म ऋतु हुई।

पुनः 2346960 ÷ 2 तो शेष 0, अतः हेमन्त ऋतु का दूसरा मास (शुक्लादि) पौष मास प्राप्त हुआ।

अब पुनः अष्टगुणित पिण्ड 1877568 को लिया। इसे 2 से भाग दिया तो 0 शेष बचा। अतः शुक्लादि मास में दूसरा पक्ष कृष्णपक्ष प्राप्त हुआ।

पुनः पिण्ड 1877568 ÷ 15 तो शेष 3 अर्थात् तृतीया तिथि मिली।

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा।
सप्तकेष्वपि वर्गेषु नित्यमेवोपलक्षयेत्।।ख।।

दिन या रात का जन्म एवं जन्म नक्षत्र का ज्ञान सदैव सप्तगुणित पिण्ड से ही करना चाहिए।

सप्तगुणित पिण्ड से जन्म नक्षत्र का ज्ञान पहले ही **'सप्ताहतं त्रिघन भाजितशेषमृक्षं'** में बताया ही गया है। सम्प्रति भूयः सप्तगुणित पिण्ड 1642872 ÷ 2 किया तो शेष 0 है, अतः एक शेष से दिन, दो शेष से रात तथा पूरा भाग लगने से रात्रि के अन्त में जन्म समझना चाहिए।

[वेलामथविलग्नं च होरामंशकमेव च।
पंचकेषु विजानीयान्नष्टजातकसिद्धये।।।।ग।।]

दिन रात्रि का बीता हुआ काल, लग्न, होरा व नवांश का ज्ञान पंचगुणित पिण्ड से करना चाहिए। यह पद्धति केवल नष्ट जातक के विषय में ही कही गई है।

पिण्ड 1137480 को रात्रिमान दिनमान 30 घड़ी से भाग दिया तो शेष 0 रहने 0 घड़ी के प्रायः इष्ट हुआ। इसी इष्ट से लग्नादि जाने जा सकते हैं।

वास्तव में ये तीनों श्लोक वराहमिहिर के न होकर किसी ने विषय को स्पष्ट करने के लिए बाद में मिला दिए हैं। रुद्रभट्ट ने मूल श्लोक

सं० 11 की टीका में ही इस समस्त विषय का विवेचन किया है। इन श्लोकों की प्रक्षिप्तता के विषय में विशेषतया ग्रन्थ के अन्त में उपसंहाराध्याय में कहेंगे।

इस प्रकार प्राप्त निष्कर्षों को एकत्र रखकर सर्वथा समन्वय करते हुए नष्ट जातक का निश्चय करना योग्य है। उदाहरण में सम्भावित आयु 9 वर्ष, गुरु की सम्भावित राशि मिथुन या तुला, रात्रि अन्त में जन्म, हेमन्त ऋतु का दूसरा मास, मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी तिथि प्राप्त हैं। अब पुराने पंचांग द्वारा देखते हैं। वर्तमान वर्ष 1994–9 = 1985 ई० का प्रारम्भ मिला। उस वर्ष गुरु मकर राशि में था। हमारा गुरु तुला के आस-पास (द्रेष्काणान्त होने से पंचमगत राशि) होना चाहिए। गुरु एक राशि में एक वर्ष रहता है, अतः मकर–तुला = 3 वर्ष राशि और कम करने से 1982 में कभी जन्म अधिक सम्भव है। अतः मार्गशीर्ष मास कृष्णपक्ष में 1982 में दिसम्बर के प्रारम्भ में वृश्चिकार्क के मध्य में वृश्चिक गुरु दिखता है। वृश्चिकार्क से हेमन्त ऋतु, गुरु, मासादि संगत सिद्ध हो जाते हैं। अतः 1982 दिसम्बर में प्रायः कृष्णपक्ष में दिन रात की सन्धि में वृश्चिक या वृष लग्न में जन्म सम्भव है। इत्यादि विधि से समन्वय करना चाहिए।

जन्म नक्षत्र ज्ञान की अन्य विधिः–

संस्कारनाममात्रा द्विगुणाश्छायांगुलैः समायुक्ताः।
त्रिनवकभक्ताः शेषं नक्षत्रं तद् धनिष्ठादि।। 12।

(आर्या)

नामकरण संस्कार के समय माता-पिता ने प्रश्नकर्ता का जो नाम रखा हो, उस नाम की मात्राओं को गिन लें। उन्हें दो से गुणाकर उसमें इष्टकालीन शंकुच्छाया की अंगुलों को जोड़ दें। इस प्रकार प्राप्त संख्या को 27 से भाग देने से जो शेष बचे, उसी शेष संख्या तक अश्विनी या धनिष्ठा नक्षत्र से प्रारम्भ कर गिनें। जो नक्षत्र प्राप्त हो, वही जन्म नक्षत्र था।

इस क्रिया में सदैव बचपन में नामकरण संस्कार के समय माता-पिता द्वारा रखे गए नाम का ही ग्रहण करना है। पश्चात् रखे गए, या स्वयं कल्पित किए गए नाम का ग्रहण नहीं होगा।

नाम की मात्रा गिनते समय ह्रस्व (एक मात्रिक) अक्षर की एक मात्रा, दीर्घ की दो तथा व्यंजन की आधी मात्रा होगी।

सामान्यतः नक्षत्रों की गणना अश्विनी से ही उचित है, लेकिन यहाँ अपवाद निदर्शनार्थ 'धनिष्ठादि' कहा। अतः नष्ट जातक की इस विधि में नक्षत्र गणना 'धनिष्ठा' से भी करनी है। सन्देह होने पर ऐसा करें।

'धनिष्ठादित्वेन नक्षत्रजातके विरोधः परिहर्त्तव्यः। (रुद्रः)

उदाहरणार्थ पृच्छक का नाम रविदत्त है। र–1, वि-1. द-1 त– -$\frac{1}{2}$ तथा त – 1 मात्रा कुल साढ़े चार मात्राएँ × 2 = 9 + कल्पित छाया 7 अंगुल तो 16 संख्या को 27 से भाग दिया तो 16 ही शेष है। धनिष्ठा से 16वाँ पू. फा. नक्षत्र जन्म समय में होना चाहिए।

अन्य प्रकारः–

द्वित्रिचतुर्दशदशतिथिसप्त त्रिगुणानवाष्ट चैन्द्राद्याः।
पंचदशघ्नास्तत्तदद्दिङ्मुखान्वितंभंधनिष्ठादि ।।13।। (आर्या)

प्रश्नकर्ता जिस दिशा की ओर मुख करके प्रश्न करे, उसी दिशा के अकं को 15 से गुणा करके, प्रश्न समय में पृच्छक की आरूढ़ दिशा की ओर मुख किए हुए वहाँ उपस्थित लोगों की संख्या भी उसमें मिलाएँ। जो संख्या प्राप्त हो, वही धनिष्ठा से गिनकर जन्म नक्षत्र होता है। दिशाओं के अंक इस प्रकार हैं–

पूर्व –2, अग्निकोण – 3, दक्षिण – 14, नैऋत्य-10, पश्चिम – 15, वायव्य – 7, उत्तर – 27, ईशान – 8।

यदि संख्या 27 से अधिक हो तो 27 से भाग कर, शेष का ग्रहण करना चाहिए।

उदाहरणार्थ पृच्छक दक्षिणाभिमुख होकर प्रश्न करता है। अतः दक्षिण का गुणक 14 × 15 = 210। माना पृच्छक की ओर मुख किए दो मनुष्य वहाँ हैं। तब 210+2 = 212 को 27 से भाग दिया तो शेष 23 है।

धनिष्ठा से गिनने पर ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म प्रतीत होता है।

तद्दिङ्मुखान्वितम्ः–पृच्छक जिस दिशा में बैठा हो, वह पृच्छकारूढ़ दिशा है।

उसी दिशा की ओर अर्थात् पृच्छक के सामने बैठे हुए जितने लोग पृच्छक की ओर देख रहे हों, उस संख्या से युक्त करके।

त्रिगुणाः– भट्टोत्पल ने त्रिगुणा शब्द को सात के साथ सम्बद्ध करके 21 अर्थात् सात का तिगुना ऐसे अर्थ किया है। यह असंगत है।

'सप्तत्रिगुणा' शब्द भाषिक दृष्टि से ठीक नहीं है। यदि आचार्य को 7 ×3 अभीष्ट होता तो वे 'त्रिगुण सप्त' ऐसा कहते। अतः त्रिगुणा शब्द का सम्बन्ध 'नवाष्ट' से है। तब इसका अर्थ है– त्रिगुणा नव = 27 एवं त्रिगुणाष्ट = 24 अथवा केवल नव के साथ सम्बन्ध मानने से 27 व 8 क्रमशः गुणक आएँगे। रुद्रभट्ट कहते हैं–

त्रिगुणा नव सप्तविंशतिरष्ट च इति यथाक्रमम् ऐन्द्रियादिदिक्षु।

पं० सीताराम झा ने इन अंकों को दस दिशाओं के वाचक दस अंक माना है। वे त्रि = 3, गुण = 3 कहकर क्रमशः 2, 3, 14, 10, 15, 7, 3, 3, 9, 8 अंक कहते हैं। यह अर्थ भी असम्भाव्य नहीं है।

इति नष्टजातकमिदं बहुप्रकारं मया विनिर्दिष्टम्।
ग्राह्यमदः सच्छिष्यैः परीक्ष्य यत्नाद्यथा भवति।।14।। (आर्या)

इस प्रकार यह नष्ट जातक प्रकरण, मैंने अनेक प्रकारों से कहा है। इनमें से खूब जाँच परखकर सच्चे शिष्यों द्वारा कई विधियों से परिणामों की तुलना करके तथा उन परिणामों में कुछ परिवर्तन करके यथासम्भव ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् जिस विधि से जब परिणाम अधिक सटीक मिलें, उसी विधि से निर्णय करना चाहिए।

नष्टजातकमिदम्ः– यहाँ 'इदम्' शब्द का अर्थ विशेष आश्चर्यकारक है। इस प्रयोग से आचार्य ने नष्ट पद्धति की क्लिष्टता, दुर्गमता व आश्चर्य-जनकता का संकेत किया है। 'णश् अदर्शने' धातु से निष्पन्न नष्ट शब्द का अर्थ अदृष्ट है। अर्थात् पृच्छक स्वयं ही अपना जन्म समयादि न जानता हो और जातक फल जानने का इच्छुक हो। अथवा स्वयं जानता तो हो और ज्योतिषी की परीक्षा करना चाहता हो। दोनों ही स्थितियाँ नष्ट जातक में हो सकती हैं।

बहुप्रकारम्ः– नष्ट जातक अनेक विधियों से जाना जा सकता है। यहाँ पूरे ग्रन्थ में बताए जातक नियमों का भी प्रयोग इस संदर्भ में करना चाहिए। यहाँ नहीं बताई गई तथा अन्यत्र कही गई विधि से यदि परिणाम उचित मिले तो उसे भी ग्रहण करना चाहिए। इससे विभिन्न मत-मतान्तरों की सत्ता आचार्य ने द्योतित की है–

'अन्येषामत्रानुक्तानामपि सम्प्रदायागतानां नष्टजातकानयन-प्रकाराणां सत्ता द्योत्यते।'

अथवा इसी बृहज्जातक में अदृश्य रूप से बहुत से नष्ट जातक प्रकार रखे गए हैं। दिङ् मात्र का निर्देश किया जा रहा है–

इस अध्याय के पहले श्लोक में **'आधानजन्मापरिबोधकाले'** में प्रयुक्त परिबोध शब्द की कटपयादि से संख्या क्रमशः 1, 2, 3, 9, है । इन से चन्द्रमा, सूर्य, गुरु व लग्न का ज्ञान सम्भव है। जैसा कि कहा है– **'लग्नत्रिकोणोत्तमवीर्ययुक्तं भं'**

अर्थात् 1.5.9 में बलवान् राशि अर्थात् जन्मराशि होती है । **'पूर्वापरार्धे भवनस्य विद्यात्'** में दो होराओं से दो अयनों का ज्ञान, **'लग्नत्रिकोणेषु गुरुम् त्रिभागैः'** में तीन अर्थात् द्रेष्काणों से गुरु का ज्ञान एवं **'होरानवांश प्रतिमं विलग्नम्'** में नवांश ग्रहण का सम्बन्ध 9 संख्या से है ।

अथवा प्रश्नकालीन इष्टकाल (परिबोधकाल में प्रयुक्त काल शब्द) को नौ से गुणा करके प्राप्त संख्या तुल्य जन्म नक्षत्र जानना चाहिए । इत्यादि विभिन्न गूढ़ आशय गुरुमुख व सम्प्रदायानुसार जानने चाहिएं–

एवमादीनि बहुविधानि गुरुमुखादगन्तव्यानि । (विवरण)

अथवा अध्याय के अन्त में **'परीक्ष्य यत्नाद्यथा भवति'** से जातकोक्त दशाफल, नक्षत्र, राशि, ग्रह स्वरूप, नवांश, होरा, द्रेष्काण, द्वादशांश आदि के स्वरूप का समन्वय करके भी नष्ट जातक की परीक्षा करनी चाहिए । सारावली में जातकोक्त फल स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर नष्ट जातक का निर्णय करना बताया ही गया है । इस प्रकार प्रश्न लग्न, अंगस्पर्श, स्वरूप संघटन, प्रत्यक्ष फल, अंक गुणकार विधि, शकुन, प्रत्यक्ष दर्शन श्रवणादि अनेक विधियों का यहाँ संकेत किया ही गया है ।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां नष्टजातकाध्यायश्चतुर्विंशः ।

[25]

अथ द्रेष्काणाध्यायः

मेष के द्रेष्काणों का स्वरूपः–

कट्यां सितवस्त्रवेष्टितः कृष्णः शक्त इवाभिरक्षितुम् ।
रौद्रः परशुं समुद्यतं धत्ते रक्तविलोचनः पुमान् ।।1।।

(वैतालीय)

कमर में सफेद वस्त्र लपेटे हुए, कृष्ण वर्ण, रक्षा करने में समर्थ सा दिखने वाला, लाल आँखों वाला, क्रोधित, हाथ में फरसा लिए हुए पुरुष, यह मेष का प्रथम द्रेष्काणगत रूप है ।

रक्ताम्बराभूषणभक्ष्यचित्ता कुम्भाकृतिर्वाजिमुखी तृषार्ता ।
एकेन पादेन च मेषमध्ये, द्रेष्काण रूपं यवनोपदिष्टम् ।। 2 ।।

(इन्द्रवज्रा)

यवनाचार्यो ने मेष के मध्य द्रेष्काण का रूप लाल कपड़े पहने हुए, आभूषण व खाने योग्य पदार्थो में मन लगाने वाली, घड़े के समान पेटवाली, घोड़े के समान मुख वाली, सदैव प्यास का अनुभव करने वाली एवं विकलांग एक पैर वाली स्त्री, ऐसा कहा है ।

क्रूरः कलाज्ञः कपिलः क्रियार्थी भग्नव्रतोऽभ्युद्यतदण्डहस्तः ।
रक्तानि वस्त्राणि विभर्ति चण्डो मेषे तृतीयः कथितस्त्रिभागः ।।3।।

(इन्द्रवज्रा)

क्रूर, कलाविद् कपिलवर्ण, कर्म में संलग्न, स्खलित नियमों वाला, दण्ड हाथ में रखने वाला अर्थात् प्रहारोद्यत, लाल कपड़े पहने हुए, भयंकर स्वरूप वाला पुरुष यह मेष का तृतीय द्रेष्काण रूप है ।

वृष द्रेष्काण स्वरूपः–

कुंचितलूनकचा घटदेहा, दग्धपटा तृषिताशनचित्ता ।
आभरणान्यभिवांछति नारी रूपमिदं प्रथमे वृषभस्य ।। 4 ।।

(दोधक)

मुड़े-तुड़े एवं टूटे फटे बालों वाली, घड़े के समान पेट वाली, जले हुए कपड़ों वाली, भूख प्यास से व्याकुल, आभूषण लोलुप नारी यह वृष के प्रथम द्रेष्काण का रूप है । यह अग्नि द्रेष्काण है ।

क्षेत्रधान्यगृहधेनुकलाज्ञो लाङ्गले सशकटे कुशलश्च ।
स्कन्धमुद्वहति गोपतितुल्यः क्षुत्परोऽजवदनो मलवासाः ।। 5 ।।

(स्वागता)

खेती-बाड़ी, अन्न के प्रकार, घर-परिवार की बातें, गायों का विशेषज्ञ, कलाज्ञानी, इन गुणों से युक्त, गाड़ी चलाने व हल जोतने में कुशल, बैल के समान ऊँचें कन्धों वाला, भूख से सदैव पीड़ित अर्थात् बहुत खाने वाला, मेष के समान मुख वाला तथा मैले वस्त्र पहनने वाला पुरुष यह वृष का द्वितीय द्रेष्काण स्वरूप है ।

द्विपसमकायः पाण्डुरदंष्ट्रः शरभसमाङ्घ्रिः पिंगलमूर्तिः ।
अविमृगलोमा व्याकुलचित्तो वृषभवनस्य प्रान्तगतोऽयम् ।। 6 ।।

(मौक्तिक माला)

हाथी के समान विशाल व स्थूल शरीर वाला, पीले दाँतों वाला, लम्बी टाँगों के कारण छलाँग सी लगाकर चलने वाला, पीले वर्ण कान्ति शरीर वाला, बकरे के समान लम्बे एवं हिरण के समान चित्र विचित्र रोमों वाला, मन में सदा बेचैन रहने वाला पुरुष, यह वृष के अन्तिम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

मिथुन राशि का द्रेष्काण स्वरूपः–

सूच्याश्रयं समभिवांछति कर्म नारी,
रूपान्विताभरणकार्यकृतादरा च ।

हीनप्रजोच्छ्रितभुजर्तुमती त्रिभाग-
माद्यं तृतीय भवनस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।। 7 ।।

(वसन्ततिलका)

आचार्यों ने मिथुन के प्रथम द्रेष्काण का यह स्वरूप कहा है । सिलाई, बुनाई, कढ़ाई आदि के काम (सूच्याश्रय कर्म) में सदैव रुचि रखने वाली, रूपवती, गहने आभूषणों में विशेष आदर रखने वाली अर्थात् बनने सँवरने, पहनने की शौकीन, सन्तान से रहित, ऊँचे उठे हुए वर्गाकारप्राय कन्धों वाली एवं रजस्वला नारी का स्वरूप है ।

उद्यानसंस्थः कवची धनुष्मां शूरोऽस्त्रधारी गरुडाननश्च ।
क्रीडात्मजालङ्करणार्थचिन्तां करोति मध्ये मिथुनस्य चायम् ।। 8 ।।

(उपेन्द्रवज्रा)

बाग में बैठा हुआ, कवच धारण किए हुए, धनुर्धारी, शूरवीर, हथियार बन्द, गरुड़ के समान मुख वाला, खेलक्रीड़ा या विलास के लिए, पुत्र-पुत्रियों के, एवं आभूषणों के लिए चिन्ता करता हुआ पुरुष, यह मिथुन के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है ।

भूषितो वरुणवद् बहुरत्नैर्बद्धतूणकवचः सधनुष्कः ।
नृत्तवादितकलासु च विद्वान् काव्यकृन् मिथुनराश्यवसाने ।। 9 ।।

(स्वागता)

वरुण देवता के समान अनेक रत्नों से सुशोभित या भूषित, कवच व तूणीर बाँधे हुए, धनुष धारण किए हुए, नृत्य, गायन व वाद्य में निपुण, कविता करने वाला पुरुष, यह मिथुन के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ।

कर्क के द्रेष्काणों का स्वरूपः-

पत्रमूलफलभृद् द्विपकायः, कानने मलयगः शरभाङ्घ्रिः ।
क्रोडतुल्यवदनो हयकण्ठः कर्कटे प्रथम रूपमुशन्ति ।। 10 ।।

(स्वागता)

हाथ में पत्ते, मूल, फल आदि लिए हुए, हाथी के समान अर्थात् बड़ा व थुल थुल सा शरीर, वन में (मलय) चन्दन के वृक्ष पर स्थित अर्थात् प्राकृतिक सुगन्ध से प्रेम करने वाला, लम्बे-लम्बे डग भरने वाला अर्थात् तीव्रगामी, शूकर के समान मुख वाला, घोड़े के समान गर्दन वाला पुरुष यह कर्कराशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

पद्मार्चिता मूर्धनि भोगियुक्ता स्त्रीकर्कशारण्यगता विरौति ।
शाखां पलाशस्य समाश्रिता च, मध्ये स्थिता कर्कटकस्य राशेः ।। 11 ।।

(इन्द्रवज्रा)

कमल से सुशोभित अर्थात् हाथ, छाती या भुजा में कमल धारण करने वाली, सिर पर सर्प से युक्त, कर्कश स्वभाव वाली अथवा भरपूर यौवन से युक्त, निर्जनस्थान पर खड़ी हुई शब्द करने वाली, ढाक की टहनी को पकड़कर खड़ी होने वाली स्त्री यह कर्क के मध्य द्रेष्काण का स्वरूप है ।

भार्याभरणार्थमर्णवे नौस्थो गच्छति सर्पवेष्टितः ।
हैमैश्च युतो विभूषणैश्चिपिटास्योऽन्त्यगतश्च कर्कटे ।। 12 ।।

(वैतालीय)

अपनी पत्नी (परिवार) के भरण पोषण के लिए, नाव में बैठकर समुद्र में विचरण करने वाला पुरुष, सर्प से वेष्टित, सोने के गहने पहने हुए, कुछ चपटी नाक वाला, यह कर्क के अन्तिम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

सिंह के द्रेष्काणों का स्वरूपः–

शाल्मलेरुपरिगृध्रजम्बुकौ, श्वानरश्च मलिनाम्बरान्वितः ।
रौति मातृपितृविप्रयोजितः, सिंहरूपमिदमाद्यमुच्यते ।। 13 ।।

(रथोद्धता)

सेमल के पेड़ के नीचे खड़ा हुआ, मैले कपड़ों वाला, उसी पेड़ पर गिद्ध, पेड़ के नीचे गीदड़ तथा कुत्ता स्थित हैं, पुरुष (बालक) अपने माता-पिता से बिछुड़ कर करुण स्वर में रो रहा है, यह सिंह के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

हयाकृतिः पाण्डरमाल्यशेखरो बिभर्ति कृष्णाजिनकम्बलं नरः ।
दुरासदः सिंह इवात्तकार्मुको नताग्रनासो बृगनाथमध्यमः ।। 14 ।।

(वंशस्थ)

घोड़े के समान चुस्त व पुर्तीले शरीर वाला, मटमैले सफेद फूलों की माला सिर पर पहने हुए, काले मृग चर्म व कम्बल को धारण किए हुए, शेर के समान सरलता से नियन्त्रित न होने वाला, नाक की नोक कुछ दबी हुई सी, ऐसे पुरुष का रूप सिंह के मध्य द्रेष्काण में है ।

ऋक्षाननो वानरतुल्यचेष्टो बिभर्ति दण्डं फलमामिषं च ।
कूर्ची मनुष्यः कुटिलश्च केशैर्मृगेश्वस्यान्त्यगतस्त्रिभागः ।। 15 ।।

(उपजाति)

भालू के समान मुख वाला, वानर के समान हाव-भाव वाला, हाथ में डण्डा, फल व मांस का टुकड़ा धारण किए हुए, दाढ़ी बढ़ाए हुए व टेढ़े–मेढ़े बालों वाला पुरुष, यह सिंह राशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ।

कन्या के द्रेष्काणों का स्वरुप :–

पुष्पप्रपूर्णेन घटेन कन्या मल प्रदिग्धाम्बर संवृततांगी ।
वस्त्रार्थसंयोगमभीप्समाना गुरोः कुलं वांछति कन्यकाद्यः ।। 16 ।।

(इन्द्रवज्रा)

फूलों से सजाए गए घड़े को धारण किए हुए, मैले कुचैले वस्त्रों से अपने शरीर को ढ़के हुए, धन, वस्त्र की प्राप्ति की इच्छुक एवं गुरुकुल में जाने की इच्छा रखने वाली कन्या, यह कन्या राशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूपहै ।

पुरुषः प्रगृहीतलेखनिः श्यामोवस्त्रशिरा व्ययायकृत् ।
विपुलं च बिभर्ति कार्मुकं रोमव्याप्ततनुश्च मध्यमः ।। 17 ।।

(वैतालीय)

हाथ में कलम लिए हुए, सांवला वर्ण, सिर पर कपड़ा (पगड़ी) लपेटे हुए, आय व्यय का लेखा जोखा रखने वाला, बड़ा धनुष हाथ में लिए हुए, शरीर पर रोमों से युक्त पुरुष, यह कन्या के मध्य द्रेष्काण का स्वरूप है ।

गौरी सुधौतार्द्रदुकूलयुक्ता समुच्छ्रिता कुम्भकटच्छुहस्ता ।
देवालयं स्त्रीप्रयता प्रवृत्ता वदन्ति कन्यान्त्यगतस्त्रिभागः ।। 18 ।।

(उपजाति)

गोरा रंग, साफ धुले व गीले उत्तरीय वस्त्र से युक्त, ऊँचा कद, हाथ में घड़ा व चमचा, पलटा आदि लौह निर्मित गृहोपकरण लिए हुए, ऋतुदर्शन के बाद स्नान की हुई, मन्दिर आदि में जाने के तत्पर स्त्री, यह कन्या के अन्तिम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

तुला के द्रेष्काणों का स्वरूपः-

वीथ्यन्तरापणगतः पुरुषस्तुलावान्,
उन्मानमानकुशलः प्रतिमानहस्तः ।
भाण्डं विचिन्तयति कस्य विपण्यमेतद्,
रूपं वदन्ति यवनाः प्रथमं तुलायाः ।। 19 ।। (वसन्ततिलका)

मुख्य मार्ग या गली में दुकान पर बैठा हुआ, हाथ में तराजू पकड़े हुए, तोलने व नापने में कुशल, हाथ में बाट आदि लिए हुए, 'यह बर्तन किसे बेचूँ' इस प्रकार से चिन्ता में व्यग्र अर्थात् सौदा बेचने के लिए तत्पर पुरुष, यह तुला के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप यवनों ने बताया है ।

कलशं परिगृह्य विनिष्पतितुं समभीप्सति गृध्रमुखः पुरुषः ।
क्षुधितस्तृषितश्च कलत्रसुतान् मनसैति तुलाधरमध्यगतः ।। 20 ।।

(तोटक)

हाथ में घड़ा उठाकर भाग जाने को उद्यत, गिद्ध के समान मुख वाला, भूखा व प्यासा, अपने बच्चों व स्त्री के विषय में मन में सोचता हुआ पुरुष, यह तुला के मध्य द्रेष्काण का स्वरूप है ।

विभीषयंस्तिष्ठति रत्नचित्रितो वने मृगान् कांचनतूर्ण वर्मभृत् ।
धनुर्धरः किन्नररूपभृन्नरस्तुलावसाने यवनैरुदाहृतः ।। 21 ।।

(वंशस्थ)

रत्नों से विभूषित, सोने का तरकस लिए हुए, कवच पहने हुए, धनुर्धर, किन्नर के समान रूपवाला अर्थात् विकृत स्वरूप वाला, वन में पशुओं को डराता हुआ पुरुष, यह तुला के अन्तिम द्रेष्काण का रूप यवनों ने बताया है ।

वृश्चिक द्रेष्काणों का स्वरुपः—

वस्त्रैर्विहीनाभरणैश्च नारी महासमुद्रात् समुपैति कूलम् ।।
स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा मनोरमा वृश्चिकराशिपूर्वः ।। 22 ।।

(उपजाति)

वस्त्रों व आभूषणों से हीन, बड़े समुद्र से किनारे की ओर आती हुई, अपने स्थान से भटकी हुई, पैर में सर्प लिपटा हुआ, शरीर से सुन्दर स्त्री, यह वृश्चिक के पहले द्रेष्काण का स्वरूप है ।

स्थानसुखान्यभिवांछति नारी भर्तृकृते भुजगावृतदेहा ।
कच्छपकुम्भसमानशरीरावृश्चिकमध्यमरूपमुशन्ति ।। 23 ।।

(दोधक)

अपने पति से संगम के लिए स्थान की चाह वाली, सर्प से लिपटे हुए शरीर वाली, कछुए व घड़े के समान गोल–मटोल शरीर वाली स्त्री, यह वृश्चिक मध्यम द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है ।

पृथुलचिपिटकूर्मतुल्यवक्त्रः श्वमृगश्रृगाल वराहभीषकारी ।
अवति च मलयाकरप्रदेशं मृगपतिरन्त्यगतश्च वृश्चिकस्य ।। 24 ।।

(पुष्पिताग्रा)

चौड़े चपटे व कछुए के समान मुख वाला, कुत्तों, हिरणों, सियारों व सूअरों के लिए भय पैदा करने वाला, चन्दन वन का रक्षक, शरीर के निचले आधे भाग में शेर के समान दिखने वाला पुरुष, यह वृश्चिक का अन्तिम द्रेष्काणगत रूप है ।

धनुराशि के द्रेष्काणों का स्वरूप :—

मनुष्यवक्त्रोऽश्वसमानकायो धनुर्विकृष्यायतमाश्रमस्थः ।
क्रतूपयोग्यानि तपस्विनश्च रक्षत्यथाद्यो धनुषस्त्रिभागः ।। 25 ।।

(उपजाति)

मनुष्य के समान मुख वाला, बाकी शरीर से घोड़े के समान, हाथ में धनुष ताने हुए, तपस्वियों के आश्रम में स्थित होकर, यज्ञ के उपयोगी सामान व तपस्वियों की रक्षा करता हुआ पुरुष, यह धनु राशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

मनोरमा चम्पकहेमवर्णा भद्रासने तिष्ठति मध्यरूपा ।
समुद्ररत्नानि विघट्टयन्ती मध्यत्रिभागो धनुषः प्रदिष्टः ।। 26 ।।

(उपजाति)

मध्यम कद काठी वाली, चम्पई चमकीले रंगत वाला, स्वच्छ आसन पर बैठी हुई, समुद्र से निकले रत्नों को सँवारती हुई स्त्री, यह धनु के मध्य द्रेष्काण का रूप है ।

कूर्ची नरो हाटकचम्पकाभो वरासने दण्डधरो निषण्णः ।
कौशेयकान्युद्वहतेऽजिनं च तृतीयरूपं नवमस्य राशेः ।। 27 ।।

(उपजाति)

लम्बी दाढी वाला, सोने के समान चमकते हुए चम्पई वर्ण वाला, श्रेष्ठ आसन (ऊँचे) पर बैठा हुआ, हाथ में डण्डा लिए हुए, रेशमी वस्त्र व मृग छाला धारण किए हुए पुरुष, यह धनु के अन्तिम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

मकरद्रेष्काणस्वरूपः–

रोमचितो मकरोपमदंष्ट्रः सूकरकायसमानशरीरः ।
योक्त्रकजालकबन्धनधारी रौद्रमुखो मकरे प्रथमस्तु ।। 28 ।।

(दोधक)

रोम से व्याप्त शरीर वाला, मगरमच्छ के समान दांतों वाला, सूअर के समान शरीर वाला, जुआ, जोतनी (जिससे बैलों को जोता जाता है) जाल व हथकड़ी आदि लिए हुए, भयंकर क्रुद्ध मुख वाला मनुष्य, यह मकर का प्रथम द्रेष्काण है ।

कलास्वभिज्ञाब्जदलायताक्षी, श्यामाविचित्राणि च मार्गमाणा ।
विभूषणालङ्कृतलोहकर्णा योषित्प्रदिष्टा मकरस्य मध्ये ।। 29 ।।

(उपजाति)

कलाओं में निपुण, खिले कमल दल के समान नेत्रों वाली, साँवले रंग वाली, विचित्र वस्तुओं की खोज में संलग्न, विभूषणों से अलंकृत शरीर वाली, कान में लोहे का कुण्डल पहने हुए स्त्री, यह मकर के मध्य द्रेष्काण का स्वरूप है ।

किन्नरोपमतनुः सकम्बलस्तूर्णचापकवचैः समन्वितः ।
कुम्भमुद्वहति रत्नचित्रितं स्कन्धगं मकरराशिपश्चिमः ।। 30 ।।

(रथोद्धता)

किन्नर के समान घोड़े व मनुष्य का मिश्रित रूप, कम्बल ओढ़े हुए, तरकश, धनुष व कवच पहने हुए, रत्न जटित घड़ा कन्धे पर उठाए हुए पुरुष, यह मकर राशि का अन्तिम द्रेष्काण गत स्वरूप है ।

कुम्भद्रेष्काणस्वरूपः–

स्नेहमद्यजलभोजनामिष व्याकुलीकृतमनाः सकम्बलः ।
कोशकारवसनोऽजिनान्वितो गृध्रतुल्यवदनो घटादिगः ।। 31 ।।

(रथोद्धता)

तेल, शराब, पानी, खाने के पदार्थ, मांस आदि के लिए व्याकुल मन वाला, कम्बल ओढ़े हुए, रेशमी वस्त्र व मृगचर्म धारण किए हुए, गिद्ध के समान मुख वाला पुरुष यह कुम्भ के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

दग्धे शकटे सशाल्मलौ लौहान्याहरतेऽङ्गना वने ।
मलिनेन पटेन संवृता भाण्डैर्मूर्ध्नि गतैश्च मध्यमः ।। 32 ।।

(वैतालीय)

सेमर के वृक्षों से युक्त वन में जली हुई गाड़ी पर बैठी हुई, लोहे के टुकड़े बीनती हुई, मैले कपड़े पहने हुए, सिर पर कई घड़े उठाए हुए स्त्री, यह कुम्भ के मध्यम द्रेष्काण का रूप है ।

श्यामः सरोमश्रवणः किरीटी त्वक्पत्रनिर्यासफलैर्बिभर्ति ।
भाण्डानि लोहव्यतिमिश्रितानि संचारयत्यन्त्यगतो घटस्य ।। 33 ।।

(इन्द्रवज्रा)

कान में दिखने वाले रोमों वाला, साँवला, मुकुट पहने हुए, पेड़ की छाल, गोदे पत्ते, फल आदि व लोहे के टुकड़ों को समेट कर बर्तन में रखता हुआ तथा उन पात्रों को एक जगह से रखता हुआ पुरुष, यह कुम्भ के अन्तिम द्रेष्काण का रूप है ।

मीन के द्रेष्काणों का स्वरूप :–

स्रुकभाण्डमुक्तामणिशङ्खमिश्रैर्व्याक्षिप्तहस्तः सविभूषणश्च ।
भार्याविभूषार्थमपां निधानं नावा प्लवत्यादिगतो झषस्य ।। 34 ।।

(इन्द्रवज्रा)

स्रुवा (यज्ञ साधन भूत लकड़ी का चम्मच) बर्तन, मोती, मणि, शंख आदि से भरे हाथों वाला, भूषण पहने हुए, पत्नी के गहनों के लिए मणि आदि खोजने के प्रयोजन से नाव से समुद्र को लाँघने वाला पुरुष, यह मीन के प्रथम द्रेष्काण का रूप है ।

अत्युच्छ्रितध्वजपताकमुपैति पोतं कूलं प्रयाति जलधेः परिवारयुक्ता ।
वर्णेन चम्पकमुखाप्रमदा त्रिभागो मीनस्य चैषकथितो मुनिभिर्द्वितीयः ।। 35 ।।

(वसन्ततिलका)

बहुत ऊँचे झंडे से युक्त नाव या जलपोत पर परिवार सहित बैठी हुई, चम्पा के समान वर्ण वाली समुद्र के किनारे की ओर बढ़ती हुई स्त्री, यह मीन के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है ।

श्वभ्रान्तिके सर्पनिवेष्टितांगो वस्त्रैर्विहीनः पुरुषस्त्वटव्याम् ।
चौरानलव्याकुलितान्तरात्मा विक्रोशतेऽन्त्योपगतो झषस्य ।। 36 ।।

(इन्द्रवज्रा)

वन में गढ्ढे के समीप, सर्प वेष्टित शरीर वाला, वस्त्रहीन, चोर व अग्नि से परेशान मन वाला, विलाप करता हुआ पुरुष, यह मीन के अन्तिम द्रेष्काण का स्वरूप है ।

इन 36 द्रेष्काण स्वरूपों में जहाँ सर्प का वर्णन हो, वे सर्प द्रेष्काण, हथकड़ियों से निगड़ द्रेष्काण, हथियार से उद्यतायुध द्रेष्काण स्वरूपों का निर्णय पीछे यथाप्रसंग बताया ही गया है । यह द्रेष्काण स्वरूप यवनाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट है । इसका प्रयोजन स्वयं यात्राग्रन्थ में आचार्य ने बताया है–

द्रेक्काणाकारचेष्टा गुणसदृशफलं योजयेद् वृद्धिहेतो–
द्रेष्काणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च ।
सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात् प्रहरणसमये **पापदृष्टे च भङ्गः,**
सम्मोहो वाथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते यियासोः ।।

(योगयात्रा)

'द्रेष्काण के आधार, चेष्टा, गुण आदि से जातक के स्वरूप व स्वभाव का निर्णय भी होता है । जिन द्रेष्काणों का स्वरूप सौम्य या रत्न फल फूल युक्त कहा है, उनमें यात्रा या आक्रमण या विवाद करने से जय होती है । शुभ ग्रह से दृष्ट द्रेष्काण में युद्ध में जय तथा पापदृष्ट होने से पराजय होती है । अथवा भयानक रूप वाले द्रेष्काण में युद्धादि करने से पराजय, हानि, बन्धन या नाश होता है ।'

पीछे आश्रयाध्याय में भी **'कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद्दृकाणे'** आदि श्लोक में चन्द्रमा के द्रेष्काणादि से जातक के रूपगुणों का निर्णय भी कहा है। साथ ही **'द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः'** नियमानुसार द्रेष्काण स्वरूप से चोर या प्रश्न सम्बन्धी अज्ञात पुरुष के स्वरूप का निर्णय भी होता है। इस विषय का विशेष विस्तार सारावली के 49 अध्याय में देखना चाहिए। इन 36 द्रेष्काणों में स्त्री, पुरुष, सरीसृप, चतुष्पद आदि द्रेष्काण भी यथोक्त प्रकार से समझने चाहिएं।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायां द्रेष्काणाध्यायः पंचविंशः।।

[26]

उपसंहाराध्यायः

अध्यायों के नाम व सूचीः—

राशिप्रभेदो ग्रहयोनिभेदो वियोनिजन्माथ निषेककालः ।
जन्माथसद्योमरणं तथायुर्दशाविपाकोऽष्टकवर्गसंज्ञः ।। 1 ।।

(उपजाति)

बृहज्जातक में अध्यायों के नाम व सूची प्रस्तुत की जा रही है, जिससे ग्रन्थ में प्रक्षेप का अवकाश न रहे । 1- राशिभेद 2. —ग्रहयोनिभेद 3- वियोनि जन्म 4- निषेक (आधान) 5- जन्म 6- सद्योमरण 7- आयुर्दाय 8 - दशाफल 9- अष्टकवर्ग ।

कर्माजीवो राजयोगाः खयोगाश्चान्द्रा योगा द्विग्रहाद्याश्च योगाः ।
प्रव्रज्याथो राशिशीलानिदृष्टिर्भावस्थानान्याश्रयोऽथ प्रकीर्णः ।। 2 ।।
नेष्टायोगा जातकं भामिनीनां निर्याणं स्यान्नष्टजन्मादृकाणः ।
अध्यायानां विंशतिः पंचयुक्ता वृत्तान्येभिः स्युस्त्र्यशीत्याशतानि ।। 3 ।।

(शालिनी)

10— कर्मा जीव 11— राजयोग 12— नाभसयोग 13—चान्द्रयोग 14—द्विग्रहयोग 15— प्रव्रज्या 16— राशि शील 17—दृष्टिफल 18—भावफल 19— आश्रय 20—प्रकीर्ण 21—अनिष्टयोग 22— स्त्रीजातक 23— निर्याण 24— नष्ट जातक 25—द्रेष्काणाध्याय ।

इस प्रकार समस्त विषय को उक्त क्रम से 25 अध्यायों में बाँटकर 383 छन्दों में कहा गया है । कई प्रसिद्ध प्रतियों में तीसरे श्लोक में चतुर्थ

चरण **'जन्मन्येतद् यात्रिकं चाभिधास्ये'** अर्थात् होराध्याय कहकर आगे यात्रा ग्रन्थ के अध्यायों का क्रम कहूँगा । ' तब इस स्थिति में श्लोक संख्या का कथन नहीं होगा । ये दोनों ही पाठ प्राचीन काल से चले आ रहे हैं । स्वयं रुद्रभट्ट लिखते हैं कि 'अथ केचित् चतुर्थपाठमन्यथापठन्ति 'जन्माद्येतद्यात्रिकं चाभिधास्ये' इति । अस्मिन् पक्षे श्लोकसंख्या नोक्ता स्यात् । त्र्यशीत्युत्तरशतं त्रयप्रमाणश्लोकत्वेनोपसंहृतम् ।'

भट्टोत्पल के पाठ में 399 श्लोक हैं । उनमें से 14 श्लोक नक्षत्र जातक के 'बृहत्संहिता' से सीधे लेकर रख दिए हैं । अतः वे होराशास्त्र में पठित नहीं होंगे । सुविधा व संग्रह की दृष्टि से कभी विषय समझाने के लिए किसी ने उन्हें भी साथ-साथ उद्धृत कर लिख दिया होगा । मूल होराशास्त्र में 383 श्लोक मूल पाठ के हैं । भट्टोत्पल के पाठ में 399 श्लोक हैं ।

(1) ग्रह मैत्री में **'शत्रूमन्दसितौ', सूरेः सौम्यसितावरी'** ये दो श्लोक, आयुर्दाय में **'सत्योक्त ग्रहमिष्टं'** यह एक श्लोक, नष्टजातक में **विज्ञेया दशकेष्वदा 'दिवारात्रि प्रसूतिं' च** तथा **'वेलामथ विलग्नं'** ये तीन श्लोक एवं 14 श्लोक नक्षत्र जातक (बृहत्संहिता) के मिलकर 20 श्लोक अधिक रहने से 379 श्लोक उभयत्र समान तथा **'भौमे विलग्ने शुभदैरदृष्टे'** आदि अरिष्टाध्याय का अधिक श्लोक जोड़ने से उपसंहार श्लोक रहित 380 श्लोक भट्टोत्पली में भी बन जाते हैं ।

प्रक्षेप व मिलावट से बचने के लिए शास्त्रों की यह परम्परा रही है कि अध्यायों और श्लोकों की तो बात ही क्या, अक्षरों तक को गिनकर बता देते थे । श्लोक या अनुष्टुप् मान से ग्रन्थसंख्या, कहना इसी ओर संकेत करता है । एक अनुष्टुप् छन्द में 32 अक्षर होते हैं । अतः जब कहा जाए कि अमुक ग्रन्थ में अनुष्टुप् मान से 5000 श्लोक हैं तो इसका सीधा अर्थ है कि पूरे ग्रन्थ में 10,000 पंक्तियाँ एवं $5000 \times 32 = 160000$ अक्षर या वर्ण आदि हैं ।

अब तीन श्लोक और आवश्यक हैं । ऊपर 380 श्लोक निर्विवाद कह चुके हैं । उनमें तीन श्लोक उपसंहार में बृहज्जातक के अध्याय क्रम सम्बन्धी जोड़ने से (राशि प्रभेदो ग्रहयोनि भेदो .....' इत्यादि) पूरे 383 श्लोक बन जाएँगे । इस प्रकार 25 अध्यायों व 383 श्लोकों का यह मूल व वास्तविक बृहज्जातक है ।

यात्रा ग्रन्थ का अध्याय क्रमः–

प्रश्नास्तिथिर्भं दिवसः क्षणश्च, चन्द्रो विलग्नं त्वथ लग्नभेदः ।
शुद्धिर्ग्रहाणामथ चापवादो विमिश्रकार्यं तनुवेपनं च ।। 1 ।।

अतः परं गुह्यकपूजनं स्यात् स्वप्नं तथा स्नानविधिः प्रदिष्टः ।

यज्ञो ग्रहाणामथ निर्गमश्च क्रमादथोक्तः शकुनोपदेशः ।। 2 ।।

बृहद् यात्रा नामक ग्रन्थ का अध्यायक्रम आचार्य ने कहा है ।
1. प्रश्नभेदाध्याय, 2. तिथिबलाध्याय, 3. नक्षत्राध्याय 4. दिवस (वारा) लक्षण 5. क्षण (मुहूर्त्त) 6. चन्द्रबल, 7. लग्नबल, 8. लग्नभेद, 9. ग्रहशुद्धि, 10.- अपवाद, 11. विमिश्राध्याय, 12. शरीर स्फुरण लक्षण, । 13. गुह्यकपूजन, 14. स्वप्न लक्षण, 15. स्नानविधि, 16. ग्रहयज्ञ, 17. प्रस्थानाध्याय, 18. शकुनोपदेशाध्याय ।

इस प्रकार उक्त क्रम से 18 अध्याय योग यात्रा नामक या यात्रा सम्बन्धी ग्रन्थ में हैं ।

अन्य ग्रन्थों की सूचनाः–

विवाहकालः करणं ग्रहाणां प्रोक्तं पृथक् तद् विपुला च शाखा ।

स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषसंग्रहोऽयं मया कृतो दैवविदां हिताय ।। 3 ।।

विवाह पटल, ग्रहकरण (पंच सिद्धान्तिका) तथा ज्योतिष की विपुला अर्थात् बड़ी व व्यापक शाखा (बृहत्संहिता) मैंने कही है । इस तरह दैवज्ञों के हितार्थ तीनों स्कन्धों (गणितस्कन्ध, जातक स्कन्ध व संहितास्कन्ध) को मैंने बनाया है । अर्थात् पूर्वशास्त्रों को देखकर निश्चित मत प्रस्तुत करते हुए संक्षेप में कहा है ।

आत्मपरिचयादि कथनः–

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः,

कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः ।

आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्

घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ।। 4 ।।

श्री आदित्यदास के सुपुत्र तथा उन्हीं अपने पिता से बोध (ज्ञान) पाया है जिसने, कापित्थक ग्राम में भगवान् सूर्य की आराधना से वरदान व सूर्य नारायण की प्रसन्नता प्राप्त करने वाले, अवन्ती अर्थात् उज्ज़यिनी के निवासी वराहमिहिर ने, मुनियों के मतों का समालोचन करके, अत्यन्त रमणीय यह होरा शास्त्र, सम्यक् प्रकार से कहा है ।

स्वरचना की विशेषता व क्षमायाचनाः–

पृथुविरचितमन्यैः शास्त्रमेतत्समस्तं

तदनु लघुमयेदं तत्प्रदेशार्थमेव ।

कृतमिह हि समर्थं धीविषाणामलत्वे

मम यदिह दुरुक्तं सज्जनैः क्षम्यतां तत् ।। 5 ।।

यद्यपि होरा शास्त्र को अन्य आचार्यो ने बहुत विस्तार से कहा है, लेकिन मैंने उन्हीं को देखकर (तदनु) गूढ़ अर्थो को समझाने में समर्थ एवं बुद्धि रूपी सींग को पैना करने की शक्ति से युक्त यह होरा शास्त्र (लघु) संक्षिप्त रूप से कहा है। इसमें यदि कहीं कोई दुरुक्ति अर्थात् अनुचित, स्खलित, अथवा त्रुटिपूर्ण वचन हो तो सज्जनों से इस संदर्भ में मैं (वराह) क्षमा याचना करता हूँ।

ग्रन्थस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति

लेख्यादबहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण ।

यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं व ।

कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम् ।। 6 ।।

इस ग्रन्थ के अधिक प्रचलन में आ जाने से, यदि कोई अंश खण्डित हो जाए अथवा (लिपिकर्ता) के दोष से कोई न्यूनाधिक्य हो जाए तो बहुश्रुत लोगों (समर्थ आचार्यो) के वचनों का आधार लेकर, सज्जन उसे सुधार लेंगे।

अथवा मुझ से ही यदि कोई चीज यहाँ छूट गई हो, अथवा गलत विधि से बता दी गई हो या किसी विषय को संक्षेप में लिखा हो तो विद्वान् मत्सर छोड़कर स्वयं उसे सुधार लेंगे।

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् ।

शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ।। 7 ।।

भगवान् सूर्य, गर्ग, वशिष्ठ, पराशर, रोमश, पौलिश, यवन आदि ऋषियों को एवं गुरु (पितामह, बृहस्पति एवं अपने पिता) को प्रणाम करने से होने वाली उनकी प्रसन्नता से प्राप्त बुद्धि से मैंने यह शास्त्र संग्रह (होराशास्त्र) किया है। अन्त में पूर्ववर्ती सभी शास्त्रकारों को मेरा नमस्कार। मार्गदर्शक ऋषियों व ग्रन्थकारों के प्रति आचार्य ने यहाँ अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

ध्यातव्य है कि आचार्य ने अपने किसी भी ग्रन्थ का पृथक् या विशिष्ट नामकरण नहीं किया था। वे सर्वत्र सिद्धान्त ग्रन्थ, होराग्रन्थ, संहिता इत्यादि प्रकार से ही कहते हैं। पाँच सिद्धान्तों का संग्रह होने से बाद में विद्वानों ने उसका नाम पंचसिद्धान्तिका कहा था। इसी तरह सर्वत्र होराशास्त्र नाम से उल्लिखित इस ग्रन्थ को भी लघुजातक नामक वराहकृत ग्रन्थ की तर्ज पर लोग बृहज्जातक कहने लगे। इस प्रकार पंचसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता,

लघु या समाससंहिता, लघुजातक, होराशास्त्र या बृहज्जातक, यात्रा ग्रन्थ (कदाचित् बृहद्‌यात्रा) एवं विवाह पटल ये वराहमिहिराचार्य के ग्रन्थ हैं।

गुरुजनगुणिजनपितृवरनवग्रहचरणेषु नतिं कृत्वा।
रम्यमभाणीच्छास्त्रे सहितं पठतां सुरेशोऽयम्।। 1।।
पंचैकांकैकशाके निरयणमकरे संक्रमे तिग्मरश्मेः,
मासे पौषे सितेऽर्धे दनुजपतिगुरोर्वासरे राजधान्याम्।
होराशास्त्रे प्रसिद्धे मुकुटमणिनिभे मिश्रलक्ष्मा सुरेशः–
श्चर्चा शास्त्रार्थगूढां परिमितवचनैराचरच्चारुरूपाम्।। 2।।
इत्युक्तो मुनिवचनानुकूल्ययुक्तः
शास्त्रार्थो निजमतियोगपूर्वमत्र।
छात्राः स्युर्विगलितसंशयाः मदुक्तै–
र्वाक्यार्थैर्विमुदितमानसाश्च विज्ञाः।। 3।।
क्वचिदिहकरणे स्खलनं, सद्भिर्दृष्टं भवेद्वाप्यल्पकृतम्।
नूनं परिहरणीयं नैसर्गिकात्क्षमाभावात्।। 4।।

इति श्रीमन्महामतिवराहमिहिराचार्यकृते होराशास्त्रे बृहज्जातकाख्ये पं० सुरेशमिश्रकृतायामभिनवाख्यटीकायामुपसंहाराध्यायः षड्विंशः।।

(इति प्रलयखण्डः)

(समाप्तोऽयं ग्रन्थः)

ज्योतिष पितामह महर्षि पराशर प्रोक्त

बृहत् पाराशर होराशास्त्रम्
(BRIHAT PARASARA HORA SASTRAM)

व्याख्याकार : डॉ० सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों में **महर्षि पराशर** का सर्वोच्च स्थान है। पाराशर होराशास्त्र भारतीय ज्योतिष में सर्वोपरि माना जाता है। वास्तव में पाराशर सिद्धान्तों का विस्तार ही सम्पूर्ण ज्योतिष है। पाराशर नियमों के बिना ज्योतिष की कल्पना मात्र भी सम्भव नहीं है। इन्हीं सब पाराशर सिद्धान्तों का प्रतिपादन ग्रन्थ **'बृहत् पाराशर होरा शास्त्र' है**। इसे पढ़ने के बाद कुछ भी पढ़ना बाकी नहीं रहता।

विभिन्न संस्करणों में परस्पर विरोधी बातों का समन्वय करते हुए दक्षिणात्य व उत्तर भारतीय रूपों व मान्यताओं का समाहार करके विद्वान व्याख्याकार ने विस्तृत व्याख्या भी दी है। **दक्षिण भारत की कई अप्रकाशित व प्रकाशित** पुस्तकों से भी इस संस्करण में सहयोग लिया गया है। शताध्यायी होरा के रूप में प्रसिद्ध यह ग्रन्थ **शास्त्र के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय की तरह अन्तिम निर्णय देता है**। पराशर व उनका यह होराशास्त्र फलित कथन के लिए पहली व अंतिम सीढ़ी है।

प्रत्येक गुत्थी को सुलझाते हुए यह समालोचनात्मक संस्करण वास्तविक व निःसन्दिग्ध अर्थ से ओतप्रोत है। **भारतीय ज्योतिष की आत्मा पाराशर होराशास्त्र में ही बसती है**।

सुविस्तृत, कपोल कल्पना व मिलावट से रहित सर्वतोभावेन अर्थ बोधक व्याख्या से युक्त एक प्रामाणिक संस्करण, जो स्वयं एक पुस्तकीय पुस्तकालय भी है। **दो भागों में सम्पूर्ण ग्रन्थ, 101 अध्याय, 4500 से अधिक श्लोक**

मूल्य 300 रु० — **विशिष्ट संस्करण 400 रु०**

सर्वप्रथम प्रामाणिक संस्करण

अपनी प्रति के लिये पत्र लिखें

रंजन पब्लिकेशन्स

16, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002